जब कोई दूसरा सीटयुक्त वर्ण आदि में रखनेवाला शब्द अपना कुछ प्रभाव दिखाताहै

व्याकरणियों की मति के अनुसार पूरे शब्द के अन्त में र् नहीं आताहै इस लिये सब संज्ञाओं और क्रियाओं के रूप जब दूसरे शब्दों से अलग रहतेहैं तब उनका पिछला न् विसर्ग से पलटजाताहै

इस देश के किसी२ खण्ड में विसर्ग का उच्चारण बहुत कठोर करते हैं अर्थात् रामः को रामह् और अग्निः को अग्निहि और शिवैः को शिवैहि बोलते हैं

१ ली शाखा

अर्द्ध विसर्ग आधा विसर्ग है सो दो छोटे२ आधे घेरे से मनके तले ऊपर जैसे ≍ कभी२ क् ख् और प् फ् के पहले लिखाजाता है जब क् और ख् के पहले यिह चिन्ह आताहै तब जिह्वामूलीय कहाजाता है और उसका उच्चारणस्थान जिह्वामूल (जीभ की जड़) कहलाताहै और प् और फ् के पहले यिह चिन्ह उपध्मानीय (स्वास छोड़ने के योग्य) कहाजाताहै और उसका उच्चारणस्थान ओष्ठ कहलाता है

इसलिये जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को कण्ठस्थानी और ओष्ठस्थानी वर्णों का सीटीयुक्त संगी समझना चाहिये (पा० ८-३-३७)

२ री शाखा

अर्द्ध विसर्ग अब के छपेहुए सन्स्कृत ग्रन्थों में नहीं लिखाजाता है वेदों में उपध्मानीय आताहै परन्तु केवल अनुस्वार और अनुनासिक के पीछे जैसे नृं≍पाहि या नॄँ≍पाहि और यहां भी अर्द्ध विसर्ग का चिन्ह अपने ठिकाने पर आता है

विराम अवग्रह इत्यादि

१ ला सूत्र

विराम ठहराव को कहते हैं सो व्यञ्जन के नीचे जैसे क् के नीचे आके दिखाता है कि जो अ प्रत्येक व्यञ्जन के पीछे उसके बोले जाने के लिये आताहै सो

नहीं है

वर्णन

१ देखो विराम का ठीक अर्थ है वाक्य के पीछे बोली का रोकना किसी २ हाथ की लिखीहुई संस्कृत पोथी में जो वाक्य अन्त में व्यञ्जन रखता है उसके पीछे विराम ठहराव का चिन्ह होके आताहै और जो वाक्य अन्त में स्वर रखता है उसके पीछे यिह चिन्ह । ठहराव के लिये आताहै और दूसरे सब पहले आनेवाले शब्द प्रथकता रहित लिखे जाते हैं इसलिये कि ठहराव बिना बोले जाते हैं

१० वां सूत्र

यिह ऽ चिन्ह अवग्रह और कभी २ अर्द्धाकार (आधा अकार) कहाजाताहै सो पहले आनेवाले किसी शब्द के पिछले ए वा ओ के पीछे आनेवाले शब्द के पहले अ का लोप वा अभिनिधान दिखाताहै जैसे तेऽपि पढ़ो तेअपि (वे भी) के

१ ली शाखा

जो पुस्तकें कलकत्ते में छपी हैं उनमें यिह ऽ चिन्ह कभी २ पहले अ और पिछले आ को वा पहले आ और पिछले अ को मिलाकर दीर्घ आ दिखाने के लिये आताहै जैसे तथाऽपश्य पढ़ो तथाअपश्य के जो तथापश्य लिखाजाता है कभी कभी पहले आनेवाला दीर्घ आ दिखाने को यिह ऽऽ दुहरा चिन्ह आताहै कभी कभी यिह ऽ चिन्ह वेद में स्वरों के बीच में प्रथकता और ऋचाओं में मिलावटें अथवा व्याकरणसम्बन्धी रूपों के मिश्रमात्र दिखाने को भी आताहै

२ री शाखा

यिह । चिन्ह अर्द्ध विराम (आधा ठहराव) कहलाताहै सो बहुधा आधे श्लोक और आधे छन्द इत्यादि के पीछे आता है

३ री शाखा

यिह ॥ चिन्ह पूरे श्लोक और छन्द इत्यादि के पीछे पूरा विराम वा ठहराव दि

खाने को आता है

४ थी शाखा

यिह ॰ दुहरावट का चिन्ह यिह दिखाताहै कि कोई शब्द या वाक्य दुहराना चाहिये यिह किसी शब्द की संक्षिप्तता दिखाने को भी आताहै जैसे प ॰ पढ़ो पर्व (अध्याय) के और ॰ म पढ़े शुभ (कल्याणकारी) के

स्वरों का उच्चारण

११ वां सूत्र

प्रत्येक स्वर अल्पप्राण-समझा जाताहै इसलिये कि कुछ स्वास छोड़ने या खैंचने से बोलाजाताहै (१४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१ ली शाखा

अ प्रत्येक व्यञ्जन में मिला रहताहै इसलिये सीखने वाले को इसका ठीक उच्चारण जानना चाहिये यिह कुछ मुंह खोलके कुछ स्वास छोड़ने से कंठ में बनता या बोला जाताहै जैसे क् के पीछे और अक् के पहले और कर् के बीच में

२ री शाखा

आ जितना मुंह अ बोलने में खोलना पड़ताहै उससे दुगना मुंह खोलके कुछ स्वास छोड़ने से कंठ में बनता या बोला जाताहै जैसे का के पीछे और आक् के पहले और कार् के बीच में

इ कुछ मुंह खोलके जीभ का पिछला भाग ऊपर को दबाके कुछ स्वास छोड़ने से तालू में बनता या बोला जाताहै जैसे कि के पीछे और इक् के पहले और किर् के बीच में

ई कुछ मुंह खोलके जीभ का पिछला भाग जितना इ बोलने में ऊपर को दबाना पड़ताहै उससे दुगना दबाके कुछ स्वास छोड़ने से बनता या बोला जाताहै जैसे की के पीछे और ईक् के पहले और कीर् के बीच में

उ कुछ मुंह खोलके और दोनों ओष्ठ को सकोड़के थोड़ा स्वास छोड़ने से ओ

में बनता या बोलाजाताहै जैसे कु के पीछे और उक् के पहले और कुर् के बीच में

ऊ कुछ मुंह खोल के और दोनों ओष्ठ को जितना उ बोलने में सकोड़ना पड़ता है उससे दुगना सकोड़के दुगना स्वास छोड़ने से ओष्ठों में बनता या बोला जाताहै जैसे कू के पीछे और ऊक् के पहले और कूर् के बीच में

३ री शाखा

ऋ केवल संस्कृत में आताहै और जीभ की अणी को मूर्द्धा अर्थात् ऊपर के दांतों की जड़ और तालू के बीच में लगाके र् के पीछे इ + बोलने से बनता या बोला जाताहै जैसे कृ के पीछे और ऋक् के पहले

टीका

+ ऋ और रि के उच्चारण में कुछ भेद नहीं है सो इस बात से स्पष्ट है कि ऋ पहले रखनेवाले थोड़े शब्द ऐसे देखने में आते हैं कि ऋ और रि दोनों से लिखेजाते हैं जैसे रिटि ऋटि और रिपि ऋपि और रिष्य ऋष्य तो भी जो भेद है सो १९ वें और २० वें सूत्र में बतायाहै तो ध्यान में रखना चाहिये

ॠ जीभ की अणी को मूर्द्धा अर्थात् ऊपर के दांतों की जड़ और तालू के बीच में लगाके र् के पीछे ई बोलने से बनता या बोलाजाता है इस का उच्चारण री के उच्चारण से अलग समझना सहज नहीं है इस को बोलने में जीभ को दांतों की जड़ के ऊपर मूर्द्धा में कुछ समय तक थरथराना पड़ता है और री को बोलने में तुरत उससे लग जाताहै (१९ वां और २० वां सूत्र देखो)

ए कुछ मुंह खोलके और जीभ के पिछले भाग को कुछ आगे दबाके ऊपर लगाने और कुछ स्वास छोड़ने से कंठ और तालू में बनता या बोला जाताहै जैसे के के पीछे एक् के पहले और केर् के बीच में

ऐसेही ऐ परन्तु इसको बोलने में कुछ मुंह अधिक खोलना पड़ताहै और जीभ के पिछले भाग को कुछ पीछे हटाना पड़ताहै जैसे कै के पीछे और ऐक् के पहले और कैर् के बीच में

ओ कुछ मुंह खोलके और दोनों ओष्ठ सकोड़के और जीभ के पिछले भाग को

हीं रखता और ए, ऐ, ओ, औ ह्रस्व नहीं रखते प्लुत स्वर के पीछे ३ का अङ्क लि खाजाताहै जैसे आ३ अथवा उसके तले तीन आड़ी रेखा लिखीजाती हैं जैसे आ (पा० १ २ २७)

व्यञ्जनों का उच्चारण

१२ वांसूत्र

क् ग् च् ज् प् ब् वैसा ही उच्चारण रखते हैं जैसा वे अपनी भाषा में रखतेहैं क् और ग् कुछ होंठ खोलने और कंठ के आदि का नीचे का भाग साम्हने के ऊपर के भाग में लगाने से बोलेजाते हैं च् और ज् कुछ होंठ खोलने और जीभ का मध्य भाग साम्हने के तालू में लगाने से बोले जाते हैं प् और ब् कुछ होंठ अलग करने से बोलेजाते हैं.

१ ली शाखा

च् कुछ सुधारना या नम्र करना है क् का जैसे ज् है ग् का च् और ज् के बोलने का स्थान कंठ के आदि से कुछ इधर तालू है इसलिये जैसे अपनी भाषा में वैसे संस्कृत में भी च् और ज् बहुधा क् और ग् से पलट जाते हैं (२५ वां सूत्र देखो).

२ री शाखा

त् और द् वैसा ही उच्चारण रखते हैं जैसा वे अपनी भाषा में रखते हैं अर्थात् कुछ होंठ खोलने से और जीभ की अगी ऊपर के दांतों में लगाने से बोले जाते हैं.

१३ वां सूत्र

ट् और ड् वैसाही उच्चारण रखते हैं जैसा वे अपनी भाषा में रखते हैं अर्थात् कुछ होंठ खोलने से और जीभ की अगी मूर्द्धा अर्थात् ऊपर के दांतों की जड़ और तालू के बीच में लगाने से बोलेजाते हैं

बंगाले में ट् और ड् का उच्चारण अपनी भाषा के ट् और ड् कासा करते हैं अर्थात् उस ट् और मिलेहुए ट् और ड् कासा जो जीभ की उलटी अगी मूर्द्धा में लग

गाने से बोलेजाते हैं जैसे विडाल (विल्ली) को विड़ाल कहते हैं

कई शब्दों में ट और ड् दोनों ड् और ल् के साथ पलटजाते हैं जैसे खोट् खोड़ और खोर् और खोल् भी बोलते और लिखते हैं प्राकृत में मूर्द्धस्थानी संस्कृत के दन्तस्थानी वर्ण कासा उच्चारण रखते हैं मूर्द्धस्थानी वर्ण संस्कृत में भी शब्द या शब्दभाग के पहले बहुधा नहीं आते हैं

१४ वां सूत्र

ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् थ् ध् फ् भ् वैसाही उच्चारण रखते हैं जैसा वे अपनी भाष रखते हैं अर्थात् अमिश्रित व्यञ्जनों के स्वासयुक्त अथवा ह् से मिश्रित उच्चा रखते हैं परन्तु मिश्रित नहीं हैं ह् केवल उच्चारण में मिश्रितता रखता है ख् और ह् का सा घ् ग् और ह् का सा छ् च् और ह् का सा झ् ज् और ह का ठ् ट् और ह् का सा ढ् ड् और ह् का सा थ् त् और ह् का सा ध् द् और ह् सा फ् प् और ह् का सा भ् ब् और ह् का सा मिलाहुआ उच्चारण रखते हैं इ लिये ऐसे वर्णों का दुही स्थान जानना चाहिये जो उच्चारण में मिलेहुए जानप हैं और बोलने में दोनों का उच्चारण मिलाहुआ अर्थात् स्वासयुक्त करना चाहि

१ ली शाखा

स्वास युक्त वर्णों के विषय में (पा० १, १, ९,) के अनुसार ऐसा कहसक कि कई वर्ण थोड़ा स्वास रखते हैं सो अल्पप्राण कहलाते हैं और कई वर्ण ब स्वास रखते हैं सो महाप्राण कहे जाते हैं स्वर अर्द्धस्वर और अनुनासिक और ग् च् ज् ट् ड् त् द् प् ब् अल्पप्राण हैं इसलिये कि जब पहले आते हैं तब थ स्वास से बोले जाते हैं और ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् थ् ध् फ् भ् श् ष् स् ह् अनुस्वार सर्ग जिह्वामूलीय और उपध्मानीय महाप्राण हैं इसलिये कि बहुत स्वास से बं जाते हैं

१५ वां सूत्र

ङ् ञ् ण् न् म् व्यञ्जनों के वर्ग के पिछले वर्ण हैं सो संस्कृत में अपना २

सिका सम्बन्धी मुख्य उच्चारण रखते हैं और प्रत्येक अनुनासिक के लिये अलग २ वर्ण हैं सो अपने २ वर्ग के वर्णों के साथ आते हैं जैसे गङ्ग पञ्च कण्ठ दन्त दम्प इत्यादि (६ ठा सूत्र देखो)

१ ली शाखा

परन्तु जानना चाहिये कि कण्ठस्थानी अनुनासिक ङ् किसी संस्कृत शब्द के पीछे अकेला कभी आता है परंतु पहले कभी नहीं आता तालुस्थानी ञ् केवल अपने वर्ग के वर्णों के साथ आता है जैसे ञ्च् (ञ्च्) ञ्ज् (ञ्ज्) च्ञ (च्ञ) और ज्ञ (जञ) फिर पिछला युक्तवर्ण ज्ञ् (ज ञ्) का ना मिलाहुआ बोलाजाता है परंतु बंगाले में ग्य सा बोलते हैं जैसे गङ्गा (राग्या)

मूर्द्धस्थानी अनुनासिक ण् किसी मूर्द्धस्थानी वर्ण के पहले आने का फल है जैसा ५८ वें सूत्र में बताया है सो बहुधा मूर्द्धस्थानी व्यञ्जन के साथ आताहै परन्तु संस्कृत शब्द के पहले कभी नहीं आता (परन्तु न आदि में रखनेवाले मूलों में उस न का प्रतिनिधि बनके आताहै) फिर जैसे दूसरे मूर्द्धस्थानी बोले जाते हैं वैसेही जीभ की उलटी अणी ऊपर के तालू में लगाने से बोला जाताहै दन्तस्थानी न् और ओष्ठस्थानी म वैसेही बोले जाते हैं जैसे दूसरे उनके वर्ग वाले बोले जाते हैं (२१ वां सूत्र देखो)

१६ वां सूत्र

य् र् ल् व् ऐसाही उच्चारण रखते हैं जैसा वे अपनी भाषा में रखते हैं इ ऋ ऌ उ के साथ इनके यथाक्रम सम्बन्ध रखने और पलटने को सम्प्रसारण कहते हैं (३३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) इसको भूलना न चाहिये आगे काम आवेगा

व जब किसी मिश्रित व्यञ्जन में स्वर के पहले आता है तब कुछ होंठ सकोड़के बोलना पड़ता है जैसे द्वार में परन्तु जब र् के पीछे आताहै तब नहीं जैसे सर्व में

१ ली शाखा

ळ केवल वेद में आताहै फिर ड् और ढ् का स्थान पकड़ताहै और मूर्द्धन्य

नियों के सदृश पहलाहुआ उच्चारण रखता है जीभ की उलटी अणी ऊपर को लगाने से बनताहै बहुधा वेद में जब दो स्वरों के बीच में आताहै तब ड् के पलटे आताहै जैसे ळह् पलटे ढ् के

२ री शाखा

अर्द्धस्वर र् और ल् बहुधा आपस में पलट जाते हैं र् पुराना स्वरूप ल् का है जैसे रभ् और रिप् लभ् और लिप् लिखे जाते हैं (२५ वें सूत्र के दृष्टान्त देखो)

१७ वां सूत्र

श् ष् स् ह् इनमें श् सीटीयुक्त तालव्य है जीभ का मध्यभाग ऊपर के तालू में लगाने से बनता है और जैसा उच्चारण अपनी भाषा में देता है वैसा उच्चारण देता है ष् मूर्द्धन्य है श् से कुछ नम्र है जीभ के मध्य का अग्रभाग मूर्द्धा में लगाने से बनता है बहुधा इसका उच्चारण श् के उच्चारण से पहचाना नहीं जाता जैसा कोश और कोष इत्यादि शब्दों से स्पष्ट है जो श् और ष् दोनों से लिखेजाते हैं बोलने में ष् के पलटे कभी अशुद्धता से ख् बोलजाते हैं और क्ष को बहुधा छ् बोलतेहैं दन्ती स् का वैसाही उच्चारण है जैसा अपनी भाषा में है यिह जीभ की अणी ऊपर के साम्हने के दांतों में लगाने से बनता है ह् का वैसाही उच्चारण है जैसा अपनी भाषा में है यिह कंठस्थानी है मुंह खोल के स्वास छोड़ने से कंठ में बनता है

वर्णों के विभाग

१८ वां सूत्र

आगे वर्णमाला के प्रबन्ध अर्थात् यंत्र में अर्द्धस्वर सीटीयुक्त और ह् को छोड़ के सब वर्णों के ये पांच वर्ग लिखे हैं कंठ्य या कंठस्थानी तालव्य या तालुस्थानी मूर्द्धन्य या मूर्द्धास्थानी दन्त्य या दन्तस्थानी ओष्ठ्य या ओष्ठस्थानी – अब यिह जानते हैं कि सब ४७ वर्ण हैं स्वर अर्द्धस्वर और व्यञ्जन सो अपने२ उच्चारण स्थान अर्थात् कंठ तालू मूर्द्धा दन्त और ओष्ठ के अनुसार इन पांच वर्गों में से किसी

र्ग में आये हैं ×

१ ली टीका

× कई व्याकरणियों की मति के अनुसार व्यञ्जनों के वर्ग यिह नाम पाते हैं कवर्ग अर्थात् क् के संगी कंठस्थानी अनुनासिक समेत - चवर्ग अर्थात् च् के संगी तालुस्थानी-टवर्ग अर्थात् ट् के संगीमूर्द्धास्थानी - तवर्ग अर्थात् त् के संगी दन्तस्थानी- पवर्ग अर्थात् प् के संगी ओष्ठस्थानी- यवर्ग अर्थात् य् के संगी अर्द्धस्वर शवर्ग अर्थात् श् के संगी - सीटीयुक्त और स्वासयुक्त

२री टीका

पाणिनि के माहेश्वर सूत्रों में इन वर्णों के १४ भाग हैं जिनको प्रत्याहार कहते हैं सो ये हैं

अ इ उ ण्- ऋ ऌक - ए ओङ्- ऐ औच्- ह य व र ट्- लण्- ञ म ङ ण न म् - झ भञ् - घ ढ ध ष् - ज ब ग ड द श् - ख फ छ ठ थ च ट त व् - क प य्-श ष स र् - हल्

इन प्रत्याहारों के पिछले वर्ण इत् हैं अर्थात् छुट जाते हैं

इन में से एक भाग का कोई पहला वर्ण लेने से और किसी दूसरे भाग के किसी पिछले वर्ण के साथ जोड़ने से दूसरे वर्णों के बहुत से वांछित प्रत्याहार बनसकते हैं जैसे अच् कहने से वर्णमाला के सब वर्ण सम्मिलित होते हैं और हल् कहनेसे सब व्यञ्जन और अच् कहने से सब स्वर और अक् कहने से सब अमिश्रित स्वर और अण् कहने से सब ह्रस्व या दीर्घ स्वर अ इ उ और एच् कहने से मिश्रित स्वर ए ओ ऐ औ और यण् कहने से अर्द्धस्वर य र ल व और जश् कहने से कोमल व्यञ्जन ज ग ड द ब और झश् कहने से सब कोमल व्यञ्जन अपने स्वासयुक्त संगी और झष् कहने से केवल कोमल स्वासयुक्त और यर् कहने से ह् को छोड़के सब व्यञ्जन और झल् कहने से अनुनासिकों और अर्द्धस्वरों को छोड़के सब व्यञ्जन और खर् कहने से स्वासयुक्त और अनुनासिकों और अर्द्धस्वरों को छोड़के सब व्यञ्जन

१ली शाखा

इन वर्णों को बोलने में कंठ को फैलाना वा सकोड़ना पड़ता है उसके अनुसार इन वर्णों के दो विभाग और किये हैं विवार (कठोर) और सम्वार (कोमल)

२री शाखा

इस आगे लिखेहुए यंत्र से ये दुहरे विभाग अच्छी रीति से समझेजाते हैं इन का समझना संस्कृत सीखनेवाले को अवश्य है

१ ला यंत्र

कंठ्य वा कंठस्थानी	अ आ	क ख	ग घ	ङ	ह	
तालव्य वा तालुस्थानी	इ ई ए ऐ	च छ	ज झ	ञ	य	श
मूर्द्धन्य वा मूर्द्धस्थानी	ऋ ॠ	ट ठ	ड ढ	ण	र	ष
दन्त्य वा दन्तस्थानी	ऌ ॡ	त थ	द ध	न	ल	स
ओष्ठ्य वा ओष्ठस्थानी	उ ऊ ओ औ	प फ	ब भ	म	व	

ऊपरवाले पांचों वर्गों में से प्रत्येक वर्ग के पहले दो व्यञ्जन सीटीयुक्त और विसर्ग कठोर कहलाते हैं और सब दूसरे वर्ण और अनुस्वार कोमल कहेजाते हैं सो इस यंत्र में स्पष्ट पाये जाते हैं

२ रा यंत्र

विवार कठोर अर्थात् चुपके वर्ण		सम्वार कोमल अर्थात् बोलते वर्ण			
क * ख *		अ आ	ग * घ *	ङ	ह
च * छ *	श	इ ई ए ऐ	ज * झ *	ञ	य
ट * ठ *	ष	ऋ ॠ	ड * ढ *	ण	र
त * थ *	स	ऌ ॡ	द * ध *	न	ल
प * फ *		उ ऊ ओ औ	ब * भ *	म	व

टीका

व्याकरणी जो उच्चारण का स्थान मुख मे दूर है वहां से उच्चारणस्थान मिनतेहैं अर्थात् कंठ तालू मूर्द्धा दन्त ओष्ठ और कोई ओष्ठ को पहले कंठ को मध्य में और दन्त को पीछे समझते हैं

३री शाखा

देखो ए ऐ तालुस्थानियों में आतेहैं और ओ औ ओष्ठस्थानियों में परन्तु यथार्थ में ये वर्ण मिश्रित हैं ए अ और इ से – ऐ आ और इ से – ओ अ और उ से – औ आ और उ से—इनका पहला अंग कंठस्थानी है और पिछला तालुस्थानी और ओष्ठस्थानी (प्रातिशाख्य में इन वर्णों को संध्यक्षर कहते हैं)

४ थी शाखा

यिह भी जानना अवश्य है कि कौन से कठोर वर्णसम्बन्धी कोमल रखते हैं और कौन से नहीं रखते सम्बन्धी कठोर और कोमल वे हैं जो ऊपरवाले यंत्र में एक पंक्ति में आते हैं और जोड़ रखते हैं जैसे ग् घ् कोमलसम्बन्धी हैं क् ख् के और ज्

ञ् हैं च् छ् के इत्यादि

पूर्वोक्त विभाग अच्छा समझ में आवे इसलिये स्वर और व्यञ्जन का ठीक अर्थ बताना और जो संबन्ध अनुनासिक और अर्द्धस्वर और सीटीयुक्त दूसरे वर्णों के साथ रखते हैं सो जताना अवश्य है

१९ वां सूत्र

स्वर घोष को कहते हैं अथवा घोषसम्बन्धी स्वास को जो फेफड़े से कंठादि किसी उच्चारणस्थान की सहायता से सुधरके वा बनके निकलता है और किसी उच्चारणस्थान की यथोचित समीपता से रुकता वा अटकता नहीं

१ली शाखा

इसलिये अ इ उ ऋ ऌ अपने२ दीर्घ स्वरूपों समेत अमिश्रित स्वर हैं और जिस उच्चारणस्थान से बनते हैं उसके अनुसार कंठ तालु मूर्द्धा दन्त और ओष्ठ से सम्बन्ध रखते हैं ए और ऐ आधे कंठ्य हैं और आधे तालव्य ओ और औ आधे कंठ्य और आधे ओष्ठ्य (१८ वें सूत्र की ३री शाखा देखो)

२री शाखा

स्वर यथार्थ में कोमल वर्ण समझेजाते हैं

२० वां सूत्र

कोई व्यञ्जन घोष नहीं होता परन्तु रुकाव है उस घोषसम्बन्धी स्वास का जो पांच उच्चारणस्थानों में किसी की निकटता से होताहै और किसी स्वर की सहायता बिना बोलने में नहीं आसकताहै इसलिये ऊपरवाले पहले यंत्र में जो व्यञ्जन क से म तक हैं सो बहुधा स्पर्श वा स्पृष्ट (निकटता से निकलेहुए) कहेजातेहैं और अर्द्धस्वर य् र् ल् व् ईषत् स्पृष्ट (थोड़ी निकटता से निकलेहुए) कहलाते हैं व्याकरणी कभी इन को अविद्यमानवत (नहीं जैसे) कहतेहैं क्योंकि ये स्वर अर्थात् घोष नहीं रखते इनका दूसरा नाम व्यञ्जन (पहचानाहुआ अर्थात् घोषरहित) है

१ली शाखा

इसलिये सब व्यञ्जन उस उच्चारणस्थान के अनुसार जो घोष सम्बन्धी स्वास को रोकताहै कंठ्य इत्यादि पांच वर्गों में विभाग कियेजातेहैं

२ री शाखा

फिर पांचों वर्गों से प्रत्येक वर्ग के पहले दो व्यञ्जन और सीटीयुक्त कठोर वा रुपके अर्थात् अघोष कहलातेहैं क्योंकि घोष सम्बन्धी स्वास अचानक और सम्पूर्ण रुकजाताहै और कुछ घोष वा स्वर नहीं निकलने पाता और दूसरे सब वर्ण कोमल वा घोलो अर्थात् घोषवत् कहेजातेहैं क्योंकि घोषसम्बन्धी स्वास अचानक और सम्पूर्ण थोड़ा रुकताहै वे कोमल स्वर हैं वा थोड़े घोष से बोलने में आतेहैं

३ री शाखा

देखो तालु सम्बन्धी रुकाव केवल कंठ सम्बन्धी रुकाव का एक सुधारा है इस लिये कि निकलना का स्थान कंठ से तालू की ओर कुछ अधिक हटताहै *

ऐसेही मूर्द्धासम्बन्धी रुकाव तालुसम्बन्धी रुकाव का एक सुधारा है (१३ वां सूत्र देखो)

टीका

* तालूवाले वर्णों का संबन्ध कंठवाले वर्णों के साथ उनकी आपस की उलटाप लटी से जानपड़ता है (२४ वां २५ वां और १७६ वां सूत्र देखो)

४ थी शाखा

मूर्द्धासंबन्धी वर्ण द्रविड़ आदि भाषाओं से जो इस देश में पहले प्रचलित थीं संस्कृत में लिये होंगे (२१ वां सूत्र देखो) ये वर्ण जीभ की सहायता से बोलने में आतेहैं इसलिये कभी जिह्वासंबन्धी भी कहेजाते हैं

२१ वां सूत्र

अनुनासिक वा नासिकासंबन्धी वर्ण एक कोमल वर्ण है जिसको बोलने में घोषसंबन्धी स्वास अपूर्ण रीति से रुकताहै जैसा दूसरे सब कोमल वर्णों में और कुछ स्वास ओठों के बदले नाक में जाता है कोमल वर्ण जिस उच्चारणस्थान से घोषसंबन्धी स्वास रुकताहै उसके अनुसार पांच प्रकार के हैं इसलिये अनुनासिक भी पां·

दूसरी भाषाओं में आते हैं सो यथार्थ में संस्कृत के नहीं हैं उन भाषाओं के हैं जिन में आते हैं तो उत्तर यिह है कि संस्कृत जाननेवाले बता सकते हैं कि यिह शब्द आदि में अमुक मूल में अमुक प्रत्यय लगाने से बना है और इसका आद्य अर्थ यिह है सो दूसरी भाषा जाननेवाले नहीं बतासकते फारसी और अंगरेज़ी जाननेवाले इन ऊपरवाले तीन शब्दों का अर्थ केवल मा और बाप और भाई कहते हैं परन्तु संस्कृत जाननेवाले बतासकते हैं कि ये शब्द इन मूलों और इन प्रत्ययों से बने हैं और आदि में ये अर्थ देते हैं और इसलिये मा और बाप और भाई के लिये आते हैं जैसे मातृ (मा) मूल मा (उत्पन्न कर) में कर्तृसम्बन्धी प्रत्यय तृ लगाने से बनाहै और उत्पन्न करनेवाली का अर्थ देता है इसलिये मा को मातृ कहते हैं और पितृ मूल पा (पाल) में उसी प्रत्यय के लगने से बना है और पालनेवाले का अर्थ देता है इसलिये बाप को पितृ कहते हैं और भ्रातृ मूल भृ (पाल वा भर वा सहाय कर) में उसी प्रत्यय के लगने से बना है और पालने भरने वा सहाय करनेवाले का अर्थ देता है इसलिये भाई को भ्रातृ कहते हैं ऐसे शब्द ग्रीक और लैटिन में जो प्राचीन भाषाएं हैं बहुत आते हैं और वर्णों की ऐसी उलटापलटी बहुत उठाते हैं। (मिस्टर मानिअर विलिअम्स के अंगरेज़ी संस्कृत व्याकरण का २५ वां सूत्र देखो)

लिखने की रीति

२६ वां सूत्र

संस्कृत व्याकरणियों की मति के अनुसार प्रत्येक शब्दभाग को जो अन्त में अनुस्वार वा विसर्ग न रखता हो तो अन्त में कोई स्वर रखना चाहिये परन्तु वाक्य वा वाक्यखण्ड के अन्त में नहीं और प्रत्येक पिछले व्यञ्जन को दूसरे शब्दभाग के पहले वर्ण से मिलाना चाहिये ऐसा कि जहां कोई शब्द अन्त में कोई व्यञ्जन रखता है वहां उस व्यञ्जन को दूसरे शब्द के पहले वर्ण के साथ मिलकर बोलाजाना चाहिये इसलिये संस्कृत की लिखित हाथ की लिखी पोथी में सब शब्दभाग व्यञ्जन लिखे हैं और किसी पुस्तक में सब शब्द मिले हुए लिखे हैं अर्थात् उनके बी·

च में कुछ अन्तर नहीं रखा जैसे ये दो शब्द आसीद् राजा किसी पुस्तक में आसी द्रा जा लिखे हैं और किसी में आसीद्राजा प्रत्येक वाक्य के शब्दों मे अन्तर छोड़ना उनके उच्चारण की सुन्दरता के लिये समझते हैं तो इसमें भी कुछ अधिक बुद्धिवानी नहीं पाई जाती इसलिये थोड़ी संस्कृत पुस्तकें देवनागरी अक्षरों में छपी हैं उनमें प्रत्येक शब्द अन्तर छोड़के लिखा है जैसे पितुः धनम् आदत्ते पलटे पितुर्धनमादत्ते के

टीका

+जबतक युद्ध अन्त में अनुस्वार वा विसर्ग नहीं रखता और येही व्यञ्जनसम्बन्धी घोष हैं जो वाक्य के अन्त तक शब्दैभाग को पूरा करते हैं

थोड़े शब्द और वाक्य संस्कृत में आगे लिखे जाते हैं इसलिये कि सीखनेवाला आगे बढ़ने के पहले कुछ अभ्यास संस्कृत पढ़ने लिखने में प्राप्त करले

अक अज अश आस आप इल इष ईड ईर उख उच ऊह ऋण ऋज एध ओख कण किं कुमार क्षम क्षिप क्षुध क्षै कृण खन खिद गाह गुज गृध गॄ घृण घुष चकास चस चिग छिद छो जीवा झप टीला ठः डीनं ढौक णिद तापः मडागः दया दमकः दशरथः दुराचार देव धूपिका धृत. नदः नीड नेम परिदानम् पुत्रः पौरः पौरपेयी पुरोडाशः पट्टः पाटक भोगः भोजनम् मुखम् मृग. मेदः मेदिनी यत्नम् योग रेणु रेचक रेषण रजा रूपम् रुक्मिणी लोह वाम. वेरम् शक् शौर. षट् साधुः हेमकूटः हेमन्

कहानी संस्कृत में

अस्ति हस्तिनापुरे विलासो नाम रजकः । तस्य गर्दभोऽतिभारवाहनाद् दुर्बलो मुमूर्षुर् अभवत् । ततः तेन रजकेनासौ व्याघ्रचर्मणा प्रच्छाद्यारण्य समीपे सस्यक्षेत्रे मोचितः । ततो दूराद् अवलोक्य व्याघ्रबुद्ध्या क्षेत्रपतयः सत्वरं पलायन्ते । अथैकेनापि सस्यरक्षकेण धूसरकम्बलकृततनुत्राणेन धनुःकाण्डं सज्जीकृत्यावनतकायेन एकान्ते स्थितम् । ततः तं च दूरे दृष्ट्वा गर्दभः पुष्टाङ्गो गर्दभीयमिति मत्वा शब्दं कुर्वाणः तदभिमुखं धावितः । ततः तेन सस्यरक्षकेण गर्दभोऽयमिति ज्ञात्वा लीलयैव व्यापादितः

२रा अध्याय

संधि अर्थात् अक्षरों की सुस्वरतासम्बन्धी मिलावट

संधि वर्णों की घटा-बढ़ी और उलटापलटी और मिलावट को कहते हैं सो बोली की सुस्वरता और मधुरता के लिए थोड़ीबहुत सब भाषाओं में होतीहै जैसे अपनी भाषा में भाववाचक जाना का एकवचनवाला मध्यम पुरुष अनुमत्यर्थ है जा इससे भूतकाल बनाते हैं तो भूतकालसम्बन्धी अन्त ा के पहले सुस्वरता के लिये य् बढ़ता है और जाया होताहै परन्तु यिह भी कानों को अच्छा नहीं लगता इस लिए जा के ज को ग से और आ को अ से पलट के गया बोलते हैं ऐसी उलटापलटी और घटाबढ़ी संस्कृत में बहुत होती है सो जब अपूर्ण शब्दों में प्रत्यय वा अन्त लगाते हैं तब शब्दों के बीच में ही नहीं होती वरन एक वाक्य के शब्दों को मिलाने में भी होती है जैसे राजा अभी आया जो संस्कृत होवे तो संधि के सूत्रों के अनुसार राजाभ्याया लिखाजावे इसलिए पढ़नेवाले को चाहिये कि इन सूत्रों को अच्छी रीति से समझके ध्यान में रखे

ये सूत्र दो प्रकार के हैं पहले प्रकार के वे सूत्र हैं जो वाक्य में पूर्ण शब्दों के पिछले और पहले वर्णों को और अपूर्ण शब्दों को मिश्रितों में मिलाने में काम

आते हैं दूसरे प्रकार के वे हैं जो धातुओं अर्थात् मूलों को और प्रातिपदिकों अ-
र्थात् अपूर्णपदों या शब्दों को चाहे संज्ञासम्बन्धी हों चाहे क्रियासम्बन्धी प्रत्ययों
और अन्तों के साथ मिलाने में काम आते हैं (७४ वें सूत्र की १ ली शाखा दे-
खो) पहले और दूसरे प्रकार के सूत्र एक ही से हैं इसलिए इनको एकसाथ लिख-
ना उचित और सरल जानपड़ताहै परन्तु जो थोड़े सूत्र क्रियाओं के बनाने में काम
आते हैं सो जब प्रयोजन पड़ेगा तब बताएजाएंगे (२९२ वां सूत्र देखो)

१ला प्रकरण

स्वरों के पलटने और मिलाने के सूत्र

२७ वां सूत्र

स्वरों की जो उलटापलटी गुण और वृद्धि कहलाती है सो पहले सीखनी चाहि-
ये इ और ई के ए होने को गुण कहते हैं और इ और ई के ऐ होने को वृद्धि क-
हते हैं ऐसे ही उ और ऊ के ओ होने को गुण कहते हैं और औ होने को वृद्धि
ऋ और ॠ के अर् होने को गुण कहते हैं और आर् होने को वृद्धि अ का गुण
कभी नहीं होता परन्तु उस के आ होजाने को वृद्धि कहते हैं

१ ली शाखा

व्याकरणी कहते हैं कि अ आपही गुण है और इसलिए गुण नहीं चाहता य-
थार्थ में वे अ ए ओ को केवल गुण समझते हैं और आ ऐ औ को केवल वृद्धि
अ और आ यथार्थ में ऋ और ॠ के गुणसम्बन्धी और वृद्धिसम्बन्धी प्रतिनिधि
होते हैं परन्तु अ और आ के साथ जब ऋ के पलटे आते हैं तब र् आता है और
जब ऌ के पलटे आते हैं तब ल् आता है

२८ वां सूत्र

अपूर्णपद बनाने में चाहे संज्ञासम्बन्धी हों चाहे क्रियासम्बन्धी मूलों के स्व-
रों को दूसरे स्वरों के पलटे आते हैं अर्थात् अपने स्थान में दीर्घ होते हैं तो गुण

वा होता नहीं चाहते और जो स्वर अपनी प्रकृति से दीर्घ होताहै तो भी जबतक पिछला नहीं होता तबतक ऐसी उलटापलटी नहीं सकता जैसा बताचुके हैं पहले से गुण है (२० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१ ली शाखा

द्वितीय पद के निमूनों में दीर्घ स्वर कभी२ वृद्धि चाहते हैं जैसे स्थौल (छहा कहा) स्थूल से ग्रैव (ग्रीवासम्बन्धी) ग्रीवा से मौल (मूलसम्बन्धी) मूल से (८० वें सूत्र के दूसरे प्रकार का आरम्भसम्बन्धी वर्णन देखो)

२१ वां सूत्र

गुण ए और ओ मिश्रित हैं अर्थात् दो अमिश्रित स्वरों से बने हैं ए अ और इ से बना है और ओ अ और उ से इसलिए पिछला अ अपनी प्रकृति से पहले इ से मिलके ए होजाता है और पहले उ से मिलके ओ होजाता है (१८ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) फिर समझो कि अर् अ और ऋ से बना है इसलिये पिछला अ पहले ऋ से मिलके अर् होजाता है

१ ली शाखा

ऐसे ही वृद्धिवाला मिश्रित ऐ अ और ए से अथवा आ और इ से (जो एक ही बात है) मिलके बना है इसलिए पिछला अ अपनी प्रकृति से पहले ए से मिलके ऐ होजाता है और पहले ओ से मिलके औ होजाता है (१८ वें सूत्र की ३ री शाखा और अगले पंत की टीका देखो) अमिश्रित स्वर मिश्रित होने में ऐसे मिश्रित नहीं होते कि फिर अलग नहीं सकें इसलिए ए ओ ऐ औ अपने अमिश्रित स्वरों में विभाग पासकते हैं

२ री शाखा

जो ऐ आ और इ से बना है तो फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि दीर्घ आ और ह्रस्व अ दोनों इ से मिलकर ए कैसे होजाते हैं (१२ वां सूत्र देखो) और ऐ कैसे नहीं होजाते इसका उत्तर कोई२ व्याकरणी ऐसा देते हैं कि दीर्घ स्वर प्रत्येक शा-

वा वृद्धि नहीं चाहते और जो स्वर अपनी प्रकृति से दीर्घ होता है तो भी जबतक पिछला नहीं होता तबतक ऐसी उलटपलटी नहीं सकता अ जैसा बताचुके हैं पहले से गुण है (२७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१ ली शाखा

द्वितीय पद के निमूर्णों में दीर्घ स्वर कभी२ वृद्धि चाहते हैं जैसे स्यैत (हकरा) स्यूत से पैव (ग्रीवासम्बन्धी) ग्रीवा से मौल (मूलसम्बन्धी) मूल से (८० वें सूत्र के दूसरे प्रकार का आरम्भसम्बन्धी वर्णन देखो)

२९ वां सूत्र

गुण ए और ओ मिश्रित हैं अर्थात् दो अमिश्रित स्वरों से बने हैं ए अ और इ से बना है और ओ अ और उ से इसलिए पिछला अ अपनी प्रकृति से पहले इ से मिलके ए होजाता है और पहले उ से मिलके ओ होजाता है (१८ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) फिर समझो कि अर् अ और ऋ से बना है इसलिये पिछला अ पहले ऋ से मिलके अर् होजाता है

१ ली शाखा

ऐसे ही वृद्धिवाला मिश्रित ऐ अ और ए से अथवा आ और इ से (जो एक ही बात है) मिलके बना है इसलिए पिछला अ अपनी प्रकृति से पहले ए से मिलके ऐ होजाता है और पहले ओ से मिलके औ होजाता है (१८ वें सूत्र की ३ री शाखा और अगले पंत की टीका देखो) अमिश्रित स्वर मिश्रित होने में ऐसे मिश्रित नहीं होते कि फिर अलग नहोसकें इसलिए ए ओ ऐ औ आगे अमिश्रित स्वरों में विभाग पासकते हैं

२ री शाखा

जो ऐ आ और इ से बना है तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि दीर्घ आ और ह्रस्व अ दोनों इ से मिलकर ए क्यों होजाते हैं (१२ वां सूत्र देखो) और ऐ क्यों नहीं होजाते इसका उत्तर कोई२ व्याकरणी ऐसा देते हैं कि दीर्घ स्वर प्रत्येक श-

अमिश्रित स्वर	अ वा आ	इ वा ई	उ वा ऊ	ऋ वा ॠ	ऌ वा ॡ
गुणसम्बन्धी प्रतिनिधि		ए	ओ	अर्	अल्
वृद्धिसम्बन्धी प्रतिनिधि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्

अमिश्रित स्वर	इ वा ई	उ वा ऊ	ऋ वा ॠ	ऌ वा ॡ
अनुरूप वा सम्बन्धी अर्द्धस्वर	य्	व्	र्	ल्

गुण	ए	ओ
गुणसम्बन्धी तत्व वा वर्ण	अ + इ	अ + उ
सम्बन्धी अर्द्धस्वरवाले प्रतिनिधि	अय्	अव्

वृद्धि	ऐ	औ
वृद्धिसम्बन्धी तत्व वा वर्ण	अ + ए अ + अ + इ * आ + इ	अ + ओ अ + अ + उ * आ + उ
सम्बन्धी अर्द्धस्वरवाले प्रतिनिधि	आय्	आव्

* ए = अ + इ और ओ = अ + उ इसलिये अ + ए समान हैं अ + अ + इ के वा आ + इ के और अ + ओ समान हैं अ + अ + उ के वा आ + उ के

अर्थात् ए समान है मिलेहुए अ और इ के और ओ समान है मिलेहुए अ

अमिश्रित स्वर	अ वा आ	इ वा ई	उ वा ऊ	ऋ वा ॠ	ऌ वा ॡ
गुणसम्बन्धी प्रतिनिधि		ए	ओ	अर्	अल्
वृद्धिसम्बन्धी प्रतिनिधि	आ	ऐ	औ	आर्	आल्

अमिश्रित स्वर	इ वा ई	उ वा ऊ	ऋ वा ॠ	ऌ वा ॡ
अनुरूप वा सम्बन्धी अर्द्धस्वर	य्	व्	र्	ल्

गुण	ए	ओ
गुणसम्बन्धी तत्व या वर्ण	अ + इ	अ + उ
सम्बन्धी अर्द्धस्वरवाले प्रतिनिधि	अय्	अव्

वृद्धि	ऐ	औ
वृद्धिसम्बन्धी तत्व वा वर्ण	अ + ए अ + अ + इ * आ + इ	अ + ओ अ + अ + उ * आ + उ
सम्बन्धी अर्द्धस्वरवाले प्रतिनिधि	आय्	आव्

* ए = अ + इ और ओ = अ + उ इसलिये अ + ए समान हैं अ + अ + इ के वा आ + इ के और अ + ओ समान हैं अ + अ + उ के वा आ + उ के

अर्थात् ए समान है मिलेहुए अ और इ के और ओ समान है मिलेहुए अ

और उ के इसलिये मिलेहुए अ और ए समान हैं मिलेहुए अ और अ और इ के अथवा मिलेहुए आ और इ के और मिलेहुए अ और ओ समान हैं मिलेहुए अ और अ और उ के अथवा मिलेहुए आ और उ के

अब ये नीचे लिखेहुए सूत्र अच्छी रीति से समझ में आवेंगे ये सूत्र पहले वा कर्मों और मिश्रितों के पृथक२ शब्दों की मिलावट में काम आते हैं दूसरे धातुओं अर्थात् मूलों को और प्रातिपदिकों अर्थात् अपूर्णपदों को प्रत्ययों और अन्तों के साथ मिलाने में काम आते हैं दूसरे प्रकार की मिलावट की पहचान के लिये इ शब्दों में यिह चिन्ह+ आवेगा इन में बहुत से सूत्रों से यिह अभिप्राय है कि स्वरों के बीच में अन्तर रहताहै सो न रहे×

टीका

× वेद में स्वरों के बीच में अन्तर बहुत रहताहै (६६ वें सूत्र की टीका देखो)

३१ वां सूत्र

जो कोई अमिश्रित स्वर चाहे ह्रस्व हो चाहे दीर्घ किसी समान वा सवर्ण वा स जाती अमिश्रित स्वर के पहले (चाहे ह्रस्व चाहे दीर्घ) आता है तो दोनों मिलके एक दीर्घ बनजाते हैं (पा ६, १, १०१,) जैसे न अस्ति इह होताहै नास्तीह (कुछ यिहां नहीं है) राजा अस्तु उत्तमः होताहै राजास्तूत्तमः (राजा उत्तम होवे)

जीवा अन्त होताहै जीवान्त (जीव का अन्त)

अधि ईश्वर होताहै अधीश्वर (बड़ा ईश्वर)

क्रतु उत्सव होता है क्रतूत्सव (क्रतु का उत्सव)

पितृ ऋद्धि होताहै पितृद्धि (पिता का धन)

३२ वां सूत्र

अ या आ जब असमान वा अजाती स्वर इ उ ऋ (चाहे ह्रस्व चाहे दीर्घ) के पहले आता है तब इ या ई से मिलके ए (गुण) होजाताहै और उ या ऊ से मिलके ओ (गुण) होजाताहै और ऋ या ॠ से मिलके अर् (गुण) होजाता है

(पा ६ १ ८७) जैसे

परम ईश्वर होताहै परमेश्वर (बड़ा स्वामी)
हित उपदेश होताहै हितोपदेश (हित का उपदेश)
गङ्गा उदक होताहै गङ्गोदक (गङ्गा का जल)
तव ऋद्धि होताहै तवर्द्धि (तेरी ऋद्धि)
महा ऋषि होताहै महर्षि (बड़ा ऋषि)
ऐसेही तव लृकार होताहै तवल्कार (तेरा लृकार)

३३ वां सूत्र

अ वा आ जब मिश्रित स्वर ए ओ ऐ औ के पहले आताहै तब ए से मिलके ऐ (वृद्धि) होजाताहै और ऐ से मिलके भी ऐ (वृद्धि) होजाता है और ओ से मिलके औ (वृद्धि) होजाताहै और औ से मिलके भी औ (वृद्धि) होजाताहै (पा० ६, १, ८८) जैसे

पर एधित होताहै परैधित (दूसरे का पालाहुआ)
पिया एव होताहै पियैव (पियाही)
देव ऐश्वर्य होताहै देवैश्वर्य (देवता का ऐश्वर्य)
अल्प ओजस् होताहै अल्पौजस् (थोड़ी शक्ति)
गङ्गा ओघ होताहै गङ्गौघ (गङ्गा की धार)
ज्वर औषध होताहै ज्वरौषध (ज्वर की औषधि)

३४ वां सूत्र

इ उ ऋ (चाहे ह्रस्व चाहे दीर्घ) जब किसी असमान वा अजाति स्वर वा मिश्रित स्वर के पहले आते हैं तब अपने२ सम्बन्धी अर्द्धस्वर से बदलजाते हैं अर्थात् इ वा ई य् से उ वा ऊ व् से ऋ वा ॠ र् से (पा० ६, १, ७७) जैसे

अग्नि अग्र होताहै अग्न्यग्र (आग का अग्र)
प्रति उवाच होताहै प्रत्युवाच (उसने उत्तर दिया)

नु इदानीम् होताहै त्विदानीम् (परन्तु अब)
मातृ आनन्द होताहै मात्रानन्द (मा का सुख)
मातृ औत्सुक्य होताहै मात्रौत्सुक्य (मा का अंचन)

३५ वां सूत्र

पिछला ए और ओ जब किसी दूसरे शब्द के पहले आनेवाले अ के पहले आते हैं तब पलटते नहीं और पहले आनेवाला अ गिरजाता है (पा॰ ६, १, १०९) जैसे

ते अपि होताहै तेऽपि (वे भी) (१० वां सूत्र देखो)
सो अपि होताहै सोऽपि (वुह भी)

१ ली शाखा

मिश्रित शब्दों में प्रत्येक अपूर्णपद के पीछे पहले आनेवाले अ का लोप इच्छानुसार है जैसे गोश्वाः वा गोअश्वाः (बैल घोड़े) (पा॰ ६, १, १२२) ३८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो)

२ री शाखा

परन्तु कई मिश्रितों में गो गव होजाताहै जैसे गो अग्र होसकताहै गवाग्र (३८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) ऐसे ही गो इन्द्र होताहै गवेन्द्र (गायों का स्वामी) अथवा गविन्द्र (३६ वें सूत्र के अनुसार)

३६ वां सूत्र

परन्तु पिछले ए और ओ प्रत्येक शब्द के पहले आनेवाले आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ए ओ ऐ औ के पहले आते हैं तब वे यथाक्रम अय् और अव् से पलट जाते हैं और उस अय् का य् और कभी उस अव् का व् गिर जाते हैं और वुह बचाहुआ अ पीछे आनेवाले स्वर का कुछ प्रभाव नहीं उठाता है (पा ६ १ ७८) जैसे

ते आगताः होताहै तयागताः और फिर तआगताः (वे आए)

ऐसे ही विष्णो इह होताहै विष्णाविह और फिर विष्ण इह (विष्णु यहां)

वर्णन

देखो जब गो (गाय) मिश्रितों में गव् होजाताहै तब उसका व् बना रहता है जैसे

गो ईश्वर होताहै गवीश्वर (गायों का स्वामी)

गो ओकस् होताहै गवोकस् (गायों का स्थान)

१ ली शाखा.

जब ए और ओ एकही शब्द में किसी स्वर वा मिश्रित स्वर के पहले आतेहैं और वुह पीछे आनेवाला स्वर वा मिश्रित स्वर अ ए वा ओ भी होता है तब भी ए अय् से पलटजाताहै और ओ अव् से परन्तु दोनों य् और व् गिराये नहीं जाते जैसे

जे + अ होताहै जय (जीत) जि का वर्तमानकालसम्बन्धी अपूर्णपद (२६३ वां सूत्र देखो)

अग्ने + ए होताहै अग्नये (आग के लिये)

भो + अ होताहै भव भू (हो) का वर्तमानकालसम्बन्धी अपूर्णपद (२६३ वां सूत्र देखो)

१७ वां सूत्र

ऐ और औ जब किसी समान वा असमान स्वर वा मिश्रित स्वर के पहले आते हैं तब यथाक्रम् आय् और आव् होजाते हैं (पा० ६ १ ७८) जैसे

कस्मै अपि होताहै कस्मायपि (किसी को)

रै + अः होताहै रायः (१ ली वि • ब •) (धन)

ददौ अन्नम् होताहै ददावन्नम् (उस ने अन्न दिया)

नौ + औ होताहै नावौ (१ वि० द्वि० व०) (दोना)

१ ली शाखा

जो दोनों शब्द पूर्ण अर्थात् विभक्त्यन्त होते हैं तो य् और व् कभी२ गिरादिये जाते हैं परन्तु जैसे ३६ वें सूत्र के अनुसार य् और व् यथाविधि गिराये जाते हैं वैसे नहीं गिराये जाते जैसे कस्मा अपि पलटे कस्मायपि के और ददा अन्नम् पलटे ददावन्नम् के

प्रगृह्य निषेध

३८ वां सूत्र

कुछ निषेध प्रगृह्य अर्थात् ग्रहण करने के योग्य कहलाते हैं सो उन स्वरों से उत्पन्न होते हैं जो किसी अवस्था में पलटे नहीं जाते इनमें बहुत करके बताने के योग्य संज्ञाओं के वा सर्वनामों के वा क्रियाओं के ई वा ऊ वा ए अन्त में रखने वाले द्विवचनसम्बन्धी प्रत्यय वा अन्त हैं (पा० १, १, ११) ये पीछे आनेवाले स्वरों की आज्ञा नहीं उठाते जैसे

कवी एतौ (ये दो कवि) बन्धू इमौ (ये दो भाई) अमू आसाते (ये दो बैठे) पचेते इमौ (ये दो पकाते हैं) शेवहे आवाम् (हम दो सोते हैं)

वर्णन

देखो यिही सूत्र अमी से भी लगताहै जो सर्व्वनाम अदस् का बहुवचनवाला पुल्लिङ्ग १ ली विभक्ति का है

१ ली शाखा

पा० १, १, १३) के अनुसार वेदसम्बन्धी अस्मे और युष्मे भी प्रगृह्य हैं

२ री शाखा

प्लुत स्वर (११ वें सूत्र की ६ठी शाखा देखो) कुछ उलटापलटी नहीं उठाते जैसे आगच्छ कृष्ण ३ अत्र (कृष्ण यहां आ) इत्यादि (पा० ६, १, १२५, ८, २, ८२)

३ री शाखा

जो ८ वीं विभक्तिवाला शब्द अन्त में ओ रखता है सो जब निपात इति के प हले आताहै तब पलटा नहीं जाता जैसे विष्णो इति (ओ विष्णु ऐसा) (अथवा ३६ वें सूत्र का अनुगामी होताहै

४ थी शाखा

जो निपात अमिश्रित स्वर होते हैं सो और जो ओ किसी अन्य क्षेपण का पि छला वर्ण होताहै सो कुछ उलटापलटी नहीं सहते जैसे इ इन्द्र (हे इन्द्र) उ उमे श (हे उमा के स्वामी) अहो इन्द्र (अहा इन्द्र) (पा० १, १, १४, १५)

वर्णन

देखो यिह सूत्र उस आ से भी लगताहै जो बुलाने का कहाजाताहै परन्तु उस आ से नहीं लगताहै जो आङ् कहाजाताहै और क्रियाओं के या संज्ञाओं के पह ले उपसर्ग के सदृश तक और थोड़े के अर्थ में आताहै जैसे आ एवम् (हैं ऐसा) परन्तु आ उदकात् होताहै ओदकात् (जल तक) आ उष्ण होताहै ओष्ण (कुछ एक तता)

५ वीं शाखा

पहले आनेवाले अ के पहले गो (गाय) का ओ पलटता नहीं और इच्छानु सार उस अ को गिरादेताहै जैसे गो अग्रम या गोग्रम (गाय का समूह) (३५ वें सूत्र की १ली और २री शाखा और ३६वें सूत्र का वर्णन देखो)

२रे निषेध

६ ठी शाखा

उपसर्ग का पिछला अ या आ धातु के पहले ऋ के पहले आर् होजाताहै अर नहीं होताहै जैसे प्र ऋछ होताहै पार्छ (उपर जा) उप ऋछ होताहै उपार्छ (पा स जा) प्र ऋष होताहै प्रार्ष (पद) आ ऋछ होताहै आर्छ (पा) (पा० ६, १, ९१) (२६० वां सूत्र देखो)

७ वीं शाखा

उपसर्ग का पिछला अ पहले ए वा ओ रखनेवाली क्रियाओं के पहले बहुध गिरजाताहै (७८३ वें सूत्र की ११ वीं शाखा और १६ वीं शाखा वर्णन समेत दे खो) (पा० ६, १, ८९, ९४)

वर्णन

देखो निपात एव निस्संदेहता का अर्थात् ही का अर्थ देताहै तब पहले आनेव ले पिछले अ पर ऐसाही प्रभाव रखताहै

८ वीं शाखा

जो ऊ वाह् के वा के पलटे प्रष्ठवाह् (हल जोतने का नाटा) जैसे शब्दों की बहुध नवाली ७वीं विभक्ति में आताहै सो अ के पीछे वृद्धि चाहताहै जैसे प्रष्ठौहः

९ वीं शाखा

किम् का उ प्रत्येक स्वर के पहले बना रहताहै अथवा व् से पलटजाताहै जै किम् उक्तम् या किंवुक्तम् (क्या कहा)

१० वीं शाखा

शाकल्प के अनुसार अ इ उ ऋ (ह्रस्व या दीर्घ) जब किसी शब्द के पिछ वर्ण होते हैं तब ऋ पहले रखनेवाले शब्द के पहले इच्छानुसार नहीं पलटते हैं न्तु जो दीर्घ होते हैं तो ह्रस्व होजाते हैं) अथवा सामान्य सूत्र के अनुगामी ते हैं जैसे

ब्रह्म ऋषिः और ब्रह्मा ऋषिः (ब्राह्मण ऋषि) ब्रह्म ऋषिः या ब्रह्मर्षिः होज ते परन्तु ब्रह्मा ऋषि प्रत्येक अवस्था में अवश्य पलटजाताहै ऐसेही यथा ऋषि गाहे यथर्षि या यथऋषि (ऋषि के अनुसार)

ऐसेही ई या ऊ या ऋ जब किसी शब्द का पिछला होताहै और असमान के पहले आताहै जैसे चक्री अत्र होताहै चक्रयत्र या चक्रि अत्र (चक्रमाला या परन्तु मिश्रित शब्द सामान्य सूत्र के अनुगामी होतेहैं जैसे नदी उदक हो

शुदक (नदी का जल) परन्तु जो शब्द क पहले रखते हैं उनके पहले नहीं जैसे कुमारी कश्यः वा कुमारि कश्यः और असिक्लिन्न (तरवार से वहाहुआ) (महाभारत १८, १०५, देखो)

११ वीं शाखा

ओतु (बिल्ली) और ओष्ठ (होठ) जो मिश्रितों में आते हैं तो अपने पहले आनेवाले पिछले अ को इच्छानुसार गिरादेते हैं जैसे स्थूल ओतु होताहै स्थूलोतु वा स्थूलौतु (मोटी बिल्ली) अधर ओष्ठ होताहै अधरोष्ठ वा अधरौष्ठ (नीचे का होठ) (पा० ६, १, ९४ वार्त) और दिव ओकस् होताहै दिवोकस् वा दिवौकस् (देवता)

१२ वीं शाखा

ऐसेही ओम् और उपसर्ग आ पहले आनेवाले पिछले अ को गिरादेतेहैं जैसे शिवाय ओं नमः होताहै शिवायों नमः (ओं शिव को नमस्कार) शिव एहि (आ इहि के साथ) होताहै शिवेहि (हे शिव आ)

१३ वीं शाखा

इन नीचे लिखेहुए शब्दों में ऐसीही सूत्रविरुद्धता पाईजातीहै जैसे शक अन्धु होताहै शकन्धु कर्क अन्धु होताहै कर्कन्धु (बेर) लाङ्गल ईषा होताहै लाङ्गलीषा (हल की मूंठ) (पा० ६, १, ९४ का शकन्ध्वादि गण देखो)

१४ वीं शाखा

नीचे लिखेहुए मिश्रित भी कुछ विरुद्ध हैं (पा० ६, १, ८९ वार्त)

अक्षौहिणी (पूरी सेना) अक्ष और ऊहिनी से जो आदि में वाहिनी है

प्रौढ (बढ़ाहुआ) प्र और ऊढ से

प्रौह (प्रतिबिंब) प्र और ऊह से

स्वैर वा स्वैरिन् (स्वाधीन) स्व और ईर से

सुखार्त (अत्यन्त दुःखी) सुख और ऋत से

प्रार्ण (मुख्य ऋण) प्र और ऋण से

कम्बलार्ण (कम्बल का ऋण) कम्बल और ऋण से

वसनार्ण (वस्त्र का ऋण) वसन और ऋण से

ऋणार्ण (ऋण का ऋण) ऋण और ऋण) से

प्रैष (बुलावा) प्रैष्य (सेवक) प्र और एष से

इस आगे लिखेहुए यंत्र में स्वरों की उलटापलटी एक साथ दिखाई जाती है तथा जो कि एक शब्द अन्त में ऊ रखताहै और दूसरा आदि में औ तो पढ़नेवाले को चाहिये कि पहले खंभ पर जिसके सिरे पर (पिछला स्वर) लिखा है अपनी दृष्टि डाले और ऊ को देखे किकहां लिखा है फिर ऊपर को आड़ी रेखा पर जिस के सिरे पर (पहला स्वर) लिखा है दृष्टि लावे और औ को देखे जहां खड़ी रेखा का खंभ औ के नीचे ऊ वाली आड़ी रेखा से मिलता है वहां वाञ्छित संधि वा उलटापलटी का फल र् और औ मिलेगा

स्वरों की सामान्य संधि का

यंत्र

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
पहले स्वर	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ए	ऐ	ओ	औ
पिछले स्वर	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
अ या आ	आ	आ	ए	ए	ओ	ओ	अर्	अर्	ऐ	ऐ	औ	औ
सूत्र	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३
इ या ई	य् अ	य् आ	ई	ई	य् उ	य् ऊ	य् ऋ	य् ॠ	य् ए	य् ऐ	य् ओ	य् औ
सूत्र	३४	३४	३१	३१	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३४
उ या ऊ	व् अ	व् आ	व् इ	व् ई	ऊ	ऊ	व् ऋ	व् ॠ	व् ए	व् ऐ	व् ओ	व् औ
सूत्र	३४	३४	३४	३४	३१	३१	३४	३४	३४	३४	३४	३४
ऋ या ॠ	र् अ	र् आ	र् इ	र् ई	र् उ	र् ऊ	ॠ	ॠ	र् ए	र् ऐ	र् ओ	र् औ
सूत्र	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३१	३१	३४	३४	३४	३४
ए ३५ ३६	ए	अ आ	अ इ	अ ई	अ उ	अ ऊ	अ ऋ	अ ॠ	अ ए	अ ऐ	अ ओ	अ औ
३६ अ	अय् अ	अय् आ	अय् इ	अय् ई	अय् उ	अय् ऊ	अय् ऋ	अय् ॠ	अय् ए	अय् ऐ	अय् ओ	अय् औ
ऐ ३७	आय्+अ	आय् आ	आय् इ	आय् ई	आय् उ	आय् ऊ	आय् ऋ	आय् ॠ	आय् ए	आय् ऐ	आय् ओ	आय् औ
ओ ३५, ३६	ओ+	अव्+आ	अव् इ	अव् ई	अव् उ	अव् ऊ	अव् ऋ	अव् ॠ	अव् ए	अव् ऐ	अव् ओ	अव् औ
औ ३७	आव्+अ	आव् आ	आव् इ	आव् ई	आव् उ	आव् ऊ	आव् ऋ	आव् ॠ	आव् ए	आव् ऐ	आव् ओ	आव् औ

वर्णन

देखो ऊपर के यंत्र के दृष्टान्तों में पिछला वर्ण पलटजाने से अधिक स्पष्टता के लिये पहले वर्ण से अलग लिखा है परन्तु जहां दो स्वरों का मिलना असंभव है वहां नहीं

टीका

* जो पहला अ किसी अन्त या प्रत्यय इत्यादि से सम्बन्ध रखता है और किसी पूर्ण शब्द से नहीं रखता तो अ गिराया नहीं जाता और ओ उस के पहले अव् होजाता है (३६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो

* जो दोनों पूर्ण शब्द होते हैं तो य और व् अवश्य गिरादिये जाते हैं परन्तु जैसे ए के साथ वैसे नहीं

२ रा प्रकर्ण

व्यञ्जनों की सुस्वरतासम्बन्धी संधि अर्थात् मिलावट

३९ वां सूत्र

व्यञ्जनों की मिलावट से पहले फिर समझ लेना चाहिये कि सब वर्ण दो प्रकार के हैं कठोर और कोमल जैसे २० वें सूत्र की २ री शाखा में बताये हैं

यंत्र

कठोर या फुसके				कोमल या बोलने						
क	ख			ग	घ	ङ	ह	अ	आ	
च	छ	श		ज	झ	ञ	य	इ ई	ए ऐ	ं
ट	ठ	ष	ः	ड	ढ	ण	र	ऋ	ॠ	वा
त	थ	स		द	ध	न	ल	ऌ	ॡ	ँ
प	फ			ब	भ	म	व	उ ऊ ओ औ		

१० वां सूत्र

संज्ञाओं के और क्रियाओं के मूलों के अपूर्ण पद अन्त में कोई वर्ण रखसक्ते हैं और ये पिछले वर्ण चाहे अमिश्रित हों चाहे मिश्रित हों जब अपूर्ण शब्द अकेले होते हैं तब रहेआते हैं परन्तु पूर्ण शब्द जब अकेले रहते हैं अथवा किसी वाक्य के अन्त में होते हैं तब व्याकरणियों की रीति के अनुसार इन नौ व्यञ्जनों में से अर्थात् क् ट् त् प ङ् ण् न् म् ल् अथवा विसर्ग (:) और अनुस्वार (ं) समेत ११ व्यञ्जनों में से कोई अन्त में रखसक्तेहैं और जो शब्द अन्त में पूर्वोक्त ग्यारः वर्णों में से कोई नहीं रखतेहैं उनके अपूर्ण शब्द भी ऐसी उलटापलटी उठाते हैं कि सुन्दरता के लिये प्रत्ययों के साथ और वाक्यों में दूसरे शब्दों के साथ मिलने में उनको इन ग्यारः वर्णों में से कोई अन्त में रखनापड़ता है

परन्तु (पाणिनि ८, ४, ५६) में प्रत्येक शब्द को कोमल वर्ण ग् ड द और ब् में से इच्छानुसार कोई वर्ण किसी वाक्य के अन्त में अथवा ठहराव के पहले अन्त में रखने की आज्ञा देता है जैसे वाक् वा वाग् इत्यादि

११ वां सूत्र

इस व्याकरण में कोमल वर्ण ग् ड् द् ब् सीटीयुक्त स् और अर्द्धस्वर र् जो पूर्ण शब्द अकेले रहते हैं और सुन्दरतासम्बन्धी मिलावट के लिये जो अपूर्ण शब्द बना येजाते हैं उनके पिछले वर्ण रखेजायेंगे परन्तु ये नीचे लिखीहुई पूर्वज्ञानसम्बन्धी पांच विधि प्रत्येक अवस्था में पिछले शब्दों के पहले वर्णों पर ध्यान रखे बिना काम में लानी पड़ेंगी

पूर्वज्ञानसम्बन्धी पांच विधि

१ ली विधि

कोई स्वररहित मिश्रित व्यञ्जन किसी शब्द के पीछे बहुधा नहीं रहसक्ता परन्तु एक अमिश्रित होजाता है इस के लिये सामान्य सूत्र यिह है कि पहले व्यञ्जन को छोड़के प्रत्येक व्यञ्जन गिरादियाजाताहै जैसे चरन् चरन्त् से और अदन्

वर्णन

देखो ऊपर के यंत्र के दृष्टान्तों में पिछला वर्ण पलटजाने से अधिक स्पष्टता के लिये पहले वर्ण से अलग लिखा है परन्तु जहां दो स्वरों का मिलना असंभव है वर्णों के मूलसम्बन्धों वा मूलसम्बन्धी के प्रतिनिधि होनेहैं सो मिले रहते हैं जैसे ऊर्क् १ ली वि० ऊर्ज् (शक्ति) से (१७६ वें सूत्र की ८ वीं शाखा देखो) अभार्त् अ० पु० ए० व० अपूर्णभूत मूल मृज से (पा० ८, २, २१) परन्तु अधिकार्थके पटर अविकार से न छोड़दियाजाता है इसलिये कि मूलसम्बन्धी नहीं है ५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो)

२ री विधि

कोई स्वररहित श्वासयुक्त व्यञ्जन पिछला नहीं रहसकता परन्तु अपने अनुरूप अश्वासयुक्त से पलट जाता है जैसे चित्रलिख् होजाता है चित्रलिक् (४१ वां सूत्र देखो) परन्तु छ् सदा ट् होजाता है (आगे आनेवाली ४ थी विधि देखो)

३ री विधि

श्वासयुक्त ह् पिछला नहीं रहसकता परन्तु सदा ट् होजाता है जैसे लिह् होता है लिट् और कभी२ कुछ क् वा त् होजाता है (१८२ वां ३०५ वां और ३०६ वां सूत्र देखो)

४ थी विधि

पिछले तालव्य वर्ण कण्ठस्थानी वर्णों की प्रकृति रखने से कण्ठस्थानी वर्णों में पलटजाते हैं इसलिये च् सदा क् होजाता है जैसे वाच् वाक् (१७६ वां सूत्र देखो) परन्तु छ् ट् होजाता है (१७६ वां सूत्र देखो) ज् ग् होजाता है (वा क्) और कभी ट् (वा ड्) (१७६ वां सूत्र देखो) परन्तु व्याकरणसम्बन्धी बनायेहुए शब्द छोड़ के (५० वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

५ वीं विधि

सीटीयुक्त श् ष् जो पिछले होते हैं सो बहुधा ट् से पलटजाते हैं परन्तु कभी श्

४० वां सूत्र

संज्ञाओं के और क्रियाओं के मूलों के अपूर्ण पद अन्त में कोई वर्ण रखसक ते हैं और ये पिछले वर्ण चाहे अमिश्रित हों चाहे मिश्रित हों जब अपूर्ण शब्द अकेले होते हैं तब रहेआते हैं परन्तु पूर्ण शब्द जब अकेले रहते हैं अथवा किसी ... अन्तों के पह...

े ऊपर बतलाईहुई उलटापलटियां हुआकरती हैं और जो तद्धित सम्बन्धी प्रत्यय आदि में कोई अनुनासिक रखते हैं उनके पहले भी

२ री शाखा

परन्तु जो संज्ञाएं और क्रियाएं आदि में स्वर रखती हैं उनके अन्तों के पहले और बहुधा अबल व्यञ्जन अर्थात् अनुनासिक और अर्द्धस्वर के पहले मूलों और अपूर्णपदों के पिछले वर्ण पलटते नहीं हैं (१७६ वें सूत्र में वाच् और ६५० वें सूत्र में पच् देखो) उस सामान्य सूत्र से विरुद्ध भी जो कोमल वर्ण के पहले कठोर वर्ण की कोमलता चाहता है

व्यञ्जनों की मिलावट के सामान्य सूत्र

४२ वां सूत्र

जो दो कठोर वा दो कोमल अस्वासयुक्त वर्ण पास२ आते हैं तो कुछ उलटा पलटी नहीं होती जैसे

विद्युत् प्रकाश होताहै विद्युत्प्रकाश (बिजली की चमक)

कुमुद् विकास होताहै कुमुद्विकास (कमल का खिलना)

दृषद् अधोगति होता है दृषदधो॰ति (पहाड़ का उतार)

विद्युत् + सु = विद्युत्सु (बिजलियों में)

४३ वां सूत्र

जो कोई कठोर वर्ण (मीटीयुक्त छोड़के ६२ वें सूत्र से ६६ वें सूत्र तक देखो) किसी शब्द के अन्त में आताहै और कोई कोमल वर्ण पहले रखनेवाला शब्द पीछे आता है तो वह कठोर वर्ण जो कोई मुख्य सूत्र और रीति से आज्ञा नहीं क

सूत्र की २ री शाखा देखो)

३२ वां सूत्र

जो कोई कोमल वर्ण किसी शब्द वा अपूर्ण शब्द के पीछे आताहै पहला कठोर वर्ण उसके पीछे आताहै तो वुह कोमल वर्ण अपने क छटजाताहै और वुह कठोर सदा (३१ वें सूत्र की २ री विधि के अनुस युक्त होताहै जैसे

कुमुद् + सु = कुमुत्सु (कमलों में)

समिद् + सु (समिद् पलटे समिध् के) (४१ वें सूत्र की २ री विधि दे त्सु (ईंधनों में)

१ ली शाखा

तालुस्थानियों के लिये (४१ वें सूत्र की ४ थी विधि देखो)

२ री शाखा

जो कोमल वर्ण अपने अनुरूप कठोर नहीं रखते ऐसे जैसे अनुनासि और ह हैं सो मुख्य सूत्रों से पलटे जातेहैं

३ री शाखा

जो किसी अपूर्णपद का पिछला कोई स्वासयुक्त कोमल वर्ण होत का पहला वर्ण ग् द् द् वा भ् होताहै तो जो स्वास उस पिछले वर्ण म उस अपूर्णपद के पहले वर्ण को देदियाजाताहै जैसे बुध् + सु = भुत्सु लों में) (१७७ वां सूत्र और १८२ वें सूत्र में वुह देखो) ऐसेही दध् (वे दो रखतेहैं) (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा २९९ वें सूत्र की २ री शाखा और ६६४ वां सूत्र देखो)

मुख्य सूत्रों का विभाग

है आनेवाले नियत व्यञ्जनों में से जो बहुत आते हैं सो ये हैं दन्तस्थानी त् और द् अनुनासिक न् और म् दन्ती सीटीयुक्त स् (जो विसर्ग होजाताहै) और अर्द्ध-स्वर र् (यिह भी विसर्ग होजाताहै) इसलिये काम के लिये केवल चार मुख्य सूत्र बतायेजाते हैं

१ पहला पिछले त् और द् की उलटापलटी का

२ दूसरा अनुनासिकों और विशेष करके न् और म् की उलटापलटी का

३ तीसरा पिछले स् की उलटापलटी का

४ चौथा पिछले र् की उलटापलटी का

पिछले त् और द् की उलटापलटी

३५ वां सूत्र

२३ वें सामान्य सूत्र के अनुसार पिछला त् कोमल वर्णों के और स्वरों के पहले द् होजाताहै जैसे मरुत् वाति होताहै मरुद्वाति (वायु बहती है)

१ ली शाखा

२१ वें सूत्र की ५ वीं विधि की २ री शाखा के और ४३ वें सूत्र की ४ थी शाखा के कुछ निषेध हैं इसलिये जो अपूर्णपद अन्त में त् रखते हैं और प्रत्यय वत् मत् विन वल के पहले आते हैं सो उस त् को अवश्य नहीं पलटते जैसे विद्युत्वत् (बिजलीवाला) गरुत्मत् (पक्षवाला)

३६ वां सूत्र

और २४ वें सूत्र के अनुसार पिछला द् कठोर व्यञ्जनों के पहले बहुधा त् हो जाताहै जैसे दृषद् पतन होताहै दृषत्पतन (पत्थर का गिरना)

३७ वां सूत्र

और ३१ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार पिछला त् या द् पहले न् या म् के न् होजाताहै

पिछले त् वा द् का सदृश होना

४८ वां सूत्र

जो कोई शब्द अन्त में त् वा द् रखता है और उसके पीछे कोई पहला च् वा ल् आताहै तो वह त् वा द् उसके सदृश होजाता है जैसे भयात् लोभात् च हो है भयाल्लोभाच्च (भय से और लोभ से)

तद् जीवनम् होताहै तज्जीवनम् (वह जीवन)

१ ली शाखा

पिछला त् वा द् पहले छ् वा झ् के भी सदृश होजाताहै परन्तु तब ११ वें सू की २ री विधि के अनुसार उनके सदृश होने का फल च्छ ज्झ होताहै जैसे त छिनत्ति होताहै तच्छिनत्ति (वह उसको काटता है) तद् झषः होताहै तज्झषः (सकी मछली)

२ री शाखा

पिछला त् वा द् ऐसेही ट् और ड् के और उनके स्वासयुक्त वर्णों के सदृश ताहै जैसे तत् टीका होताहै तट्टीका तद् डीनम् होताहै तड्डीनम् तत् ठक्कुरः होता तट्ठक्कुरः

वर्णन

देखो ऐसा पूर्ण शब्दों की निकटता में नहीं होता अर्थात् त् ट् से नहीं पलटत जैसे षट्ते (न षट्टे) (ये छः) परन्तु ईड् + ते = ईट्टे (वह सराहताहै) (३२५ वां त्र देखो)

पिछला त् वा द् पहले ञ् और ण् के भी सदृश होताहै

४९ वां सूत्र

जो त् वा द् किसी शब्द के पीछे आता है और दूसरा शब्द श् पहले रखताहै और उस श के पीछे पास ही कोई स्वर वा अर्द्धस्वर वा अनुनासिक होता है तो

का द ष होजाताहै और वुह श छ होजाताहै जैसे तन् श्रुत्वा होताहै तच्छुत्वा (वुह सुनके) परन्तु तच्श्रुत्वाः भी होताहै

१ ली शाखा

ऐसे ही पिछले क् के पीछे पहले श का छ् होजाना इच्छानुसार है जैसे वाक्श त और वाक्छत दोनों होताहै पिछले ट् और प् के पीछे भी यिह सूत्र इच्छानुसार है परन्तु दृष्टान्त नहीं मिलते (ऋग्वेद ३, ३३, १ में विपाट् शुतुद्री के पलटे विपा ट् छुतुद्री आताहै) विपाश: और शुतुद्री नाम हैं दो नदी के

५० वां सूत्र

जो न् किसी शब्द के अन्त में आताहै और उसके पीछे पहला ह् आताहै तो पिछला त् ४३ वें सूत्र से द् होजाताहै और वुह पहला ह इच्छानुसार ध् होजाता है जैसे

तत् हरति होताहै तद्धरति (वुह उसको पकड़ताहै) परन्तु तद् हरति भी आता है

१ ली शाखा

ऐसे ही सूत्र से और ऐसे ही अभिप्राय से अनुनासिक अर्द्धस्वर और सीटीयुक्त को छोड़के जो कोई व्यञ्जन ह् के पहले आताहै तो जो वुह कठोर होताहै तो कोमल होजाताहै और उसका कोमल स्वासयुक्त इच्छानुसार उस पहले ह् के पलटे आताहै जैसे वाक् हरति होताहै वाग्घरति (बोली यश करती है)

२ री शाखा

ऐसे ही अच् ह्रस्वः होताहै अज्झस्वः (ह्रस्व स्वर)

लाना उस त् का जो च् से पलटता है

५१ वां सूत्र

जब ह्रस्व या दीर्घ स्वरों के बीच में एक अमिश्रित शब्द में छ् आताहै तब त् जो १८ वें सूत्र की पहली शाखा के अनुसार च् से पलटताहै उस छ के पहले आ

जैसे मछ् प्रत्येक स्वर के पीछे आने से मच्छ लिखाजाताहै जैसे पच्छ मि इत्यादि (६३१ वां सूत्र देखो) ऐसेही चि॰ + छेद = चिच्छेद (उसने क) अ॰ + छिनत् = अच्छिनत् (कुछ काटता था) (पा॰ ६, १, ७३, ७५)

टीका

चि छिद् के पूर्णभूत की दुहरावट का शब्दभागहै (२५२ वां सूत्र देखो) अ सब क्रियाओं में भूतकाल बनाने के लिये आगम् है अर्थात् बढ़ायाजाताहै ५२ वां सूत्र देखो)

वर्णन

लो मूछ मुर्छ से मूर्छन इत्यादि में च् नहीं लिखाजाता क्योंकि छ् दो स्वरों के में नहीं आता

१ ली शाखा

जब छ् पहला वर्ण होताहै और जब किसी शब्द का पहला शब्दभाग चाहे अ हो चाहे मिलाहुआ अन्त में कोई ह्रस्व स्वर रखताहै तब च् का लाना अव है जैसे शैलस्यच्छाया वा शैलच्छाया (पहाड़ की छाया)

२ री शाखा

उपसर्ग आ और निपात मा के पीछे च् अवश्य लाना पड़ताहै जैसे आ छन्न हे आच्छन्न (ढकाहुआ) और मा छिदत् होताहै माच्छिदत् (वुह न काटे) ६, १, ७४)

३ री शाखा

दूसरी सब अवस्थाओं में दीर्घ स्वरों के पीछे च् का लाना इच्छानुसार है जैसे री छाया वा बदरीच्छाया (बेर की छाया) सा छिनत्ति वा साच्छिनत्ति (वुह टती है) (पा॰ ६, १, ७६)

४ थी शाखा

पिछले ह् के पीछे पहले म् के पहले म् का बढ़ाना इच्छानुसार है जैसे शह्म

१ ली शाखा

यिह सूत्र छ् के पहले लगताहै जैसे तांश्छादयति (वुह उनको ढकता है) और थ् और ठ् के पहले भी परन्तु ये दो कभी आते नहीं जानपड़ते

२ री शाखा

जो स् किसी मिश्रित व्यञ्जन में न् के पीछे ही आताहै जैसा त्सरु (तरवार की मूठ) में तो कुछ उलटापलटी नहीं होती जैसे सन् त्सरु होताहै सन्त्सरुः

३ री शाखा

ऐसाही सुसरतासम्बन्धी स् उपसर्ग सम् अव परि प्रति और कई ककारादि शब्दों में आताहै जैसे संस्कार संस्कृत परिष्कार प्रतिष्कार इत्यादि (७० वां सूत्र देखो) और पुम् (नर) और किसी कठोर व्यञ्जन आदि में रखनेवाले शब्द (जैसा कोकिल) के बीच में भी आताहै जैसे पुंस्कोकिलः और जब कान् दुहरायाजाताहै तब भी जैसे कांस्कान् वा कांस्कान् (किस२ को) (पा० ८, ३, १२ परन्तु वोपदेव २ ३५)

४ थी शाखा

जो न् किसी मूल के अन्त में आताहै सो तकारादि अन्तों के पहले स् का आना नहीं चाहता है जैसे हन् + ति = हन्ति (वुह मारता है) (परन्तु ५७ वां सूत्र और ५० वें सूत्र की १ ली और २ री शाखा देखो)

५ वीं शाखा

परन्तु प्रशान् भी (१ ली वि० प्रशाम् का १७९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) नहीं चाहता जैसे प्रशान्तनोति (शीलवान फैलाताहै) प्रशाञ्चिनोति (शीलवान जोड़ताहै) (पा ८, ३, ७,)

५३ वां सूत्र

जिन अवस्थाओं में न् आदि में किसी का पिछला होताहै और अनुस्वार हो जाताहै सो उतनी ही हैं जितनी ऊपर ५३ वें सूत्र और ५३ वें सूत्र की १ ली शाखा में बताई हैं इसलिये संस्कृत की अच्छी मिलावट में तान् करोति वा तान् दश

नि को तांकरोति या तांददाति नहीं लिखना चाहिये

५५ वां सूत्र

जो न् किसी शब्द के अन्त में आताहै और दूसरा शब्द शकारादि होताहै तो न् और श् इन नीचे लिखीहुई दो रीतियों में से एक रीति से मिलताहै

१ ली रीति

पिछला न् तालूसम्बन्धी ञ् से पलट सकताहै जैसे महान् शूरः लिखाजासकता है महाञ्शूरः (बड़ा शूर)

२ री रीति

पहला श् छ् होसकताहै जैसे महाञ्छूरः

१ ली शाखा

व्याकरणियों की मति के अनुसार जो न् बढ़ताहै और ५१ वें सूत्र के अनुसार च् होजाताहै सो दोनों अवस्थाओं में आसकताहै जैसे महाञ्च्शूरः वा महाञ्च्छूर परन्तु ऐसा बहुत थोड़ा होताहै और बहुधा न् और श् दोनों कभी२ अशुद्धता से सूत्रविरुद्ध पलटे नहीं जाते जैसे महान् शूरः

२ री शाखा

पिछला ङ् जब किसी दूसरे शब्द वा शब्दभाग के पहले कोई सीटीयुक्त आता है तब क् का बढ़ना चाहता है इसलिये प्राङ् शत प्राङ्क्शत या ४९ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार प्राङ्क्छत दोनों होसकताहै अथवा जैसा है वैसा रह सकता है

३ री शाखा

स् के पहले पिछला ण् ट् का बढ़ना चाह सकताहै और पिछला न् त् का जैसे सुगण् (अच्छा गिननेवाला) ७ वीं वि० के ए० व० में होताहै सुगण्सु या सुगण्ट्सु और सन् सः (वह होताहुआ) होसकताहै सन्त्सः और कोई२ व्याकरणी कहते हैं कि ये बढ़ेहुए वर्ण इच्छानुसार स्वासयुक्त होसकते हैं पिछले न् और पहले स

के बीच में नृ का लाना वेद में बहुत है परन्तु पिछली संस्कृत भाषा में इन वर्णों का आना सदा नहीं है

५६ वां सूत्र

जो न् किसी शब्द का पिछला होताहै और दूसरा शब्द आदि में ल् रखता है त न् ल् होजाताहै और चन्द्रविन्दु का चिन्ह (ँ) न् के पलटे उस ल् पर उसकी अ नासिकता दिखाने के लिये रखादियाजाता है जैसे पक्षान् लुनाति होता है पक्षाल्लुँ नाति या पक्षाल्ँ लुनाति (वुह पक्ष कतरता है) (७ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

पिछला न् पहले ज् झ् ञ् के शुद्धता से ञ् लिखाजाना चाहिये परन्तु सूत्रविरुद्ध नि नों में बहुधा जैसा है वैसाही रहताहै

२ री शाखा

पिछले न् को ड् ढ् और ण् के पहले ण् लिखा जाना चाहिये

३ री शाखा

परन्तु पिछला न् कण्ठ्य तालव्य और (ष् को छोड़के) अर्द्धस्वर और सीटीयु त और प के पहले पलटा नहीं जाताहै जैसे तान् षट् (उन छः को)

५७ वां सूत्र

जो न संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों का पिछला होताहै सो व्यञ्जन आदि में रख वाले अन्तों और प्रत्ययों के पहले गिरजाताहै जैसे धनिन्+ भिः = धनिभिः (धन नों से) गुणिन् + त्व = गुणित्व (महणाई) ऐसेही स्वामिन् + वत् = स्वामिवत् (स्वा सा) परन्तु राजन्वत् (राजा रखनेवाला) के अर्थ में इस सूत्र से विरुद्ध है (रघुवं ५, १, २२, और पा० ८, २, १४) ऐसेही उदन्वत् (समुद्र) (रघुवंश ५, ३०, १

१ ली शाखा

जो न किसी मूल का पिछला होताहै सो उन अन्तों के पहले जो अनुनासि और अर्द्धस्वर को छोड़के कोई व्यञ्जन आदि में रखते हैं और संकेतिक

नहीं रखतेहैं छोड़दियाजाता है (१०७ वां और ३२३ वां सूत्र देखो) जैसे हन् + ति (तिङ्) = हन्ति परन्तु हन् + तः = हतः (६५२ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

ऐसे ही जब कोई न् अन्त में रखनेवाला शब्द किसी मिश्रित शब्द में पहले आता है अर्थात् पीछे नहीं आता तब उस मिश्रित का दूसरा अंग स्वरादि भी होता है परन्तु वह न् छोड़दियाजाताहै जैसे राजन् पुरुष होता है राजपुरुष (राजा का सेवक) राजन् इन्द्र होताहै राजेन्द्र (राजाओं का इन्द्र) स्वामिन् अर्थम् होताहै स्वाम्यर्थम् (स्वामी के लिये)

३ री शाखा

जो न् पिछला नहीं होता और उसके पहले निकट ही कोई तालुस्थानी होता है तो ञ् होजाताहै जैसे याच् + ना = याञ्ञा (इच्छा) यज् + न = यज्ञ (बलिदान) ऐसे ही राज्ञी राजन् से (राजा की स्त्री)

जो न् पिछला नहीं होता उसका ण् से पलटना

५८ वां सूत्र

जो न् पिछला नहीं होता और अपने पीछे पास ही कोई स्वर अथवा न् म् य् व् से कोई व्यञ्जन रखताहै सो जब एक ही शब्द अर्थात् समानपद में ह्रस्व वा दीर्घ ऋ र् और ष में से किसी के पीछे आताहै और कोई स्वर अथवा कोई कंठस्थानी वा ओष्ठस्थानी अर्थात् क् ख् ग् घ् ङ ह् और प फ् ब् भ् म् य् व् में से कोई अथवा य् वा अनुस्वार, अमिश्रित वा किसी स्वर से मिश्रित बीच में आताहै तो भी ण् में पलट जाताहै जैसे इन अगले दृष्टान्तों में जो मनुष्यों और अन्नों के लगाने से बनेहैं. शिपाणि (६१५ वां सूत्र देखो) कर्मणा (१५२ वां सूत्र देखो) मृगेण (१०७ वां सूत्र देखो) बृंहण (मोटा करताहुआ) शृङ्गिण (सींगवाला) ब्रह्मण्य (ब्रह्म को माननेवाला) परन्तु आचार्यानी (आचार्य की स्त्री) इस सूत्र से विरुद्ध है। पा० ८. ४. २१. वार्त्तिक ।

टीका

* यिह ५८ वां सूत्र पाणिनि के ८ वें और ४ थे दो सूत्रों में ऐसे बताया है रषा भ्यां णो नः समानपदे। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि। ऋ के साथ ऋ भी समझा जाता है अट् से मिश्रित वा अमिश्रित स्वर य् ह् व् और र् समझे जाते हैं कु से कंठस्थानी पु से ओष्ठस्थानी आङ् से उपसर्ग आ और नुम् से अनुस्वार समझे जाते हैं

१ ला वर्णन

न् पिछला (अर्थात् वुह जिसके पीछे विराम आता है) जब किसी शब्द में आता है तब पलटा नहीं जाता जैसे दातॄन् दातॄण् नहीं होता (१२७ वां सूत्र देखो)

२ रा वर्णन

ऐसे शब्द जैसा कुर्वन्ति (वे करते हैं) में न् के पीछे पासही त् आता है इसलिये वुह पलटता नहीं ऐसेही रुन्ध्वः (६७१ वां सूत्र देखो)

३ रा वर्णन

यिह दन्तस्थानी वर्ण का मूर्द्धस्थानी वर्ण के साथ पलटना प्रातिशाख्यः में नति कहलाता है .

१ ली शाखा

य् को छोड़के प्रत्येक तालुस्थानी वा मूर्द्धस्थानी वा दन्तस्थानी (१८ वें सूत्र की २ री शाखा का ३ रा यंत्र देखो) अर्थात् च् छ् ज् झ् ञ् श् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् ल् स् का बीच में आना इस सूत्र की आज्ञा को रोकता है जैसे अर्चना (पूजा) मर्जन (छोड़ना) कीडन (खेलना) वर्त्मानि (वर्त्मन् मार्ग की १ ली वि॰ प्र॰ व॰) शृगालेन (गीदड़ से) (१०९ वां सूत्र देखो) किसी ओष्ठस्थानी का न् के साथ मिलके बीच में आना पांचवें गण की किया तृप् (तुष्कर) की वर्तनी के रूपों में कुछ उलटापलटी नहीं होने देता जैसे तृप्नोमि इत्यादि (६१८ वां सूत्र देखो) और नवें गण की किया क्षुभ् (हिलना) की वर्तनी के रूपों में भी जैसे क्षुभ्नाति इत्यादि

(६९२ वां सूत्र देखो) (पा० ८, ४, ३९) परन्तु वेद में तृप्णोति आताहै परन्तु अ गुनासिक या अर्द्धस्वर या ह् का बीच में आना जो न् के साथ मिश्रित भी होतेहैं तो भी उसके मूर्द्धनी होजाने को नहीं रोकता जैसे अर्यमणा (१२७ वां सूत्र देखो) अराव्णा (अरावन् (झगड़ालू)की १ री वि०) ग्रावणा (ग्रावन्) (पत्थर) की ३ री वि०)

वर्णन

पाणिनि के ६, १, १६ के अनुसार व्रश्च् (काट) और रुज् (तोड़) की कर्मणिवा च्य मूलगुणक्रिया वृक्ण और रुग्ण होनी चाहिये

२ री शाखा

जो दो मिश्रित न् ऐसे वर्णों के पीछे आते हैं जो मूर्द्धन्यता चाहते हैं तो वे दो- नों ण् होजाते हैं जैसे विपण्ण * में (५४० वां सूत्र देखो)

टीका

* ऐसे शब्द को छोड़ के जैसा प्राणिणत् जो दुहरायाहुआ अनियतभूत है अन् (स्वास छे) का प्र के साथ

३ री शाखा

मिश्रित शब्दों में सो जब ऋ ॠ ष् र् में से कोई उनके पहले अंग में आताहै और न् दूसरे अंग में तब शुद्ध न् कभी२ ण् से पलटता है विशेष करके तब जब प्रत्येक श ब्द का पृथक२ अर्थ उस मिश्रित में एक होजाताहै और कभी ऐसा पलटना इच्छा नुसार है परन्तु जब वे शब्द मिलके एक अर्थ नहीं देते तब ऐसी उलटापलटी नहीं होती परन्तु इस अवस्था में भी कोई मुख्य सूत्र बताना असम्भव है ये आगे थोड़े दृष्टान्त लिखे जाते हैं ग्रामणी (गांव का स्वामी) अग्रणी (मुखिया) रामायण (रा मायण) वार्ध्रीणस (गेंडा) खरणस (पैनी नाकवाला) परन्तु चर्मनासिका (कोड़ा) और सर्वनामन् (सर्वनाम) स्वर्नदी वा स्वर्णदी (आकाश की नदी) हृपनाशन (पौ धा) (हृपणाशन छोड़के) गिरिनदी वा गिरिणदी (पहाड़ की नदी) मापवण

(आम का वन) ब्रह्महणम् (ब्राह्मण के मारनेवाले को) ऐसेही वृत्रहणम् (वृ-त्र के मारने वाले को) परन्तु वृत्रघ्न (जिस में हन् घ्न होजाताहै) सर्वाह्न (सब दिन) और ऐसेही दूसरे मिश्रितों में जब पहला अंग अन्त में अ रखता है परन्तु पराह्न (मध्यान पीछे) परा और अहन् से (पा० ८, ४, ३ इत्यादि)

४ थी शाखा

मिश्रित शब्द का न् जब पहला अंग अन्त में ष् रखता है और दूसरा कृत् प्रत्यय से बनके न् रखता है तब ण् से नहीं पलटाजाता जैसे निष्पान दुष्पान यजुष्पान (पा० ८, ४, २५)

५ वीं शाखा

जो किसी मिश्रित का दूसरा अंग कोई कंठस्थानी वर्ण रखता है अथवा एक शब्दभागवाला होताहै तो न् ण् से अवश्य पलटजाताहै जैसे स्वर्गकामिणी हरिकामेण (पा० ८, ४, १३) क्षीरपेण (पा० ८, ४, १२) परन्तु जो अग्नि के साथ मिश्रित होते हैं उन में नहीं जैसे शर्गाग्नि

५९ वां सूत्र

उपसर्ग अन्तर् निर् (पलटे निस् के) परा परि प्र और दुर् (पलटे दुस् के) बहुत से न् आदि में रखनेवाले मूलों में न् का ण् से पलटना चाहते हैं और इसलिये धातुपाठ में ये मूल मूर्द्धनी ण् के साथ लिखे जाते हैं जैसे प्रणमति (वह नमस्कार करता है) अन्तर्णयति (वह भीतर मार्ग दिखाता है) निर्णुदति (वह निकालता है) परानुदति (वह निकालताहै) प्रणय (मार्ग दिखाना) प्रणायक (मार्ग दिखानेवाला) परिणाह (वेग)

१ ली शाखा

परन्तु इन आगे आनेवाले मूलों में न् कभी नहीं पलटता और इसलिये ये मूल धातुपाठ में दन्ती न् के साथ लिखे जाते हैं नृत् (नाच) नन्द् (प्रसन्न हो) नर्द् (दहाड़) नश् (नाश) नट् (नाच) नाथ् (पूछ) नाध् (पूछ) नृ (मार्ग दिखा)

टीका

१ किसी२ व्याकरणी की मति के अनुसार न् ण् से तबही पलटताहै जब पिह मूल १० वें गण का होताहै और पढ़ने वा गिरने का अर्थ देताहै

२ री शाखा

नश् (बिगाड़) में न् ण् से केवल तब पलटताहै जब श् ष् से नहीं पलटता जैसे प्रण श्यति परिणश्यति परन्तु प्रनष्ट परिनष्ट में नहीं (पा० ८, ४, ३६)

३ री शाखा

हन् (मार) में न् ण् से पलटताहै परन्तु जब ह् घ् से पलटजाताहै तब नहीं जैसे प्रहण्यते प्रहणन परन्तु प्रघ्नन्ति में नहीं (पा० ८, ४, २२) जब न् के पीछे म् वा व् आताहै तब न् का ण् होना इच्छानुसार है जैसे प्रहन्मि वा प्रहण्मि इत्यादि (पा० ८, ४, २३)

४ थी शाखा

जब उपसर्ग नि पूर्वोक्त उपसर्गों के और मूल के बीच में आताहै तब इन आगे लिखेहुए मूलों में न् ण् से पलटजाताहै गद् नद् पत् पद् मा मे सो हन् या वा द्रा प्सा वप वह् शम् चि दिह् दूसरी बहुत सी क्रियाओं में पिह उलटापलटी इच्छानुसार होतीहै जैसे प्रनिभिनत्ति वा प्रणिभिनत्ति (पा० ८, ४, १७, १८)

५ वीं शाखा

जो उपसर्ग एक र् रखते हैं उनके पीछे कई अन जैसे प्रत्ययों का न् मूर्द्धन्यता अर्थात् ण होजाना चाहता है परन्तु प्रेरणार्थकसम्बन्धी अपूर्णपदों में और थोड़ी दूसरी अवस्थाओं में पिह उलटापलटी इच्छानुसार होती है (पा० ८,४, २९, ३१) जैसे प्रकोपन वा प्रकोपण प्रयापन वा प्रयापण परन्तु प्रवेपन प्रमङ्गन प्रकम्पन प्रगमन प्रभान इत्यादि में न् ण् से नहीं पलटता है (पा० ८, ४, ३२,३४) मूल अन् (श्वासले) में पिछला न् ण् होजाताहै क्योंकि प्रा ग् और पराण् से होताहै प्राणिति (धुइ सांस लेताहै) और पराणिति (पा० ८, ४, १९) प्रेरणार्थकसम्बन्धी अनि

पतभूत दो ण् रखता है जैसे प्राणिणान् ऐसेही पराण् का इच्छार्थक जैसे पराणिनि पति इस प्रकार से प्रत्येक शब्द के अन्त में पिछला न् ण् होसकताहै जैसा मूल अन् से बनेहुए प्राण् और पराण् में परन्तु ऐसा मूल अन् ही में होताहै दूसरी किसी अवस्था में पिछला न् ण् नहीं होता जब र् अन् के न् से एक से अधिक वर्ण की सहायता से अलग होजाताहै तब कुछ उलटापलटी नहीं होती जैसे पर्यनिति में

पिछले म् की उलटापलटी

६० वां सूत्र

जब म् किसी शब्द के पीछे आताहै और व्यञ्जन क् ख् ग् घ् च् छ् ज् झ् ट् ठ् ड् ढ् त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् स् में से कोई पीछे आताहै तब म् अनुस्वार होजाताहै अथवा इन व्यञ्जनों में से प्रत्येक के पहले उसके अनुनासिक से पलटजाताहै जैसे गृहम् जगाम को लिखते हैं गृहं जगाम वा गृहञ्जगाम (वुह घर को गया है) और नगरम् प्रति को लिखते हैं नगरं प्रति वा नगरम्प्रति (नगर की ओर) परन्तु इन अवस्थाओं में अनुस्वार बहुधा आयाकरताहै ऐसेही जब डीन के पहले उपसर्ग सम् आताहै तब होताहै संडीन वा सण्डीन (भागना) सम् चय होताहै संचय वा सञ्चय (संग्रह) सम् न्यास होताहै संन्यास वा सन्न्यास (त्याग) परन्तु इन अवस्थाओं में अनुस्वार बहुत नहीं आता

१ ली शाखा

प्रत्येक मूल का पिछला म् उन प्रत्ययों के पहले जो य् र् ल् म् को छोड़के कोई व्यञ्जन आदि में रखते हैं न् या ण् से पलटजाताहै जैसे जङ्गम् + मि = जङ्गन्मि (७०९ वां सूत्र देखो)ऐसेही चङ्क्रम् + वहे = चङ्क्रण्वहे (५८ वां सूत्र और पा० ८, २, ६५, देखो)

२ री शाखा

श् ष् स् ह् के पहले पिछला म् अनुस्वार बनजाता है ऐसेही अर्द्धस्वरों के पहले

भी परन्तु ६ ठे सूत्र की ५ वीं ६ ठी शाखा और ७ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

जब पिछला म् इ के पहले आवे और उसके पीछे म् न् प् ल् व् में से कोई आवे तब उसके लिये ७ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो

४ थी शाखा

जब दूसरा शब्द आदि में कोई स्वर रखताहै तब म् सदा लिखा जाता है जैसे गृहम् आयाति होताहै गृहमायाति (वह घर को आताहै) गृहंआयाति नहीं होता

५ वीं शाखा

जब न् वा म् पिछला नहीं होता और छ् के पीछे आताहै तब छ् श् होजाता है जैसे प्रछ् + न = प्रश्न (पूछना) विछ् + न = विश्न (तेज) (पा ६,४,१९,) प्रा प्रछ् + मि = पापृश्मि (मैं पूछा करताहूं)

पिछले स् की उलटापलटी

६१ वां सूत्र

संज्ञासम्बन्धी और क्रियासम्बन्धी बहुत सी वर्णमालाओं में स् अन्त में आताहै सो श् और ष् से बदलताहै और विसर्ग (:) बन जाताहै वा र् होजाताहै (८ वां सूत्र देखो) जो कठोर सीटीयुक्त और विसर्ग का अनुरूप कोमल समझाजाताहै ऐसी उलटापलटियां बहुत होती हैं इसलिये ये पांच प्रकार लिखे जाते हैं इन पर ध्यान रखना चाहिये

वर्णन

दूसरे व्याकरणों में इन सूत्रों को विसर्ग की उलटापलटी के सूत्र लिखाहै इसलिये कि जो सीटीयुक्त किसी पूर्णशब्द के अन्त में आताहै सो अकेला नहीं रहता (४० वां सूत्र देखो)

६२ वां सूत्र

प्रकार

पिछला सीटीयुक्त स् ष् ट् और इनके स्वातयुक्त के पहले नहीं होजाता है क्योंकि पिछला स् त् थ् के पहले नहीं पलटता च् छ् के पहले श् होजाताहै और ट् ठ् के पहले ष् होजाताहै

१ ली शाखा

पिछला स् पहले स् के पहले नहीं पलटता और पहले श् और ष् के पहले उनके सदृश होजाता है परन्तु बहुधा शुद्ध इन अवस्थाओं में विसर्ग होजाताहै (६३ वां सूत्र देखो)

टीका

* स् का पहले ष् से सदृश होना कभी होताहै परन्तु इसका हराना अयुक्त है

२ री शाखा

ऐसेही प्रत्येक मूल का पिछला स् अन्त सि और से के पहले सदा नहीं पलटता जैसे शास् + से = शास्से वस् + से = वस्से (३०४ थे सूत्र की १ ली शाखा देखो)

३ री शाखा

जब पहला स् किसी सीटीयुक्त से मिश्रित होताहै तब उसके पहले वाला पिछला स् बिना रूपने के पहले विसर्ग होजाता है जैसे हरिः त्सरु गृह्णाति (हरि तलवार की मूठ पकड़ता है)

४ थी शाखा

अस् इस् उस् के निषेधों के लिये (६९ वां सूत्र देखो)

६३ वां सूत्र

२ प्रकार

क् प् और इनके श्वासयुक्त वर्णों के और बहुधा तीनों सीटीयुक्त स् श् और ष् के पहले पिछला स् विसर्ग होजाता है परन्तु (६२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो

टीका

* दृष्टान्त पहले ष् के त्रयः षष्ठि के सदृश बहुत थोड़े हैं

१ ली शाखा

ठहराव के पहले अर्थात् किसी वाक्य के अन्त में पिछला स् विसर्ग होजाताहै.

२ री शाखा.

जब कोई पहला सीटीयुक्त किसी दूसरे कठोर व्यञ्जन के साथ मिश्रित होताहै तब पहले आनेवाला पिछला स् बहुधा हाथ की लिखीहुई पुस्तकों में गिरादिया जाताहै-जैसे हरिस्कन्दति वा हरिःस्कन्दति (हरि जाताहै)

३ री शाखा

जो संज्ञाएं अन्त में इस् वा उस् रखती हैं और ऐसी क्रियाओं के पहले आती हैं जो आदि में क प अथवा इनसे प्राप्त युक्त रखती हैं और इन क्रियाओं के साथ व्याकरण की रीति से मिली रहती हैं सो इच्छानुसार विसर्ग के पलटे ष् चाहती हैं जैसे सर्पिष्करोति वा सर्पिःकरोति (घृत घी बनाता है) (पा० ८, ३, ४४)

६४ वां सूत्र

३ रा प्रकार

पिछला अस् सब कोमल व्यञ्जनों के पहले ओ होजाताहै

१ ली शाखा

ऐसेही पूर्व अ के पहले जो तब गिरजाता है

पिछ प्रकार बहुत शुद्धता से परन्तु थोड़ी स्पष्टता से ऐसा लिखा है कि सब कोमल व्यञ्जनों के पहले पिछला स् उ । होजाता है और फिर अपने पहलेवाले अ से मिलकर ओ होजाताहै

टीका

१ अर्थात् पहिले स् ६५ वें सूत्र के अनुसार पहले र् से पलटताहै फिर र् सार हो-जाताहै

२ री शाखा

लोकों के नाम (सुपस् महस् जनस् मपस् इत्यादि) कोमल व्य
स् को र् करदेते हैं जैसे सुपर्लोक महर्लोक इत्यादि

६५ वां सूत्र

४ था प्रकार

पिछला स् अ या आ को छोड़के जब किसी स्वर के पीछे आ
कोमल व्यञ्जन और स्वर के पहले आताहै तब र् होजाताहै

१ ली शाखा

जब कोमल र् पीछे आताहै तब दो र् की मिलावट रोकने के
गिरजाताहै और उसका पहला स्वर ह्रस्व होताहै तो दीर्घ होजाता

६६ वां सूत्र

५ वां प्रकार

पिछला स् जब ह्रस्व अ उसके पहले आताहै तब ह्रस्व अ+ प
दूसरे स्वर के पहले गिरजाताहै देखो इस अवस्था में अ पिछला
उस पहले अ के पहले बिना मिलावट १ के आताहै

१ ली टीका

\+ अर्थात् बुद्ध ६४ वें सूत्र के अनुसार अ के साथ मिलके ओ
ओ अ को छोड़के प्रत्येक स्वर के पहले अव् होजाताहै औ
अनुसार उसका व् गिर जाताहै

२ री टीका

\+ यिह उन तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था है जिस में दो
संहिता में रह सकाहै वे तीन अवस्था ये हैं १ ली जब ६६ वें सूत्र
छला स् अस् या आस् का छोड़ दियाजाताहै २ री जब कोई ए
या पूरा शब्द (३६ वां सूत्र देखो) अ को छोड़के किसी स्वर के
३ री जब कोई द्वि वचन वाली विभक्तियों के अन्त ई ऊ ए स्वरों
(३८ वां सूत्र देखो) तब शब्द के बीच में ...

१ ली शाखा

जब दीर्घ आ पहले आताहै पिछला स् प्रत्येक कोमल व्यञ्जन या स्वर के पहले छोड़ दियाजाताहै देखो जब पहला वर्ण कोई स्वर होताहै तब वुह आ पिछला होजाताहै और मिलावट बिना उसके पहले आताहै

२ री शाखा

जब अ वा आ को छोड़के कोई दूसरा स्वर पहले आताहै तब वुह पिछला स् र् के पहले छोड़दियाजाताहै जैसे ६५ वें सूत्र की १ ली शाखा में बतायाहै

३ री शाखा

व्याकरणी कहते हैं कि पिछला स् विसर्ग होके य् होजाताहै और य् ३६ और ३७ वें सूत्र के अनुसार छोड़दियाजाताहै

ऊपर वाले पांच प्रकार आगे आनेवाले यंत्र में स्पष्ट बतायेजातेहैं इस में पहली विभक्ति वाले नरस् (नरः) (पुरुष) नरास् (नराः) (बहुत से पुरुष) हरिस् (हरिः) (विष्णु) (रिपुस् रिपुः) (शत्रु और नौस् (नौः) (नाव) क्रियाओं के साथ आते हैं

यंत्र

६७ वां सूत्र

६२, ६३ और ६४ वें सूत्र के ये सामान्य निषेध हैं सस् (सः) (वुह) और एषस् (एषः) (यिह) सर्वनाम तद् और एतद् का ए० व० पु० १ वि० (२२० और २२३ वां सूत्र देखो) सो प्रत्येक कठोर या कोमल व्यञ्जन के पहले अपने पिछले स् को गिरादेते हैं जैसे स करोति (वुह करताहै) स गच्छति (वुह जाताहै) एष पचति (यिह पकाताहै) परन्तु ६४ वें सूत्र की १ ली शाखा ६६ वां सूत्र और ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा का विचार रखना पड़ताहै जैसे सोऽपि (वुह भी) स एषः (वुह यिह) कभी२ परन्तु केवल पादपूर्ण अर्थात् पद को पूर्ण करने में स पीछे आनेवाले स्वर से मिलजाताहै जैसे सैष. पलटे स एष के

पद्य में स्यस् (स्यः) (वुह) त्यद् से १ ली वि० पु० इच्छानुसार इसी सूत्र का अनुगामी होता है (पा० ६, १,१३३)

जिस कारण से स् अन्त स् को गिरादेताहै सो यिह जान पड़ताहै कि यिह अन्त सर्वनाम स से निकला है

६८ वां सूत्र

जो स् संज्ञाओं और क्रियाओं की वर्त्तनियों के अन्त में आताहै उस से ये ऊपरवाले प्रकार बहुत लगतेहैं परन्तु ये उन संज्ञाओं और विशेषणों से भी बहुत लगते हैं जिनके अपूर्णपद अन्त में अस् इस् और उस् रखतेहैं जैसे ६५ वें सूत्र से चक्षुस् ईक्षते होताहै चक्षुरीक्षते (आंख देखती है) और चक्षुस् + भिः = चक्षुर्भिः (आंखों से) ऐसे ही ६४ वें सूत्र के अनुसार मनस् जानाति होताहै मनो जानाति (मन जानताहै) और मनस् + भिः = मनोभिः (मनों से)

अस् इस् और उस् के निषेध

६९ वां सूत्र

अस् जब किसी मिश्रित शब्द के पहले अंग के अन्त में आताहै तब कृत् क और कम् के निर्गुणों के पहले और कंस कुम्भ पात्र कुशा कर्णी के पहले स् को

बना रखता है (पा० ८, ३, ४६) जैसे तेजस्कर (तेज करनेवाला) अयस्कार (लु हार) नमस्कार (वन्दना) तिरस्कार × (अनादर) पयस्काम (दूध चाहनेवाला) दूसरे मिश्रित शब्दों में भी विह स् बनारहता है विशेष करके जब दूसरा अंग आदि में क् वा प् रखता है जैसे दिवस्पति (दिन का स्वामी) वाचस्पति (बोली का स्वामी) ऐसेही भास्कर (सूर्य्य) ऐसेही तद्धित प्रत्यय वत् विन् और वल के पहले जैसे तेजस्वत् तेजस्विन् (तेजवाला)

टीका

× तिरस्कृ के रूपों में स् का रखना इच्छानुसार समझाजाताहै (पा० ८, ३, ४२) जैसे तिरस्कर्तृ वा तिरःकर्तृ

१ ली शाखा

जो शब्द अन्त में इस् वा उस् रखते हैं जैसे हविस् सर्पिस् धनुस् इत्यादि सो और प्रत्यय निस् वहिस् आविस् दुस् प्रादुस् जब क् ख् प् फ् आदि में रखनेवाले शब्दों के साथ मिश्रित होते हैं तब अपने पिछले स् को ष् से पलटते हैं (पा० ८, ३, ४१, ४५) जैसे हविष्कृत् (हवन करनेवाला) सर्पिष्पान (घी पीनेवाला) धनुष्कार (धनु बनानेवाला) निष्कृत (हटायाहुआ) निष्फल (फल रहित) वहिष्कृत (बाहिर कियाहुआ) आविष्कृत (प्रत्यक्ष कियाहुआ) दुष्पान (कठिनता से पियाजानेवाला) प्रादुष्कृत (प्रत्यक्ष कियाहुआ)

२ री शाखा

जो नाम अन्त में इस् वा उस् रखते हैं सो तद्धित प्रत्यय मत् वत् विन् वल के पहले अपने पिछले स् को ७० वें सूत्र के अनुसार ष् से पलटते हैं जैसे अर्चिष्मत् ज्योतिष्मत् (चमकवाला) धनुष्मत् (धनुवाला)

३ री शाखा

ऐसेही तकारादि तद्धित प्रत्यय जैसे त्व तम तर तय इत्यादि के पहले (८० वां सूत्र देखो) इस् और उस् का पिछला स् ष् से पलटाजाताहै परन्तु वह पहला त्

अग्निष्टोम पितृष्वम् दुःषम इत्यादि

८ वीं शाखा

जो मिश्रित सादृ मूल (सद) से बनते हैं उनमें पहला स् ष् होजाता है और द् किसी मूर्द्धन्य ट् ड् या ढ् से पलटजाता है (१८२ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

९ वीं शाखा

प्रत्यय सात् का स् नहीं पलटता है जैसे अग्निसात्कृ (आग से जलाना)

१० वीं शाखा

उपसर्ग निस् मूल तप के पहले आने से जो दुहरा काम दिखायाजाताहै तो निस् ष् नहीं होता जैसे निस्तप (स्वर्ण इत्यादि को बारंबार पिघलाना) (पा० ८, ३, १०२) नहीं तो निष्टप होताहै

पिछले र् की उलटापलटी

७१ वां सूत्र

जो शब्द अन्त में र् रखते हैं सो संधि के लिये जानना चाहिये कि अन्त में स् रखने हैं बहुतसी अवस्थाएं जिन में पिछले र् की उलटापलटी पिछले स् की उलटापलटी से मिलती नहीं हैं सो आगे ऐसी — रेखा से जान पड़ेंगी

१ ली शाखा

जैसे ६३ वें सूत्र से प्रातर् काल होताहै प्रातःकाल (सवेरा) अन्तर् पुर होताहै अन्तःपुर (स्त्रियों के रहने का स्थान) प्रातर् ग्रास होताहै प्रातःग्रास (सवेरे का खाना)

२ री शाखा

परन्तु जो र् किसी अपूर्णपद का पिछला होताहै या मूलसम्बन्धी वर्ण होताहै सो प्रत्येक शीर्षकों के पहले पलटा नहीं जाता जैसे चर् + सु = चर्षु (७० वां सूत्र देखो) गिर् + भिः = गिर्भिः चतुर् + षु = चतुर्षु (२०१ वां और ६२ वें सूत्र

कि ? री शाखा देखो) और कभी॰ मिश्रितों में कठोर प के पहले जैसे गोपति (गोली का स्वामी) जो गीःपति और गीष्पति भी लिखा जाता है स्वर्पति (आकाश का स्वामी) जो स्वःपति भी लिखा जाता है

३ री शाखा

६२ वें सूत्र के अनुसार भातर् तु होजाता है भातस्तु और भातर् च होजाता है भातश्च

जो र् शब्दों के बीच में आता है तो संस्कृत में न् के पहले बना रहता है जैसे कर्तृम् इत्यादि

४ थी शाखा

परन्तु ६४ और ६६ वें सूत्र के विरुद्ध पिछला अर् अस् के प्रतिकूल किसी को मल व्यञ्जन या स्वर के पहले पलटा नहीं जाता जैसे भातर् आग होताहै भाता॰ग (कलेवा) पुनर् याति होता है पुनर्याति (वुह फिर जाता है) पुनर् उक्त होताहै पुनरुक्त (फिर कहाहुआ) निर् उक्त (पहले निस् उक्त के ६५ वें सूत्र केअनुसार).

५ वीं शाखा

६५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार पिछला अर् पहले र् के पहले अपने र् को गिरादेता है और पहले अ को दीर्घ करदेता है जैसे पुनर् रक्षति होता है पुना रक्षति (वुह फिर रक्षा करताहै) इसी अनुमान से निर् रथ होसकताहै नीरथ (रथों को नाम)

६ टी शाखा

६१ वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार चतुर् + तय = चतुष्टय (पूरे चार अथवा चार)

७२ वां सूत्र

ऐसे शब्दों को जैसे निर् दुर् है आदि में सकारान्त समझना चाहिये अर्थात्

निस् दुस् (६१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

७३ वां सूत्र

जो र् किसी स्वर के पीछे आताहै सो उस व्यञ्जन को जो निकटही पीछे आताहै इच्छानुसार दुहरा करसकताहै जैसे निर्द्दय लिखाजासकताहै निर्दय वा निर्द्दय (दयारहित) परन्तु ह् और प्रत्येक स्वरान्त सोटीयुक्त को छोड़के जैसे वर्षु में (७१ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) परन्तु कर्प्पन को कर्प्पेन लिखमकते हैं स्वासयुक्त वर्ण को दुहराने में पहले का स्वास छोड़दियाजाताहै जैसे अर्द्ध वा अर्ध के दूसरे कहतेहैं कि किसी पीछे पास आनेवाले व्यञ्जन को दुहराने में ऐसाही प्रभाव रखताहै जैसे ब्रह्मन् को ब्रह्ममन् लिखसकतेहैं परन्तु संक्षिप्तता के लिये उचित है कि दोनों अवस्था में दुहरावट न की जावे और सदा निर्दय और ब्रह्मन् लिखे जावें

१ ली शाखा

जब व्यञ्जन व्यञ्जन के पास आतेहैं तब उनका दुहराना संस्कृत में सदा होसकताहै परन्तु प्रचलित नहीं है जैसे दो वा अधिक व्यञ्जनों की मिलावट में जो उनके पहले कोई स्वर आताहै और विशेषकरके जो उस मिश्रित का पिछला वर्ण कोई अद्धस्वर होताहै तो पहला वर्ण जो र् वा ह् नहीं होताहै तो दुहरायाजाताहै (पा० ८, ४, ४७) जैसे पुत्र पत्त्र के सुत्र के मद्धत्र पत्त्र मत्त्वत्र के इत्याक्कर्ण पढ़के इत्याकर्ण के परन्तु बहुत छोटा रूप लिखना अच्छा जानते हैं

२ री शाखा

फिर किसी वर्ग के पहले चार वर्णों में से प्रत्येक वर्ण अपने वर्ग के अनुनासिक के पहले दुहराया जासकताहै और जब ऐसी दुहरावट होती है तब बिचला व्यञ्जन पहले का यम कहलाताहै जैसे क्ष्निति में (पा० १, १, ५) दूसरा क् यम अर्थात् जोड़ा है

३ री शाखा

जानना चाहिये कि पाणिनि के ८, ४, ६५ से किसी व्यञ्जन के पीछे दो सजाती व्यञ्जनों में से एक को छोड़ना इच्छानुसार है इसलिये कीर्त्ति को कीर्ति लिखसकते हैं

हम नीचे लिखेहुए पत्र में व्यञ्जनों की सामान्य उलटापलटी एक साथ दिखाईजाती है पहले वर्णों के ऊपरवाले कोठों में स्वासयुक्त व्यञ्जन नहीं लिखे हैं क्योंकि यह एक सामान्य सूत्र है कि जो कुछ उलटापलटी किसी व्यञ्जन के पहले होतीहै सोही उसके स्वासयुक्त के पहले होतीहै

३ रा अध्याय

संस्कृत के मूल और संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट

...कृत नामों की जिनको नामन् या संज्ञा कहते हैं वर्तनी बताने के पहले मूलों ... अपूर्णपद की बनावट का मुख्य प्रकार बताना अवश्य है

७४ वां सूत्र

संस्कृत नाम चाहे द्रव्यवाचक हो चाहे गुणवाचक चाहे सर्वनाम चाहे ...क कारकों की अवस्था में आने के पहले दो पृथक अवस्था रखता है पह... मूल है जिसको धातु कहते हैं दूसरी अवस्था अपूर्णपद है जिसको ... अंग । कहते हैं जो सीधे मूल से अथवा मूल के सुधारे से बहुधा कोई ... से बनता है और यह विभक्तियों के अन्त लगाने से विभक्त्यन्त अर्था... ...पद होजाता है ।

१ ली टीका

...४. ११ के अनुसार अपूर्णपद को अंग भव कहते हैं जब उसके ...प या अन्त बढ़ाते हैं और प्रातिपदिक उसका एक सामान्य नाम है ... से कुछ प्रयोजन नहीं रखता

२ री टीका

...द अर्थात् पूर्णपद बनाना वा अगाडिन की रीति से दिखायाजाता

जैसे मूल (धातु) + प्रत्यय = अपूर्णपद (प्रातिपदिक) अर्थात् मूल वा धातु प्रत्यय से मिलके अपूर्णपद वा प्रातिपदिक होताहै फिर अपूर्णपद (प्रातिपदिक) विभक्तिसम्बन्धी अन्त (विभक्ति) = पूर्णपद (पद) अर्थात् अपूर्णपद वा प्रातिपदिक विभक्तिसम्बन्धी अन्त वा विभक्ति से मिलके पूर्णपद वा पद होता है जैसे शब्द जन् + अ + : = जनः (पुरुष) में जन् मूल है अ प्रत्यय है और विसर्ग पहली विभक्ति का पुल्लिङ्गवाला अन्त है

१ ली शाखा

संस्कृत में मूल का जानना ऐसा अवश्य है कि आगे बढ़ने से पहले इसको अच्छी रीति से समझनाचाहिए

मूल वा धातु संस्कृत भाषा के लिए ऐसेहैं जैसे रसायण विद्या के लिए तत्व अर्थात् मूल प्रत्येक शब्द का वुह आद्यभाग है जो व्याकरणसम्बन्धी पृथकता के योग्य न होने से उसमें कुछ बढ़ावा वा सुधारा होने से पहले उसका आद्य अर्थ रखनेवाला समझाजाता है जब किसी मूल में कुछ अक्षर वा शब्दभाग बढ़ते हैं वा कुछ भीतरी उलटापलटी होती है तब वुह अपूर्णपद वा प्रातिपदिक बनता है फिर जब इस अपूर्णपद में कुछ अक्षर वा शब्दभाग बढ़ते हैं जो विभक्ति वा विभक्तिसम्बन्धी अन्त कहलातेहैं चाहे वे संज्ञासम्बन्धी हों चाहे क्रियासम्बन्धी जैसे दान और ददा दो प्रातिपदिक हैं पहला संज्ञासम्बन्धी और दूसरा क्रियासम्बन्धी मूल दा से बने हुए परन्तु दान और ददा जबतक विभक्तिसम्बन्धी वा वर्तनीसम्बन्धी अन्त नहीं पाते तबतक पूर्णपद वा पद नहीं होसकते जैसे दान + म् = दानम् (देना) ददा + ति = ददाति (वुह देता है)

२ री शाखा

संस्कृत में अनुमान से दो सहस्र मूल हैं और इन में से प्रत्येक कुछ अभिप्राय अर्थ देते हैं सो अपनी भाषा में भाववाचक से बतासकते हैं जैसे अद् (खाना) परन्तु जानना चाहिए कि अद् से केवल खा का ज्ञान होताहै सो उसमें निश्चय

शब्दों में प्रथक२ सुधारे से प्रथक२ पायाजाताहै (७६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जो मूल बहुत आते हैं सो मुख्य अर्थ समेत भावबाचक का चिन्ह ना छोड़के आगे लिखेजाते हैं

मूल वा धातु का यंत्र

मूल	अर्थ	मूल	अर्थ	मूल	अर्थ	मूल	अर्थ
अद्	खा	चिन्त्	सोच	नन्द्	प्रसन्नकर	भृ	सह
अर्च्	पूज	छद्	ढांक	नश्	नष्ट हो	मद्	मत्त हो
अस्	हो	जन्	उत्पन्नकर	निन्द्	निन्दाकर	मन्	सोच
आप्	पा	जि	जीत्	नी	मार्गदिखा	मा	नाप
इ	जा	जीव्	जी	पच्	पका	मुच्	छोड़
इष्	चाह	ज्ञा	जान	पत्	गिर	मुह्	मूर्ख हो
कम्	प्यारकर	तन्	फैला	पद्	जा	मृ	मर
कृ	कर	तप्	तप	पा	पी	यज्	यज्ञकर
कृष्	खैंच	तुद्	मार	पा	बचा	यत्	श्रमकर
क्रम्	जा	त्यज्	छोड़	पू	पवित्रकर	यम्	बच
क्री	मोल ले	दह्	जला	प्रछ्	पूछ	या	जा
क्रुध्	क्रोधितहो	दा	दे	बन्ध्	बांध	यु	मिल
क्षि	बिगाड़	दिव्	चमक	बुध्	जान	युज्	मिल जा
क्षिप्	डाल	दिप्	बना	ब्रू	बोल	युध्	लड़
ख्या	कह	दीप्	चमक	भक्ष	खा	रह्	छोड़
गम्	जा	दृश्	देख	भा	चमक	रुह्	उग बढ़
ग्रह्	पकड़	द्युत्	चमक	भिद्	फाड़	लभ्	पा
घ्रा	सूंघ	द्रु	दौड़	भी	डर	वच्	बोल
चर्	जा	द्विष्	द्वेषकर	भुज्	भोग	वद्	बोल
चि	जोड़	धा	रख	भू	हो	वस्	रह

वह्	सह उठा	शुभ्	चमक	स्तु	सराह	हन्	मार
विद्	जान	श्रु	सुन	स्था	खड़ाहो	हस्	हंस
विश्	घुस	सह्	उठा	स्ना	नहा	हा	छोड़
वृत्	हो	साध्	पूराकर वा हो	स्पृश्	छू	हृ	पकड़
शंस्	सराह	सृ	जा	स्मि	मुस्करा	हृष्	प्रसन्नहो
शक्	सक	सृज्	उत्पन्नकर	स्मृ	स्मर्णकर	ह्लाद्	प्रसन्नहो
शी	सो	सृप्	रींग	स्वप्	सो	ह्वे	बुला
शुच्	शोचकर	स्कन्द्	जा	स्वृ	शब्दकर		

७५ वां सूत्र

जो मूल ऊपर लिखेहैं उनको एक दृष्टि देखनेसे यिह जानपड़ताहै कि सब ए शब्दतावाले हैं परन्तु और बातों में वे पृथकता रखते हैं इन में से कोई केवल ए स्वर रखते हैं कोई एक वा दो व्यञ्जन आदि में रखते हैं और कोई एक स्वर अ न्त में रखते हैं परन्तु कोई अ वा आ अन्त में नहीं रखते और कोई एक स्व आदि में रखते हैं और एक वा दो व्यञ्जन अन्त में रखते हैं और कोई एक वा द व्यञ्जन आदि में और अन्त में रखते हैं और एक स्वर मध्य में रखते हैं ऐस कि कोई मूल कभी२ केवल एक वर्ण रखता है जैसे इ [जा] में और कभी चा वा अधिक वर्ण रखता है जैसे स्कन्द् (चल) में जो मूल अमिश्रित वर्ण रखते हैं जैसे कृ भू इ जि इष् इत्यादि सो अनिसृत अर्थात् आद्य जान पड़ते हैं और जो मिश्रित व्यञ्जन रखते हैं जैसे स्कन्द् इत्यादि सो अनुमान से अधिक अनिसृत रू पों से बनेहुए जानपड़ते हैं + जो मूर्द्धन्य वर्ण रखते हैं जैसे लुड् (लुढ़क) सो आद्य भाषाओं से लिएहुए हैं

टीका

+ श्च्युत् (गिर वा गिरा) जिसको श्चुत् भी लिखते हैं तीन व्यञ्जन आदि में रखता है सो मूल च्यु वा च्युत् में सीटीयुक्त और दन्ती मिलाके बनाया होगा

(५१. ५५, और ८४ वें सूत्र का ३ रा प्रत्यय देखो)

१ ली शाखा

थोड़े बहुत शब्दभाग रखनेवाले शब्द मूल समझे जाते हैं सो जान पड़ता है कि कोई मुख्य उपसर्ग किसी मुख्य एक भागवाले मूल में लगाते रहने से एक शब्द बन-गए हैं जैसे संग्राम् (युद्ध कर) अवधीर् (द्वेषकर) में उपसर्ग सम् और अव मू-ल के साथ मिलाए हैं थोड़े दूसरे बहुत शब्दभाग वाले-मूल लगातार दुहराते रहने का फल जानपड़ते हैं जैसे दरिद्रा (दरिद्री हो) जागृ (जाग) चकास् (चमक) वेवी (जा हो) और थोड़े मूल नामों से निकले हैं जैसे कुमार् (खेल) कुमार (लड़का) से ये पिछले बहुतसे दसवें गण के हैं और नामसम्बन्धी वा नामवाचक कहलाते हैं (२८८ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

२ री शाखा

न् और म् जब किसी मूल के आदि में आते हैं तब ५८ वें और ७० वें सूत्र के अनुसार ण् और ष् से पलटने के योग्य होते हैं इसलिए व्याकरणी ण् और ष् से लिखते हैं क्योंकि ये वह स्वरूप लिखते हैं जो प्रत्येक अवस्था में आसकताहै (७० वें सूत्र की ३ री और ४ थी शाखा देखो) परन्तु इस व्याकरण में ऐसे शब्द न् और म् से ही लिखेजाएंगे

३ री शाखा

व्याकरणियों की मति के अनुसार मूल दो भांति के हैं उदात्त और अनुदात्त (इस व्याकरण के अन्त में इनके का व्याख्यान देखो) उदात्त मूल कई रूपों में अधिक इ का आना चाहते हैं (३९१ वां सूत्र देखो) अनुदात्त मूल इस इ का आना नहीं चाहते (पा० ७. २. १०) व्याकरणी मूलों के आदि में वा अन्त में कई संकेतिक वर्ण वा शब्दभाग बढ़ाते हैं सो वर्तनियों की प्रकृति दिखाते हैं और २. अनुबन्ध वा इत् कहलाते हैं जो अनुबन्ध होके आने वाले स्वर पर उदात्त शब्द का रखते हैं सो चिह्न दिखाते हैं कि ये क्रियाएं परस्मैपद के अन्त ग्रहण करेंगी।

७२३ वां सूत्र देखो) ऐसी क्रियाओं को उदात्तेतः कहते हैं और अनुदात्त यिह दिखाते हैं कि ये क्रियाएं केवल आत्मनेपद के अन्त ग्रहण करेंगी ऐसी क्रियाओं को अनुदात्तेत कहते हैं और स्वरित यिह दिखाते हैं कि ये क्रियाएं दोनों पद में आती हैं ऐसी क्रियाओं को स्वरितेत कहते हैं (पा० १, ३, १२, ७२, ७८)

यिह आगे पाणिनि के अनुबन्धों का सूचीपत्र है जिस में वोपदेव ने दो एक अनुबन्ध और मिलाये हैं

आ	यिह दिखाताहै कि जो भूतगुणक्रियासम्बन्धी प्रत्यय (५३० और ५५३ वां सूत्र देखो) निष्ठा कहलाते हैं सो अधिक इ का आना नहीं चाहते (पा० ७, २, १६)
इ	यिह दिखाता है कि सब रूपों में मूल के पिछले वर्ण के पहले एक अनुनासिक बढ़ता है जैसे निद् इ यिह दिखाता है कि इसका वर्तमानकाल निन्दामि इत्यादि होगा (पा० ७, १, ५८,)
इर्	यिह दिखाता है कि अनियतभूत अर्थात् तृतीयभूत दो प्रकार से बनाहै अर्थात् दो रूप रखता है पहले प्रकार से (४१८ वां सूत्र देखो) अथवा दूसरे प्रकार से (४३५ वां सूत्र देखो) जैसे युप् इर् यिह दिखाताहै कि इस का अनियतभूत होता है अयोपिषम् इत्यादि अथवा अयुपम् इत्यादि और दृश् इर् यिह दिखाता है कि इसका अनियतभूत होता है अद्राक्षम् अथवा अदर्शम्
ई	यिह दिखाताहै कि भूतगुणक्रिया (५३० वां और ५५३ वां सूत्र देखो) अधिक इ बिना बनताहै (पा० ७, २, १४)
उ	यिह दिखाताहै कि अवर्तनीय गुणक्रिया (५५५ वां सूत्र देखो) इ को इच्छानुसार छोड़ती है और भूतगुणक्रिया इसको सदा छोड़देती है (पा० ७, २, ५६, १५)
ऊ	यिह दिखाताहै कि सामान्य रूपों में इ इच्छानुसार बढ़ायाजाताहै (पा० ७, २, ४४)

	७, २, १५,)
ऋ	यिह पिखाताहै कि मेरणार्थक के अनिय हूस्व नहीं किया जाताहै (पा० ७, ४, २
ऋ	यिह दिखाताहै कि मेरणार्थक के अनिय सकताहै
ऌ	यिह दिखाताहै कि अनियतभूत परस्मैप करताहै (४३५ वां सूत्र देखो) (पा० ३
ए	यिह दिखाताहै कि परस्मैपद में अनिय ७, २, ५)
ओ	यिह दिखाताहै कि कर्मणिवाच्य भूतगु नहीं है (पा० ८, २, ४५)
औ	यिह दिखाताहै कि यिह मूल अनुदा आना नहीं चाहताहै
ङ	यिह दिखाता है कि यिह मूल आत्मने
ञ	यिह दिखाताहै कि यिह मूल परस्मै अ (पा० १, ३, ७२)
ञि	यिह दिखाताहै कि भूतगुणक्रिया वर्तमान ३, २, १८७)

नाईजाती है जैसे हृ क चिह्न दिखाता है कि कनुम मूल कृ से बनताहै (पा० ३, ३, ८८.)

मू चिह्न दिखाताहै कि प्रेरणार्थक बनाने में ह्रस्व अ दीर्घ होजायगा और कर्मणिवाच्य वाले अनियतमूत के एक वचन वाले अन्यपुरुष में जिसको चिण् कहतेहैं (४७५ वां सूत्र देखो) और दुहरावटवाली अवर्णनीय गुणक्रिया में जिसको णमुल् कहतेहैं (५६७ वां सूत्र देखो) वुह स्वर इच्छानुसार दीर्घ वा ह्रस्व होसकता है और अकारान्त कर्तृवाचक नाम (५८० वां सूत्र देखो) मूल सम्बन्धी ह्रस्व स्वर रखनेवाले प्रेरणार्थक के अगुणपद से बनसकते हैं (पा० ६, ४, ९२, ९३, ९४)

षू चिह्न दिखाताहै कि संज्ञा मूल में अ प्रत्यय लगाने से बनसकती है (८० वें सूत्र का पहला प्रत्यय देखो) (पा० ३, ३, १०४)

७६ वां सूत्र

संस्कृत में प्रत्येक शब्द चाहे संज्ञा हो चाहे विशेषण चाहे क्रिया चाहे क्रियाविशेषण अपने मूल के साथ सन्तान का सा सम्बन्ध रखताहै इसलिये सीखनेवाले को चाहिये कि जो बहुत आनेवाले मूल ७४ वें सूत्र की २ री शाखा में बताए हैं उन को अपने चित्त पर चढ़ाले ऐसा करने से उसको बहुत से शब्द आजावेंगे और मूलसम्बन्धी अर्थ पर ध्यान करने से उन सब का अर्थ समझ सकेगा

१ ली शाखा

जैसे ऊपर लिखेहुए मूलों से एक मूल बुध् (जान) लिया जावे तो इससे पहले कई अमिश्रित संज्ञा बनती हैं दूसरे कई अमिश्रित विशेषण तीसरे अमिश्रित क्रिया जैसे बोध वा बोधन (ज्ञान) बुद्धि (समझ) बोधक (समझानेवाला) बौध (बुध का मत रखनेवाला) बुध (समझदार) बुद्धिमत् (समझ का वा समझवाला) और क्रिया जैसे बोधति (वुह समझताहै) बुध्यते (वुह समझाजाताहै) बोधयति (

वृह समझाताहै) बुभुत्सते या बुभोधिषति (वृह समझना चाहताहै) पोबुध्यते (वृह अच्छा समझताहै) और जो अर्थ मूल का है सो उसके साथ उपसर्ग लगाने से बहुत फैलसकताहै जैसे प्रबोध (सावधानी) प्रबुध्यते (वृह जागताहै) इत्यादि

२ री शाखा

ऐसे ही मूल मन् (मान वा सोच) से बहुत से निमूल शब्द बनते हैं जिन में मूल सम्बन्धी अर्थ पायाजाता है जैसे मत (मन्+त) (विचाराहुआ) मति (मन्+ति) (समझ) मतिमत् (समझवाला) मनन (विचारवान) मनस् वा मनस (मन) मनस्विन् (बुद्धिवान) मना (पूजा) मनाक् (लीन) मनीषा (भावना) मनीषित (चाहाहुआ) मनीषिन् (बुद्धिवान) मनु (मनुज) मन्तु (मति देनेवाला) मन्त्रि (सोचनेवाला) मंत्र (मत्र) मंत्रिन् (मति देनेवाला) मंत्रित्व (मंत्री पना) मन्मन् (इच्छा) मन्यु (क्रोध) मान (अभिमान) मानन (आदर करनेवाला) मानव (मनुष्य का इत्यादि) मानस (मनसम्बन्धी) मानित (मानाहुआ) मानिन् (अभिमानी) मानुष (मनुषसम्बन्धी) मीमांसा (इच्छार्थक अपूर्णपद से) (ठहराव) मीमांस्य (ठहरायाजाने के योग्य)

ऐसेही उपसर्ग अनु अभि अव नि प्रति वि सम् इत्यादि मूल के पहले बढ़ाने से इसका अर्थ फैलसकताहै और बहुतसे निमूल शब्द बनसकते हैं जैसे अनुमन् (मान) से अनुमत (मानाहुआ) अनुमति (स्वीकारता) अनुमनन (स्वीकार करता हुआ) अवमन् (द्वेषकर) से अवमत (द्वेष कियाहुआ) अवमति (अवमान) अवमान और अवमानन (अनादर) अवमानिन् (अनादर करनेवाला) अवमानिता (अनादर)

७७ वां सूत्र

७३ वें सूत्र में बतायाहै कि प्रत्येक अपूर्णपद धातु और कर्त्ता की मध्य अवस्था है अर्थात् नाम का अपूर्ण स्वरूप है सो एक प्रकार का भंडार है जिस से प्रथमादि आठ विभक्ति बनती हैं जैसे बोध बोधन तत् पचत् भवत् अपूर्णपद हैं जिनके तले

कोग में पहली विभक्तिवाले बोधम् वा बोध बोधनम् स र् वा सः पंच भवान् मिलसकते हैं

यथार्थ में अपूर्णपद व्याकरणसम्बन्धी बनावट वृथा नहीं है यिह नाम का वुह स्वरूप है जो यथोचित सुधारे पाने से मिश्रित शब्दों के बनाने में काम आताहै औ र इसलिये इसको बहुत काम का समझना चाहिये और संस्कृत अमिश्रित शब्द इ तने नहीं आते हैं जितने मिश्रित आते हैं इसलिये कहसकते हैं कि अपूर्णपद वुह स्वरूप है जिसमें नाम बहुत आते हैं

७८ वां सूत्र

पूर्वोक्त वर्णन से जानपड़ता है कि संस्कृत में संज्ञाओं के लिये दो बात अवश्य हैं पहली यिह कि मूल से अपूर्णपद का बनाना और दूसरी यिह कि अपूर्णपद से विभक्तियों के अन्त लगाके पद वा पूर्णपद का बनाना अर्थात् उसको वर्त्तनी सम्बन्धी अन्तों के साथ लाना

१ ली शाखा

यथार्थ में यिह वर्णन संज्ञा और क्रिया दोनों में लगताहै जैसे क्रियाओं में (२२८ वां सूत्र देखो) मूल से क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद का बनाना क्रियाओं की व र्त्तनी से पहले आताहै वैसे ही संज्ञाओं में मूल से संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद का ब नाना संज्ञाओं की वर्त्तनी से पहले आता है

२ री शाखा

परन्तु संज्ञाएं चाहे द्रव्यवाचक हों चाहे गुणवाचक अपने अपूर्णपद के पिछले वर्णों के अनुसार पृथक२ वर्त्तनी रखती हैं न अपने कर्त्ता के पिछले वर्णों के अनु सार

३ री शाखा

संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद वा पिछला शब्दभाग ङ ञ् और य् को छोड़के वर्णमा ला का प्रत्येक वर्ण अन्त में रखसकताहै

जो अपूर्णपद अन्त में स्वर रखते हैं सरलता के लिये उनके चार भाग किये हैं

प्रत्येक भाग में संज्ञाओं के तीन लिङ्ग हैं पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग नपुंसकलिङ्ग पहले भाग वाले अन्तनेम्य अ आ अ ई रखते हैं और दूसरे भागवाले अन्त में इ रखते हैं ती सरे भागवाले अन्त में उ रखते हैं और चौथे भागवाले अन्त में ऋ रखते हैं

जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद अन्त में व्यञ्जन रखते हैं उनके भी सरलता के लिये चार भाग किये हैं पहले दूसरे और तीसरे भागवाले यथाक्रम अन्त में त् वा द् न् और स् रखते हैं (४३ वां सूत्र देखो) और चौथे भागवाले अन्त में दूसरे सब व्यञ्जन रखते हैं

प्रथम और द्वितीयपदवाले निसृत

७९ वां सूत्र

जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद अर्थात् प्रातिपदिक प्रत्ययों के लगने से बनते हैं सो दो प्रकार के हैं पहले प्रथमपदवाले सो मूल से वा उसके सुधारेहुए रूप से कृत् प्रत्यय के लगाने से बनते हैं इसलिये कृदन्त अर्थात् कृत् प्रत्यय अन्त में रखनेवा ले कहे जाते हैं शब्द कृत् प्रथमपदवाले निसृत का एक दृष्टान्त है इस नाम में वे गुण क्रियाएं भी आती हैं जो अनीय और तव्य और य के साथ बनाई जाती हैं इन तीनों को एलिस साहेब कृत्य प्रत्यय कहते हैं इनमें वे शब्द भी आते हैं जो उणादि १ प्रत्ययों से बनाये जाते हैं दूसरे पदवाले निसृत पहले पदवाले निसृतों के अपूर्ण पदों से तद्धित प्रत्ययों के लगाने से बनाये जाते हैं और इसलिये दूसरे पदवाले कहे जाते हैं

टीका

१ उणादिप्रत्ययों का एक सूचीपत्र है वे आदि में उण् रखते हैं उण् का ण् सं केतिक वर्ण है कारु वायु इत्यादि शब्द पिह प्रत्यय लगने से बने हैं और इसलिये पहले सूत्र में पिह नाम दियागया है उणादि निसृतों का अर्थ बहुधा मूल के अर्थ से नहीं निकलता है और जब मिलता है तब यथाविधि कोई मुख्य अर्थ देता है जै से कारु से करनेवाले का सामान्य अर्थ जानपड़ता है परन्तु पिह शिल्पकार का मु

ऊत्र अर्थ देता है

वर्णन

यिह अवश्य नहीं है कि पढ़नेवाला इस आगे आनेवाले सूचीपत्र के सब प्रत्ययों को नुगाम करे परन्तु यिह चाहिये कि आठों भागवाले अपूर्णपदों के पिछले वर्ण ध्यान में रखे

संज्ञाओं के अपूर्णपदों की बनावट

८० वां सूत्र

पहले भागवाले अपूर्णपद जो अन्त में पुलिङ्ग और नपुन्तकलिङ्ग के लिये अ रखते हैं और स्त्रीलिङ्ग के लिये आ और ई

१ ले प्रकार के वा प्रथम पद वाले

पहला वा प्रथम पद वाले निपूत अपूर्णपद मूलों से इन नीचे लिखेहुए कृत् प्रत्ययों के लगने से बनायेजाते हैं

वर्णन

देखो क्रियाविशेषणसम्बन्धी प्रत्ययों का एक सूचीपत्र ७१८ वें सूत्र से ७२५ वें सूत्र तक लिखा है और गुणक्रियासम्बन्धी प्रत्यय ५२४ वें सूत्र से ५८२ वें सूत्र तक अच्छी रीति से बताये जावेंगे स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों को उनके अनुरूप पुलिङ्गों के नीचे देखना चाहिये जो दृष्टान्त उनके पीछे लिखे जावेंगे उनमें जो अपने निमूलों से मिले होंगे सो मूलों का अर्थ नहीं लिखाजावेगा जैसे भेद (भाग) भिद् से निकलाहुआ कहते हैं इससे समझ में आजाता है कि मूल भिद् का अर्थ (भाग करना) है कहीं२ मूलों का अर्थ अनिश्चित होने से छोड़दिया है

१ ला प्रत्यय

अ पहले अवस्थासूचक नाम बनाताहै सो बहुधा पुलिङ्ग होते हैं मूलसम्बन्धी अ को वृद्धि चाहताहै और थोड़े निषेधों के साथ जिस स्वर को गुण होसकताहै उसको गुण चाहताहै पिछला तालुस्थानी च् वा ज् अपने अनुरूप कंठस्थानी क् वा ग् + से पलटजाताहै (२० वें सूत्र की ३ री शाखा और २४ वां और २५ वां सूत्र देखो) जैसे भेद पु० (भाग) भिद् से वेद पु० (जानना) विद् से भव और भाव पु० (होना) भू से भर और भार पु० (बोझ) भृ (उठा) से बोध पु० (जानना) बुध् से जय पु० (जीत) जि से पाक पु० (पकाना) पच् से योग पु० (जोड़) और युग न० (जुआ) युज् से याग पु० (यज्ञ) यज् से

टीका

+ पच और वर्ज (पच् और वृज से) इत्यादि बहुधा मिश्रित शब्द के अन्त में आतेहैं सो अपने तालुस्थानी को नहीं छोड़ते जैसे किम्-पच रस-वर्ज इत्यादि

दूसरे द्रव्यवाचक और गुणवाचक और विशेष करके कर्तृवाचक नाम (जिनके स्त्रीलिङ्ग आ और कभी ई से बनते हैं) जैसे प्लव (पैरनेवाला) प्लु से सर्प (रींगनेवाला) सृप् से देव (देवता) दिव् (चमक) से चर (स्त्रीलिङ्ग ई से बनता है) (जानेवाला) चर् से जन (पुरुष) जन् (उत्पन्न कर) से शुभ (सुन्दर) शुभ् से कर (करनेवाला) कृ से जय (जीतनेवाला) जि से दम (दबानेवाला) दम् से कर चर जय प्लव जैसे शब्द बहुधा ऐसे मिश्रितों के अन्त में आते हैं जैसे भयङ्कर या भयकर (डरानेवाला) (स्त्रीलिङ्ग ई से बनताहै) ५८० वां सूत्र देखो) अरिन्दम (शत्रु को दबानेवाला) जब सु (अच्छा) और दुस् (बुरा) ऐसे शब्दों के पीछे आते हैं तब ये कर्मणिवाच्य का अर्थ देते हैं जैसे सुकर (अच्छा कियाजानेवाला) इत्यादि (इनके स्त्रीलिङ्ग ई से बनते हैं)

आ बहुधा मूलसम्बन्धी स्वर की उलटापलटी नहीं चाहता और स्त्रीलिङ्ग संज्ञाएं बनाताहै (पा० ३, १, १०३, १०५) जैसे भिदा (फाड़नेवाली) भिद् से

(भूख) क्षुध् से मुदा (प्रसन्नता) मुद् से,स्पृहा (इच्छा) स्पृह् से लेखा (लि
ट) लिख् से जरा (बुढ़ापा) जृ (बूढ़ाहो) से बहुधा इच्छार्थक के अपूर्णपद
गताहै (पा० ३, ३, १०२) जैसे पिपासा (प्यास) पा (पी) के इच्छार्थक
ौर कभी अधिकतार्थक के अपूर्णपद से लगताहै जैसे लोलूया (काटने की अ
ता) लू (काट) के अधिकतार्थक से

ई बहुत से स्त्रीलिङ्ग नाम बनाताहै बहुधा उन पुल्लिङ्गों का अनुरूप है जो अन्त
र

रखते हैं (१२३ वां सूत्र देखो) जैसे गोपी (गोप की स्त्री) (पा० ४, १
) देवी (देवी) नदी (सरिता) लक्ष्मी (कर्त्ता ईम् वा ईः) (लिपारन) सिंही (
नी) पुत्री (बेटी) बहुत से ऐसे आ और ई अन्त में रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग रूप
यों से नहीं बनते हैं क्योंकि पुल्लिङ्गों से निकलते हैं अथवा भिन्न प्रत्ययों से
ी हैं कोई शब्द जैसा इन्द्र (इन्द्र) अपना स्त्रीलिङ्ग ऐसा रखते हैं जैसा इन्द्रा-
(इन्द्र की स्त्री)

२ रा प्रत्यय

अक ६ छः नाम रखता है [कुन् वुन् ष्वुन् वुञ् ण्वुल् ण्वुच्] सो विशेषण
तनका स्त्रीलिङ्ग अका और इकी से बनताहै) और कर्तृवाचक नाम (५५२ वें
की २ री शाखा देखो) पिछले स्वर को और बहुधा बिचले अ को वृद्धि अ
सरे किसी स्वर को गुण चाहके बनाताहै जैसे तापक (तपनेवाला) तप् से का-
(करनेवाला) कृ से नायक (मुखिया) नी से नर्तक (नाचनेवाला) नृत् से
रक (स्त्रीलिङ्ग अका और इकी से बनते हैं) खन् से खनक (खोदनेवाला)
‌ से

वर्णन

देखो कर्तृवाचकों के स्त्रीलिङ्ग सदा इका लगने से बनते हैं जैसे कारिका नायिका

३ रा प्रत्यय

अन्न के लिये न्न देखो

४ था प्रत्यय

अन गी नाम रखता है (क्यु यपुन् युच युन् ल्यु ल्युन् ल्युट् ल्पुट् ट्युट्) यह

के बहुत से नपुन्सकलिङ्ग नाम बनाताहै, और मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहताहै जैसे नयन न० (आंख) नी (मार्ग दिखा) से दान न० (देना) दा (दे) से स्थान न० (ठौर) स्था (खड़ा हो) से दर्पण न० (मुख देखने का काच) दृप् (अभिमान कर) से चयन न० (जोड़) चि से वदन न० (मुख) वद् (बोल) से शयन न० (खाट) शी (लेट) से

दूसरे कर्तृवाचक नाम (५८२ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) और विशेषण बनाताहै (जिनके स्त्रीलिङ्ग अना और अनी से बनते हैं) जैसे नर्तन (नाचनेवाला) नृत् से शोभन (चमकनेवाला) शुभ् से

वर्णन

देखो इन कर्तृवाचकों का स्त्रीलिङ्ग अनी लगने से बनता है

५ वां प्रत्यय

अनीय कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया बनाता है (५७० वां सूत्र देखो) और मूलसम्बन्धी स्वर को जो गुण के योग्य होताहै तो गुण चाहता है जैसे चयनीय (जोड़ने के योग्य वा जोड़ाजानेवाला) चि (जोड़) से कहते हैं कि अनीय अन + य के पलटे आता है

६ ठा प्रत्यय

आ (१ ले प्रत्यय का ३ रा भाग देखो)

७ वां प्रत्यय

आक (स्त्रीलिङ्ग **आकी**) थोड़े विशेषण और कर्तृवाचक नाम बनाताहै जैसे जल्पाक पु॰ (बकनेवाला) जल्प् से भिक्षाक पु॰ (भिखारी) भिक्षाकी स्त्री॰ (भिखारन) भिक्ष् से

८ वां प्रत्यय

आन (जिनको शानच् चानश् शानन् आनन् कहते हैं) पहले आत्मनेपद वाली वर्तमान गुणक्रिया बनाताहै (५२६ वें सूत्र में २० वां प्रत्यय मात्र देखो) जैसे लिहान (चाटताहुआ) लिह् से शयान (सोताहुआ) शी से चिन्वान (जोड़ताहुआ) चि के वर्तमान अपूर्णपद चिनु से

दूसरे आत्मनेपदवाली पूर्णभूतगुणक्रिया बनाताहै (५५४ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) जैसे बुभुजान (वुह जो झुकाहै) भुज् (झुक) के पूर्णभूत के अपूर्णपद बुभुज् से ददृशान (वुह जिसने देखा है) दृश् के पूर्णभूत के अपूर्णपद ददृश् से

९ वां प्रत्यय

इत और **इतव्य** देखो **त** और **तव्य**

१० वां प्रत्यय

इर और **इल** देखो **र** और **ल**

११ वां प्रत्यय

ई (११ वें प्रत्यय का २ रा भाग देखो)

१२ वां प्रत्यय

उक (जिसको कुकन् उकञ् उकञ् षुकञ् णुकन् वगैरह) थोड़े विशेषण बनाता है और मूलसम्बन्धी स्वर को गुण वा वृद्धि चाहता है जैसे घातुक (घातकी) हन् से कामुक (कामी) कम से

१३ वां प्रत्यय

ऊक अधिकतार्थक के अपूर्णपद से विशेषण और कर्तृवाचक नाम बनाताहै जैसे यावदूक (बक्की) वद् (बोल) के अधिकतार्थक अपूर्णपद से यायजूक (बहुत यज्ञ करनेवाला) यज् (यज्ञ कर) के अधिकतार्थक अपूर्णपद से

१४ वां प्रत्यय

एन्य एक प्रकार की कर्मणिवाच्य भविष्यत् गुणक्रिया बनाता है और मूल में गुण वा अवस्था चाहता है जैसे वरेण्य (स्वीकार कियाजाने के योग्य) वृ (स्वीकार कर) से उशेन्य (चाहाजाने के योग्य) वश् (चाह) से

१५ वां प्रत्यय

एर थोड़े विशेषण और संज्ञा बनाता है जैसे पतेर (उड़नेवाला वा उड़ने के योग्य अर्थात् पक्षी) पत् (उड़) से मुहेर (मूर्ख) मुह् से

१६ वां प्रत्यय

क थोड़े शब्द बनाताहै जैसे शुष्क (सूखा) शुष् से (७३८ वां सूत्र देखो) धा

क ५० (शासन) धा (रख) से तद्धित प्रत्यय क के लिये (५६ वां प्रत्यय देखो)

१७ वां प्रत्यय

त और **इत** कर्मणिवाच्यवाली भूतगुणक्रिया बनातेहैं (५३० वां इत्यादि सूत्र देखो) कभी मूल में कुछ उलटापलटी नहीं चाहते कभी मूल में अदलता चाहतेहैं कभी मूल के पिछले अनुनासिक का छोड़ना चाहतेहैं बहुधा उत इ को अधिकता चाहतेहैं जो प्रेरणार्थक और १० वें गण की क्रियाओं के अय के पलटे आताहै जैसे श्रुत (सुनाहुआ) श्रु से ज्ञात (जानाहुआ) ज्ञा से कृत (कियाहुआ) कृ से स्थित (उठाहुआ) स्था से गत (गयाहुआ) गम् से नत (नवाहुआ) नम् से पतित गिराहुआ) पत् से गृहीत (पकड़ाहुआ) ग्रह् से (अधिक इ दीर्घ होगया है) वेदित (जनायाहुआ) विद् के प्रेरणार्थक से इत्यादि

१८ वां प्रत्यय

तव्य और **इतव्य** प्रथम भविष्यत के अपूर्णपद से कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया बनातेहैं (५६९ वां सूत्र देखो) जैसे कर्तव्य (कियाजानेवाला) कृ से दातव्य (दियाजानेवाला) दा से स्नातव्य (नहायाजानेवाला) स्नु से छेत्तव्य (पलटे छेदतव्य के) (काटाजानेवाला) छिद् से योक्तव्य (मिलायाजानेवाला) युज से पक्तव्य (पकायाजानेवाला) पच् से भवितव्य (होजानेवाला) भू से बोधयितव्य (जगायाजानेवाला) बुध के प्रेरणार्थक से ग्रहीतव्य (पकड़ाजानेवाला) ग्रह् से

१९ वां पत्यय

त्य ह्रस्व स्वर अन्त में रखनेवाले मूलों के पीछे लगने से कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया बनाताहै (५७२ वां सूत्र देखो जैसे कृत्य (कियाजानेवाला) कृ से

षत्र से स्नात्य (नहाने के योग्य) स्ना से

त्वा अतीनीय मूलगुणक्रिया बनाताहै (५५५ वां सूत्र देखो) और प्रत्यय त्व की ३ री विभक्ति में आयाहुआ जानपड़ताहै (५५५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और मूल से लगताहै अथवा मूल के अबल रूप से जैसा कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया का त लगताहै (१७ वां प्रत्यय देखो) जैसे कृत्वा (करके) कृ से स्थित्वा (खड़ाहोके) स्था से उक्त्वा (बोलके) वच् (बोल) से कभी इ अधिक आता है जैसे विदित्वा (जानके) विद् से लिखित्वा वा लेखित्वा (लिखके) लिख् से चोरयित्वा (चुराके) चुर् (चुरा) से

त्वी त्वा का वैदिक रूप है जैसे कृत्वी (करके) जानपड़ताहै कि यह त्वा के पलटे आताहै जो त्वा त्वया के पलटे समझाजाताहै

२२ वां प्रत्यय

त्य तव्य का संक्षिप्त वैदिक रूप है (१८ वां प्रत्यय देखो जैसे कृत्य (कर सकनेवाला) कृ से

२३ वां प्रत्यय

थ और **अथ** प्रत्येक लिङ्गवाली संज्ञा बनाताहै यूथ न० (झुंड) यु (मिल) से उक्थ न० (प्रशंसा) उच् से जो वच् (बोल) का एक रूप है तीर्थ पु० न० (तीर्थ) तॄ (पारहो) से नीथ पु० न० (मार्ग दिखानेवाला) नी से गमथ पु० (बटोही) गम् (जा) से और उचथ रयथ शपथ श्वतथ

२४ वां प्रत्यय

न पलटे **त** के (सो देखो) बहुतसी कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया बनाताहै

५२८ वें सूत्र तक देखो) लगके आत्मनेपदवाली वर्तमान गुणक्रिया बनाताहै और द्वितीय भविष्यत के अपूर्णपद से (५७८ वां सूत्र देखो) लगके आत्मनेपदवाली भविष्यत गुणक्रिया बनाताहै जैसे भरमाण (उठाताहुआ) भृ से क्रियमाण (कियाजाताहुआ) कृ के कर्मणिवाच्य से बोध्यमान (जताया जाताहुआ) बुध् के प्रेरणार्थक से दास्यमान (देनेवाला) दा के द्वितीय भविष्यत के अपूर्णपद से वेद में आन के पलटे पूर्णभूत के अपूर्णपद से आत्मनेपदवाली पूर्णभूत गुणक्रिया बनाताहै जैसे ससृमाण (सस्राण के पलटे) सृ (जा) से ईजमान (वुह जिसने यज्ञ किया है) यज् से (आन प्रत्यय देखो)

२८ वां प्रत्यय

य (जिसको क्यप् यक् यत् य ण्यत् कहतेहैं) कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया (५७१ वें सूत्र से ५७६ वें सूत्र तक देखो) और विशेषण और संज्ञाएं बनाता है बहुधा गुण वा वृद्धि चाहता है और कभी २ मूल की दूसरी उलटापलटी चाहता है (५७१ वां सूत्र देखो) जैसे चेय (जोड़ाजानेवाला) चि से स्तव्य वा स्ताव्य (सराहाजानेवाला) स्तु से योग्य और योज्य (मिलायाजानेवाला) युज् से गुह्य और गोह्य (छिपायाजानेवाला) गुह् से

बहुत सी नपुन्सकलिङ्गवाली अवस्थावाचक संज्ञाएं भी बनाता है जैसे वाक्य न० (बोली) वच् से भोग्य न० (धन धान) भोज्य न० (भोजन) दोनों भुज् (भोग) से

स्त्रीलिङ्ग संज्ञाएं भी बनाता है परन्तु तब या होजाता है जैसे विद्या स्त्री० (जानना) विद् से व्रज्या (परिक्रमा) व्रज् से शय्या स्त्री० (सेज) (पलटे शेया के) शी (सो) से देखो जाया अर्थात् जन्या (स्त्री) छाया अर्थात् छद्या (छाया) माया अर्थात् मन्या (धोका)

अवर्तनीय गुणक्रिया सम्बन्धी प्रत्यय य के लिये (जिसको ल्यप् कहते हैं ५५० वां सूत्र देखो)

२९ वां प्रत्यय

र (जिसको क्रन् रक् र म्न् रूट् कहते हैं) अर इर (जिनको किरच् कहते हैं) और उर विशेषण और कर्तृवाचक इत्यादि संज्ञाएं बनाते हैं जैसे दीप्र (चमकनेवाला) दीप से क्षिप्र (शीघ्र) क्षिप् (फेंक) से वन्द्र (पूजनेवाला) वन्द् से छिद्र नं० (छेदाहुआ और छेद) छिद् (काट) से अज्र पु० (चौगान) अजिर नं० (च‍उक आंगन) अज से पतर (उड़नेवाला) पत से इ और उ भी बदते हैं जैसे छिदिर पु० (वमूला) छिदुर (काटनेवाला) छिद् (काट) से रुधिर (लाल) भिदुर नं० (फाड़नेवाला कुस पुसा और वज्र) भासुर (चमकीला) (जैसे भास्वर) भास से

३० वां प्रत्यय

ल (जिसको क्ल और लक् कहते हैं) अल इल और उल (र इत्यादि के अनुसार) विशेषण इत्यादि बनाते हैं जैसे शुक्ल शुक के समान (उजला) शुच् (चमक) से तरल (कांपनेवाला) तृ से अनिल (वायु) अन् (बह) से हर्षुल (प्रसन्न) हृष् से

३१ वां प्रत्यय

व (जिस को क्वन् वन् और व कहते हैं) गुणक्रिया विशेषण और संज्ञाएं बनाता है जैसे पक्व (पकाहुआ) पच् से (इसको कर्मणिवाच्य) भूतगुणक्रिया भी कहते हैं [५४८ वां सूत्र देखो] अश्व (घोड़ा) लियेहुए मूल अश् (शीघ्र हो)

ो एत्र (जानाहुआ) इ से पद्द (मार्ग) पद्र (जा) से

३२ वां प्रत्यय

वर (जिसको करप् वरच् वरट् इत्यादि कहते हैं) विशेषण कर्तृवाचक संज्ञा
ं इत्यादि बनाता है (इसके स्त्रीलिङ्ग बहुधा ई से बनते हैं जैसे नश्वर (नाश पानेवा
ला) नश्वरी (नाश पानेवाली) नश् (नाश पा) से ईश्वर (आज्ञा करनेवाला) ई
श् से स्थावर (स्थिर) स्था (खड़ा हो) से जो मूल अन्त में ह्रस्व स्वर या कोई अ
नुनासिक स्वरे हैं उनके पीछे कभी२ त् बढ़ताहै जैसे इत्वर (जानेवाला) स्त्री०
इत्वरी इ से जित्वर (जीतनेवाला) जि से गत्वर (जानेवाला) गम् (जा) से

३३ वां प्रत्यय

स्न (जिसको क्स्न कहते हैं) थोड़े विशेषण बनाताहै जैसे तीक्ष्ण (पैना) ति
ज् से श्लक्ष्ण (चिकना) श्लिष् से बनाहुआ बताते हैं

३४ वां प्रत्यय

दूसरे सामान्य प्रत्यय (बहुत करके उणादि ७१ वें सूत्र की टीका देखो) इस
भाग के पहले पदवाले निरूप बनाते हैं सो ये हैं

अण्ड जैसे तरण्ड (ओर किसी२ की मति के अनुसार तरं और ग से) पाण्ड

अण्ड जैसे करण्ड तरण्ड

अत जैसे दर्शत पचत यजत

अन्त जैसे जयन्त तरन्त वसन्त

अन्य जैसे शरण्य वसन्य पर्जन्य

अप जैसे उलप उपप मण्डप

अभ जैसे ऋषभ गर्दभ वृषभ शरभ

अम जैसे कलम कुशम सरम

अम्ब जैसे करम्ब

अस जैसे चमस दिवस मनस वचस

असान [होताहुआ] अस् [हो] की वर्तमान गुणक्रिया है जैसे मन्दसान वृधसान

आणक जैसे धवाणक लवाणक

आनक जैसे भयानक शयानक

आट्य जैसे पनाय्य पनयाय्य महाय्य

आर जैसे अङ्गार तुषार

आल जैसे कपाल कराल चपाल

इक जैसे कृषिक वृश्चिक

इष (इस) जैसे आमिष तविष अव्यथिष

ईक जैसे अनीक दृशीक चर्चरीक

ईट जैसे कृपीट

ईर जैसे गभीर शरीर हिंसीर

ईप जैसे करीष पुरीष मनीषा (स्त्री०)

उत्र जैसे वरुत्र वरुत्रे

उन जैसे अरुण अर्जुन यमुना (स्त्री०) वरुण

उप जैसे नहुष परुष मनुष

ऊख जैसे मयूख

ऊथ जैसे जरूथ वरूथ

ऊर जैसे मयूर

ऊल जैसे लांगूल

एलिम जैसे पचेलिम भिदेलिम (७३६ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

ओर जैसे कठोर

कर जैसे पुष्कर मस्कर

त्रिम जैसे कृत्रिम पक्त्रिम (पा० ३, ३, ८८)

क जैसे गायक (गाय और क के पहले होगा)

जैसे ग्रस्म हस मंस

२ रे प्रकार के वा द्वितीय पद वाले

[illegible] प्रथमपदवाले नियमों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों में बनाये जाते हैं

आरंभसम्बन्धी वर्ण

१ प्रथम पदवाले निमूलों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों के पिछले स्वर जो तद्धित प्रत्यय आदि में कोई स्वर वा य रखते हैं उनके पहले कई उलटापलटियां उठाते हैं पहली यिह कि अ आ इ ई छोड़दियेजाते हैं जैसे शुचि (पवित्र) शौच (पवित्रता) दूसरी यिह कि उ ऊ ओ होके अव् होजाता है जैसे मनु से मानव (मनु की सन्तान) तीसरी यिह कि ओ और औ संधि के सामान्य सूत्रों के अनुसार अव् और आव् होजाते हैं जैसे गो (गाय) से गव्य (गाय का) नौ (नाव) से नाविक और नाव्य (नाव का)

२ जो तद्धित प्रत्यय आदि में कोई व्यञ्जन रखते हैं उनके पहले पिछला न् बहुधा छोड़दियाजाता है और कभी स्वरों के और य् के पहले वुह न् अपने पहले स्वर समेत गिरजाता है जैसे युवन् (तरुण) से युवता वा युवत्व (तरुणाई) आत्मन् (आप) से आत्म्य और आत्मीय (अपना) परन्तु इस सूत्र के पिछले भाग के बहुत से निषेध भी हैं जैसे यौवन (तरुणाई) युवन् से राजन्य (राजसम्बन्धी) राजन् से आत्मनीन आत्मन् से

३ यिह जानना चाहिये कि तद्धित अर्थात् द्वितीय पदवाले प्रत्यय जिन शब्दों में लगते हैं उनके पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहते हैं जैसे मौल (मूलसम्बन्धी) मूल (जड़) से शौच (पवित्रता) शुचि (पवित्र) से ऐसे ही जो निमूल मिश्रित शब्दों से बनते हैं उनमें जैसे सौहृद (मित्रता) सुहृद् (मित्र) से कभी दुहरी वृद्धि चाहते हैं जैसे सौहार्द (मित्रता) सुहृद से सौभाग्य (अच्छा भाग्य) सुभग (भाग्यी) से

४ जब किसी शब्द का पहला व्यञ्जन उस य वा व् से मिश्रित होता है जिसके पीछे अ वा आ आता है जैसे व्याघ (बाघ) स्वर (घोष) में तब यह य् और व् बहुधा इय् और उव् होजाते हैं जैसे वियाघ और सुवर और तब वृद्धि पाते हैं जैसे वैयाघ (बाघका) सौवर (घोषका) ऐसे ही स्व (आप) से सौव (अपना) श्वन् (कुत्ता) से शौवन (कुत्ते का) ऐसे ही स्वस्ति से सौवस्तिक न्याय से नैयायिक व्यश्व से वैयश्वि इत्यादि

३५ वां प्रत्यय

अ (स्त्री० ई) पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहके अवस्थावाचक समूहवाचक पैतृक और विशेषण बनाताहै जो अभिमृत नाम से कुछ सम्बन्ध रखते हैं जैसे शौच न० (पवित्रता) शुचि (पवित्र) से सौहृद न० वा सौहार्द न० (मित्रता) सुहृद् से (आरंभसम्बन्धी ३ रा वर्णन देखो) पौरुष न० (पुरुषपना) पुरुष से शैशव न० (बालकपन) शिशु (बालक) से क्षेत्र न० (खेतों का समूह) क्षेत्र (खेत) से वासिष्ठ (वसिष्ठ की सन्तान) वसिष्ठ से मानव (मनु की सन्तान) मनु से वैष्णव (विष्णुसम्बन्धी) विष्णु से पौरुष (पुरुषसम्बन्धी) पुरुष (नर) से सैकत (रेतीला) सिकता से दारव (लकड़ी का) दारु (लकड़ी) से (आरंभसम्बन्धी १ ला वर्णन देखो) वैयाकरण (व्याकरणी) व्याकरण से (आरंभसम्बन्धी ४ था वर्णन देखो)

३६ वां प्रत्यय

अक (जिसको वुच् वुक वुन् वुञ् कहते हैं) बहुधा पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहके विशेषण बनाता है (जिनका स्त्रीलिङ्ग बहुधा ई से बनताहै) और संज्ञाएं बनाता है (प्रत्यय इक और क देखो) जैसे औमक (सनका) उमा (सन) से आङ्गक (अंगसम्बन्धी) अग से औष्ट्रक न० (ऊंटसम्बन्धी अथवा ऊंट का समूह) न० उष्ट्र (ऊंट) से वात्सक न० (बछड़ों का समूह) वत्स (बछड़ा) से इस प्रत्यय का स्त्रीलिङ्ग कभी इका होता है परन्तु तब इक का स्त्रीलिङ्ग समझाजाताहै

३७ वां प्रत्यय

आट जैसे वाचाट (बकी) वाच् (बोली) से ऐसेही शृङ्गाट शृङ्ग से

३८ वां प्रत्यय

आनी इन्द्र जैसे पुल्लिङ्ग नामों का स्त्रीलिङ्ग बनाताहै जैसे इन्द्राणी (८...वें सूत्र के १ ले प्रत्यय का ४ था भाग देखो) अग्नि (आग) का स्त्रीलिङ्ग अग्नाई (आग की स्त्री) होताहै

३९ वां प्रत्यय

आयन (जिसको ष्फ च्फञ् फक् ष्फक् फञ् कहते हैं) पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहके पैतृकादि शब्द बनाताहै जैसे नारायण (विष्णु) नर से

४० वां प्रत्यय

आल जैसे वाचाल (बहुत बोलनेवाला) वाच् (बोली) से

४१ वां प्रत्यय

इक (स्त्री० इकी) विशेषण और थोड़े समूहवाचक बनाताहै और पहले शब्द... भाग में वृद्धि चाहताहै जैसे धार्मिक (धर्मवाला) धर्म से वैणविक (बांसली बजा... ...वाला) वेणु से वैदिक (वेदसम्बन्धी) वेद से आह्निक (दिवससम्बन्धी) अ... ...दिन) से नैयायिक (न्याय जाननेवाला) न्याय से दौवारिक (द्वारपाल) द्व... ...दारिक न० (खेतों का समूह) केदार से

४२ वां प्रत्यय

इत जैसे फलित (फलाहुआ) फल से (यिह ५४७ वें सूत्र की २ री शाख... ...नुसार फल्ल की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रियाहै) रथित (रथ दियाहुआ) रथ... ...तो यिह कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया का प्रत्यय है जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णप... ...लगायागया है जैसे इन जो आगे आताहै

४३ वां प्रत्यय

इन (जिसको इनच् कहते हैं) जैसे फलिन (फलवाला) फल से मलिन (मैला) मल से शृङ्गिण (सींगवाला) शृङ्ग से रथिन् रथवाला) रथ से

४४ वां प्रत्यय

इनेय पीछे पैतृक बनाताहै और पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे सौभागिनेय (अच्छे भाग्यवाली का बेटा) सुभगा से

४५ वां प्रत्यय

इय (आ स्त्री०) जैसे अग्रिय न० (अगला) अग्र से

४६ वां प्रत्यय

इर (आ स्त्री०) जैसे मेधिर (बुद्धिवान) मेधा से रथिर (रथ में जानेवाला) रथ से (१ ७८ वां प्रत्यय देखो)

४७ वां प्रत्यय

इल (आ स्त्री०) जैसे फेनिल (झागवाला) फेन (झाग) से (ल ८० वां प्रत्यय देखो)

४८ वां प्रत्यय

इष्ठ (आ स्त्री०) विशेषणों का अत्यन्ततासूचक पद बनाताहै जैसे अल्पिष्ठ (अत्यन्त छोटा) अल्प (छोटा) से ऐसेही कनिष्ठ मूल कन से (१९२ वें सूत्र से १९६ वें सूत्र तक देखो) देखो यह प्रत्यय बहुधा अवस्थाओं में अपवाद काहो ११९

गा द्वितीयपद का नहीं क्योंकि बहुधा मूल से या गुथाहुए मूल से लगताहै जै
उरु (चौड़ा) वरिष्ठ (अत्यन्त चौड़ा) उ से (ईयस् ८६ वें सूत्र का ५ वां प्रत्यय दे
खो)

४९ वां प्रत्यय

ईन (जिसको ख और खञ् कहते हैं) विशेषण और संज्ञाएं बनाताहै जैसे
ग्रामीण (गांववाला) ग्राम (गांव) से कुलीन (कुलवाला) कुल से नवीन (नया
) नव से अध्वनीन (यात्री) अध्वन् (मार्ग) से अनुपदीन स्त्री॰ (जूती) अनुपद
से आश्वीन (घोड़े की एक दिन की यात्रा) अश्व से

५० वां प्रत्यय

ईय विशेषण बनाताहै और कभी अपूर्णपद के पहले शब्दभाग में वृद्धि
चाहताहै जैसे स्वास्रीय (भानजा) स्वसृ (बहन) से भ्रात्रीय (भाई का) भ्रातृ
(भाई) से पार्वतीय या पर्वतीय (पर्वतसम्बन्धी) पर्वत से अश्वीय न॰ अश्वसम्ब
न्धी वा अश्वों का समूह) अश्व से परकीय (आ स्त्री॰) (दूसरे का) पर से (इ
स पिछले दृष्टान्त में अपूर्णपद का पिछला वर्ण बनारहता है और क बढ़जाता है)
मौखीय (मुखसम्बन्धी) मुख से
सम्बन्धवाचक सर्वनाम भी बनाताहै जैसे मदीय त्वदीय इत्यादि (२३१ वां
देखो)

५१ वां प्रत्यय

ईर और **ईल** इर और इल के दीर्घ सरूप हैं

५२ वां प्रत्यय

उर जैसे दन्तुर (लम्बे दांतवाला) दन्त से

५३ वां प्रत्यय

उल जैसे मातुल (मामा) मातृ (मा) से

५४ वां प्रत्यय

ऊल जैसे दन्तूल (दांतवाला) दन्त (दांत) से वातूल पु० (वायुवाला) वात से

५५ वां प्रत्यय

एय (ई स्त्री०) विशेषण और संज्ञाएं बनाता है और पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहता है जैसे पौरुषेय (पुरुषसम्बन्धी) पुरुष से आग्नेय (अग्निसम्बन्धी) अग्नि से दासेय (दासीपुत्र) दासी से माहेय (पृथ्वीसम्बन्धी) मही से ज्ञातेय न० (ज्ञातिसम्बन्धी) ज्ञाति से

५६ वां प्रत्यय

क विशेषण समूहवाचक न्यूनता वा अपमानसूचक संज्ञा बनाताहै जैसे सिन्धुक (सिन्धुसम्बन्धी) सिन्धु से मधुक (मीठा) मधु से राजक न० (राजाओं का समूह अथवा छोटा राजा) (पु०) राजन् से अश्वक (टट्टू) अश्व (घोड़ा) से क भी अधिक आताहै जैसे मध्यमक (इका स्त्री०) (बिचला) मध्यम से भीरुक (डरपोक) भीरु से पुत्रक (बेटा) पुत्र से बालक (इका स्त्री०) (बालक) बाल से (कृत् प्रत्यय क के लिये ८० वें सूत्र का १६ वां प्रत्यय देखो) देखो इनमें से को

ईर अक प्रत्यय के लगने से बने हैं सो और इक प्रत्यय भी देखो

५७ वां प्रत्यय

कल्प (जिसको कल्पप् कहते हैं) इसको व्याकरणी द्वितीयदजा समझते हैं (पा० ५, ३, ६७, ६८ इत्यादि) यिह सदृशता या न्यूनता व सूचक संज्ञा बनाताहै जैसे कविकल्प (कवि सा) मृतकल्प (मृतक सा रुपम्(वुह कुछ अच्छा पकाता है) कल्प को कोश में देखो

५८ वां प्रत्यय

तन (ई स्त्री०) समयसम्बन्धी क्रियाविशेषणों से विशेषण बनाता त्तन (भविष्यत) श्वस् (आनेवाला कल) से ह्यस्तन (गये कल का) ह्यस् न (प्रातः कालसम्बन्धी न०) प्रातर् से प्राक्तन (अगला) प्राक् से इसके ष्टान्त हैं प्राह्णेतन प्रातन नूतन चिरन्तन

५९ वां प्रत्यय

तम (जिसको तमप् कहते हैं) अत्यन्तासूचक पद इत्यादि बनाताहै वां ११५ वां और १९७ वां सूत्र देखो) जैसे पुण्यतम (अत्यन्त पवित्र यां सूत्र देखो) उच्चैस्तम (अत्यन्त ऊंचा) उच्चैस् से कभी सर्वनामसम्बन्धी पदों से लगताहै (२३६ वां सूत्र देखो)

और क्रमसूचक संख्या बनाताहै और तमट् कहलाता है जैसे विंशतितमः ई) (बीसवां) विंशति (बीस) से (२११ वें सूत्र से २१३ वें सूत्र तक दे

तमाम् तम से निकलाहै सो क्रियाविशेषण की रीति से लगताहै स्तमाम् (बहुत ऊंचा) वदतितमाम् ([illegible]

६० वां प्रत्यय

तय विशेषण बनाता है तब स्त्रीलिङ्ग ई से होताहै और संख्यासम्बन्धियों से नपुन्सकलिङ्ग संज्ञा बनाता है जैसे त्रितय (तिगुना वा तीन का समूह) चतुष्टय न० (चौगुना वा चार का समूह इत्यादि) चतुर् (चार) से (२१४ वां सूत्र देखो)

६१ वां प्रत्यय

तर (जिसको तरप् कहते हैं) अतितासूचक पद बनाताहै (१९३ वां १९५ वां १९७ वां और २३६ वां सूत्र देखो) जैसे पुण्यतर (अति पवित्र) उच्चैस्तर (अति ऊंचा) उच्चैस् (ऊंचा) से और कभी सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपदों से लगता है (२३६ वां सूत्र देखो)

तराम् तर से निकला है सो क्रियाविशेषण की रीति से लगताहै जैसे उच्चैस्तराम् (बहुत ऊंचा) बहुतराम् (बहुत बहुत) वदतितराम् (वृह बहुत बोलताहै)

६२ वां प्रत्यय

ता आगे आनेवाले **त्व** के समान है सो विशेषणों और संज्ञाओं के अपूर्णपदों से स्त्रीलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाता है जैसे बहुता (बहुतापन) बहु (बहुत) से पृथुता (चौड़ाई) पृथु (चौड़ा) से युवता (तरुणाई) युवन् (तरुण) से पुरुषता (पुरुषपना) पुरुष (नर) से देवता (देवपना)

६३ वां प्रत्यय

तिथ (स्त्री० ई) क्रमसूचक विशेषण इत्यादि बनाताहै जैसे बहुतिथ (बहुगुना) बहु (बहुत) से तावतिथ (तितना) तावत् से

६४ वां प्रत्यय

ई२ अक प्रत्यय के लगने से बने हैं सो और इक प्रत्यय भी देखो

५७ वां प्रत्यय

कल्प (जिसको कल्पप् कहते हैं) इसको व्याकरणी द्वितीयदवाला प्र समझते हैं (पा० ५, ३, ६७, ६८ इत्यादि) यिह सदृशता वा न्यूनता वा अनु सूचक संज्ञा बनाताहै जैसे कविकल्प (कवि सा) मृतकल्प (मृतक सा) पचति ल्पम्(वुह कुछ अच्छा पकाता है) कल्प को कोश में देखो

५८ वां प्रत्यय

तन (ई स्त्री०) समयसम्बन्धी क्रियाविशेषणों से विशेषण बनाता है जैसे स्तन (भविष्यत) श्वस् (आनेवाला कल) से ह्यस्तन (गये कल का) ह्यस् से प्रात न (प्रातः कालसम्बन्धी न०) प्रातर् से प्राक्तन (अगला) प्राक् से इसके दूसरे दृष्टान्त हैं प्राह्णेतन प्रातन नूतन चिरन्तन

५९ वां प्रत्यय

तम (जिसको तमप् कहते हैं) अत्यन्तासूचक पद इत्यादि बनाताहै (१९ वां १९५ वां और १९७ वां सूत्र देखो) जैसे पुण्यतम (अत्यन्त पवित्र) (१९ वां सूत्र देखो) उच्चैस्तम (अत्यन्त ऊंचा) उच्चैस् से कभी सर्वनामसम्बन्धी अपूर्ण पदों से लगताहै (२३६ वां सूत्र देखो)

और क्रमसूचक संख्या बनाताहै और तमट् कहलाता है जैसे विंशतितम (स्त्री० ई) (बीसवां) विंशति (बीस) से (२११ वें सूत्र से २१३ वें सूत्र तक देखो)

तमाम् **तम** से निकलाहै सो क्रियाविशेषण की रीति से लगताहै जैसे उच्चैस्तमाम् (बहुत ऊंचा) पचतितमाम् (वुह बहुत पकाताहै)

६० वां प्रत्यय

तय विशेषण बनाता है तब स्त्रीलिङ्ग ई से होताहै और संख्यासम्बन्धियों से नपुन्सकलिङ्ग संज्ञा बनाता है जैसे त्रितय (तिगुना वा तीन का समूह) चतुष्टय न० (चौगुना वा चार का समूह इत्यादि) चतुर् (चार) से (२१४ वां सूत्र देखो।

६१ वां प्रत्यय

तर (जिसको तरप् कहते हैं) अतितासूचक पद बनाताहै (१९१ वां १९५ वां १९७ वां और २३६ वां सूत्र देखो) जैसे पुण्यतर (अति पवित्र) उच्चैस्तर (अति ऊंचा) उच्चैस् (ऊंचा) से और कभी सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपदों से लगता है (२३६ वां सूत्र देखो)

तराम् तर से निकला है सो क्रियाविशेषण की रीति से लगताहै जैसे उच्चैस्तराम् (बहुत ऊंचा) बहुतराम् (बहुत बहुत) वदतितराम् (वुह बहुत बोलताहै)

६२ वां प्रत्यय

ता आगे आनेवाले **त्व** के समान है सो विशेषणों और संज्ञाओं के अपूर्णपदों से स्त्रीलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाता है जैसे बहुता (बहुतायत) बहु (बहुत) से पृथुता (चौड़ाई) पृथु (चौड़ा) से युवता (तरुणाई) युवन् (तरुण) से पुरुषता (पुरुषपना) पुरुष (नर) से देवता (देवपना)

६३ वां प्रत्यय

तिथ (स्त्री० ई) क्रमसूचक विशेषण इत्यादि बनाताहै जैसे बहुतिथ (बहुगुना) बहु (बहुत) से तावतिथ (तितना) तावत् से

६४ वां प्रत्यय

तीय (स्त्री० आ) क्रमसूचक बनाताहै जैसे द्वितीय (दूसरा) तृतीय (तीसरा) (२०८ वां सूत्र देखो)

६५ वां प्रत्यय

त्न विशेषण बनाताहै जैसे चिरत्न (पुराना) चिर (दीर्घकाल) से नूत्न (नया) (देखो तन जो ऊपर बताया है)

६६ वां प्रत्यय

त्य (जिसको त्यप् और त्यक् कहते हैं) थोड़े विशेषण बनाताहै जैसे तत्रत्य (वहां होना) तत्र से इहत्य (यहां होता इह से कभी पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे पाश्चात्य (पीछे) पश्चात् (पीछे) से ऐसेही दाक्षिणात्य (दक्षिणा) से पौरस्त्य पुरस् से

६७ वां प्रत्यय

त्रा थोड़ी स्त्रीलिङ्ग समूहवाचक संज्ञा बनाताहै जैसे गोत्रा (गायों का समूह) क्रियाविशेषणसम्बन्धी प्रत्यय **त्र** और **त्रा** के लिये ७२० वां सूत्र देखो

६८ वां प्रत्यय

त्व ता के समान है जो ऊपर बताया है यह नपुन्सकलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाताहै जैसे बहुत्व पृथुत्व पृथक्त्व देवत्व इत्यादि

६९ वां प्रत्यय

त्वन त्व के समानहै वेद में आताहै और नपुन्सकलिङ्ग अवस्थावाचक

ज्ञाएं बनाता है जैसे महित्वन (बड़ाई), महि वा महिन् (बड़ा) से सखित्वन (मित्रता) सखि (मित्र) से वसुत्वन (धन) वसु (धनवान) से

७० वां प्रत्यय

दघ्न (जिसको दघ्नच् कहते हैं) द्वयस और मात्र के सदृश द्वितीयपदवाला प्रत्यय समझाजाता है (पा० ५, २, ३७) और ऊंचाई वा नाप इत्यादि का अर्थ देताहै जैसे ऊरुदघ्न (जांघ तक) (स्त्री० ई)

७१ वां प्रत्यय

देशीय देशीयर् कहलाताहै सो कल्प के सदृश द्वितीयपदवाला प्रत्यय समझाजाताहै (पा० ५, ३, ६७) लगभग वा अनुमान का अर्थ देताहै जैसे पटुदेशीय (चतुरसा)

७२ वां प्रत्यय

द्वयस द्वयसच् कहलाताहै और ऊंचाई वा नाप इत्यादि का अर्थ देताहै ऊपरवाला दघ्न देखो जैसे ऊरुद्वयस (स्त्री० ई) (जांघ तक)

७३ वां प्रत्यय

न (जिसको न और नञ् कहते हैं) विशेषण और संज्ञा बनाता है और कभी पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहता है जैसे पुराण (स्त्री० आ, ई) (पुराना) पुरा (आगे) से प्रण (पुराना) प्र से पौंस्न (स्त्री० ई) (पुरुषार्थ न०) पुंस् (पुरुष) से स्त्रैण (स्त्री० ई) (स्त्रीपना न०) स्त्री (नारी) से

७४ वां प्रत्यय

म (जानपड़ता है कि पुराना अत्यन्तता सूचक प्रत्यय है जैसा तम और १)
सो क्रमसूचक और दूसरे विशेषण बनाता है जैसे पञ्चम (पांचवां) सप्तम (सातवां)
(२०९ वां सूत्र देखो) मध्यम (बिचला) मध्य (बीच) से अवम (निचला)
अव (नीचा) से परम (उधर का) पर (उधर) से

७५ वां प्रत्यय

मय (जिसको मयट् कहते हैं) विशेषण बनाताहै (स्त्री॰ ई) और जिसके
साथ लगताहै उसको बनाहुआ वा मिलाहुआ का अर्थ देताहै जैसे लोहमय (लो
हे से बनाहुआ) लोह (लोहा) से तेजोमय (तेज से बनाहुआ वा मिलाहुआ)
तेजस् (तेज) से बुद्धिमय (बुद्धि से बनाहुआ वा मिलाहुआ वा भराहुआ)

७६ वां प्रत्यय

मात्र (जिसको मात्रच् कहते हैं) शब्दों के पीछे लगताहै और नाप ऊंचाई
इत्यादि का अर्थ देता है (जैसे दघ्न और द्वयस देतेहैं) यवमात्र (स्त्री॰ ई) (जौ
भर) ऊरुमात्र (जांघ के समान) मात्र को कोश में देखो

७७ वां प्रत्यय

य (जिसको यप् य ढ्य यत् ष्यङ् ण्य ढ्यण् ट्यण् यक् यत् ढ्यत् ण्यत् यद्
यन् ञ्य कहते हैं) विशेषण पैतृक और नपुन्सकलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बना
ताहै और बहुधा वैसीही उलटापलटियां चाहताहै जैसी स्वरादि द्वितीयपदवाले अन
य चाहते हैं (आरम्भसम्बन्धी १ ला और २ रा वर्णन ८० वें सूत्र के १ ले प्र
कार में देखो) जैसे धन्य (धनवान) धन से रहस्य पु (स्त्री॰ आ) (छिपाहुआ
अर्थात् भेद) (न॰) रहस् (छिपाव) से पित्र्य (पितासम्बन्धी) पितृ से ऋतव्य
(ऋतुसम्बन्धी) ऋ से बहुधा पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे सौम्य

स्त्री॰ आ अथवा मी] (चन्द्रमसम्बन्धी) सोम (चन्द्र) से माधुर्य्य न॰ (मिठास) मधुर (मीठा) से चौर्य न॰ (चोरी) चोर (चोर) से सौहृद्य न॰ (मित्रता) सुहृद् (मित्र) से सौभाग्य न॰ (अच्छा भाग्य) सुभग से (प्रारम्भसम्बन्धी ३रा वर्णन देखो) स्वाम्य (स्वामीपना) स्वामिन् से वैयाघ्र्य न॰ (बाघपना) व्याघ्र से कभी अनुनासिक और उसका पहला स्वर नहीं छोड़े जाते जैसे ब्रह्मण्य [स्त्री॰ आ] (ब्रह्मसम्बन्धी) ब्रह्मन् से राजन्य [राजसम्बन्धी] राजन् से (आरम्भसम्बन्धी २रा और ४ था वर्णन देखो)

७८वां प्रत्यय

र (पुराना अतिनामसूचक प्रत्यय होगा जैसा तर और म) पीछे विशेषण बनाताहै (स्त्री॰ आ) जैसे मधुर (मीठा) मधु से अश्मर (पथरीला) अश्मन् (पत्थर) से अवर (छोटा) अव (नीचा) से अपर (पिछला) अप (पीछे) से

७९वां प्रत्यय

रूप (जिसको रूपप् कहते हैं) द्वितीयपदवाले प्रत्यय के सदृश बनाहुआ रखनेवाला वा भराहुआ इत्यादि का अर्थ देता है और कभी अधिक आताहै जैसे सत्यरूपम् वाक्यम् (सचाई से भरीहुई बात अथवा केवल सच्ची बात) आर्य्यरूप (पूजनीय) कभी अच्छा या अच्छी रीति से का अर्थ देता है और क्रियाविशेषण के सदृश आताहै जैसे पटुरूप (बहुत चतुर) वैयाकरणरूप (अच्छा व्याकरणी) पचतिरूपम् (वुह अच्छी रीति से पकाता है) (पा॰ ५, ३, ६६)

८०वां प्रत्यय

ल (स्त्री॰ आ) पीछे विशेषण बनाताहै जैसे इल बनाताहै जैसे श्रील (भाग्यवी) श्री से पांशुल (धूलिया) पांशु (धूल) से फेनल (झागवाला) फेन (झा-

म (जानपड़ता है कि पुराना अत्यन्तता सूचक प्रत्यय है जैसा मम और १)
सो क्रमसूचक और दूसरे विशेषण बनाता है जैसे प्रथम (पांचवां) सप्तम (सातवां)
(२०९ वां सूत्र देखो) मध्यम (बिचला) मध्य (बीच) से अधम (निचला)
अव (नीचा) से परम (उधर का) पर (उधर) से

७५ वां प्रत्यय

मय (जिसको मयट् कहते हैं) विशेषण बनाताहै (स्त्री० ई) और जिसके
साथ लगताहै उसको बनाहुआ वा मिलाहुआ का अर्थ देताहै जैसे लोहमय (लो
हे से बनाहुआ) लोह (लोहा) से तेजोमय (तेज से बनाहुआ वा मिलाहुआ)
तेजस् (तेज) से बुद्धिमय (बुद्धि से बनाहुआ वा मिलाहुआ वा भराहुआ)

७६ वां प्रत्यय

मात्र (जिसको मात्रच् कहते हैं) शब्दों के पीछे लगताहै और नाप ऊंचा
इत्यादि का अर्थ देता है (जैसे दघ्न और द्वयस देतेहैं) यवमात्र (स्त्री० ई) (जौ
भर) ऊरुमात्र (जांघ के समान) मात्र को कोश में देखो

७७ वां प्रत्यय

य (जिसको यप् य ड्य यत् ष्यङ् ण्य ड्यण् टयण् यक् यत् ड्यत् ण्यत् यद्
यन् ञ्य कहते हैं) विशेषण पैतृक और नपुन्सकलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बना
ताहै और बहुधा वैसीही उलटापलटियां चाहताहै जैसी स्वरादि द्वितीयपदवाले प्रत्य
य चाहते हैं (आरम्भसम्बन्धी १ ला और २ रा वर्णन ८० वें सूत्र के २ रे १
कार में देखो) जैसे धन्य (धनवान) धन से रहस्य पु (स्त्री० आ) (छिपाहुआ
अर्थात् भेद) (न०) रहस् (छिपाव) से पित्र्य (पितासम्बन्धी) पितृ से ऋतव्य
(ऋतुसम्बन्धी) ऋतु से बहुधा पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे सौम्य

स्त्री० आ अथवा मी) (चन्द्रसम्बन्धी) सोम (चन्द्र) से माधुर्य न० (मिठास) मधुर (मीठा) से चौर्य न० (चोरी) चोर (चोर) से सौहृद्य न० (मित्रता) सुहृद् (मित्र) से सौभाग्य न० (अच्छा भाग्य) सुभग से (प्रारम्भसम्बन्धी ३रा वर्णन देखो) स्वाम्य (स्वामीपना) स्वामिन् से वैयाघ्र्य न० (बाघपना) व्याघ्र से कभी अनुनासिक और उसका पहला स्वर नहीं छोड़े जाते जैसे ब्रह्मण्य [स्त्री० आ] (ब्रह्मसम्बन्धी) ब्रह्मन् से राजन्य (राजसम्बन्धी) राजन् से (आरम्भसम्बन्धी २रा और ४ था वर्णन देखो)

७८वां प्रत्यय

र (पुराना अतिनामसूचक प्रत्यय होगा जैसा तर और म) थोड़े विशेषण बनाते हैं (स्त्री० आ) जैसे मधुर (मीठा) मधु से अश्मर (पथरीला) अश्मन् (पत्थर) से अवर (छोटा) अव (नीचा) से अपर (पिछला) अप (पीछे) से

७९वां प्रत्यय

रूप (जिसको रूपप् कहते हैं) द्वितीयपदवाले प्रत्यय के सदृश बनाहुआ रखनेवाला या लगाहुआ इत्यादि का अर्थ देता है और कर्म अधिक आता है जैसे सत्यरूपम् वाक्यम् (सचाई से भरीहुई बात अथवा केवल सची बात) आर्य्यरूप (पूजनीय) कभी अच्छा या अच्छी रीति से का अर्थ देता है और क्रियाविशेषण के सदृश आता है जैसे पटुरूप (बहुत चतुर) वैयाकरणरूप (अच्छा व्याकरणी) पचतिरूपम् (बुह अच्छी रीति से पकाता है) (पा० ५, ३ ६६)

८०वां प्रत्यय

ल (स्त्री० आ) थोड़े विशेषण बनाते हैं जैसे इल बनाते हैं जैसे श्रील (भाग्यी) श्री से पांशुल (धूलिया) पांशु (धूल) से फेनल (झागदार) फेन (झा-

ग) से

८१वां प्रत्यय

व (वत् के पलटे होगा ८४ वें सूत्र का ७ वां प्रत्यय देखो) जैसे केशव (बालवाला) केश (बाल) से

८२वां प्रत्यय

वल (जिसको वलच् और इवलच् कहते हैं) थोड़े विशेषण बनाता है (स्त्री॰ आ), और संज्ञा भी बनाता है जैसे ऊर्जस्वल (बलवाला) ऊर्जस् (बल) से शिखावल (चोटीवाला अर्थात् मोर) (पु॰) शिखा (चोटी) से दन्तावल पु॰ (दांतवाला अर्थात् हाथी) दन्त (दांत) से

८३वां प्रत्यय

व्य (जिसको व्यत और व्यन् कहते हैं) जैसे पितृव्य (चचा) पितृ (पिता) से

८४वां प्रत्यय

श थोड़े विशेषण बनाता है (स्त्री॰ आ) और संज्ञाएं बनाता है जैसे लोमश (रोमवाला अर्थात् भेड़ पु॰ वा लोमड़ी) (स्त्री॰ आ) लोमन् (रोम) से

८५वां प्रत्यय

स थोड़े विशेषण बनाता है और कभी २ वृद्धि चाहता है जैसे तृणस (घासीला) तृण (घास) से त्रापुष (लोहे के पत्र से बनाहुआ) त्रपु (लोहे का पत्र) से

८१ वां सूत्र

दूसरे भाग के उपपदपद जो पुंलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग के लिए आते हैं

१ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

कृदन्त वा प्रथमपदवाले निमून मूलों में इन आगे आनेवाले कृत् प्रत्ययों के लगाने से बनाएजाते हैं

१ला प्रत्यय

इ तीनों लिङ्गवाली अवस्थावाचक और कर्तृवाचक संज्ञा और विशेषण बनाताहै और कभी२ मूलसम्बन्धी स्वर को गुण वा वृद्धि चाहता है जैसे कवि पु० (कविता करनेवाला) कु से अहि पु० (सांप) अंह् से ध्वनि पु० [घोष] ध्वन् से यजि पु० [पूजनेवाला] यज् से पेपि पु० (वज्र) पिष् [कुचल] से त्विषि स्त्री० [चमक] त्विष् (चमक) से सचि स्त्री० (मित्रता) सच् से रुपि स्त्री० (हलचलाना) रुप् से लिपि (लिखना) लिप् (लीप) से छिदि स्त्री० (बसूला) छिद् (काट) से वारि न० (जल) वृ (घेर) से अक्षि न० (आंख) अश् से शुचि (पवित्र) शुच् (पवित्र हो) से बोधि (जानना) बुध् (जान) से और कभी दुहरावट चाहताहै जैसे जग्मि (शीघ्र) गम् (जा) से जघ्नि (मारना) हन् (मार) से

बहुधा कई उपसर्गों के पीछे धा (रख) के साथ आताहै और पुलिङ्ग संज्ञाएं बनाताहै परन्तु मूल का पिछला वर्ण गिरादियाजाता है जैसे निधि पु० विधि पु० संधि पु० एक दो स्त्रीलिङ्ग निषेध हैं जैसे औषधि

२रा प्रत्यय

ति (नि के सदृश) स्त्रीलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञा और थोड़ी पुलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञा बनाताहै और ८० वें सूत्र के १७ वें (कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया के) प्रत्यय त से बहुत मिलताहै और वैसीही उलटापलटी चाहताहै परन्तु अधिक इ बहुधा नहीं चाहता जैसे श्रुति स्त्री० (सुनना) श्रु से भूति स्त्री० (होना) भू से स्थिति स्त्री० (अवस्था) स्था से मति स्त्री० (समझ) मन् से उक्ति स्त्री० (बो-

ली) पच् (बोल) से पूर्ति स्त्री० (भरावट) पृ (भर) से दत्ति स्त्री० (दान) दा से भित्ति स्त्री० (टुकड़ा) भिद् (फाड़) से परन्तु भूतगुणक्रिया भिन्न होती है छित्ति स्त्री० (फाड़ना) छिद् से [परन्तु भूतगुणक्रिया छिन्न] वृद्धि स्त्री० (इध और ति मिलने से (बढ़ाव) वृध् से यति पु० (जती) यम् (बच) से ज्ञाति पु० (सम्बन्धी) ज्ञा से पति पु० (स्वामी) (पाति के पलटे) पा (बचा) से

३रा प्रत्यय

नि स्त्रीलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाताहै परन्तु बहुतसी अवस्थाओं में उनसे विरुद्ध जो ति से बनाईजाती हैं इसलिए जब कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया अन्त में न रखती है तब संज्ञा बहुधा नि से बनाईजाती है और थोड़ी पुल्लिङ्ग संज्ञा और विशेषण बनाता है जैसे ग्लानि स्त्री० (अनिच्छा) ग्लै (आलसी हो) से लूनि स्त्री० (काटना) लू (काट) से जीर्णि स्त्री० (बुढ़ापा) जॄ से हानि (घाटा) हा से परन्तु भूतगुणक्रिया हीन होती है अग्नि पु० (आग) अङ्ग् या अञ्ज् से वह्नि पु० (अग्नि) वह् (उठा) से वृष्णि पु० (बरसना और मेंढा) वृष् से

४था प्रत्यय

मि जैसे भूमि स्त्री० (पृथ्वी) भू (हो) से दल्मि पु० (वज्र) दल् से ऊर्मि पु० स्त्री० (लहर) (ऋ से होगा) रश्मि पु० (किर्ण) (रश् से होगा) जो रस् के पलटे आता है

५वां प्रत्यय

रि जैसे अंह्रि अङ्घ्रि अश्रि वङ्क्रि वध्रि

६ठा प्रत्यय

वि जैसे मिष्वि शीर्वि जीर्वि जागृवि दाधृवि

७वां प्रत्यय

सि जैसे पासि कुक्षि शुक्षि

२रे प्रकार के वा द्वितीयपदवाले

तद्धित वा द्वितीयपदवाले निमृत प्रथमपदवाले निमृतों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों में इन आगे आनेवाले तद्धित प्रत्ययों के लगने से बनाए जाते हैं (८० वें सूत्र का आरम्भसम्बन्धी २ रे प्रकारवाला वर्णन देखो)

८वां प्रत्यय

अकि पौढ़े पैतृकनाम बनाताहै और पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे वैयासकि (व्यास की सन्तान) व्यास से

९वां प्रत्यय

आयनि पैतृक नाम बनाताहै जैसे वामिनायनि वामिन से (पा० ६. ४. १७४)

१०वां प्रत्यय

इ पैतृक नाम बनाताहै और पहले शब्दभाग में वृद्धि चाहताहै जैसे दौष्यन्ति (दुष्यन्त की सन्तान) ऐसे ही दाशरथि (दशरथ की सन्तान) सौवश्वि (स्वश्व की सन्तान)

११वां प्रत्यय

ताति (ना के सदृश है) वेदसम्बन्धी अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाताहै जैसे देवताति स्त्री० (देवपना) देव से वसुताति (धनवानी) वसु से सर्वताति (सम्पूर्णता) सर्व से

१२वां प्रत्यय

ति जैसे युवति (तरुणी) युवन् से स्त्री० (पा० ६. ३, ७७)

८२ वां सूत्र

तीसरे भागवाले अपूर्णपद जो तीनों लिङ्गों के लिए अन्त में उ रखते हैं

१ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

कृदन्त वा प्रथमपदवाले निमृत मूलों में इन आगे आनेवाले कृत् प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

१ ला प्रत्यय

अथु (जिसको अथुच् कहते हैं) मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहता है जैसे क्षयथु पु० (नाश) क्षि (बिगड़) से श्वयथु पु० (सूजन) श्वि से ऐसे ही वेपथु वमथु

२ रा प्रत्यय

आतु जैसे जीवातु पु० स्त्री० न० (जीव इत्यादि) जीव् (जी) से

३ रा प्रत्यय

आरु जैसे शरारु (हानिकारी) शृ (सता) से वन्दारु (सुशील) वन्द् (सरा

इ) से

४ था प्रत्यय

आलु (ऊपरवाले आरु के सदृश) जैसे शयालु (सोनेवाला) शी (सो) से स्पृहयालु (इच्छावान) स्पृह् (१० वां गण) (चाह) से

५ वां प्रत्यय

इत्नु १० वें गण के क्रियासम्बन्धी अपूर्णपदों से विशेषण इत्यादि बनाताहै जैसे गदयित्नु (बक्की) गद् (बोल) से स्तनयित्नु पु० (गर्ज) स्तन् (शब्दकर) से

६ठा प्रत्यय

इष्णु (इलु के सदृश) जो स्नु के समान है) जैसे क्षयिष्णु (नाश पानेवा- ला) क्षि से भविष्णु (जो भूष्णु के समान है) होनेवाला) भू से

७ वां प्रत्यय

उ (जिसको कु डु उ ड्डन् उण् ऋुण् कहते हैं) विशेषण बनाता है (स्त्री० उस् अथवा वी) और थोड़ी संज्ञाएं बनाता है और मूलसम्बन्धी स्वर की बहुधा उ- लटापलटी चाहता है जैसे पृथु (चौड़ा) पृथ् (फैल) से मृदु (कोमल) मृद् (कुच- ल) से स्वादु (मीठा) स्वद् वा स्वाद् से लघु (हलका) लंघ् (उछल) से तनु (प- तला) तन् (तान) से आशु (शीघ्र) बन्धु पु० (नातेवाला) बन्ध् (बांध) से भिदु पु० (वज्र) भिद् (फाड़) से कारु पु० (शिल्पकार) कृ (कर) से तनु स्त्री० (शरीर) तन् से दारु न० (लकड़ी) दृ (फाड़) से मधु न० (मधु)

और इच्छार्थक के अपूर्णपदों से इच्छार्थक विशेषण बनाता है (कभी कोई कर्म

चाहता है (८२४वां सूत्र देखो) जैसे जिगमिषु (जानाचाहनेवाला) गम् (जा) के इच्छार्थक अपूर्णपद जिगमिष से ऐसे ही दिदृक्षु (देखाचाहनेवाला) जिगीषु (जीताचाहनेवाला)

८वां प्रत्यय

तु (जिसको तु और तुन् कहते हैं) बहुधा पुंल्लिङ्ग कर्तृवाचक नाम इत्यादि बनाता है जैसे गन्तु पु० (बटोही) गम् (जा) से यातु (जानेवाला) इत्यादि अर्थात् समय) या (जा) से भातु पु० (सूर्य) भा (चमक) से (भानु के सदृश) जन्तु पु० (जीवधारी जन् से) क्रतु पु० (क्रतु) क्र (जा) से वस्तु न० (पदार्थ) और वास्तु पु० न० (घर की प्रतिष्ठा) वस् (रह) से

देखो यिह प्रत्यय कर्मवाचक होके भाववाचक बनाने में काम आता है जैसे यातुम् (जाना अर्थात् जाने को) ऋग्वेद में दूसरे कारक भी जैसे सम्प्रदानवाचक और सम्बन्धवाचक भाववाचकों के सदृश आते हैं जैसे यातवे यातवै यातोः [४५८ और ४५९वां सूत्र देखो)

९वां प्रत्यय

नु (जिसको क्नु और नु कहते हैं) जैसे गृध्नु (लालची) गृध् (ललचा) से त्रस्नु (डरपोक) त्रस् (कांप) से सूनु पु० (बेटा) सूनु [वा सूनू स्त्री० [बेटी] सु (उत्पन्न कर) से भानु पु० (सूर्य) भा से धेनु स्त्री० (दुधेल गाय) धे (चूस) से

१०वां प्रत्यय

यु जैसे शुन्ध्यु पु० (चमकनेवाला अर्थात् आग) शुन्ध् (पवित्र कर) से जन्यु (प्राणी) जन् से मन्यु (क्रोध) मन् (सोच) से ऐसे ही भुज्यु दस्यु मृत्यु

११वां प्रत्यय

रु जैसे भीरु (कर्त्ता रुः वा रूः स्त्री०) (डरपोक) भी [डर] से अश्रु (आं-सू) अश् से मिलाहुआ बनाते हैं

१२वां प्रत्यय

स्नु (जैसा इष्णु) जैसे स्थास्नु (दृढ़) स्था [खड़ाहो] से जिष्णु (जीतनेवा-ला) जि (जीत) से भूष्णु (होनेवाला) भू (हो) से

२ रे प्रकार के वा द्वितीयपदवाले

तद्धित वा द्वितीयपदवाले निमूल प्रथमपदवाले निमूलों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्ण-पदों में इन आगे आनेवाले तद्धित प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

१३वां प्रत्यय

यु बहुधा चाहने के अर्थ में विशेषण बनाताहै और थोड़ी संज्ञाएं ऊर्णायु (ऊ-नी) ऊर्णा से स्वर्यु (स्वर्ग कामी) स्वर् (स्वर्ग) से ऐसे ही शुभंयु कंयु अहंयु अंभयु

१४वां प्रत्यय

लु जैसे कृपालु दयालु (कृपा वा दयावाला) कृपा और दया से

ई और ऊ अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद [१२३ वां सूत्र देखो]

१५ वां प्रत्यय

ई बहुत से स्त्रीलिङ्ग नाम बनाताहै सो अपने अनुरूप पुलिङ्ग प्रत्ययों के नीचे

मिलेंगे (८० वें सूत्र का पहला इत्यादि प्रत्यय और १२३ वें सूत्र से १२६ वें सूत्र तक देखो) और दूसरे नाम भी बनाता है जिनमें से बहुतसे एक शब्दभागवाले होतेहैं और बहुधा अकेला मूल रखते हैं सो नाम के सदृश आते हैं जैसे भी स्त्री० (डर) धी स्त्री० (समझ) श्री स्त्री० (वृद्धि) स्त्री (नारी) लक्ष्मी स्त्री० (लक्ष्मी) नी पु० स्त्री० (मुखिया) (इसी से सेनानी पु० (सेनापति) बनाहै) ग्रामणी पु० स्त्री० (गांव का स्वामी)

१६वां प्रत्यय

ऊ स्त्री० नाम बनाताहै सो अपने अनुरूप पु० प्रत्ययों के तले मिलेंगे जैसे भीरू सूनू (८२ वें सूत्र का ९ वां और ११ वां प्रत्यय और १२५ वां और १२६ वां सूत्र देखो) और दूसरे नाम भी बनाता है जो कभी एक शब्दभागवाले होतेहैं और अकेला मूल रखते हैं और नाम के सदृश आते हैं जैसे लू पु० स्त्री० (काटने वाला) भू स्त्री० (पृथ्वी) स्वयम्भू पु० (आप होने वाला) वधू स्त्री० (स्त्री)

८३ वां सूत्र

चौथे भागवाले अपूर्णपद तीनों लिङ्ग के लिए अन्त में कृ रखते हैं

१ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

कृदन्त वा प्रथमपदवाले निम्न मूलों में इस आगे आनेवाले कृत् प्रत्यय के लगने से बनाएजाते हैं

१ला प्रत्यय

तृ पहले तीनों लिङ्गवाली कर्तृवाचक संज्ञा और एक प्रकार की भविष्यतगुण-क्रिया बनाताहै और मूल की वैसीही उलटापलटी चाहताहै जैसी प्रथमभविष्यत् में होती है और तृ की भी वैसी ही गुणतासम्बन्धी उलटापलटी चाहता

है जैसी उसमें होती है (३८६ वां और ५८३ वां सूत्र देखो) जैसे क्षेप्तृ (फेंकनेवाला) क्षिप् से दातृ (देनेवाला) दा से भर्तृ (बचानेवाला) भृ (उठा) से बोद्धृ (जाननेवाला) बुध् से सोढृ (सहनेवाला) सह्) से भवितृ (होनेवाला) भू (हो) से (रघुवंश ६, ५२)

दूसरे सम्बन्धसूचक पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग नाम बनाता है परन्तु मूलसम्बन्धी स्वर की बहुधा उलटापलटी होती है जैसे पितृ (पिता) पा (बचा) से मातृ (माता) मा (बना वा उत्पन्न कर) से भ्रातृ (भाई) भृ (सहाय कर) से

८४ वां सूत्र

पांचवें भागवाले अपूर्णपद तीनों लिङ्ग के लिए अन्त में त् और द् रखते हैं

१ ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

छदन्त वा प्रथमपदवाले निसृत मूलों में इन आगे आनेवाले छन् प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

१ ला प्रत्यय

अत् वर्तमान और द्वितीय भविष्यत के अपूर्णपदों से यथाक्रम वर्तमान और भविष्यत गुणक्रिया बनाता है (५२४, ५७५ और ५७८ वां सूत्र देखो) जैसे अदत् (खाताहुआ) अद् से चिन्वत् (जोड़ताहुआ) चि से करिष्यत् (कियाचाहताहुआ) कृ से दधत् (रखताहुआ) धा से

२ रा प्रत्यय

इत् थोड़ी संज्ञा और विशेषण बनाता है जैसे सरित् (नदी) सृ (बह) से हरित् (हरा)

३ रा प्रत्यय

तू बहुधा उन मूलों से लगता है जो अन्त में ह्रस्व स्वर रखते हैं और कर्तृ
वाचक नाम और संज्ञा और विशेषण बनाता है जो बहुधा मिश्रित शब्दों के अ
न्त में आते हैं जैसे जित् (जीतनेवाला) सर्वजित् (सब को जीतनेवाला) में जि
से कृत् (करनेवाला) कर्मकृत् (काम करनेवाला) में कृ से
कभी तू मूल के पिछले म् के पलटे आता है बहुधा मिश्रित शब्द के अन्त में
जैसे गम् अध्वगत् पु० (यात्री) में गम् (जा) से

४था प्रत्यय

इस भांति के शब्दों में थोड़े नाम ऐसे आते हैं जो पहले से द् अन्त में
हैं जैसे शरद् स्त्री० (शीतकाल) दृशद् स्त्री० (पत्थर) कुमुद् न० (कमल
उपरान्त थोड़े एकशब्दभागवाले नाम भी आते हैं सो उन अकेले मूलों से
जो अन्त में त् वा द् रखते हैं और उलटापलटी उठाए बिना
और कर्तृवाचक नामों के सदृश आते हैं इन को क्विप् प्रत्यय के लगने से
आ समझते हैं जिसका क्, इ और प् गिरके केवल व् रहजाता है और
पलटे शून्यस्थान छोड़ते हैं (८७ वां सूत्र देखो) जैसे चित् स्त्री० (मन
(प्रसन्नता) विद् (जाननेवाला) जैसे धर्मविद् (धर्म जाननेवाला) में
वाला) क्रव्याद् (मांस खानेवाला) में द्युत् स्त्री० (चमक) पद् पु०
इस भांति की कोई२ संज्ञा त् वा द् वा कोई ह्रस्व स्वर अन्त
मूलों के पहले उपसर्ग लगाने से बनती हैं जैसे सम्पद् स्त्री० (फल
द् स्त्री० (लगाव) विद्युत् स्त्री० (बिजली) उपनिषद् (ज्ञानसम्बन्धि
वित् (झगड़ा) सम् + इ (साथ जा) से

२रे प्रकार के वा द्वितीयपद वाले

... वा द्वितीयपदवाले निमूल प्रथमपदवाले निमूलों के संज्ञा
... के लगने से बनाए जाते

५वां प्रत्यय

तात् वेदसम्बन्धी प्रत्यय है (तातिं के सदृश ८१ वें सूत्र का १९ वां प्रत्यय देखो) जैसे देवतात् स्त्री० (पूजा) सत्यतात् (सचाई)

६ठा प्रत्यय

मत् (जिसको मतुप् और ड्मतुप् कहते हैं) थोड़े विशेषण बनाता है (स्त्री० अती) और आगे आनेवाले वत् के सदृश रखनेवाला भराहुआ इत्यादि का अर्थ देता है और जो अपूर्णपद अन्त में इ वा ई वा उ रखते हैं उनसे लगताहै जैसे अग्निमत् (आग रखनेवाला) श्रीमत् (प्रतापी) धीमत् (बुद्धि रखनेवाला) अंशुमत् (चमकनेवाला) यवमत् (जौ रखनेवाला) मधुमत् (मधु रखनेवाला) विद्युन्मत् जैसा विद्युत्वत् (बिजली रखनेवाला) विद्युत् से ज्योतिष्मत् (चमकनेवाला) ज्योतिस् (चमक) से धनुष्मत् (धनुष रखनेवाला) (६९ वां सूत्र देखो) अर्चिष्मत् (चमकनेवाला) [६९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

७वां प्रत्ययय

वत् (जिसको वतुप् और वति कहते हैं) पहले विशेषण बनाताहै) स्त्री० वती) और रखनेवाला इत्यादि का अर्थ देता है और जो अपूर्णपद अन्त में अ वा आ वा म् रखते हैं अथवा कोई दूसरा व्यञ्जन रखते हैं उन मे लगता है जैसे धनवत् (धन रखनेवाला) अश्ववत् (अश्व रखनेवाला) वीरवत् (वीर रखनेवाला) शिखावत् (चोटी रखनेवाला) शिखा से विद्यावत् (विद्या रखनेवाला) विद्या से राजवत् वा राजन्वत् [५७ वां सूत्र देखो], (राजा रखनेवाला) राजन् से अग्निवत् अग्निमत् के सदृश (आग रखनेवाला) किम्वत् (क्या रखनेवाला) पद्वत्

[पांव रखनेवाला] पद् (पांव) से विद्युत्वत् (बिजली रखनेवाला) विद्युत् से [मत् के नले देखो) तेजस्वत् (चमकनेवाला) तेजस् (चमक) से भास्वत् (चमकनेवाला अर्थात् सूर्य्य) पु० भास् (चमक) से स्रुग्वत् (करछी रखनेवाला) स्रुच् से

दूसरे कर्तृवाचक भूतगुणक्रिया बनाता है (५५३ वां सूत्र देखो) जैसे कृतवत् (वुह जिसने किया है भग्नवत् (वुह जिसने तोड़ा है]

वत् प्रत्यय के लिए जैसे तावत् (तितना) यावत् (जितना) इत्यादि में (२३४ वां सूत्र देखो) और क्रियाविशेषणसम्बन्धी प्रत्यय वत् के लिए जो सदृशता का अर्थ रखता है (७२४ वां सूत्र देखो)

८५ वां सूत्र

छठे भागवाले अपूर्णपद तीनों लिङ्ग के लिए अन्त में अन् और इन् रखते हैं.

१ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

छठे-वा प्रथम रखवाले निमूल मूलों में इन आगे आनेवाले कृत् प्रत्ययों के लगने से बनाए जाते हैं

१ला प्रत्यय

अन् कई संज्ञाएं बहुधा पुल्लिङ्ग बनाता है जैसे राजन् पु० (राजा) राज्ञी (रानी) (५०वें सूत्र की ३री शाखा देखो) राज् (आज्ञाकर) से तक्षन् पु० (बढ़ई) तक्ष् (काटके बना) से स्नेहन् पु० (मित्र) स्निह् (प्यारकर) से उक्षन् पु० (सांड) उक्ष् (गर्भ रख) से अश्मन् पु० (पत्थर) अश् से उदन् न० (जल) उद् वा उन्द् (भिगो) से

२रा प्रत्यय

इन् बहुतसी संज्ञाएं विशेषण और कर्तृवाचक बनाता है (स्त्री० इनी) जैसे मथिन् पु० (रई) मथ् (बिलो) से पथिन् पु० (मार्ग) पथ् (जा) से (१६२

सूत्र देखो).कारिन् पु०(कर्ता) कृ (कर) से द्वेषिन् पु० (शत्रु) द्विष् (अनिच्छाकर) से (द्वितीयपदशाला ६ ठा प्रत्यय इन् देखो)

३रा प्रत्यय

त्वन् (स्त्री० त्वरी) आगे आनेवाले वन् के तले देखो.)

४था प्रत्यय

मन् (जिसको) मनिन् मनि और मनिण् कहते हैं) और इमन् थोड़ी न० और थोड़ी पु० अर्थवाचक संज्ञाएं बनाताहै और कभी २ विशेषण भी और बहुधा मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहताहै परन्तु इमन् बहुधा पु० के लिये आताहै जैसे कर्मन् न० (काम) कृ (कर) से जन्मन् या जनिमन् न० (जन्म) जन् (उत्पन्नकर) से वेश्मन् न० (घर) विश् (प्रवेशकर) से नामन् (पलटे ज्ञामन्) के (नाम) ज्ञा (जान) से शर्मन् न० (प्रसन्नता) श्रि से निकला होगा प्रेमन् पु० न० (प्रीति) प्री (प्रसन्नकर) से ऊष्मन् पु० (उष्णता) उष् (जला) से ऐसे ही सीमन् स्त्री० (सीव) अश्मन् पु० (पत्थर) शुष्मन् पु० (आग या शक्ति) न० पाप्मन् पु० (पाप)

कभी अधिक इ पाहताहै (और वेदसम्बन्धी ई) परन्तु इस अवस्था में बहुधा पु० रहताहै (द्वितीयपदशाला प्रत्यय इमन् देखो) जैसे सरिमन् या सरीमन् पु० (वेद में) (जाताहुआ) सृ (जा) से स्तरिमन् या स्तरीमन् (वेद में) (बिछोना) स्तृ (बिछा) से परिमन् पु० (रूप) धृ (रख) से ग्रहिमन् पु० (समय) ग्रह (पकड़) से

५वां प्रत्यय

वन् (जिसको क्वनिप् और वनिप् कहते हैं) संज्ञाएं विशेषण और कर्तृवाच-

क संज्ञाएं बनाता है स्त्री० बहुधा वरी होता है (प्रत्यय वर जिससे वह निकला जान पड़ता है देखो) जैसे पद्वन् पुं० (मार्ग) पद् [जा] से मद्वन् [स्त्री० वरी] मतवाला) मद् (प्रसन्न करना से) ऋक्वन् (स्त्री० वरी) (सराहनेवाला) अर्च् अथवा ऋच् से दृश्वन् [वह जिसने देखा है मिश्रित शब्द के अन्त में आता है] दृश् से यज्वन् (स्त्री० वरी) (यज्ञ करनेवाला) यज् से

जब कोई मूल अन्त में ह्रस्व स्वर रखता है तब त् बढ़जाता है जैसे कृत्वन् (स्त्री० वरी) (करनेवाला) कृ से जित्वन् (जीतनेवाला) जि से इत्वन् [जानेवाला] इ से

२रे प्रकार के वा द्वितीयपदवाले

तद्धित वा द्वितीयपदवाले निसृत प्रथमपदवाले निसृतों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों में इन आगे आनेवाले तद्धित प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

६ठा प्रत्यय

इन् बहुतसे सम्बन्धवाचक इत्यादि विशेषण बनाता है जैसे धनिन् (धनवाला) धन से बलिन् [बलवाला] बल से मालिन् (मालावाला) माला से व्रीहिन् (चावलवाला) व्रीहि (चावल) से केशिन् (बालवाला) केश (बाल) से पद्मिन् (कमलवाला) पद्मिनी स्त्री० [कमल का समूह] पद्म (कमल) से

७वां प्रयत्य

इमन् (जिसको इमनिच् और इमनिन् कहते हैं) पुलिङ्ग अवस्थावाचक संज्ञाएं बनाता है विशेष करके विशेषणसम्बन्धी अपूर्णपदों से जिनके पिछले वर्ण बहुधा छोड़ दिएजाते हैं और वैसी ही उलटापलटियां होती हैं जैसी अतिशय और अत्यन्ततामूचक प्रत्यय ईयस् और इष्ठ के पहले होती हैं (८५वें सूत्र का)

या इन् प्रत्यय इमन् देखो) जैसे कालिमन् (कलौस) काल (काला) से लघिमन् (हलकाई) लघु (हलका) से महिमन् (बड़ाई) महत् (बड़ा) से ऐसेही गरिमन् द्राघिमन् प्रथिमन् इत्यादि (१९१वें सूत्र में अतिशयसूचक देखो)

८वां प्रत्यय

मिन् सम्बन्धवाचक विशेषण बनाता है (प्रत्यय इन् विन् वन् मन् देखो) जैसे वाग्मिन् (अच्छी वाणी वाला) वाच् (बोली) से गोमिन् (गायवाला) गो (गाय) से स्वामिन् (स्वामी) स्व (आप) से

९वां प्रत्यय

विन् विशेषण बनाताहै बहुधा उन अपूर्णपदों से जो अन्त में आ या अस् रखतेहैं जैसे मेधाविन् (बुद्धिवान) तेजस्विन् (तेजवान) (६९वां सूत्र देखो) स्रग्विन् (हार पहरनेवाला) स्रज् से

८६ वां सूत्र

सातवें भागवाले अपूर्णपद तीनों लिङ्ग के लिए अन्त में अस् इस् और उस् रखते हैं

२ रे प्रकार के वा द्वितीयपद वाले

कृदन्त वा प्रथम पद वाले निमृत मूलों में इन आगे आनेवाले कृत् प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

१ ला प्रत्यय

अस् बहुतसी संज्ञाएं बनाता है बहुतकरके नपुंसकलिङ्ग और थोड़े विशेषण और मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहताहै जैसे मनस् न० (मन) मन् (सोच)

से ऐसेही नमस् न० (नमस्कार) तपस् [तप] तमस् न० (अंधेरा) जनस् न० (वंश) सरस् न० (जल) सृ [जा] से चेतस् न० (चित) चित् से स्रोतस् न० (धार) स्रु (बह) से (परन्तु इस दशा में त् बढ़ता है) उषस् स्त्री० (कर्त्ता आस् षा आः) (सवेरा) उष् (जो वस् के समान है) (चमक) से जरस् स्त्री० (बुढ़ापा) जॄ (बूढ़ा हो) से (१७१ वां सूत्र देखो) वेधस् (कर्त्ता पु० स्त्री० न० आस्, (आः) आस् (आ) अस् (अः) (उत्पन्न करताहुआ) अर्थात् ब्रह्म)

२ रा प्रत्यय

इस् (जैसा ऊपर बताया है) जैसे हविस् न० (घी) हु (चढ़ा) से ऐसे ही अर्चिस् ज्योतिस् द्योतिस् रोचिस् शोचिस् न० (चमक) अर्च् ज्युत् द्युत् रुच् शुच् (चमक) से

३ रा प्रत्यय

उस् (जो ८६वें सूत्र के पहले प्रत्यय अस् के समान है) जैसे चक्षुस् न० (आंख) चक्ष् (देख) से ऐसे ही वपुस् न० (शरीर) तनुस् न० (शरीर) परुस् पु० न० (पाप) जनुस् न० (जन्म) मनुस् पु० (पुरुष)

४था प्रत्यय

वस् और इवस् (कर्त्ता पु० स्त्री० न० वान् उषी वत्) दुहराएहुए पूर्ण भूत के अट्ठपदों से पूर्णभूत गुणक्रिया बनाता है (५५४वां सूत्र देखो) जैसे विद्वस् (बुद्धिमान जाननेवाले) विद् से (१६८वें सूत्र की ५वीं शाखा में विद् देखो) ऐसेही चकृवस् अग्निवस् इत्यादि (१६८वां सूत्र देखो)

२ रे प्रकार के वा द्वितीयपदवाले

तद्धित वा द्वितीयपदवाले निमृत प्रथमपदवाले निमूतों के संज्ञासम्बन्धी अपूर्ण-दों में इन आगे आनेवाले तद्धित प्रत्ययों के लगने से बनाएजाते हैं

५वां प्रत्यय

ईयस् अतिताबूचक पद बनाता है । १६७ वां १९३ वां और १९४ वां सूत्र खो] जैसे वलीयस् (अति बलवान) बल से जो पलटे बलिन् वा बलवत् के आ हि देखो यिह प्रत्यय बहुतसी अवस्थाओं में द्वितीयपदवाला होने के पलटे प्रथम दवाला होके मूल से अथवा सुधारेहुए मूल से लगता जानपड़ता है जैसे उरु (चौ !) होताहै वरीयस् उ से (८० वें सूत्र का २८ वां प्रत्यय इस देखो,),

छठा प्रत्यय

यस् (जो ऊपरवाले ई म् के समान है) जैसे भूयस् (अति अधिक वा अ-मेकता) बहु का अतितासूचक (१९४ वां सूत्र देखो) ऐसे ही ज्यायस् (१९३ ां सूत्र देखो) नव्यस् (बेद में आताहै) नव (नया) का अतितासूचक

८७ वां सूत्र

आठवें भागवाले अपूर्णपद तीनों लिङ्गों के लिए म् द् न् स् को छोड़के अन्त में मत्येक व्यञ्जन रखतेहैं

१ ले प्रकार के वा प्रथमपदवाले

बहुधा प्रत्येक मूल विनापलटीहुई दशा में संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद होके अके-ला आसकता है और देखने में कोई किसी भांति का प्रत्यय नहीं रखताहै परन्तु व्याकरणी कहते हैं कि कोई शब्द प्रत्यय लगाए बिना नहीं बनसकता इसलिए फिर प्रत्यय लगताहै जिसका और वर्णों को छोड़के केवल व् रहजाताहै सो अपने पलटे शून्यस्थान छोड़ताहै बहुतसे ऐसे अकेले आनेवाले मूल कर्मवाचक संज्ञाएं बनाते हैं विशेषकरके मिश्रितों के अन्त में आके

जो मूल अन्त में त् वा द् वा कोई ह्रस्व स्वर रखते हैं और अधिक त् रखते हैं सो आगे बताचुके हैं कि पांचवें भाग में आते हैं (८४ वें सूत्र का ३ रा और १ या प्रत्यय देखो) यिह आठवां भाग सब दूसरे मूलों के लिए है जो उनको छोड़ अन्त में कोई दूसरे व्यञ्जन रखते हैं जैसे भुज् (कर्त्ता भुक्) (खानेवाला) ऐसेही बुध् (कर्त्ता भुत्) (जाननेवाला) [४४ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) स्पृश् (कर्त्ता स्पृक्) (छूनेवाला) विश् (कर्त्ता विट्) (प्रवेशकरनेवाला) जब वैश्य का अर्थ देता है तब पु० होताहै और जब घर का अर्थ देता है तब स्त्री० लिह् (कर्त्ता लिट्) (चाटनेवाला) दुह् (कर्त्ता धुक्) (दोहनेवाला)

१ ली शाखा

कोई२ मूल उलटापलटी चाहते हैं जैसे प्राछ् (कर्त्ता प्राट्) [पूछनेवाला) ऐसे ऐसेही कभी इच्छार्थक का अपूर्णपद भी अकेला आताहै जैसे पिपक्ष् (कर्त्ता पिपक्) (पकाया चाहनेवाला)

२ री शाखा

बहुतसे मूल इस रीति से आके संज्ञाएं बनाते हैं जैसे युध् स्त्री० (कर्त्ता युत्) (लड़ाई) क्षुध् स्त्री० (कर्त्ता क्षुत्) (भूख) और कोई२ मूलसम्बन्धी स्वर की उलटापलटी चाहते हैं जैसे वाच् स्त्री० [कर्त्ता वाक्] (बोली) वच् (बोल) से पुर् स्त्री० (कर्त्ता पूर्) (नगर) पृ से बनाहोगा गिर् स्त्री० (कर्त्ता गीर्) (प्रशंसा) गृ से

३ री शाखा

जो मूल अन्त में अनुनासिक रखते हैं जब इस रीति से आते हैं विशेषकर मिश्रितों के अन्त में तब बहुतसे उस अनुनासिक को गिरादेतेहैं अथवा उसके पलटे त् पढ़ण करलेतेहैं (८४ वें सूत्र का १ ग प्रत्यय त् देखो) गम् (जा) होताहै ग वा गत् जन् होताहै ज हन् होताहै ह वा घ्न

४थी शाखा

थोड़े से शब्दसाधवाले नाम मूलों से बनते हैं सो इस आठवें भाग में आते हैं जैसे सृष्टज् (कर्त्ता सृष्टक्) (माला) असृज् न० (कर्त्ता असृक्) (रुधिर) ऐसेही थोड़ी संज्ञाएं मूलों में उपसर्ग लगने से बनती हैं जैसे समिध् कर्त्ता समित् (ईंधन)

चौथा अध्याय

द्रव्यवाचक और गुणवाचक संज्ञाओं के अपूर्ण पदों की वर्तनी

सामान्य वर्णन

८८ वां सूत्र

प्रत्येक संज्ञा के अपूर्णपद का मूल से बनाना बनाके अब उसका विभक्तिसम्बन्धी अन्तों के साथ लगाना बतायाजाता है

पिछले अध्याय में द्रव्यवाचक और गुणवाचक संज्ञाओं के उनके अपूर्णपदों के पिछले वर्णों के अनुसार आठ भाग बनाए हैं पहले चार उन अपूर्णपदों के हैं जो अन्त में स्वर रखते हैं और पिछले चार उन अपूर्णपदों के हैं जो अन्त में व्यञ्जन रखते हैं इस अध्याय में उसी क्रम से उनकी वर्तनी के भी आठ भाग किएजाते हैं प्रत्येक भाग में जैसे गुणवाचक संज्ञाएं आती हैं वैसेही द्रव्यवाचक संज्ञाएं आती हैं इसलिए द्रव्यवाचक संज्ञा के पुंल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दृष्टान्त ऐसे ही आते हैं जैसे गुणवाचक संज्ञाओं के अर्थात् दोनों की वर्तनी तीनों लिङ्गों में जि-

स भाग के होते हैं उस भाग में एक सी ही होती है

संज्ञाओं के लिङ्ग

८१ वां सूत्र

प्रत्येक संज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं सो उसके अपूर्णपद के अन्त से जानपड़ते हैं जैसे जो अपूर्णपद अन्त में आ या ई अथवा ति रखते हैं (८१ वें सूत्र का २ रा प्रत्यय देखो) सो सब स्त्रीलिङ्ग होते हैं और जो अवस्थावाचक और करणवाचक नाम प्रत्यय अन या त्व से बनते हैं (८० वें सूत्र का ६८ वां प्रत्यय देखो) अथवा प्रत्यय य वा त्र से बनते हैं (८० वें सूत्र के नीचे देखो) अथवा प्रत्यय अस् इस् वा उस् से बनते हैं (८६ वां सूत्र देखो) अथवा प्रत्यय मन् से बनते हैं (८५ वें सूत्र का ४ था प्रत्यय देखो) सो बहुत से नपुन्सकलिङ्ग होते हैं और जो प्रत्यय न से बनते हैं (८० वें सूत्र का २४ वां प्रत्यय देखो) और इमन् से (८५ वें सूत्र का ७ वां प्रत्यय देखो) सो बहुधा पुल्लिङ्ग होते हैं परन्तु जो अन्त में अ इ उ और ऋ रखते हैं सो किसी सूत्र के अनुगामी नहीं होते परन्तु ऐसी अवस्थाओं में पढ़ले कर्त्ता अच्छा उपदेशक है जैसे देवः (देवता) पु० है परन्तु फलम् (फल) नपुन्सकलिङ्ग है दूसरे शब्द का अर्थ अच्छा उपदेशक है जैसे पितृ (पिता) पु० है और मातृ (माता) स्त्री० है

यिह भी जानना चाहिए कि जो शब्द देवताओं पहाड़ों समुद्रों और समय के नामों का अर्थ रखते हैं सो बहुधा पु० होते हैं और जो नदियों पृथ्वी और रात का अर्थ देते हैं सो बहुधा स्त्री० होते हैं और जो विशेषण और गुणक्रिया अव्ययवाचक होके आते हैं और जो जंगलों फूलों फलों नगरों और जल के नाम होते हैं सो बहुधा नपुन्सकलिङ्ग होते हैं

संज्ञाओं की विभक्तियां

९० वां सूत्र

संस्कृत में प्रत्येक वाक्य के शब्दों में जो सम्बन्ध होते हैं सो सब विभक्तियों से बनाएजाते हैं (पा॰ १, ३, १०३) बहुत से उपसर्ग भी हैं परन्तु पिछले वैदिक संस्कृत में वे विभक्तियों का काम नहीं करते केवल क्रियाओं और संज्ञाओं के पहले आते हैं इसलिए आठ विभक्तियां करनीपड़ी हैं ये विभक्तियां अपूर्णपदों से बनती हैं और पहली दूसरी इत्यादि कहीजाती हैं पहली विभक्ति को कर्त्तावाचक वा प्रथमा कहते हैं दूसरी को कर्मवाचक वा द्वितीया तीसरी को करणवाचक वा तृतीया चौथी को सम्प्रदानवाचक वा चतुर्थी पांचवीं को अपादानवाचक वा पंचमी छठी को सम्बन्धवाचक वा षष्ठी सातवीं को अधिकरणवाचक वा सप्तमी और आठवीं को सम्बोधनवाचक वा अष्टमी (९२वां सूत्र देखो)

१ ली विभक्ति कर्तृवाचक वा कर्त्तावाचक है १ सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है सो किसी क्रिया का कर्त्ता अर्थात् करनेवालाहै जैसे मैंने उसको किया यहां (मैंने) कर्त्ता है सो पहली विभक्ति में आया है परन्तु कर्त्ता सदा पहली विभक्ति में नहीं आता तीसरी विभक्ति में भी आता है जैसे वुह मुझसे कियागया यहां (मुझसे) कर्त्ताहै सो तीसरी विभक्ति में आयाहै अपनी भाषा में जब कर्त्ता पहली विभक्ति में आताहै तब कुछ चिन्ह नहीं रखता परन्तु जब क्रिया भूतकालवाली और सकर्मक होती है तब उसका चिन्ह (ने) होताहै जैसे मैं करता हूं और मैंने किया ।

टीका

१ ये विभक्तियां संक्षिप्तता के लिए कभी २ अपने अंक और आद्य शब्दभाग से भी लिखीजायगी जैसे पहली विभक्ति के पलटे १ वि॰ और दूसरी विभक्ति के पलटे २ वि॰ इत्यादि

२ री विभक्ति कर्मवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है सो किसी क्रिया का सहनेवाला है जैसे मैंने उसको किया यहां (उसको) कर्म है सो दूसरी विभक्ति में आया है परन्तु कर्म सदा दूसरी विभक्ति में नहीं आता प-

इसी विभक्ति में भी आता है जैसे पुष्ट गुरु से किया गया यहां (पुंड) कर्म है सो पहली विभक्ति में आयाहै जब कर्म दूसरी विभक्ति में आताहै तब उसका चिन्ह अपनी भाषा में बहुधा (को) होताहै जैसे उसको

३ री विभक्ति करणवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आताहै सो किसी क्रिया को करने का सहाय अर्थात् सहायक होताहै और अपनी भाषा में (से वा सहायता से) का अर्थ देताहै और पण्डित लोग इसका अर्थ (करके) करते हैं जैसे तेनकृतम् (उससे वा उसकी सहायता से वा उस करके किया हुआ) ‡

४ थी विभक्ति सम्प्रदानवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है सो लिए निमित्त को इत्यादि का अर्थ देताहै जैसे तस्मै (उस के लिए इत्यादि)

५ वीं विभक्ति अपादानवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है सो अलग करने वा होने का अर्थ रखता है और अपनी भाषा में (से वा मेंसे वा पाससे इत्यादि) का अर्थ देता है जैसे तस्मात् (उससे वा उसमें से वा उसके पास से)

६ ठी विभक्ति सम्बन्धवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आताहै सो किसी से किसी प्रकार की मिलावट वा लगावट रखताहै और अपनी भाषा में (का वा के वा की) का अर्थ देताहै जैसे तस्य (उसका वा उसके वा उसकी)

टीका

‡ सम्बन्धवाचक संस्कृत में रखने का अर्थ रखता है परन्तु और भी कई अर्थ देता है (८१५ वां और ८१६ वां सूत्र देखो)

७ वीं विभक्ति अधिकरणवाचक है सो यिह दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है सो किसी क्रिया के किएजाने का स्थान वा समय होताहै और अपनी भाषा में (में वा पर इत्यादि) का अर्थ देताहै जैसे तस्मिन् (उसमें वा उसपर अ

र्थात् उस स्थान में वा उसस्थानपर अथवा उससमय में वा उस समयपर) ।

टीका

† करणवाचक और अधिकरणवाचक और भी कई प्रकार के अर्थ रखते हैं (८०५ वां और ८१७ वां सूत्र देखो ।

८ आठवीं विभक्ति सम्बुद्धि वा सम्बोधनवाचक है सो चिह्न दिखाती है कि जो इस विभक्ति में आता है उस को कोई बुलाता है जैसे हे राम (ओ राम) ।

९१ वां सूत्र

संस्कृत में इन आठ विभक्तियों के तीन वचन हैं एकवचन द्विवचन और बहुवचन और प्रत्येक वचन के लिये एक२ मुख्य अन्त है सो पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में एकसा काम आताहै †.

टीका

† देखो संक्षिप्तता के लिये कभी एकवचन को ए० व० द्विवचन को द्वि० व० और बहुवचन को ब० व० और पुल्लिङ्ग के लिये पु० और स्त्रीलिङ्ग के लिये स्त्री० और नपुंसकलिङ्ग के लिये न० लिखेजाएंगे

व्याकरणियों ने इन अन्तों में से थोड़े अन्तों के साथ कुछ अधिक और संकेतिक वर्ण मिलाये हैं सो कोई मुख्य बात बताते हैं अथवा एक को दूसरे से पृथक करते हैं अथवा प्रत्याहार बनाने में काम आते हैं आगे (आनेवाली टीका देखो) जैसे पहली विभक्ति का एकवचन वाला ठीक अन्त स् है सो क ख् प् फ् के और अघोषयुक्त वर्णों के पहले और प्रत्येक वाक्य के अन्त में विसर्ग होजाताहै (६३ वां सूत्र देखो) परन्तु व्याकरणी उसको सु कहते हैं इसमें उ अधिक है । ऐसेही पहली विभक्ति का बहुवचनवाला अन्त यथार्थ में अस् है परन्तु व्याकरणी जस् कहते हैं इस में ज् अधिक है इन अन्तों के ये दो यंत्र आगे लिखेजाते हैं पहले में अन्त अधिक वर्ण सहित हैं और दूसरे में अधिक वर्ण रहित हैं और पहले में जिस अन्त का पिछला वर्ण स् है दूसरे में उसके पलटे ८ वें सूत्र के दूसरे भाग के अनुसार : विसर्ग है

१ ला यंत्र
अधिक वर्ण सहित अन्तों का

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पहली विभक्ति	सु ‡	औ	जस्
दूसरी विभक्ति	अम्	औट ‡	शस्
तीसरी विभक्ति	टा	भ्याम्	भिस्
चौथी विभक्ति	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पांचवीं विभक्ति	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
छठी विभक्ति	ङस्	ओस्	आम्
सातवीं विभक्ति	ङि	ओस्	सुप्

२ रा यंत्र
पिछले स् को विसर्ग करके अधिक वर्ण रहित अन्तो का

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पहली विभक्ति	(:)	औ	अः
दूसरी विभक्ति	अम	औ	अः
तीसरी विभक्ति	आ	भ्याम्	भिः
चौथी विभक्ति	ए	भ्याम्	भ्यः
पांचवीं विभक्ति	अः	भ्याम्	भ्यः
छठी विभक्ति	अः	ओः	आम्
सातवीं विभक्ति	इ	ओः	सु

टीका

× अधिक उ यिह दिखाताहै कि पिछला स् या (ः) किसी२ स्थान में उ होने के योग्य है द्विवचन वाली दूसरी विभक्ति के औट् का ट् सुट् प्रत्याहार बनाने के लिये है यिह दिखाने को कि ये पांच अन्त पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग नामों के सबल हैं (१३५ वां सूत्र देखो) एकवचन वाली चौथी पांचवीं छठी और सातवीं विभक्ति के अन्तों को पाणिनि ने ङितः अर्थात् ङ् को इत् रखने वाले लिखा है यिह दिखाने के लिये कि वे इन चारों विभक्तियों से लगते हैं और कभी२ अपना प्रतिनिधि चाहते हैं [११२ वें सूत्र में मति और धेनु की और १२३ वें सूत्र में श्री इत्यादि की वर्तनी देखो] प्रत्याहार सुप् एकवचन वाली पहली विभक्ति से बहुवचन वाली सातवीं विभक्ति तक सब विभक्तियों के दिखाने के लिये आताहै प्रत्याहार किसी वर्ग के पहले अंग को पिछले अंग के पहले व्यञ्जन के साथ मिलाने से बनते हैं (१८ वें सूत्र की दूसरी टीका देखो)

९२ वां सूत्र

आठवीं विभक्ति को पहली विभक्ति का एक मुख्य रूप समझते हैं और वुह द्विवचन और बहुवचन में पहली विभक्ति के अनुसार है इसलिये नहीं समझते कि वुह कोई अपना प्रथक अन्त रखती है एकवचन में कभी अपूर्णपद के सदृश होतीहै और कभी एकवचन वाली पहली विभक्ति के परन्तु कभी दोनों से प्रथक होती है †

टीका

† आठवीं विभक्ति में पहले भागवाले अर्थात् बहुत आनेवाले नामों का पुलिङ्ग अपूर्णपद अकेला आता है जैसा गणों के पहले जथेवाली क्रियाओं की वर्तनी में परस्मैपदवाले अनुमत्यर्थनियम का एकवचन द्वितीयपुरुष अपना अन्त छोड़के आता है (२४६ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

जो अन्त आदि में स्वर रखते हैं उनको कभी स्वरादि अर्थात् आदि में स्वर रखनेवाले अन्त कहते हैं और जो आदि में कोई व्यञ्जन रखते हैं उनको व्यञ्जनादि अर्थात् आदि में व्यञ्जन रखनेवाले अन्त कहते हैं इन में पहली विभक्ति का एकवचन भी समझाजाताहै

फिर जो विभक्तियां स्वरादि अन्त ग्रहण करती हैं उनको कभी स्वरसम्बन्धी विभक्ति कहते हैं और व्यञ्जनादि अन्त ग्रहण करती हैं उनको कभी व्यञ्जनसम्बन्धी विभक्ति कहते हैं

ऐसे ही सबल मध्यम और अबलविभक्ति कहीजाती हैं (१३५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१ ला वर्णन

देखो इन अन्तों को आड़ा अर्थात् प्रत्येक विभक्ति को तीनों लिङ्गों में पढ़ना चाहिये खड़ा अर्थात् सब विभक्तियों को द्विवचन छोड़के सीधा एकवचन में न पढ़ना चाहिये इसलिये शस् को दूसरी विभक्ति का बहुवचन और दूसरी सब विभक्तियों को एकवचन द्विवचन और बहुवचन समझना चाहिये और पहली पांचों विभक्तियों को (:) औ अः अम् औ अथवा पहली विभक्ति के एकवचन द्विवचन और बहुवचन और दूसरी विभक्ति के एकवचन और द्विवचन समझना चाहिये

१३ वां सूत्र

इस प्रकार से तीनों वचन में विभक्तिसम्बन्धी प्रत्यय अर्थात् अन्त बनठाके व्याकरणी उनको प्रत्येक द्रव्यवाचक और गुणवाचक और प्रत्येक सर्वनाम और संख्यावाचक और गुणक्रिया से चाहे पुल्लिङ्ग हो चाहे स्त्रीलिङ्ग चाहे नपुंसकलिङ्ग लगाते हैं

यथार्थ में उनका कहना यह है कि संस्कृत में केवल एक वर्तनी है और किसी संज्ञा का अपूर्णपद और यथोचित विभक्तिसम्बन्धी अन्त बताये जावें तो इ ए अपूर्णपद संधि के मुख्यतासम्बन्धी सूत्रों के अनुसार उन अन्तों में लगासकते हैं

जैसे दो अपूर्णपद नौ (नाव) स्त्री॰ और हरित् (हरा) पु॰ स्त्री॰ की इन आगे आनेवाली वर्तनियों से स्पष्ट है

९४ वां सूत्र

नौ [नाव] की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	सूत्र	द्विवचन	सूत्र	बहुवचन	सूत्र
१	नौः नौ + :	८	नावौ नौ + औ	३७	नावः नौ + अः	३७
२	नावम् नौ + अम्	३७	नावौ नौ + औ	३७	नावः नौ + अः	३७
३	नावा नौ + आ	३७	नौभ्याम् नौ + भ्याम्	०	नौभिः नौ + भिः	०
४	नावे नौ + ए	३७	नौभ्याम् नौ × भ्याम्	०	नौभ्यः नौ + भ्यः	०
५	नावः नौ + अः	३७	नौभ्याम् नौ + भ्याम्	०	नौभ्यः नौ + भ्यः	०
६	नावः नौ + अः	३७	नावोः नौ + ओः	३७	नावाम् नौ + आम्	३७
७	नावि नौ + इ	३७	नावोः नौ + ओः	३७	नौषु नौ + षु	७०

९५ वां सूत्र

हरित् [हरा] की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	सूत्र	विधि	शाखा	द्विवचन	सूत्र	शाखा	बहुवचन	सूत्र	शाखा
१	हरित् हरित् + :	४१	१		हरितौ हरित्+ औ	४३	४	हरितः हरित्+ अः	४३	४
२	हरितम् हरित्+ अम्	४३		४	हरितौ हरित् + औ	४३	४	हरितः हरित् + अः	४३	४
३	हरिता हरित् + आ	४३		४	हरिद्भ्याम् हरित्+भ्याम्	४३	०	हरिद्भिः हरित् + भिः	४३	०
४	हरिते हरित् × ए	४३		४	हरिद्भ्याम् हरित्×भ्याम्	४३	०	हरिद्भ्यः हरित् + भ्यः	४३	०
५	हरितः हरित् + अः	४३		४	हरिद्भ्याः हरित्+भ्याम्	४३	०	हरिद्भ्य हरित् + भ्यः	४३	०
६	हरितः हरित् + अः	४३		४	हरितोः हरित्+ओः	४३	४	हरिताम् हरित्+आम्	४३	४
७	हरिति हरित् + इ	४३		४	हरितोः हरित् +ओः	४३	४	हरित्सु हरित् + सु	४२	०

१६ वां सूत्र

-परन्तु कठिनता यिह है कि जो ऐसा नाम अन्त में स्वर रखता है और इस प्रकार से अपने अपूर्णपद को विभक्तिसम्बन्धी अन्तों से मिलाताहै सो केवल एक गौ है और जो नाम अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो बहुत हैं और हरित् के सदृश विभक्तिसम्बन्धी अन्तों से विधिपूर्वक लगते हैं परन्तु इतने नहीं आते जितने वे नाम आते हैं जो अ आ इ ई उ और ऋ अन्त में रखते हैं और बहुधा दोनों अपूर्णपदों और अन्तों के पिछले वर्णों की उलटापलटी चाहते हैं

१७ वां सूत्र

ऐसे जो पहले भागवाले अपूर्णपद अन्त में अ रखते हैं इतने हैं जितने दूसरे सब सात भागों के मिलके होते हैं (८० वें सूत्र को ८१ वें सूत्र से ८७ वेंसूत्र तक मिलाओ) उनमें अपूर्णपद का पिछला अ दीर्घ होताहै और ए से भी पलटताहै परन्तु तीसरी विभक्ति के एकवचनवाले पुलिङ्ग के आ के पलटे इन आता है और चौथी विभक्ति के ए के पलटे य और पांचवीं विभक्ति के अः के पलटे त् और छठी विभक्ति के अः के पलटे स्य और दूसरी विभक्ति के बहुवचन के अ. के पलटे न् और तीसरी विभक्ति के बहुवचन भिः के पलटे ऐः और ऐसेही दूसरे नामों में उलटापलटियां होती हैं उनमें से कुछ उनके लिङ्गों से निश्चित होती हैं (क्रिया सम्बन्धी अपूर्णपदों का २५७ वें सूत्र की १ ली शाखा में बताया हुआ पहला जथा देखो)

संज्ञाओं के सब भागों में जो विभक्ति सम्बन्धी अन्त और उन के प्रतिनिधि अर्थात् पलटे वाले आते हैं सो इस आगे आनेवाले यंत्र में एक साथ दिखाएजातेहैं

विभक्ति	एकवचन				द्विवचन				बहुवचन			
	विभक्तिसम्बन्धी अन्त	लिङ्ग	प्रतिनिधि	लिङ्ग	विभक्तिसम्बन्धी अन्त	लिङ्ग	प्रतिनिधि	लिङ्ग	विभक्तिसम्बन्धी अन्त	लिङ्ग	प्रतिनिधि	लिङ्ग
१	:	पु० स्त्री०	म्†	न०	औ	पु० स्त्री०	ई०	स्त्री० न०†	अः	पु० स्त्री०	इ	न०
२	अम्	पु० स्त्री०	म्†	पु० स्त्री० न०	औ	पु० स्त्री०	ई	स्त्री० † न०	अः :	पु० स्त्री०	न्† इ	पु० न०
३	आ	पु० स्त्री० न०	इन†	पु० न०	भ्याम्	पु० स्त्री० न०	०	०	भिः	पु० स्त्री० न०	ऐः †	पु० न०
४	ए	पु० स्त्री न०	य†	पु० न०	भ्याम्	पु० स्त्री० न०	०	०	भ्यः	पु० स्त्री० न०	०	०
५	अः	पु० स्त्री० न०	: त्†	पु० स्त्री० पु० न०	भ्याम्	पु० स्त्री० न०	०	०	भ्यः	पु० स्त्री० न०	०	०
६	अः	पु० स्त्री० न०	: स्य†	पु० स्त्री० पु० न०	ओः	पु० स्त्री० न०	०	०	आम्	पु० स्त्री० न०	०	०
७	इ	पु० स्त्री० न०	आम् औ	स्त्री० पु० स्त्री०	ओः	पु० स्त्री० न०	०	०	सु	पु० स्त्री० न०	०	

१ ला वर्णन

जिन प्रतिनिधियों पर ऐसा चिन्ह + लिखा है सो बहुधा अन्त में अ रखनेवाले नामों से लगते हैं और इसलिये बनाने के योग्य हैं आ अन्त में रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग पहली और दूसरी आठवीं विभक्ति के द्विवचन में नपुन्सकलिङ्ग सम्बन्धी प्रतिनिधि इ ग्रहण करने में कुछ मुख्यता रखते हैं

२ रा वर्णन

देखो पहली चार वर्तनियों में दूसरी विभक्तिवाले सब पुलिङ्ग बहुवचन नाम अन्त में न् रखते हैं और स्त्रीलिङ्ग वाले नाम विधिपूर्वक अन्त में (:) रखते हैं

९८ वां सूत्र

आगे यिह नहीं बतलायाजायगा कि कोई२ मुख्य नाम बतलायेहुए सामान्य अन्तों से किस लिये और कैसे विरुद्ध होते हैं नामों के आठ भाग रहेंगे चार उन नामों के जो अन्त में स्वर रखते हैं और चार उन नामों के जो अन्त में व्यञ्जन रखते हैं और इन आठ भागों से प्रत्येक भाग के तले पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग और नपुन्सकलिङ्ग के लिये एक दृष्टान्तरूपी नाम की पूरी वर्तनी की जायगी सो द्रव्यवाचक और गुणवाचक दोनों के लिये काम आयगी

९९ वां सूत्र

परन्तु सीखने वाले को समझना चाहिये कि ये आठ भाग स्वेच्छारूत हैं इन से यिह नहीं जानना चाहिये कि संस्कृत में आठ प्रकार की वर्तनी हैं अभिप्राय यिह है कि नामों के अपूर्णपदों के पिछले वर्ण सरलता के लिये चार स्वर ठहरायेजाते हैं और चार व्यञ्जन यथार्थ में व्याकरणियों की मति के अनुसार सब नाम उनके अपूर्णपद का पिछला वर्ण कोई क्यों न हो अवश्य एकही से विभक्तिसम्बन्धी अन्तों से लगते हैं

१००वां सूत्र

यिह जानना बहुत अवश्य है कि संस्कृत नाम में प्रत्येक विभक्ति अपनी बनावट में सन्धि का एक सूत्र चाहती है और संस्कृत में वर्तनी सन्धि ही को कहते हैं कि अपूर्णपद और अन्त के बीच में कुछ प्रथकता न रहे अर्थात् ऐसे मिलजावें कि एक जानपड़े

१०१ ला सूत्र

परन्तु ऐसी मिलावट के पहले अपूर्णपद का मूलसम्बन्धी पिछला स्वर गुण वा वृद्धि चाहता है [२७ वां सूत्र देखो] अथवा कोई दूसरे वर्ण से पलटताहै (३१ वें सूत्र की २ री विधि से ५ वीं विधि तक देखो) इसलिये बहुधा यिह बताना अवश्य होगा कि वर्तनी कियाजानेवाला अपूर्णपद अर्थात अंग (१३५ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) मूलसम्बन्धी अपूर्णपद अर्थात् प्रातिपदिक से प्रथक होजाता है और कभी विभक्तिसम्बन्धी आद्य अन्त पलटजाता है जैसा ९७ वें सूत्र में बताया है जैसे १०३ रे सूत्र में ६ ठी विभक्तिवाला द्विवचन शिवयोः (शिव + ओः) यिह दिखाता है कि अपूर्णपद शिव अन्त ओः से मिलने के पहले अपने पिछले अ को ए से पलटता है और ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से जानपड़ता है कि सन्धि का सूत्र जैसा ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा में बताया है शिवे और ओः को मिलाने में काम आता है ऐसे ही जब आद्य अन्त सुधाराजाता है तब सुधारेहुए स्वरूप में आता है जैसे १०३ रे सूत्र से दूसरी विभक्तिवाला एकवचन शिवम् (शिव + म्) यिह दिखाता है कि अपूर्णपद शिव म् से जो आद्य अन्त अम् के पलटे आयाहै मिलेगा (९७ वें सूत्र का यंत्र देखो)

१०२ रा सूत्र

पहले दृष्टान्तरूपी नाम शिव की वर्तनी करने में अपूर्णपद शिव के पीछे यिह चिन्ह + आवेगा इसके पीछे प्रत्येक विभक्ति का अन्त लिखाजायगा और जो सन्धि का सूत्र काम करेगा उसकी संख्या लिखी जायगी

दूसरे नामों की वर्तनी में जो नई सन्धि और उलटापलटी होगी सो दिखा-

जायगी

पहला प्रकरण

पहले चार भागवाले नामों की वर्तनी

उन द्रव्यवाचक और गुणवाचक नामों की जिनके अपूर्णपद अन्त में स्वर रखते हैं

पहले भागवाले जो अन्त में अ आ और ई रखते हैं

१०३ रा सूत्र

पुल्लिङ्ग अपूर्णपद जो अन्त में अ रखते हैं जैसे शिव पु० (श्री महादेवजी) और गुणवाचक समझा जावे तो (कल्याणकारी)

अपूर्णपद का पिछला अ चौथी और पांचवी विभक्ति के एकवचन और तीसरी और चौथी और पांचवीं विभक्ति के द्विवचन और दूसरी और छठी विभक्ति के बहुवचन में दीर्घ होजाता है और छठी और सातवीं विभक्ति के द्विवचन और चौथी और पांचवीं और सातवीं विभक्ति के बहुवचन में ए होजाता है और छठी विभक्ति के बहुवचन में सुस्वरता के लिये न् बढ़जाता है इसलिये इस वर्तनीकियेजाने वाले अपूर्णपद के ये चार स्वरुप होजाते हैं शिव शिवा शिवे शिवान्

शिव (श्री महादेव जी) की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	सूत्र	द्विवचन	सूत्र	बहुवचन	सूत्र
१	शिवः शिव + :	-	शिवौ शिव + औ	३३	शिवाः शिव + अः	३१
२	शिवम् शिव + म्	०	शिवौ शिव + औ	३३	शिवान् शिवा + न्	०

३	शिवेन शिव + इन	३२	शिवाभ्याम् शिवा + भ्याम्	०	शिवैः शिव + ऐः	३३
४	शिवाय शिवा + य	०	शिवाभ्याम् शिवा × भ्याम्	०	शिवेभ्यः शिवे + भ्यः	०
५	शिवात् शिवा + त्	०	शिवाभ्याम् शिवा + भ्याम्	०	शिवेभ्यः शिवे + भ्यः	०
६	शिवस्य शिव + स्य	०	शिवयोः शिवे + ओः	३६ १शा	शिवानाम् शिवान् + आम्	०
७	शिवे शिव + इ	३२	शिवयोः शिवे + ओः	३६ १शा	शिवेषु शिवे + सु	३०
८	शिव शिव (:) ‡	१२	शिवौ शिव + औ	३३	शिवाः शिव + अः	३३

टीका

‡ विसर्ग १२ वें सूत्र के अनुसार गिरजाता है

वर्णन

देखो वेद में तीसरी विभक्ति का एकवचन अन्त में आ रखसकता है जैसे शिवा पलटे शिवेन के और पहली और दूसरी विभक्ति के द्विवचन अन्त में आ रखसकते हैं जैसे शिवा पलटे शिवौ के और पहली विभक्ति का बहुवचन अन्त में आसः रखसकता है जैसे शिवासः पलटे शिवाः के और तीसरी विभक्ति का बहुवचन अन्त में एभिः रखसकता है जैसे शिवेभिः पलटे शिवैः के इदम् का तीसरी विभक्तिवाला बहुवचन एभिः होताहै (२२४ वां सूत्र देखो)

१०४ था सूत्र

नपुंसकलिङ्ग अपूर्णपद जो अन्त में अ रखते हैं जैसे शिव न० (कल्याण) अथवा विशेषण (कल्याणकारी)

अपूर्णपद का पिछला स्वर दीर्घ होजाता है और १ ली और २ री और ८ वीं विभक्ति के बहुवचन में न् बढ़ता है जैसे

पहली और दूसरी विभक्ति शिवम् (शिव + म् ९५ वां सूत्र देखो) शिवे (शिव + ई (३२ वां सूत्र देखो) शिवानि (शिवा + न् + इ) आठवीं विभक्ति शिव शिवे शिवानि दूसरी सब विभक्तियां पुल्लिङ्ग के अनुसार हैं

१०५ वां सूत्र

स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद जो अन्त में आ और ई रखते हैं जैसे शिवा स्त्री० (पार्वती) अथवा विशेषण [कल्याण कारी] और नदी स्त्री० (सरिता) इनकी वर्तनी आमने सामने की जातीहै जिससे इनकी सदृशता अच्छी रीति से जान पड़े

शिवा में अपूर्णपद का पिछला स्वर तीसरी विभक्ति के एकवचन में और छठी और सातवीं विभक्ति के द्विवचन में ए होजाताहै और चौथी और पांचवीं और छठी और सातवीं विभक्ति के एकवचन में या बढ़ता है और छठी विभक्ति के बहुवचन में न् बढ़ताहै इसलिये वर्तनी कियेजानेवाले अपूर्णपद शिवा शिवे होजाते हैं और नदी में अपूर्णपद का पिछला स्वर स्वरादि अन्तों के पहले ३४ वें सूत्र के अनुसार य् होजाता है और चौथी और पांचवीं और छठी और सातवीं विभक्ति के एकवचन में आ होजाताहै और छठी विभक्ति के बहुवचन में न् बढ़ताहै और आठवीं विभक्ति के एकवचन में वुह पिछला स्वर ह्रस्व होजाताहै

अपूर्णपद का अन्त के साथ मिलाना

पहली विभक्ति के एकवचन में (:) विसर्ग गिरजाताहै और पहली विभक्ति के द्विवचन में ३२ वें सूत्र से शिवा + ई = शिवे और बहुवचन में ३१ वें सूत्र से शिवा + अः = शिवाः और तीसरी विभक्ति के एकवचन में ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से शिवे + आ = शिवया और चौथी विभक्ति के एकवचन में ३३ वें सूत्र

से शिवा + या + ए = शिवायै और छठी और सातवीं विभक्ति के द्विवचन में ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से शिवे + ओः = शिवयोः और चौथी विभक्ति के एकवचन में ३४ वें और ३३ वें सूत्र से नदी + आ + ए = नद्यै और सातवीं विभक्ति के बहुवचन में ७० वें सूत्र से नदी + सु = नदीषु

शिवा और नदी की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	शिवा	शिवे	शिवाः	नदी	नद्यौ	नद्यः
२	शिवाम्	शिवे	शिवाः	नदीम्	नद्यौ	नदीः
३	शिवया	शिवाभ्याम्	शिवाभिः	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
४	शिवायै	शिवाभ्याम्	शिवाभ्यः	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
५	शिवायाः	शिवाभ्याम्	शिवाभ्यः	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
६	शिवायाः	शिवयोः	शिवानाम्	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
७	शिवायाम्	शिवयोः	शिवासु	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
८	शिवे	शिवे	शिवाः	नदि	नद्यौ	नद्यः

१ ला वर्णन

देखो वेद में तीसरी विभक्ति का एकवचन शिवया के पलटे शिवा होसकता है और चौथी विभक्ति का एकवचन शिवायै के पलटे शिवै होसकता है और पहली

विभक्ति का बहुवचन शिवासः और छठी विभक्ति का बहुवचन शिवाम् होसकताहै

२ रा वर्णन

देखो वेद में पहली विभक्ति का बहुवचन अन्त में ई रखनेवाले नामों का अन्त में ईः रखसकताहै जैसे नदीः पलटे नद्यः के

१०६ ठा सूत्र

अन्त में ई रखनेवाले एकशब्दभाग के नाम जैसे श्री स्त्री० (भारब्ध) भी स्त्री० (डर) इत्यादि नदी से प्रतिकूल आते हैं जैसा १२३ वें सूत्र में बतायाहै

१०७ वां सूत्र

५८ वें सूत्र के अनुसार ऐसे शब्द जैसे मृग पु० (हिरन) पुरुष पु० (नर) भार्या स्त्री० (स्त्री) कुमारी स्त्री० (लड़की) तीसरी विभक्ति के एकवचनवाले पुल्लिङ्ग में और छठी विभक्ति के बहुवचनवाले पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में मूर्द्धन्य ण् के साथ लिखेजाते हैं जैसे मृगेण पुरुषेण मृगाणाम् पुरुषाणाम् भार्याणाम् कुमारीणाम् जब न् पिछला होताहै जैसा दूसरी विभक्ति के बहुवचन पुल्लिङ्ग में तब पलटा नहीं जाता

१०८ वां सूत्र

जब स्त्रीलिङ्ग नाम अन्त में आ रखता है और किसी मिश्रित विशेषण का पिछला अंग होता है तब पुल्लिङ्ग और नपुन्सकलिङ्ग में उसकी वर्तनी शिव की सी होती है जैसे विद्या (विद्या) से अल्पविद्यःपु० (थोड़ी विद्यावाला) अल्पविद्या स्त्री० अल्पविद्यम् न० ऐसे ही पुल्लिङ्ग नाम स्त्रीलिङ्ग और नपुन्सकलिङ्गवाले अन्त लेता है और नपुन्सकलिङ्ग नाम पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गवाले अन्त लेता है

१ ली शाखा

जो मूल अन्त में आ रखते हैं ऐसे जैसे पा (पीना बचा) और मिश्रित शब्द के पिछले अंग होते हैं सो अपने पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग के लिये यथाविधि से अ

न्त लेते हैं जो ९१ वें सूत्र में लिखे हैं परन्तु अपने अपूर्णपद के पिछले स्वर को दूसरी विभक्ति के बहुवचन में और शेष अवल अर्थात् स्वरादि विभक्तियों में छो ड़ देते हैं जैसे सोमपा पु० स्त्री० (सोम का रस पीनेवाला) पहली और आठवीं विभक्ति सोमपाः सोमपौ सोमपाः दूसरी विभक्ति सोमपाम् सोमपौ सोमपः तीसरी विभक्ति सोमपा सोमपाभ्याम् सोमपाभिः चौथी विभक्ति सोमपे सोमपाभ्याम् सोमपाभ्यः इनके नपुन्सक शिव के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं जैसे पहली दूसरी और आठवीं विभक्ति सोमपम् सोमपे सोमपानि इत्यादि ऐसे ही विश्वपा (विश्व को बचानेवाला) और शंखध्मा (शङ्ख फूंकनेवाला)

२ री शाखा

ऐसेही ऋगवेद ४, ९, ४ में ग्रा (स्त्री) पहली विभक्ति के एकवचन में ग्राः आयाहै

३ री शाखा

आ अन्त में रखनेवाले पुलिङ्ग नाम जैसे हाहा (गंधर्व) जो क्रियासम्बन्धी श ब्दों से नहीं निकले अन्तों के साथ सन्धि के सूत्रों से यथाविधि लगते हैं परन्तु दू सरी विभक्ति के न् अन्त में रखनेवाले बहुवचन में नहीं जैसे पहली और आठवीं विभक्ति हाहाः हाहौ हाहाः दूसरी विभक्ति हाहाम् हाहौ हाहान् तीसरी विभ क्ति हाहा हाहाभ्याम् हाहाभिः चौथी विभक्ति हाहै इत्यादि पांचवीं विभक्ति हा हाः इत्यादि छठी विभक्ति हाहाः हाहौः हाहाम् सातवीं हाहे इत्यादि

४ थी शाखा

आठवीं विभक्ति में अम्बा अक्का अल्ला (मा) होते हैं अम्ब अक्क अल्ल [ओ मा]

५ वीं शाखा

दन्त पु० [दांत] मास पु० [महीना] पाद पु० [पांव] यूष पु० न० (यूष) आस्य न० [मुख] हृदय न० [उर] उदक न० [जल] शीर्ष न० [मस्तक]

मांस न० (मांस) निशा स्त्री० [रात] नासिका स्त्री० (नाक) पृतना स्त्री० (सेना) यथाविधि वर्तनी किये जाते हैं परन्तु दूसरी विभक्ति के बहुवचन में और दूसरी विभक्तियों में दत् मान् पद् यूषन् आसन् हृद् उदन् शीर्षन् मांस् निश् नस् पृत् होसकते हैं [१८२ वां सूत्र देखो] नपुंसकलिङ्ग नामों में पहली विभक्ति का बहुवचन ऐसा नहीं होता जैसा दूसरी का होताहै जैसे उदक दूसरी के बहुवचन में होताहै उदकानि वा उदानि और तीसरी विभक्ति का एकवचन उदकेन वा उद्ना होताहै और नासिका तीसरी विभक्ति के द्विवचन में नासिकाभ्याम् वा नोभ्याम् होताहै और मांस् मांसाभ्याम् वा मान्भ्याम् होताहै

१०९ वां सूत्र

पहले भागवाले नामों की वर्तनी की अवश्यकता जानने के लिये सीखनेवाले को द्रव्यवाचक और गुणवाचक नामों के अपूर्णपदों की बनावट पर अपना ध्यान फेरना चाहिये कि वे इसी वर्तनी के अनुगामी हैं (८० वां सूत्र देखो) जो पुल्लिङ्ग और नपुन्सकलिङ्ग नाम इस सूचीपत्र अर्थात् ८० वें सूत्र में आते हैं तो सब शिव के अनुसार वर्तनी कियेजाते हैं सब स्त्रीलिङ्ग नाम शिवा अथवा नदी के सदृश और सब विशेषण तीनों लिङ्ग में इन ही तीनों दृष्टान्तों के अनुसार वर्तनी कियेजाते हैं

दूसरे भाग के इ अन्त में रखनेवाले और तीसरे भाग के उ अन्त में रखनेवाले

इन दूसरे और तीसरे भागवाले नामों की वर्तनियां (८१ वां और ८२ वां सूत्र देखो) आमने सामने लिखीजाती हैं जिससे उनकी सदृशता अच्छी रीति से जान पड़े

११० वां सूत्र

इ और उ अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद अग्नि पु० (आग) और भानु पु० (सूर्य) के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं

अपूर्णपद का पिछला स्वर चौथी पांचवी छठी और आठवीं विभक्ति के एक
चने में और पहली विभक्ति के बहुवचन में गुण चाहता है पहली दूसरी और अ
ठवीं विभक्ति के द्विवचन में और दूसरी और छठी विभक्ति के बहुवचन में दीर्घ ह
ता है सातवीं विभक्ति के एकवचन में गिरजाता है अथवा पाणिनि के अनुसार
होजाता है और तीसरी के एकवचन में और छठी के बहुवचन में न बढ़ता है
सलिये वर्तनी कियेजानेवाले अपूर्णपद अग्नि अग्नी अग्ने अग्न् और भानु भानू भ
नो भान् होजाते हैं किसी२ की मति के अनुसार भानु की सातवीं विभक्ति भानवि है
(यिह स्वरूप वेद में आताहै) और इ गिरजाने से भानव् भानाव् (भानौ) हो
जाता है

अपूर्णपद का अन्तों के साथ मिलाना

आठवीं विभक्ति का एकवचनवाला और पहली दूसरी और आठवीं विभक्ति
के द्विवचनवाले अन्त गिरजाते हैं ३६ वें सूत्र की १ली शाखा से पहली विभक्ति
का बहुवचन अग्ने + अः = अग्नयः ३६ वें सूत्र की १ली शाखा से चौथी विभ
क्ति का एकवचन अग्ने + ए = अग्नये ३४ वें सूत्र से छठी और सातवीं विभक्ति
के द्विवचन अग्नि + ओः = अग्न्योः ७० वें सूत्र से सातवीं विभक्ति का बहुवचन
अग्नि + सु = अग्निषु ऐसे ही ३६ वें सूत्र की १ली शाखा से १ ली विभक्ति का
बहुवचन भानो + अः = भानवः ३३ वें सूत्र की १ली शाखा से चौथी विभक्ति का
एकवचन भानो + ए = भानवे ३४ वें सूत्र से छठी और सातवीं विभक्ति के द्विवचन
भानु + ओः = भान्वोः और ७० वें सूत्र से सातवीं विभक्ति का बहुवचन भानु +
सु = भानुषु

अग्नि और भानु की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	अग्निः	अग्नी	अग्नयः	भानुः	भानू	भानवः
२	अग्निम्	अग्नी	अग्नीन्	भानुम्	भानू	भानून्
३	अग्निना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
४	अग्नये	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
५	अग्नेः	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
६	अग्नेः	अग्न्योः	अग्नीनाम्	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
७	अग्नौ	अग्न्योः	अग्निषु	भानौ	भान्वोः	भानुषु
८	अग्ने	अग्नी	अग्नयः	भानो	भानू	भानवः

१११ वां सूत्र

वेद में छठी विभक्ति का एकवचन भान्वः होसकताहै और फिर स्वरूप पहली और दूसरी विभक्ति के बहुवचन के लिये भी काम आताहै

११२ वां सूत्र

जो स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद अन्त में इ और उ रखते हैं और मति स्त्री० (समझ) और धेनु स्त्री० (दुधेल गाय) के सदृश वर्तनी लियेजाते हैं

अपूर्णपद का पिछला स्वर चौथी पांचवीं छठी और आठवीं विभक्ति के एकवचन में और पहली विभक्ति के बहुवचन में गुण चाहता है और पहली और दूसरी और आठवीं विभक्ति के द्विवचन में और दूसरी और छठी विभक्ति के बहुवचन

में दीर्घ होजाता है और सातवीं विभक्ति के एकवचन में (जो अन्त आम न होता) तो गिरजाता है और छठी विभक्ति के बहुवचन में न् बढ़जाता है इस ये अपूर्णपद मति मती मते मत् और धेनु धेनू धेनो धेन् होताहै

अपूर्णपद की अन्तों के साथ मिलावट बहुधा ऐसी होती है जैसी अग्नि ९ र भानु ९० की तीसरी विभक्ति का एकवचन ३४ वें सूत्र से मति + आ = म ा चौथी विभक्ति का एकवचन ३६ वें सूत्र की पहली शाखा से मते + ए = मा और ३३ वें सूत्र से मति + आ + ए = मत्यै

मति और धेनु की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	मतिः	मती	मतयः	धेनुः	धेनू	धेनवः
२	मतिम्	मती	मतीः	धेनुम्	धेनू	धेनूः
३	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
४	मतये वा मत्यै	मतिभ्याम्	मतिभ्यः	धेनवे वा धेन्वै	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
५	मतेः वा मत्याः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः	धेनोः वा धेन्वाः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
६	मतेः वा मत्याः	मत्योः	मतीनाम्	धेनोः वा धेन्वाः	धेन्वोः	धेनूनाम्

७	मतौ वा मत्याम्	मत्योः	मतिषु ७० वां सूत्र	धेनौ वा धेन्वाम्	धेन्वोः	धेनुषु ७० वां सूत्र
८	मते	मती	मतयः	धेनो	धेनू	धेनवः

इच्छानुसार रूपों के साथ चौथी पांचवीं छठी और सातवीं विभक्ति में उन रूपों को मिलाओ जो नदी की उन्हीं विभक्तियों में आते हैं

११३ वां सूत्र

वेद में पहली विभक्ति का बहुवचन धेन्वः होसकता है

११४ वां सूत्र

जो नपुंसकलिङ्ग अपूर्णपद अन्त में इ वा उ रखते हैं सो वारि न० (जल) मधु न० (मधु) के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं

यिह अपूर्णपद स्वरादि अन्तों के पहले न् लेता है और पहली दूसरी आठवीं और छठी विभक्ति के बहुवचन में अपने पिछले स्वर को दीर्घ करता है इसलिये वर्तनी कियेजानेवाले अपूर्णपद वारि वारी मधु मधू होते हैं

वारि और मधु की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	वारि	वारिणी ५८ वां सूत्र	वारीणि	मधु	मधुनी	मधूनि
२	वारि	वारिणी ५८ वां सूत्र	वारीणि	मधु	मधुनी	मधूनि
३	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः

४	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
५	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
६	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम् ५८वां सूत्र	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
७	वारिणि	वारिणोः	वारिषु ७०वां सूत्र	मधुनि	मधुनोः	मधुषु ७० वां सूत्र
८	वारि वा वारे	वारिणी	वारीणि	मधु वा मधो	मधुनी	मधूनि

११५ वां सूत्र

वेद में दूसरी विभक्ति का बहुवचन मधू होसकता है ।

११६ वां सूत्र

इ और उ अन्त में रखनेवाले नपुंसकलिङ्ग उन नामों के सदृश आते हैं जो छठी विभक्ति के बहुवचन और आठवीं विभक्ति के एकवचन को छोड़के ११९ वें सूत्र में बनाये हैं और इन् अन्त में रखते हैं

१ ली शाखा

सानु न० (चोटी अथवा पहाड़ की कोर) पहली पांच विभक्तियों को छोड़के दूसरी सब विभक्तियों में स्नु होजाता है

११७ वां सूत्र

बहुत नाम नहीं हैं जो अग्नि और वारि के सदृश वर्तनी किये जाते हैं (८१ वां सूत्र देखो) परन्तु जो नाम मणि के सदृश आते हैं सो बहुत हैं (८५ वें सूत्र का टिप्पण देखो) और जो विशेषण शुचि के सदृश आते हैं और मिश्रित विशे

के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं तो भी चौथी पांचवीं छठी और सातवीं विभक्ति के एकवचन में और छठी और सातवीं विभक्ति के द्विवचन में इच्छानुसार पुल्लिङ्ग का रूप ग्रहण करते हैं जैसे शुचि और तनु नपुन्सकलिङ्ग चौथी विभक्ति के एकवचन में शुचिने वा शुचये और तनुने वा तनवे होते हैं और ऐसे ही दूसरी विभक्तियों में

१२० वां सूत्र

सखि पु० (मित्र) दो रूप रखता है सखाय् सबल अन्तों के पहले (१३५ वें सूत्र की १ली शाखा देखो) और सखि दूसरे अन्तों के लिये जैसे १ वि० सखा सखायौ सखायः २ वि० सखायम् सखायौ सखीन् ३ वि० सख्या सखिभ्याम् सखिभिः ४ वि० सख्ये सखिभ्याम् सखिभ्यः ५ वि० सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः ६ वि० सख्युः सख्योः सखीनाम् ७ वि० सख्यौ सख्योः सखिषु ८ वि० सखे सखायौ सखायः इससे ऐसा जानपड़ता है कि कई विभक्तियों में सखि वे अन्त ग्रहण करता है जो ९१ वें सूत्र में बताये हैं कि अग्नि से अधिक विधिपूर्वक हैं परन्तु दूसरी विभक्तियों में अग्नि के अनुगामी होते हैं

वर्णन

देखो स्त्रीलिङ्ग सखी नदी के सदृश वर्तनी कियाजाता है

१२१ वां सूत्र

पति पु० (स्वामी) जब मिश्रित शब्द में नहीं आता तब ३ री ४ थी ५ वीं ६ ठी और ७ वीं विभक्ति के एकवचन में सखि के सदृश आता है (१२० वां सूत्र देखो) जैसे ३ वि० पत्या ४ वि० पत्ये ५, ६ वि० पत्युः ७ वि० पत्यौ दूसरी विभक्तियों में अग्नि के सदृश परन्तु पति बहुधा मिश्रित शब्दों के अन्त में आता है और तब अग्नि का अनुगामी होता है जैसे भूपतिना (पृथ्वी के स्वामी से)

वर्णन

देखो पति का स्त्रीलिङ्ग पत्नी होता है और नदी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै

१२२ वां सूत्र

थोड़े नपुन्सकलिङ्ग नाम जैसे अस्थि न० (हड्डी) अक्षि न० (आंख) सक्थि न० (जांघ) दधि न० (दही) अपने पिछले इ को तीसरी विभक्ति के एकवचन में और दूसरे अबल अर्थात् स्वरादि अन्तों में गिरादेते हैं और उन विभक्तियों में ऐसे अन् अन्त में रखनेवाले अप्रसिद्ध रूप आते हैं जैसे अस्थन् इत्यादि नामन् (१५२ वें सूत्र में देखो) जैसे अस्थि १, ८, २, वि० अस्थि अस्थिनी अस्थीनि ३, वि० अस्थ्ना अस्थिभ्याम् इत्यादि ४, वि० अस्थ्ने अस्थिभ्याम् इत्यादि ५, वि० अस्थ्नः इत्यादि ६, वि० अस्थ्नः अस्थ्नोः अस्थ्नाम् ७, वि० अस्थ्नि अथवा अस्थनि अस्थ्नोः अस्थिषु

इसलिये अक्षि [आंख] ३, वि० के एकवचन में अक्ष्णा और ४, वि० में अक्ष्णे इत्यादि होताहै (५८ वां सूत्र देखो)

अन्त में ई और ऊ रखनेवाले

१२३ वां सूत्र

जो स्त्रीलिङ्ग विशेषण और गुणकिया इत्यादि नदी के अनुसार वर्तनी किये जाते हैं [१०५ वां सूत्र और ८० वें सूत्र का १५ वां प्रत्यय देखो] उनके उपरान्त थोड़े एकशब्दभागवाले अन्त में ई रखनेवाले शब्द हैं जो बहुधा संज्ञाओं के सदृश आते हैं और आदि से स्त्रीलिङ्ग हैं अर्थात् पुलिङ्ग संज्ञाओं से नहीं निकले हैं (८० वें सूत्र का १५ वां प्रत्यय देखो) और जिनकी वर्तनी अलग बनाई जायगी सो नदी के सदृश वर्तनी नहीं किये जाते [१०५ वां सूत्र देखो] उनकी पहली विभक्ति (:) रहने से बनती है और वही आठवीं विभक्ति में आती है और पिछला ई स्वरादि अन्तों के पहले इय् होजाता है जैसे

श्री स्त्री० (वृद्धि) १, ८, वि० श्रीः श्रियौ श्रियः २, वि० श्रियम् श्रियौ श्रियः ३, वि० श्रिया श्रीभ्याम् श्रीभिः ४, वि० श्रिये वा श्रियै श्रीभ्याम् श्रीभ्यः ५, वि०

श्रियः वा श्रियाः श्रीभ्याम् श्रीभ्यः ६, वि० श्रियः वा श्रियाः श्रियोः श्रियाम् वा श्रीणाम् ७, वि० श्रियि वा श्रियाम् श्रियोः श्रीषु

१ ली शाखा

ऐसेही भी स्त्री० (डर) ह्री स्त्री० (लज्जा) और धी स्त्री० (समझ) जैसे १, ८, वि० भीः भियौ भियः २, वि० भियम् इत्यादि ३, वि० भिया इत्यादि ४, वि० भियै वा भिये इत्यादि

२ री शाखा

स्त्री स्त्री० (नारी) (ऊपरवाले दृष्टान्तों के सदृश आप मूल नहीं है) इसलिये ए० व० १, ८, वि० में नदी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै और दूसरी बातों में विरुद्धता रखताहै जैसे १, वि० स्त्री स्त्रियौ स्त्रियः ८, वि० स्त्रि स्त्रियौ स्त्रियः २, वि० स्त्रीम् वा स्त्रियम् स्त्रियौ स्त्रीः वा स्त्रियः ३, वि० स्त्रिया स्त्रीभ्याम् स्त्रीभिः ४, वि० स्त्रियै स्त्रीभ्याम् स्त्रीभ्यः ५, वि० स्त्रियाः स्त्रीभ्याम् स्त्रीभ्यः ६, वि० स्त्रियाः स्त्रियोः स्त्रीणाम् ७, वि० स्त्रियाम् स्त्रियोः स्त्रीषु

जब यिह मिश्रित विशेषण का पिछला अंग होताहै तब अपने पिछले स्वर को ह्रस्व करताहै और किसी२ विभक्ति में अग्नि और मति का अनुगामी होता है जैसे

अतिस्त्रि पु० स्त्री० न० (स्त्री से बढ़के) १ वि० पु० अतिस्त्रिः अतिस्त्रियौ अतिस्त्रियः २, वि० अतिस्त्रिम् वा अतिस्त्रियम् अतिस्त्रियौ अतिस्त्रीन् वा अतिस्त्रियः ३, वि० अतिस्त्रिणा अतिस्त्रिभ्याम् इत्यादि ४, वि० अतिस्त्रये इत्यादि ५, वि० अतिस्त्रेः इत्यादि ६, वि० अतिस्त्रेः अतिस्त्रियोः अतिस्त्रीणाम् ७, वि० अतिस्त्रौ इत्यादि ८, वि० अतिस्त्रे इत्यादि स्त्रीलिङ्ग पुल्लिङ्ग सा होताहै परन्तु २, वि० का बहुवचन अतिस्त्रीः वा अतिस्त्रियः ३, वि० अतिस्त्रिया ४, वि० अतिस्त्रियै वा अतिस्त्रये ६, वि० अतिस्त्रियाः वा अतिस्त्रेः इत्यादि नपुन्सकलिङ्ग के लिये (१२६ वें सूत्र की १० वीं शाखा देखो)

१२४ वां सूत्र

थोड़े आदि से स्त्रीलिङ्ग हैं और एकशब्दभागवाले नहीं हैं जैसे लक्ष्मी (लक्ष्मी) तन्त्री (बाजे का तार) तरी (नाव) सो श्री के सदृश १, वि० के एकवचन में (:) विसर्ग चाहतेहैं परन्तु और बातों में नदी के अनुगामी होते हैं जैसे १, वि० लक्ष्मीः लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः २, वि० लक्ष्मीम् इत्यादि ८, वि० लक्ष्मि

वर्णन

ऐसे ही वेद में वृकी (ल्यारन) (ऋग्वेद १, ११७, १८) और कई दूसरे प्रमाणों से सिंही (व्याघ्रणी) १, वि० के एकवजन में वृकीः और सिंहीः होते हैं

परन्तु गौरी (गोरे रंगवाली वा पार्वती) एक निसृत स्त्रीलिङ्ग नाम है १, वि० का एकवचन गौरी होता है

१२५ वां सूत्र

जो ऊ अन्त में रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग नाम एकशब्दभाग के नहीं होते सो एक से अधिक शब्दभागवाले ईकारान्त मूलसम्बन्धी स्त्रीलिङ्ग नामों के सदृश वर्तनी किये जाते हैं अर्थात् लक्ष्मी के सदृश नदी के अनुसार आते हैं परन्तु एकवचन पहली विभक्ति में (:) विसर्ग बनारहता है और दूसरे प्रत्येक स्थान में जहां ई य् होजाता है वहां ऊ व् होजाता है (३४ वां सूत्र देखो) जैसे

वधू (स्त्री) १, वि० वधूः वध्वौ वध्वः २, वि० वधूम् वध्वौ वधूः ३, वि० वध्वा वधूभ्याम् वधूभिः ४, वि० वध्वै वधूभ्याम् वधूभ्यः ५, वि० वध्वाः वधूभ्याम् वधूभ्यः ६, वि वध्वाः वध्वोः वधूनाम् ७, वि० वध्वाम् वध्वोः वधूषु ८, वि० वधु वध्वौ वध्वः

ऐसे ही चमू स्त्री० (झुण्ड) श्वश्रू स्त्री० (सास)

१ ली शाखा

फिर एकशब्दभागवाले आदि से अन्त में ऊ रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग शब्द अनुमान से श्री स्त्री० के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१२३ वां सूत्र देखो) जहां ई इय् होजाता है वहां ऊ उव् होजाता है जैसे

भू स्त्री० (पृथ्वी) १, ८, वि० भूः भुवौ भुवः २, वि० भुवम् भुवौ भुवः ३, वि० भुवा भूभ्याम् भूभिः ४, वि० भुवे वा भुवै भूभ्याम् भूभ्यः ५, वि० भुवः वा भुवाः भू[illegible] भ्याम् भूभ्यः ६ वि० भुवः वा भुवाः भुवोः भुवाम् वा भूनाम् ७ वि० भुवि वा भुवा[illegible] म् भुवोः भूषु

वर्णन

देखो ८ वीं विभक्ति १ ली विभक्ति के अनुसार है

ऐसे ही भ्रूः स्त्री० (भौं) १, ८, वि० भ्रूः भ्रुवौ भ्रुवः इत्यादि

१२६ वां सूत्र

जो मूल एकशब्दभाग के हैं और ई और ऊ अन्त में रखते हैं और पुल्लिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग संज्ञाओं के सदृश आते हैं सो एकशब्दभागवाले ई वा ऊ अन्त में रखनेवाले शब्दों के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं जैसे श्री (१२३ वां सूत्र देखो) और भू (१२५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) परन्तु ४, ५, ६, और ७, वि० के एकवचन में और छठी विभक्ति के बहुवचन में केवल पहली वर्तनी चाहते हैं जैसे

क्री पु० स्त्री० (मोललेनेवाला वा वाली) ४, वि० में होताहै क्रिये केवल पु० और स्त्री० के लिये और लू (काटनेवाला वा वाली) ४ वि० में होताहै लुवे केवल पु० और स्त्री० के लिये

१ ली शाखा

जब कोई विशेषण पहले आताहै तब भी ऐसाही होताहै जैसे परमक्री (अच्छा मोललेनेवाला वा वाली) १, ८, वि० परमक्रीः परमक्रियौ परमक्रियः २, वि० परमक्रियम् इत्यादि

२ री शाखा

जब ये दूसरी संज्ञा से मिश्रित होते हैं और उसके आश्रित रहतेहैं तब बहुधा [illegible] और ऊ को स्वरादि अन्तों के पहले य् और व् से पलटते हैं इस [illegible] नहीं पलटते परन्तु जब ई और ऊ किसी दूसरे व्यञ्जन के पीछे आवें

जैसे यवक्री (जौ मोल लेनेवाला) में तब बहुशब्दभागवाले शब्दों के अनुसार वर्तनी किये जाते हैं जैसे

जलपी पलटे जलपा के (जल पीनेवाला वा वाली) होताहै १, ८. वि० जलपीः जलप्यौ जलप्यः २, वि० जलप्यम् जलप्यौ जलप्यः ३, वि० जलप्या जलपीभ्याम् इत्यादि ४, वि० जलप्ये इत्यादि ५. वि० जलप्यः इत्यादि ६. वि० जलप्यः जलप्योः इत्यादि ७. वि० जलप्यि (३१ वें सूत्र से विरुद्ध) इत्यादि

ऐसे ही खलपू पु० स्त्री० (झाड़नेवाला वा वाली) १, ८, वि० खलपूः खलप्वौ खलप्वः २. वि० खलप्वम् इत्यादि ३, वि० खलप्वा इत्यादि ७, खलप्वि इत्यादि सुलू (अच्छा काटनेवाला) १, ८, वि० सुलूः सुल्वौ सुल्वः

३ री शाखा

ऐसे ही वर्षाभू पु० स्त्री० [मैंडक मैंडकी] दृन्भू पु० (वज्र) करभू पु० [नख] पुनर्भू पु० स्त्री० [फिर जन्माहुआ वा जन्मीहुई] १.८. वि० पुनर्भूः २. वि० पुनर्भ्वम् इत्यादि ३. वि० पुनर्भ्वा ४. वि० पुनर्भ्वे ५. ६. वि० पुनर्भ्वः पुनर्भ्वि परन्तु जो स्त्रीलिङ्ग का अर्थ निश्चित होता है जैसे कन्या (कुआरी फिर ब्याहीहुई) तब ४. वि० पुनर्भ्वै ५. ६. वि० पुनर्भ्वाः ७. वि० पुनर्भ्वाम् वधू के सदृश होती हैं

४ थी शाखा

ऐसे ही सेनानी पु० (सेनापति) ग्रामणी पु० स्त्री० (गांव का स्वामी वा स्वामिन) परन्तु ये नदी के सदृश ७ वीं विभक्ति के एकवचन के अन्त के पलटे पुल्लिङ्ग में भी आम् ग्रहण करते हैं जैसे १. ८. वि० सेनानीः सेनान्यौ सेनान्यः २.वि० सेनान्यम् इत्यादि ३. वि० सेनान्या ७. वि० सेनान्याम् सेनान्योः सेनानीषु इत्यादि पिछ सूत्र असम्मिश्रित संज्ञा नी पु० स्त्री० (मार्ग दिखानेवाला वा वाली) में भी लगता है परन्तु पिछला ई स्वरादि अन्तों के पहले इय् होजाता है

५ वीं शाखा

परन्तु स्वयम्भू और स्वभू पु० (आप होनेवाला ब्रह्मा का नाम है) भू के अनुसार वर्तनी कियाजाताहै (१२५ वें सूत्र की १ली शाखा देखो) और केवल पहली वर्तनी में आताहै जैसे ४. वि०, स्वयम्भुवे वा स्वभुवे ५. वि० स्वयम्भुवः वा स्वभुवः इत्यादि

६ ठी शाखा

अमिश्रित पुल्लिङ्ग अन्त में ई और ऊ रखनेवाले एक से अधिक शब्दभाग के नाम पपी पु० (पीनेवाला वा पालनेवाला अर्थात् सूर्य्य) हूहू पु० (गन्धर्व) जलपी और खलपू के सदृश आते हैं (१२६ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) परन्तु दूसरी विभक्ति के एकवचन और बहुवचन में नहीं जैसे १, ८, वि० पपीः पप्यौ पप्यः २. वि० पपीम् पप्यौ पपीन् और ७, वि० के एकवचन में पिछला ई अन्त के इ से मिलकर ई होजाता है [३१ वां सूत्र देखो] यी नहीं होताहै जैसे ७. वि० का एकवचन पपी परन्तु हूहू से हूह्वि होताहै फिर वातप्रमी पु० (हिरन वायु से अधिक चलनेवाला) जब मिश्रित होताहै तब जलपी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै परन्तु वोपदेव २. वि० का एकवचन और बहुवचन पपी के अनुसार लाता है और जब ऐसे नाम स्त्रीलिङ्ग होते हैं तब दूसरी विभक्ति का बहुवचन विसर्गान्त होताहै जैसे आरू पु० स्त्री० (सांवला वा सांवली) २. वि० के बहुवचन स्त्रीलिङ्ग के लिये होताहै आरूः

७ वीं शाखा

जब कोई प्रधी स्त्री० (विशेष बुद्धि) जैसा शब्द जो मिश्रित किया प्रध्यै से बनाहै स्त्री० संज्ञा होके आताहै तब बहुत शब्दभागवाले शब्द के सदृश आताहै और जलपी के अनुसार वर्तनी कियाजाताहै परन्तु ४. ५. वीं इत्यादि विभक्तियों में नहीं इनमें पुन उसकी दूसरी वर्तनी चाहताहै (जैसे ४. वि० १. व० प्रध्यै इत्यादि) परन्तु जब विशेष बुद्धिवान के अर्थ में विशेषण होके आताहै तब पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में निरन्तर जलपी के सदृश आताहै परन्तु स्त्रीलिङ्ग के लिये इच्छानुसार स्त्रीलिङ्ग संज्ञा के सदृश भी वर्तनी कियाजाताहै ८. वि० स्त्रीलिङ्ग में प्रधीः वा

पथि दोनों होताहै

ये दो संज्ञाएं कभी आती हैं सुखी (सुख चाहनेवाला) और सुती (सुत चाहनेवाला) सो जल्पी के सदृश वर्तनी की जाती हैं परन्तु ५. और ६, वि० के एकवचन में सुख्युः और सुत्युः होती हैं

८ वीं शाखा

एक शब्द भागवाली संज्ञाएं जो आदि में स्त्रीलिङ्ग होती हैं जैसी भी धी श्री [१२३ वां सूत्र देखो] और भ्रू और किसी मिश्रित विशेषण का पिछला अंग बनती हैं तोभी एक शब्दभागवाली संज्ञाओं के सदृश वर्तनी की जाती हैं परन्तु पहली वर्तनी केवल २, ५. ६, और ७, और ६, वि० के बहुवचन पुलिङ्ग में चाहतीहैं और इच्छानुसार स्त्री० के लिये भी जैसे १. वि० गतभीः पु० स्त्री० [भय रहित] ४, वि० एकवचन पु० में होताहै गतभिये ४, वि० एकवचन स्त्री० में गतभिये वा गतभियै ऐसेही सुधी पु० स्त्री० (अच्छी बुद्धिवाला वा वाली) शुद्धधी पु० स्त्री० (शुद्ध बुद्धि रखनेवाला वा वाली) दुर्धी पु० स्त्री० (बुरी बुद्धिवाला वा वाली) सुश्री पु० स्त्री० (अच्छे भाग्य वाला वा वाली) सुभ्रू पु० स्त्री० (अच्छी भौं वाला वा वाली) जैसे १, ८, वि० सुभ्रूः सुभ्रुवौ सुभ्रुवः २. वि० सुभ्रुवम् इत्यादि वोपदेव की मति के अनुसार ८, वि० का स्त्री० सुभ्रु होसकताहै और यिह भट्टिकाव्य में एक स्थान पर आयाहै

९ वीं शाखा

जो शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग अर्थात् अवश्य स्त्रीलिङ्ग होते हैं जैसे कुमारी (लड़की) गौरी (पार्वती) इत्यादि और ग्रामणी के सदृश कभी पुलिङ्ग और कभी स्त्रीलिङ्ग नहीं होते सो नदी के सदृश आते हैं (पा० १. ४. ३.) यद्यपि पीछे दूसरा अर्थ ग्रहण करने से पुलिङ्ग भी होजाते हैं ऐसा मिश्रित शब्द में हुआ करता है जैसे बहुश्रेयसी पु० (बहुत यशवाला) १. वि० बहुश्रेयसी बहुश्रेयस्यौ, बहुश्रेयस्यः ८. वि० बहुश्रेयसि इत्यादि २, वि० बहुश्रेयसीम् बहुश्रेयस्यौ बहुश्रेयसीन् ३, वि०

जो पुल्लिङ्ग अपूर्णपद अन्त में ऋ रखते हैं सो दातृ पु० (देनेवाला) और पितृ पु० (पिता) के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं पहला कर्तृवाचक संज्ञाओं का दृष्टान्त है [८३ वां सूत्र देखो] और दूसरा सम्बन्धवाचक संज्ञाओं का

दातृ जैसी कर्तृवाचक संज्ञाओं में पिछला ऋ वृद्धि पाताहै (२८ वां सूत्र देखो) और पितृ जैसी सम्बन्धवाचक संज्ञाओं में नप्तृ (नाती) और स्वसृ (बहन) को छोड़के सबल विभक्तियों में गुण चाहताहै (१३५ वां सूत्र देखो) परन्तु पहली विभक्ति के एकवचन में आर् और अर् का र् गिरजाता है और उसके पलटे पिछले दृष्टान्त में अ दीर्घ होजाता है ७, ८, वि० के एकवचन में दोनों का पिछला ऋ गुण चाहता है और ५, ६, वि० के एकवचन में ऋ और अ के अ के पलटे उर् आताहै २, ६, वि० के बहुवचन में पिछला ऋ दीर्घ होजाहै और ६, वि० के बहुवचन में न् की अधिकता चाहता है इसलिये वर्तनी कियेजानेवाले अपूर्णपद होते हैं दातृ दातार् दातर् दातॄ दातुर् पितृ पितर् पितॄ पितुर्

अपूर्णपद को अन्तों के साथ लगाने में र् के पीछे मिश्रित व्यञ्जन के अन्त में विसर्ग गिरादियाजाताहै इसलिये ५, ६, वि० में दातुर्स् और पितुर्स् दातुर् और पितुर् होते हैं (४१ वें सूत्र की १ ली विधि देखो)

दातृ और पितृ की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	दाता	दातारौ	दातारः	पिता	पितरौ	पितरः
२	दातारम्	दातारौ	दातॄन्	पितरम्	पितरौ	पितॄन्

३	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
४	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
५	दातुर् वा दातुः+	दातृभ्याम्	दातृभ्यः	पितुर् वा पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
६	दातुर् वा दातुः	दात्रोः	दातृणाम् ५८ वां सूत्र	पितुर् वा पितुः	पित्रोः	पितृणाम् ५८वां सूत्र
७	दातरि	दात्रोः	दातृषु ७० वां सूत्र	पितरि	पित्रोः	पितृषु ७० वां सूत्र
८	दातर् वा दातः	दातारौ	दातारः	पितर् वा पितः	पितरौ	पितरः

टीका

+ जैसे पूर्णपद का पिछला स् विसर्ग होजाता है वैसे ही पूर्णपद का पिछला र् विसर्ग होजाता है

१२८ वां सूत्र

पितृ पातृ (पालने वाला) का अवल रूप जानपड़ताहै पा (पाल) से बना है ति ह यान स्पष्ट है कि दातृ और पितृ इत्यादि जैसे अपूर्णपद आदि में अपने अन्त में अर् रखते थे

१ ली शाखा

नप्तृ (नाती) को कोई न (नहीं) और पातृ (पालनेवाला) से निकला हुआ समझते हैं पिर दातृ के नटग वर्नी किपाजाताहै

२ री शाखा

इ अन्त में रखनेवाली थोड़ी संज्ञाएं ऐसी हैं कि न सम्बन्धवाचक हैं न कर्

वाचक

नृ पु० (नर) को कहते हैं कि पितृ के अनुसार वर्तनी कियाजाताहै जैसे १, वि० ना २, वि० नरम् ३, वि० त्रा ४, वि० त्रे ५. ६, वि० नुर् वा नुः इत्यादि

परन्तु त्रा त्रे नुर् वा नुः जो आते हैं तो कभी आते हैं और ये आगे आनेवाले रूप निस्सन्देह आते हैं १, वि० एकवचन ना २, वि० नरम् १, २, वि० द्विवचन नरौ ३, ४, ५, वि० नृभ्याम् ६, ७, वि० नरोः १, वि० बहुवचन नरः २, वि० नॄन् ४, ५, वि० नृभ्यः ६, वि० नृणाम् वा नॄणाम् ७, वि० नृषु ३, ४, ६, ७, वि० एकवचन में नर की अनुरूप विभक्तियां पलटे में बहुधा आती हैं

३ री शाखा

क्रोष्टु पु० (गीदड़) ८. वि० के ए० व० को छोड़के अपनी सबल विभक्तियां क्रोष्टृ से बनाता है और अबल विभक्तियां भी बनासकताहै (१३५ वां सूत्र देखो) १, वि० क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रोष्टारः २, वि० क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ क्रोष्टॄन् वा क्रोष्टून् ३, वि० क्रोष्ट्रा वा क्रोष्टुना क्रोष्टुभ्याम् इत्यादि ४, वि० क्रोष्ट्रे वा क्रोष्टवे इत्यादि ५, वि० क्रोष्टुर् वा क्रोष्टोः इत्यादि ६, वि० क्रोष्टुर् वा क्रोष्टो: क्रोष्ट्रो वा क्रोष्ट्वोः क्रोष्टॄणाम् वा क्रोष्टूनाम् ७, वि० क्रोष्टरि वा क्रोष्टौ इत्यादि ८, वि० क्रोष्टो किसी मिश्रित विशेषण का पिछला अंग होता है तब नपुंसकलिङ्ग में केवल क्रोष्टु आता है

४ थी शाखा

क्षत्तृ पु० (रथवान) त्वष्टृ पु० (खाती) नेष्टृ पु० होतृ पु० पोतृ पु० [पृथक२ प्रकार के पुरोहित) योद्धृ पु० (लड़नेवाला) जैसी संज्ञाएं दातृ के सदृश वर्तनी की जाती हैं परन्तु सव्येष्टृ पु० (रथवान) पितृ के सदृश

१२९ वां सूत्र

जो ऋ अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद स्त्रीलिङ्ग होते हैं सो सम्बन्धवाचक संज्ञाओं में सम्बन्ध रखते हैं जैसे मातृ (मा) मा (उत्पन्नकर) से और पितृ से केवल २, वि० के बहुवचन में जो नॄ के पलटे अन्त में विसर्ग ग्रहण करताहै पृथक्ता रख

ते हैं जैसे मातृ:

१ ली शाखा

स्वसृ (बहन) दातृ के सदृश आता है परन्तु २. वि० के बहुवचन में स्वसृः हो ताहै सब्ब विभक्तियों में पिछले वर्ण का पहला वर्ण दीर्घ होताहै सो ऐसा जान ला है कि तृ का तृ छूटजाने से होता है

२ री शाखा

कर्तृवाचक संज्ञाओं का स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद पिछले ऋ में ई लगाने से बनता है जैसे दातृ + ई = दात्री स्त्री० (देनेवाली) कर्तृ + ई = कर्त्री स्त्री० (करनेवाली) इनकी वर्तनी नदी के सदृश कीजाती है (१०५ वां सूत्र देखो)

२३० वां सूत्र

नपुन्सकलिङ्ग अपूर्णपद ऐसे वर्तनी कियाजाताहै १, २, वि० दातृ दातृणी ८, वि० दातः वा दातृ शेष वारि के सदृश आते हैं (११४ वां सूत्र देखो) अथवा पुंलिङ्ग से मिलते हैं जैसे ३, वि० दात्रा वा दातृणा इत्यादि परन्तु ऋ अन्त में रखने वाले नपुन्सकलिङ्ग के अपूर्णपद जब मिश्रित विशेषणों के पीछे आते हैं तब कर्तृवाचक अथवा सम्बन्धवाचक संज्ञाओं से सम्बन्ध रखते हैं जैसे बहुदातृ (बहुत देनेवाला) वा दिव्यमातृ (देवता जैसी मा रखनेवाला) [जब कुलम् जैसे नपुन्सकलिङ्ग शब्दों के साथ आवे] वा द्विमातृ [दो मा रखनेवाला] इनकी वर्तनी वारि की सी होती है (११४ वां सूत्र देखो) अथवा पुंलिङ्ग की सी सब विभक्तियों में परन्तु १, ८, और २, वि० में नहीं जैसे १,२, वि० दातृ दातृणी दातॄणि ८, वि० दातृ वा दातः इत्यादि ३, वि० दातृणा वा दात्रा इत्यादि ४, दातृणे वा दात्रे इत्यादि ५, ६, वि० दातृणः वा दातुः इत्यादि ७, वि० दातृणि वा दातरि इत्यादि १, २, वि० दिव्यमातृ दिव्यमातृणी दिव्यमातॄणि ८, वि० दिव्यमातृ वा दिव्यमातः इत्यादि ३, वि० दिव्यमातृणा वा दिव्यमात्रा इत्यादि

ऐ ओ औ अन्त में रखनेवाले

१३१ वां सूत्र

यहां थोड़े एक शब्दभागवाले नाम बताते हैं जो अन्त में ऐ ओ और औ रखते हैं बहुत नहीं हैं इसलिये इनका अलग भाग नहीं करते

१३२ वां सूत्र

रै पु० स्त्री० (धन) १, ८, वि० राः रायौ रायः २. वि० रायम् इत्यादि ३, वि० राया राभ्याम् राभिः ४, वि० राये राभ्याम् राभ्यः ५, वि० रायः इत्यादि ६, वि० रायः रायोः रायाम् ७, वि० रायि रायोः रासु

१३३ वां सूत्र

गो पु० स्त्री० (गाय बैल वा पृथ्वी) १, ८, वि० गौः गावौ गावः २, वि० गाम् गावौ गाः ३, वि० गवा गोभ्याम् गोभिः ४, वि० गवे इत्यादि ५, वि० गोः इत्यादि ६. वि० गोः गवोः गवाम् ७. वि० गवि गवोः गोषु

१ ली शाखा

द्यो स्त्री० (आकाश) गो के सदृश जैसे १. ८. वि० द्यौः द्यावौ द्यावः २. वि० द्याम् द्यावौ द्याः ३. वि० द्यवा द्योभ्याम् द्योभिः ४. वि० द्यवे इत्यादि वेद में १. वि० का द्विवचन द्यावा है

१३४ वां सूत्र

नौ स्त्री० [नाव] ९४ वें सूत्र के अनुसार अन्तों के साथ यथाविधि लगताहै ऐसेही ग्लौ पु० [चन्द्रमा] वर्तनी कियाजाताहै १, वि० ग्लौः ग्लावौ ग्लावः इत्यादि

१ ली शाखा

उपरवाले नाम कभी मिश्रितों के अन्त में आतेहैं जैसे बहुरै (बहुतधनवाला) १. वि० पु० स्त्री० बहुराः इत्यादि बहुनौ (बहुत नाववाला) १, वि० पु० स्त्री० बहुनौः इत्यादि न० बहुरि बहुनु हैं इनकी ३. वि० होती है बहुरिणा बहुनुना और ऐसेही दूसरी

विभक्तियां पु० यथाविधि होती हैं बहुरि से परन्तु १, २, ८, वि० के एकवचन कि
वचन बहुवचन नहीं जैसे बहुरिणा वा बहुराया

२ री शाखा

गो का मिश्रित गु से बनता है जैसे द्विगु (दो गाय के समान) पंचगु (पांच गा
य के पलटे) शतगु [सौ गायवाला]

दूसरा प्रकरण

पिछले चार भागवाले

उन द्रव्यवाचक और गुणवाचक नामों की वर्तनी जिनके अपूर्णपद अन्त में
ई व्यञ्जन रखते हैं

१३५ वां सूत्र

पिछले चार भागवाले नाम द्रव्यवाचक भी होते हैं परन्तु विशेषकरके विशेष
या गुणक्रिया वा धातु अन्त में रखनेवाले मिश्रित विशेषण होते हैं इन भागों के
व पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग नाम ११ वें सूत्र वाले अन्तों के साथ यथाविधि लगाये
जाते हैं और नपुन्सकलिङ्ग १, और २. वि० के द्विवचन और बहुवचन में ११
सूत्र वाले प्रतिनिधि लेते हैं

१ ली शाखा

बोपदेव की मति के अनुसार विभक्तियों के अन्त तीन प्रकार के हैं सबल अबल
और अबलतम सो मुख्य करके उन संज्ञाओं से लगते हैं जो अन्त में कोई व्यञ्ज
न रखते हैं परन्तु सब से नहीं सबल विभक्तियों के लिये स लिखाजायगा अब
ल विभक्तियों को कभी२ मध्यम भी कहते हैं इसलिये इनके लिये म लिखाजा
गा और अबलतम विभक्तियों के लिये अ जो नाम केवल सबल और अबल वि
भक्तियों में भेद दिखाते हैं उनमें अबल के लिये म और अ दोनों लिखेजायेंगे

यंत्र

	एकवचन			द्विवचन			बहुवचन		
विभक्ति	पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग	वेद	नपुन्सक लिङ्ग	पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग	वेद	नपुन्सकलिङ्ग	पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग	वेद	नपुन्सक लिङ्ग
१	:	स	म	औ	स	अ	अः	स	स
२	अम्	स	म	औ	स	अ	अः	अ	स
३	आ	अ	अ	भ्याम्	म	म	भिः	म	म
४	ए	अ	अ	भ्याम्	म	म	भ्यः	म	म
५	अः	अ	अ	भ्याम्	म	म	भ्यः	म	म
६	अः	अ	अ	ओः	अ	अ	आम्	अ	अ
७	इ	अ	अ	ओः	अ	अ	सु	म	म

८ वीं विभक्ति द्विवचन और बहुवचन में वैसी ही है जैसी १ ली परन्तु कभी२ एकवचन में अपना एक मुख्य रूप रखती है (१२ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

पाणिनि कहताहै कि १, वि० का एकवचन पुलिङ्ग अन्त में सदा विसर्ग रखताहै सो लोप भी होजाता है अर्थात् कटजाता है तो भी अपना प्रभाव रखताहुआ जानपड़ता है परन्तु १. २. और ८. वि० के एकवचन नपुन्सकलिङ्ग में इन अन्तसम्बन्धी विसर्ग और अम् का लुक् होजाता है अर्थात् सम्पूर्ण छूटजाते हैं (पा० ७. १, २३.)

३ री शाखा

अंग पद और भ में से पहले दो सामान्य अर्थ भी रखतेहैं (७३ वां सूत्र टीका समेत देखो) ये तीनों नाम नियत अर्थ में प्रातिपदिक अर्थात् अपूर्णपद के उ-

रवाले अन्तों वा प्रत्ययों से सुधारेहुए पृथक् २ रूपों से लगते हैं जैसे जो अपूर्ण पद विभक्तिसम्बन्धी सबल अन्तों के पहले आता है सो अंग कहाजाताहै विभक्ति सम्बन्धी सबल अन्तों को पाणिनि ने सर्वनामस्थान लिखा है सो ये हैं (उपरवाले यंत्र में देखो) १. वि॰ एकवचन, द्विवचन बहुवचन, २. वि॰ एकवचन, द्विवचन पुलिङ्ग स्त्रीलिङ्ग और १. और २. वि॰ बहुवचन नपुन्सकलिङ्ग और जो अपूर्णपद विभक्तिसम्बन्धी मध्यम अन्तों के अर्थात् भ्याम् भिः भ्यः और सु के और य को छोड़के किसी व्यञ्जनादि तद्धित प्रत्यय के पहले आता है (पा॰ १. ४. १७.) सो पद † कहलाताहै और जो अपूर्णपद जिन अन्तों को अंग बताया है उनको छोड़के किसी विभक्तिसम्बन्धी स्वरादि अबल अन्त के और यकारादि वा किसी स्वरादि तद्धित प्रत्यय के पहले आता है (पा॰ १. ४. १८.) उसको भ कहते हैं

टीका

† इसको पद इसलिये कहते होंगे कि जो संधि के सूत्र किसी वाक्य में पृथक् पदों को मिलाने में काम आते हैं सो विभक्तिसम्बन्धी मध्यम अन्तों के पहले भी काम आते हैं

४ थी शाखा

अपूर्णपद पिछले शब्दभाग के स्वर को दीर्घ करने से वा कोई अनुनासिक बढ़ाने से सबल होजाता है जैसे युवन् युवान् धनवत् धनवन्त् और एक वा अधिक वर्णों को छोड़ने से अबल होजाता है जैसे युवन् यून् प्रत्यञ्च् प्रतीच्

५ वीं शाखा

जानना चाहिये कि २. वि॰ बहुवचन और ३. वि॰ नपुन्सकलिङ्ग एकवचन है वह रूप जानपड़ताहै जो शेष स्वरादि अन्तों के पहले ग्रहण कियाजाताहै

६ ठी शाखा

विभक्तियों का यह भाग आगे नहीं बताया इसलिये कि स्वरान्त अपूर्णपदों में इसका कुछ प्रयोजन नहीं पड़ताहै परन्तु ऋकारान्त अपूर्णपदों में इसका प्रयोजन प

ताहै परन्तु ऋकारान्त अपूर्णपद आदि में अन्त में अर् रखतेथे

पांचवें भाग के त् और द् अन्त में रखनेवाले

१३६ वां सूत्र

जो पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद अन्त में त् और द् रखते हैं सो हरित् पु० स्त्री० (हरा) (९५ वां सूत्र देखो) और सरित् स्त्री० (नदी) और मिश्रित अपूर्णपद धर्मविद् पु० स्त्री० (धर्मजाननेवाला वा वाली) (८४ वें सूत्र का ४ था प्रपत्र देखो) के सदृश वर्तनी किये जाते हैं

वर्णन

१, वि० का एकवचन हरित्स् और धर्मवित्स् है परन्तु स (:) ४१ वें सूत्र की १ली विधि के अनुसार छोड़दियाजाता है यिही सूत्र सब व्यञ्जन अन्त में रखने वाले नामों से लगता है

सरित् और धर्मवित् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	सरित्	सरितौ	सरितः	धर्मवित्	धर्मविदौ	धर्मविदः
२	सरितम्	सरितौ	सरितः	धर्मविदम्	धर्मविदौ	धर्मविदः
३	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः	धर्मविदा	धर्मविद्भ्याम्	धर्मविद्भिः
४	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः	धर्मविदे	धर्मविद्भ्याम्	धर्मविद्भ्यः
५	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः	धर्मविदः	धर्मविद्भ्याम्	नर्मविद्भ्यः

६	सरितः	सरितोः	सरिताम्	धर्मविदः	धर्मविदोः	धर्मविदाम्
७	सरिति	सरितोः	सरित्सु	धर्मविदि	धर्मविदोः	धर्मवित्सु
८	सरित्	सरितौ	सरितः	धर्मवित्	धर्मविदौ	धर्मविदः

१३७ वां सूत्र

जो नपुन्सकलिङ्ग अपूर्णपद अन्त में त् और द् रखते हैं जैसे हरित् न० (हरा) धर्मविद् न० (धर्म जाननेवाला) और कुमुद् न० (कमल) सो पु० और स्त्री० अपूर्णपदों से केवल १. वि० के द्विवचन और बहुवचन और २. वि० के एकवचन द्विवचन और बहुवचन में पृथकता रखते हैं नपुन्सकलिङ्ग में अन्त ई और इ (१३१ वां सूत्र देखो) लाने पड़ते हैं और १. और २. वि० के बहुवचन में अपूर्णपद के पिछले वर्ण के पहले न् बढ़ाना पड़ताहै जैसे

१. २' ८, वि० हरित् हरिती हरिन्ति ३, वि० हरिता हरिद्भ्याम् इत्यादि पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग के सदृश

१. २, ८, वि० धर्मवित् धर्मविदी धर्मविन्दि ३. वि० धर्मविदा इत्यादि

एसेही १, २, ८, वि० कुमुत् कुमुदी कुमुन्दि ३, वि० कुमुदा इत्यादि

१३८ वां सूत्र

सब नाम ८४ वें सूत्र के २ रे और ४ थे प्रत्यय वाले हरित् और धर्मवित् के सदृश वर्नी किये जाते हैं

१३९ वां सूत्र

हृद् न० (मन) पहली पांच विभक्तियों में नहीं आता इन विभक्तियों में इस के पलटे हृदय आता है (१०८ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो)

१४० वां सूत्र

सम्बन्धवाचक विशेषण जो ८४ वें सूत्र का ७ वां प्रत्यय वत् और ८४ वें सूत्र का ६ टा प्रत्यय मत् लगने से बनते हैं जैसे धनवत् (धनवान) और धीमत् (बुद्धिमान्

ो पुंल्लिङ्ग केलिये हरित् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं परन्तु सबल विभक्तियों [१३५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो] अपूर्णपद के पिछले वर्ण के पहले न् ताहै

१, वि० के एकवचन में धनवन्त्स् के पलटे धनवान् होता है त्स् (त्ः) ४१ वें त्र की १ ली विधि के अनुसार गिरजातेहैं और अपूर्णपद का पिछला स्वर उनके टे दीर्घ होजाताहै जैसे १, वि० धनवान् धनवन्तौ धनवन्तः २, वि० धनवन्तम् नवन्तौ धनवतः ३, वि० धनवता धनवद्भ्याम् इत्यादि हरित् के सदृश ८, वि० धन न् इत्यादि

ऐसेही धीमत् (बुद्धिमान) १, वि० धीमान् धीमन्तौ धीमन्तः २, वि० धीमन्तम् ीमन्तौ धीमतः इत्यादि ८. वि० धीमन् इत्यादि

१ ली शाखा

धनवत् के सदृश कर्तृवाचक भूतगुणक्रियाओं की वर्तनी की जाती है जैसे कृतवत् (जिसने कियाहै) (५५३ वां सूत्र देखो) जैसे १. वि० पु० कृतवान् कृतवन्तौ तवन्तः इत्यादि

२ री शाखा

विशेषणों के स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद जैसे धनवत् और धीमत् और गुणक्रिया जै ी कृतवत् पुंल्लिङ्ग अपूर्णपद के अवल रूप में ई बढ़ने से बनायेजाते हैं जैसे धन ती धीमती कृतवती सो नदी के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१०५ वां सूत्र देखो) जैसे १, वि० धनवती धनवत्यौ धनवत्यः इत्यादि

३ री शाखा

नपुंसकलिङ्ग हरित् के नपुंसकलिङ्ग के सदृश आते हैं जैसे १, २, ८ वि० धन त् धनवती धनवन्ति

१४१ वां सूत्र

वर्तमान गुणक्रिया (५२४ वां सूत्र देखो) जैसी पचत् (पकाताहुआ) और

भविष्यत गुणक्रिया (५७८ वां सूत्र देखो) जैसी करिष्यत् (करनेवाला) धन्
के सदृश (१४० वां सूत्र देखो) वर्तनी कीजाती हैं परन्तु १, वि० के एकवचन
लिङ्ग में नहीं इसमें न् के पहले अ दीर्घ नहीं होता जैसे १, ८, वि० एकवचन
पचन्त् के पलटे पचन् होता है पचान् नहीं होता १, वि० द्विवचन बहुवचन पच
पचन्तः २, वि० पचन्तम् पचन्तौ पचतः ३, वि० पचता इत्यादि

१ ली शाखा

परन्तु तीसरे गण की जो दुहराईहुई क्रियाएं और अधिकतार्थक क्रियाएं पर
इच्छार्थक नहीं और थोड़ीएक बहुशब्दभागी मूलों से निकलीहुई क्रियाएं (
सूत्र की १ ली शाखा देखो) और थोड़ी दूसरी क्रियाएं ऐसी जैसी जक्ष् (खा
शास् (आज्ञा कर) परस्मैपद के वर्तमानकाल के अन्यपुरुष बहुवचन में अनुना
सिक को छोड़ती हैं सो सब उसको वर्तमानगुणक्रिया में भी छोड़ती हैं इसलिये इन
क्रियाओं की वर्तमानगुणक्रियाएं हरित् के सदृश वर्तनी कीजाती हैं १, वि० का
कवचन वैसाही होता है जैसा अपूर्णपद होता है जैसे तीसरे गण की क्रिया दा (
दे) से १, ८, वि० एकवचन द्विवचन बहुवचन ददत् ददतौ ददतः २, वि० ददत
इत्यादि तीसरे गण की क्रिया भृ (सह) से १, ८, वि० एकवचन द्विवचन बहुव
न बिभ्रत् बिभ्रतौ बिभ्रतः ऐसे ही जाग्रत् (जागताहुआ) जागृ से शासत् (आ
ज्ञाकरताहुआ) शास् से जक्षत् (खाताहुआ) जक्ष् से निस्सन्देह अनुनासिक
रारद का शब्दभाग बढ़ने से छोड़दियाजाता है

१ ला वर्णन

पहले गण की दुहराईहुई क्रियाएं और इच्छार्थक क्रियाएं अनुनासिक
छोड़ती जैसे तिष्ठन् स्था (खड़ा हो) से १, वि० एकवचन द्विवचन बहुवचन ति
न् तिष्ठन्तौ तिष्ठन्तः इत्यादि ऐसे ही जिघ्रन् घ्रा (सूंघ) से जिघृक्षत् इच्छार्थक
गृ (ले) का

२ रा वर्णन

तीसरे गणवाली इत्यादि दुहराईहुई क्रियाएं जो ऊपर बताई हैं १, ८, और २, वि॰ के नपुन्सकलिङ्ग बहुवचन में अनुनासिक को इच्छानुसार छोड़ती हैं जैसे ददति वा ददन्ति जक्षति वा जक्षन्ति परन्तु जगत् न॰ (सन्सार) १. और २. वि॰ के बहुवचन में केवल जगन्ति होताहै

२ री शाखा

१ ले ४ थे और १० वें गण की क्रियाओं से निकलीहुई वर्तमान गुणक्रियाओं में स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद के लिये अनुनासिक आता है जैसे पचन्ती १ले गणवाले पच् से १०५ वें सूत्र के अनुसार नदी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै और यिह अनुनासिक सब विभक्तियों में आता है केवल पहली पांच विभक्तियों में ही नहीं आता जैसा पुल्लिङ्ग में आता है ऐसे ही दीव्यन्ती ४ थे गण की क्रिया दिव् से और चोरयन्ती १० वें गण की क्रिया चुर् से

ऐसे ही १ले गण की दुहराईहुई और इच्छार्थक क्रियाओं के साथ जैसे तिष्ठन्ती स्था से जिघ्रन्ती घ्रा से जिघृक्षन्ती ग्रह् के इच्छार्थक से (उपशाखा १ ला वर्णन देखो)

येही वर्तनीयोग्य गण १, ८, और २, वि॰ के द्विवचन न॰ में अनुनासिक चाहते हैं और बहुवचन में भी जैसे पचत् पचन्ती पचन्ति ६ ठे गण की सब क्रियाओं में और २ रे गण की आ अन्त में रखनेवाली क्रियाओं में और परस्मैपद वाले द्वितीय भविष्यत की सब गुणक्रियाओं में स्त्री॰ में अनुनासिक का आना इच्छानुसार है जैसे तुदती वा तुदन्ती ६ ठे गण की क्रिया तुद से याती वा यान्ती २ रे गण की क्रिया या से करिष्यती वा करिष्यन्ती कृ से यिह १, ८, और २ वि॰ के द्विवचन नपुन्सकलिङ्ग में भी इच्छानुसार है यिह लिङ्ग १, वि॰ के एकवचन स्त्री॰ से मिलता है जैसे तुदन्ती या तुदती यान्ती वा याती करिष्यन्ती वा करिष्यती

३ री शाखा

२ रे ३ रे ५ वें ७ वें ८ वें और ९ वें गण की क्रियाएं १४० वें सूत्र की
और ३ री शाखा के अनुसार आती हैं और स्त्री० के लिये अथवा १, २, औ
वि० के द्विवचन न० के लिये अनुनासिक नहीं चाहती हैं यद्यपि ३ रे गणवाली क्रि
ओं को छोड़के सब पहली पांच विभक्तियों के पु० में अनुनासिक लेती हैं जैसे अ
दत् २ रे गणवाली क्रिया अद् से १. ८. वि० पु० अदन् अदन्तौ अदन्तः स्त्री० अ
दती जुह्वत् ३ रे गण की क्रिया हु से १. ८. वि० पु० जुह्वत् जुह्वतौ जुह्वतः स्त्री० जु
ह्वती रुन्धत् ७ वें गण की क्रिया रुध् से १, ८, वि० पु० रुन्धन् रुन्धन्तौ रुन्धन्त
स्त्री० रुन्धती १, २, ८, वि० में न० होताहै अदत् अदती अदन्ति जुह्वत् द्विवच
जुह्वती परन्तु बहुवचन होता है जुह्वन्ति वा जुह्वति (१२१ वें सूत्र की १ ली शा
खा देखो)

१४१ वां सूत्र

विशेषण महत् (बड़ा वा बढ़ताहुआ) यथार्थ में मह् (बढ़) की वर्तमान गुण
क्रिया है परन्तु पुल्लिङ्ग में इसके अत् का अ १.ली और २, री वि० के एकवचन
में और १. ८. और २. वि० के द्विवचन में और १, और ८, वि० के बहुवचन
में और नपुन्सकलिङ्ग में १. ८. और २, री वि० के बहुवचन में न् के पहले दीर्घ
होजाता है जैसे १, वि० पु० महान् महान्तौ महान्तः २. वि० महान्तम् महान्तौ
महतः ३. वि० महता इत्यादि ८. वि० महन् महान्तौ इत्यादि १, वि० स्त्री० महती
इत्यादि (१४० वें सूत्रकी १ली और २री शाखा देखो) १, ८, और २, वि० न०
महत् महती महान्ति

१ ली शाखा

बृहत् पु० स्त्री० न० (बड़ा वा बढ़ताहुआ) जगत् पु० स्त्री० न० (चलताहुआ
) पृषत् पु० स्त्री० (हिरन) वर्तमान गुणक्रिया के अनुसार वर्तनी कियेजाते हैं जैसे
१, ८, वि० पु० बृहन् बृहन्तौ बृहन्तः स्त्री० बृहती न० बृहत् इत्यादि

१४३ वां सूत्र

प्रतिष्ठासूचक सर्वनाम भवत् (कहते हैं कि भावत् से निकला है

वर्तनी कियाजाता है (१२० वां सूत्र देखो) इसके अत् का अ १, वि० के ए
चन में दीर्घ होजाता है जैसे भवान् [आप] भवन् नहीं होता ८, वि० में भव
होता है स्त्रीलिङ्ग में भवती (२३३ वां सूत्र देखो)

भवत् [होताहुआ] वर्त० गुणकिया है भू (हो) की सो पचत् के सदृश वर्त
कियाजाताहै [१२१ वां सूत्र देखो)

१२४ वां सूत्र

यकृत् न० (कलेजा) और शकृत् न० (विष्टा) २, वि० के बहुवचन में और
प विभक्तियों में इच्छानुसार ऐसे वर्तनी कियेजाते हैं मानो उनके अपूर्णपद यक-
और शकन् होवें जैसे १, ८, वि० यकृत् यकृती यकृन्ति २, वि० यकृत् यकृती यकृ-
त वा यकानि ३. वि० यकृता वा यक्ना यकृद्भ्याम् वा यकभ्याम् यकृद्भिः वा य-
भिः ४, वि० यकृते वा यक्ने इत्यादि

१ ली शाखा

अपूर्ण वर्तनीवाली संज्ञा दन् इच्छानुसार २, वि० के बहुवचन और शेष विभ-
क्तियों में दन्त के पलटे आती है (१८३ वां सूत्र देखो) और बहुधा मिश्रितों के
न्त में जैसे सुदत् (अच्छे दांतवाला) इसके पहली विभक्तिवाले पुल्लिङ्ग स्त्रीलि
और नपुंसकलिङ्ग होते हैं सुदन् सुदती सुदत्

१२५ वां सूत्र

पाद् (पांव) मिश्रितों के अन्त में २. वि० के बहुवचन और शेष अबलतमवि
क्तियों में पद् होजाता है जैसे सुपाद् [अच्छे पांववाला] पुल्लिङ्ग १, और ८.वि०
में होता है सुपाद् सुपादौ सुपादः २, वि० में सुपादम् सुपादौ सुपदः ३, वि० में
सुपदा सुपाद्भ्याम् सुपाद्भिः इत्यादि इसका स्त्रीलिङ्ग होता है सुपदी और नदी के
सदृश वर्तनी कियाजाता है (१०५ वां सूत्र देखो) नपुंसकलिङ्ग १.८. और २,
वि० में सुपाद् सुपदी सुपादि

१ ली शाखा

ऐसेही द्विपाद् परन्तु (पा० ४, १. ९.) के अनुसार जब ऋग्वेद की ऋ
सम्बन्धरखताहै तब इसका स्त्रीलिङ्ग द्विपदा होता है और जब स्त्री से तब
ऐसेही तृपाद् इत्यादि

छठे भाग के अन् और इन् अन्त में रखनेवा

१४६ वां सूत्र

अन् अन्त में रखनेवाले पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद दो प्रकार
हले और दूसरे

१ ले प्रकार के

वे हैं जिनमें मिश्रित व्यञ्जन के अन्त में अन् म् वा व् के पीछे आता
आत्मन् पु० (आत्मा वा आप)

२ रे प्रकार के

वे हैं जिनमें अमिश्रित व्यञ्जन के अन्त में अन् म् वा व् के पीछे आ
से सीमन् स्त्री० और कभी पु० [सीम] अथवा म् और व् को छोड़के वि
रे व्यञ्जन के पीछे आता है चाहे मिश्रित हो चाहे अमिश्रित जैसे तक्ष
स्वाती) राजन् पु० (राजा) इस अवस्था में २, वि० के बहुवचन में और
व स्वरादि अन्तों के पहले अन् का अ गिरादिया जाताहै और न् उसके प
नेवाले व्यञ्जन से मिलादियाजाताहै

वर्णन

७, वि० के एकवचन में इस अ का गिरना इच्छानुसार है .
अन् अन्त में रखनेवाले सब नाम ८. वि० के एकवचन को छोड़के स
विभक्तियों में अ की दीर्घता चाहते हैं और सब व्यञ्जनादि अन्तों के
का गिरना चाहते हैं [५७ वां सूत्र देखो] इसलिये वर्तनी कियेजानेवाले ३

होते हैं आत्मन् आत्मान् आत्म सीमन् सीमान् सीम्न् (ऊपर देखो) सीम

अपूर्णपद को अन्त से मिलाना

१, वि० के एकवचन न० में अपूर्णपद का पिछला न् और अन्त स् और (:) ५७ वें सूत्र और २१ वें सूत्र की १ ली विधि के अनुसार छोड़दिये जाते हैं और ८, वि० के एकवचन में विभक्ति का अन्त छोड़दियाजाताहै

आत्मन् और सीमन् की वर्तनी

	१ ला प्रकार			२ रा प्रकार		
विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	सीमा	सीमानौ	सीमानः
२	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मान	सीमानम्	सीमानौ	सीम्नः
३	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभिः
४	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
५	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः	सीम्नः	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
६	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्	सीम्न.	सीम्नोः	सीम्नाम्
७	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु	सीम्नि वा सीमनि	सीम्नोः	सीमसु
८	आत्मन्	आत्मानौ	आत्मानः	सीमन्	सीमानौ	सीमानः

१२७ वां सूत्र

आत्मन् के सदृश वर्तनी किये जाते हैं यज्वन् पु० (यज्ञ करनेवाला) जैसे १, वि०

यज्वा यज्वानौ यज्वानः २. वि० यज्वानम् यज्वानौ यज्वनः ३. वि० यज्वना इ-
त्यादि पाप्मन् पु० (पाप) अश्मन् पु० [पत्थर] उष्मन् पु० [उष्णकाल] शुष्मन्
पु० (आग) ब्रह्मन् पु० (ब्रह्म) अध्वन् पु० (मार्ग) दृश्वन् पु० (देखनेवाला)

सीमन् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं मूर्धन् पु० (मस्तक) ३. वि० मूर्ध्ना इत्यादि
७. वि० मूर्ध्नि वा मूर्धनि इत्यादि पीवन् पु० (मोटा) २. वि० बहुवचन पीवः वस्न्
पु० (रहटा) लघिमन् पु० (हलकाई) ३. वि० लघिम्ना इत्यादि.

१४८ वां सूत्र

ऐसे ही सीमन् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं तक्षन् पु० (खाती) और राजन्
पु० (राजा)

वर्णन

तक्षन् और राजन् जैसे शब्दों की वर्तनी करने में (जो म् और न् मिलाने में दू-
सरे प्रकार सीमन् के अनुसार आते हैं) अपूर्णपद का दन्तस्थानी न् मूर्धस्थानी ष्
वा तालुस्थानी ज् से मिलके यथाक्रम मूर्धस्थानी ण् वा तालुस्थानी ञ् होजाता है
(५७ वें सूत्र की ३ री शाखा और ५८ वां सूत्र देखो)

तक्षन् और राजन् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	तक्षा	तक्षाणौ	तक्षाणः	राजा	राजानौ	राजानः
२	तक्षाणम्	तक्षाणौ	तक्ष्णः ५८ वां सूत्र देखो	राजानम्	राजानौ	राज्ञः ५७ वें सूत्र की ३ री शाखा दे

३	तक्ष्णा ५८वां सूत्र देखो	तक्षभ्याम्	तक्षभिः	राज्ञा ५७वें सूत्र की ३री शाखा देखो	राजभ्याम्	राजभिः
४	तक्ष्णे	तक्षभ्याम्	तक्षभ्यः	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
५	तक्ष्णः	तक्षभ्याम्	तक्षभ्यः	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
६	तक्ष्णः	तक्ष्णोः	तक्ष्णाम्	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
७	तक्ष्णि वा तक्षणि	तक्ष्णोः	तक्षसु	राज्ञि वा राजनि	राज्ञोः	राजसु
८	तक्षन्	तक्षाणौ	तक्षाणः	राजन्	राजानौ	राजानः

१४९ वां सूत्र

वन् अन्त में रखनेवाले पुल्लिङ्ग अपूर्णपद जैसे पीवन् दृश्वन् यज्वन् बहुधा अप स्त्रीलिङ्ग वन् के स्थान पर वरी आने से बनाते हैं (पा० ४. १, ७,) जैसे पीवरी वरी यज्वरी सो नदी के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१०५ वां सूत्र देखो)

१५० वां सूत्र

जब कोई स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद राजन् जैसे शब्दों में ई लगने से बनता है तब वु- उन सूत्रों का अनुगामी है जो १४६ वें सूत्र के पहले और दूसरे प्रकार में अन् ा अ छोड़ने के लिये बताये हैं जैसे राज्ञी (रानी)

१५१ वां सूत्र

जब राजन् किसी मिश्रित के अन्त में आता है तब वुह शिव के सदृश वर्तनी केयाजाता है (१०३ रा सूत्र देखो) जैसे १. वि० एकवचन पु० महाराजः २, वे० महाराजम् इत्यादि (७७८ वां सूत्र देखो) परन्तु अवश्य नहीं जैसे बहुराजन् ु० स्त्री० न० (बहुत राजा रखनेवाला) स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद इसका बहुराजन् वा बहुराजा वा बहुराज्ञी होसकता है

पर्वन् (जोड़)
नामन न० के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं दामन् (रस्सी) सामन् (मेल) धामन् (मन्दिर) व्योमन् (आकाश) रोमन् (पलेटे रोह्मन् के) (रुहें) (भाल) से मे मन् पु० भी है (प्यार)

१५४वां सूत्र

जब अन् मन् और वन् अन्त में रखने वाले नाम मिश्रित विशेषण के पिछले अंग होते हैं तब स्त्री० पु० के सदृश वर्तनी कियाजाता है अथवा उसको अपूर्णपद अन्त में आ रखसकता है और शिवा के सदृश वर्तनी कियाजासकताहै और नपुन्सक लिङ्ग नपुन्सकेलिङ्ग नामों के सदृश १५२ वें सूत्र के अनुसार वर्तनी कियाजाताहै जो अन् अन्त में रखते हैं सो जो सीमन् और राजन् की वर्तनी के अनुगामी होते हैं तो वे अपना स्त्री० अन्त में ई बढ़ाने से और अन् का अ गिराने से बनाते हैं और नदी के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (पा० ४, १, २८,)

१५५वां सूत्र

अन् अन्त में रखनेवाले थोड़े नाम सूत्रविरुद्ध आते हैं सो आगे बताये जाते हैं

१ली शाखा

श्वन् पु० (कुत्ता) १, वि० श्वा श्वानौ श्वानः २, वि० श्वानम् श्वानौ शुनः ३, वि० शुना श्वभ्याम् श्वभिः ४, वि० शुने इत्यादि ५, वि० शुनः इत्यादि ६, वि० शुनः शुनोः शुनाम् ७, वि० शुनि शुनोः श्वसु ८, वि० श्वन् श्वानौ इत्यादि (१३५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) इसका स्त्री० शुनी इत्यादि होताहै और नदी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै (१०५ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

युवन् पु० (तरुण) १, वि० युवा युवानौ युवानः २, वि० युवानम् युवानौ यूनः ३, वि० यूना युवभ्याम् युवभिः ४, वि० यूने इत्यादि ५, वि० यूनः इत्यादि ६,

द्वि० पुनः पुनोः पुनाम् ७, द्वि० पुनि पुनोः पुनसु ८, पुनन् पुनानी इत्यादि।
इं सूत्र की ५ वीं धारा देखो। स्त्रीलिङ्ग पुनी नदी के सदृश अथवा पुनि
के सदृश नपुंसकलिङ्ग पुन पुनी पुनानि इत्यादि
२ री धारा

२ री शाखा

शीर्षन् न० (मस्तक) १, वि० के एकवचन द्विवचन और बहुवचन में और २. वि० के एकवचन और द्विवचन में नहीं आता है ये विभक्तियां उसके पलटे शिरस् न० शीर्ष से बनती हैं (१०८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

३ री शाखा

यकन् न० (कलेजा) और शकन् (विष्ठा) पहली पांच विभक्तियों में नहीं आ इनमें उनके पलटे यकृत् और शकृत् यथाक्रम आते हैं (१२४ वां सूत्र देखो)

१५७ वां सूत्र

अर्यमन् पु० (सूर्य) के अन् का अ १, वि० के द्विवचन बहुवचन में और ३, वि० के एकवचन द्विवचन में दीर्घ नहीं होता जैसे

१, वि० अर्यमा अर्यमणौ अर्यमणः २, वि० अर्यमणम् अर्यमणौ अर्यम्णः ३, वि० अर्यम्णा इत्यादि

१ ली शाखा

ऐसेही पूषन् (सूर्य) १, वि० पूषा पूषणौ इत्यादि २, वि० पूषणम् इत्यादि परन्तु २, वि० का बहुवचन और शेष अवलम्ब विभक्तियां इच्छानुसार अपूर्णपद पूष् से बनती हैं जैसे २, वि० बहुवचन पूष्णः या पूषः

२ री शाखा

ऐसे ही जिन मिश्रितों के अन्त में हन् आता है जैसे ब्रह्महन् पु० (ब्राह्मण को मारनेवाला) १, वि० ब्रह्महा ब्रह्महणौ इत्यादि परन्तु २. वि० के बहुवचन और ३. वि० इत्यादि में जहां हन् का अ गिरजाता है वहां ह घ् होजाता है इसलिये होताहै २. वि० बहुवचन ब्रह्मघ्नः ३, वि० ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् इत्यादि

१५८ वां सूत्र

अर्वन् पु० (घोड़ा) अथवा पु० स्त्री० न० (नीच) वन् अन्त में रखनेवाली संज्ञाओं के सदृश वर्णनी कियाजाताहै (१२० वां सूत्र देखो) परन्तु १, वि० के एकव-

चन में नहीं जैसे १, वि० अर्वा अर्वन्तौ अर्वन्तः २, वि० अर्वन्तम् इत्यादि
अर्वता अर्वद्भ्याम् अर्वद्भिः ८, वि० अर्वन् इत्यादि जो अ बीकारवाचक अ
के आता है तो अर्वन् की वर्तनी यथाविधि होती है जैसे १. वि० अनर्वा अ
इत्यादि २. वि० अनर्वाणम् इत्यादि ३ वि० बहुवचन अनर्वभिः

१५९ वां सूत्र

इन् अन्त में रखनेवाले पुल्लिङ्ग अपूर्णपद धनिन् पु० (धनवान) के सदृ
नी कियेजाते हैं १, वि० के एकवचन में धनिन् के पलटे धनी होताहै न् और स
र्थात् (:) छूटजाते हैं (५७ वां सूत्र और ४१ वें सूत्र की १ ली विधि देखो
र उनके पलटे वृह स्वर दीर्घ होजाता है

धनिन् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुव
१	धनी	धनिनौ	धनिनः
२	धनिनम्	धनिनौ	धनिनः
३	धनिना	धनिभ्याम् ५७वां सूत्र	धनिभिः
४	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्‍
५	धनिनः	धनिभ्याम्	धनिभ्‍
६	धनिनः	धनिनोः	धनिन्
७	धनिनि	धनिनोः	धनि
[illegible]	धनिन् १२ वां सूत्र	धनिनौ	ध

१. ८, वि० पन्थाः (१६३ वां सूत्र देखो) पन्थानौ पन्थानः २. वि० पन्थानं पन्थानौ पथः ३. वि० पथा पथिभ्याम् पथिभिः ४, वि० पथे इत्यादि ऐसेही १. वि०मन्थाः इत्यादि रिभुक्षाः इत्यादि ३. वि० मथा इत्यादि रिभुक्षा इत्यादि के ८. वि० वैसीहीहै जैसी १. वि०

१ ली शाखा

मिश्रित सुपथिन् (अच्छे मार्गवाला) पु० के लिये इसी रीति से बर्तनी किया जाता है १, वि० स्त्री० सुपथी सुपथ्यौ सुपथ्यः नदी के सदृश (१०५ वां सूत्र देखो) नपुन्सकलिङ्ग १, और २, वि० सुपथि सुपथी सुपन्थानि इत्यादि ८. वि० सुपथिन् वा सुपथि शेष पु० के अनुसार

७ वें भाग के अस् इस् और उस् अन्त में रखनेवाले

१६३ वां सूत्र

अस् अन्त में रखनेवाले पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपद जैसे चन्द्रमस् पुलिङ्ग (चन्द्रमा)

१. वि० के एकवचन में अन्तसम्बन्धी (:) विसर्ग के पलटे अस् दीर्घ होजाताहै अन्तसम्बन्धी भ्याम् भिः भ्यः के पहले चन्द्रमस् ६४ वें सूत्र से चन्द्रमो होजाताहै और ७. वि० के बहुवचन में चन्द्रमस् + सु ६३ वें सूत्र से चन्द्रमःसु अथवा ६२ वें सूत्र की १ ली शाखा से चन्द्रमस्सु होजाता है

चन्द्रमस् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
२	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः

३	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
४	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
५	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
६	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
७	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु वा चन्द्रमस्सु
८	चन्द्रमः ९२वां सूत्र	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः

१ ली शाखा

ऐसेही अप्सरस् स्त्री० (अप्सरा) १. वि० अप्सराः इत्यादि

१६४ वां सूत्र

अस् अन्त में रखनेवाले न० अपूर्णपद जैसे मनस् न० (मन) ये पु० और स्त्री० से १, २, और ८. वि० में नहीं मिलते अस् का अ अन्तसम्बन्धी स् (:) छोड़ने पर १. वि० के एकवचन में ह्रस्व रहताहै परन्तु १. २. और ८. वि० के बहुवचन में आयेहुए अनुस्वार के पहले दीर्घ होजाता है जैसे

१, २, और ८, वि० मनः मनसी मनांसि ३. वि० मनसा मनोभ्याम् इत्यादि पु० और स्त्री० के सदृश

१ ली शाखा

बहुत करके सब अस् अन्त में रखनेवाली अमिश्रित संज्ञाएं मनस् के सदृश नपुंसकलिङ्ग होती हैं परन्तु ऐसे न० जब मिश्रित विशेषण के अन्त में आते हैं तब चन्द्रमस् के सदृश पु० और स्त्री० में भी वर्त्तनी कियेजाते हैं जैसे महामनस् (बड़े मनवाला) १, वि० के पु० और स्त्री० के एकवचन द्विवचन और बहुवचन में होताहै महामनाः महामनसौ महामनसः ऐसेही सुमनस् (अच्छे मन वाला) दुर्मनस् (बुरे मनवाला) १. वि० पु० स्त्री० सुमनाः दुर्मनाः इत्यादि

२ री शाखा

जब पिछला अस् किसी धातु का टुकड़ा होता है और प्रत्यय नहीं होता तब पिण्डग्रस् (पिण्ड खानेवाला) के सदृश वर्तनी होती है जैसे १, ८. वि० एकवचन पु० और स्त्री० पिण्डग्रः २, वि० पिण्डग्रसम् १, ८, २, वि० द्विवचन पिण्डग्रसौ बहुवचन पिण्डग्रसः ३, वि० पिण्डग्रसा पिण्डग्रोभ्याम् इत्यादि १, ८, २, वि० नपुंसक पिण्डग्रः पिण्डग्रसी पिण्डग्रांसि जब कोई धातु अन्त में आस् रखताहै तब ६६ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार उसका स् भ् के पहले छूटजाताहै जैसे चकास् (चमकनेवाला) ३, वि० के द्विवचन में चकाभ्याम् होताहै

३ री शाखा

परन्तु स्रस् संस् से और ध्वस् ध्वंस् से जब मिश्रितों के पीछे आते हैं तब व्यञ्जनादि अन्तों के पहले इनका पिछला स् त् होजाता और ये दोनों १, वि० के एकवचन में स्रत् और ध्वत् होजाते हैं जैसे ३, वि० उखास्रत् पर्णध्वत् (पा० ३ २,७६. ८,७,१, ७०. ८,२, ७२)

१६५वां सूत्र

इस् और उस् अन्त में रखनेवाले नपुंसकलिङ्ग अपूर्णपद अनुमान से मनस् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१६४ वां सूत्र देखो) अ के पलटे इ और उ आते और स् के पलटे ष् [७० वां सूत्र देखो] और ओ के पलटे इर् वा उर् [६५ सूत्र देखो] जैसे

हविस् न० (घी) १, २, ८, वि० हविः हविषी हवींषि ३, वि० हविषा हविर्भ्याम् हविर्भिः ४, वि० हविषे हविर्भ्याम् हविर्भ्यः ५, वि० हविषः हविर्भ्याम् हविर्भ्यः ६, वि० हविषः हविषोः हविषाम् ७, वि० हविषि हविषोः हविःषु वा हविष्षु

१ ली शाखा

चक्षुस् न० (आंख) १, २, ८, वि० चक्षुः चक्षुषी चक्षूंषि ३, वि० चक्षुषा चक्षुर्भ्याम् चक्षुर्भिः ४, वि० चक्षुषे चक्षुर्भ्याम् चक्षुर्भ्यः ५, वि० चक्षुषः चक्षुर्भ्याम् चक्षुर्भ्यः ६, वि० चक्षुषः चक्षुषोः चक्षुषाम् ७, वि० चक्षुषि चक्षुषोः चक्षुःषु वा चक्षुष्षु

१६६ वां सूत्र

जो नाम इस् और उस् लगने से बनते हैं सो बहुधा नपुन्सकलिङ्ग होते हैं परन्तु कई नामों में पिछला सीटीयुक्त धातु का टुकड़ा होता है प्रत्यय का नहीं होता जैसे आशिस् स्त्री० (आशीर्वाद) शास् से और सजुस् पु० स्त्री० (साथी) जुष् से ये अस् अन्त में रखनेवाले पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग नामों के सदृश १, और २. वि० में आते हैं (१६३ वां सूत्र देखो) और विशेषकरके व्यञ्जनादि अन्तों के पहले जहां पिछला सीटीयुक्त र् होजाता है उनके विरुद्ध जिनके इस् और उस् अपने इ और उ दीर्घ करते हैं (१८० वें सूत्र में र् अन्त में रखनेवाले नाम देखो) जैसे

१, वि० आशीः आशिषौ आशिषः २, वि० आशिषम् आशिषौ आशिषः ३. वि० आशिषा आशीर्भ्याम् आशीर्भिः इत्यादि ७. वि० बहुवचन आशीःषु वा आशीष्षु

१ वि० सजूः सजुषौ सजुषः २. वि० सजुषम् इत्यादि ३, वि० सजुषाः सजूर्भ्याम् इत्यादि

१ ली शाखा

इष् अन्त में रखनेवाले इच्छार्थक अपूर्णपदों से (४९७ वां सूत्र देखो) जो नाम बनते हैं ऐसे जैसे जिगदिस् (पलटे जिगदिष्) के (बोला चाहनेवाला) सो भी ऐसेही वर्तनी कियेजाते हैं जैसे

१. ८, वि० पु० स्त्री० जिगदीः जिगदिषौ इत्यादि ३, वि० द्विवचन जिगदीर्भ्याम् १. ८. और २, वि० का बहुवचन न० जिगदिषि होताहै अनुनासिक छोड़ दियाजाता है [१८१ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो]

ऐसे ही चिकीर्ष् (कियाचाहनेवाला) से १. ८, वि० पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग चिकीर् चिकीर्षौ इत्यादि

२ री शाखा

सुतुस् (अच्छा शब्द करनेवाला) धातुसम्बन्धी उस् रखता है इसलिये १, विं० एकवचन पु० स्री० सुतूः २, वि० सुतुसम् १, ८, २. वि० द्विवचन सुतुसौ बहुवचन सुतुसः ३, वि० सुतुसा सुतूर्भ्याम् सुतूर्भिः इत्यादि १, ८, २, वि० नपुन्सकलिङ्ग सुतूः सुतुसी सुतूंसि

३ री शाखा

जब इस् वा उस् अन्त में रखनेवाले नपुन्सकलिङ्ग नाम किसी मिश्रित विशेषण के पिछले अंग होते हैं अनुमान चिह्न चाहता है कि पु० और स्त्री० में वे चन्द्रमस् के सदृश वर्तनी कियेजावें (१६३ वां सूत्र देखो) परन्तु अच्छे२ प्रमाणों के अनुसार १, वि० के एकवचन में पिछले भाग का स्वर दीर्घ नहीं होता जैसे उत्पलचक्षुस् पु० स्री० न० (कमल से नेत्र रखनेवाला) १, वि० पु० स्री० उत्पलचक्षुः उत्पलचक्षुषौ इत्यादि और शुचिरोचिस् पु० स्री० न० (चमकती किरणवाला) १, वि० पु० स्री० शुचिरोचिः शुचिरोचिषौ इत्यादि

४ थी शाखा

दोस् पु० (बांह) इस् और उस् अन्त में रखनेवाले नामों के सदृश वर्तनी किया जाताहै परन्तु २. वि० के बहुवचन और शेष विभक्तियों में उसके पलटे इच्छानुसार दोषन् लाते हैं (१८४ वां सूत्र देखो) जैसे १. ८. वि० दोः दोषौ दोषः २, वि० दोषम् दोषौ दोषः वा दोष्णः ३, वि० दोषा वा दोष्णा दोर्भ्याम् वा दोषभ्याम् इत्यादि नपुन्सकलिङ्ग होने से १, २. और ८, वि० में होता है दोः दोषी दोंषि

१६७ वां सूत्र

जो अतिशयसूचक ईयस् लगने से बनते हैं (१९२ वां सूत्र देखो) उनके का अ १, वि० के पु० एकवचन द्विवचन बहुवचन में ८, वि० के पु० द्विवचन और बहुवचन में और २, वि० के पु० एकवचन द्विवचन में दीर्घ होजाताहै और न्‌ः जाताहै सो म् के पहले अनुस्वार होजाता है जैसे बलीयस् पु० स्री० न० (अधि

शक्तिवान) १ वि० पु० वलीयान् (पलटे वलीयांस् के इसका स् ४१ वें सूत्र की १ विधि के अनुसार छूटजाताहै) वलीयांसौ वलीयांसः २, वि० वलीयांसम् वलीयांसौ वलीयसः ३, वि० वलीयसा वलीयोभ्याम् इत्यादि चन्द्रमस् के सदश (१६३ वां सूत्र देखो) ८, वि० एकवचन वलीयन् द्विवचन और बहुवचन १. वि० के सदश

१ ली शाखा

स्त्रीलिङ्ग वलीयसी नदी के सदश (१०५ वां सूत्र देखो) और नपुन्सकलिङ्ग वलीयस् नामस् के सदश वर्तनी कियेजाते हैं

१६८वां सूत्र

जो पूर्णभूत गुणक्रियाएं वस् लगने से बनती हैं (५५४ वां सूत्र देखो) सो सकल विभक्तियों में (१३५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) ऐसेही वर्तनी की जातीहैं परन्तु २, वि० के बहुवचन और शेष अवल विभक्तियों में वस् उष् होजाताहै और मध्यम विभक्तियों में वत् इसलिये अपूर्णपद के तीन रूप होते हैं पहला अन्त में वांस् रखता है दूसरा उष् और तीसरा वत् जैसे विविद्वस् (पूर्णभूत गुणक्रिया विद् (जान) से) १, वि विविद्वान् विविद्वांसौ विविद्वांसः २. वि० विविद्वांसम् विविद्वांसौ विविदुषः ३. वि० विविदुषा विविद्वद्भ्याम् विविद्वद्भिः ४, वि० विविदुषे इत्यादि ८, वि० विविद्वन् विविद्वांसौ इत्यादि

नपुन्सकलिङ्ग १. २, वि० विविद्वत् विविदुषी विविद्वांसि स्त्रीलिङ्ग के लिये (आगे आनेवाली ४ थी शाखा देखो)

१ ली शाखा

जब यिह गुणक्रिया वस् के पलटे इवस् लगने से बनती है (५५४ वां सूत्र देखो) तब जिन विभक्तियों में वस् उष् होजाता है उनमें इ छोड़दियाजाता है जैसे जग्मिवस् गम् (जा) से १, वि०. पु० जग्मिवान् इत्यादि २, वि० जग्मिवांसम् जग्मिवांसौ जग्मुषः इत्यादि ३, वि० जग्मुषा इत्यादि ८, वि० जग्मिवन् जग्मिवां-

सौ इत्यादि

२ री शाखा

ऐसेही तेनिवस् तन् (तान्) से १, वि० तेनिवान् तेनिवांसौ इत्यादि २, वि० तेनिवांसम् तेनिवांसौ तेनुपः इत्यादि ८, वि० तेनिवन् तेनिवांसौ इत्यादि

३ री शाखा

परन्तु जब इ मूल का भाग होता है तब नहीं जैसे चिचिवस् चि से निनीवस् नी से २, वि० के बहुवचन में होते हैं चिच्युपः निन्युपः चकृवस् कृ से होता है चकुपः

४ थी शाखा

इन गुणक्रियाओं का स्त्रीलिङ्ग १. वि० में उप् लगने से होता है और नपुंसकलिङ्ग १. और २, वि० के एकवचन द्विवचन और बहुवचन में यथाक्रम वत् उप् और वस् से जैसे १, वि० स्त्री० विविदुषी इत्यादि नदी के सदृश (१०५ वां सूत्र देखो) ऐसेही मूल तुप् से तुतुपुषी जो गुणक्रियाएं इवस् लगने से बनती हैं तो स्त्री. लिङ्ग में इ नहीं रखती हैं जैसे तेनिवस् १; वि० एकवचन पु० स्त्री० न० होता है तेनिवान् तेनुषी † तेनिवत्

टीका

† परन्तु इ को छोड़ने में व्याकरणियों की पृथक२ मति हैं और कोई२ व्याकरणी स्त्रीलिङ्ग तेन्युषी बनाते हैं

५ वीं शाखा

विद् (जान) एक सूत्र विरुद्ध वर्तमानगुणक्रिया रखता है विद्वस् सो बहुधा शेषण के सदृश आती है और ऊपर वाले विविद्वस् के सदृश वर्तनी कीजाती है, दुरावट के शब्दभाग वि विना जैसे

१, वि० पु० विद्वान् विद्वांसौ विद्वांसः ८, वि० विद्वन् इत्यादि ३०८ में सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार जानना चाहिये कि विद् का संक्षिप्त पूर्णभूत वर्तमान

सदृश आता है वस ही संक्षिप्त पूर्णभूतगुणक्रिया वर्तमानगणक्रिया के सदृश
जाती है स्त्रीलिङ्ग विदुषी है और नपुन्सकलिङ्ग विद्वत्.

१६९ वां सूत्र

पुंस् पु० (नर) की ८, वि० का एकवचन पुमंस् से बनता है और दूसरी सबलविभक्ति
यां पुमांस् से (१३५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) परन्तु २. वि० का बहुवचन
और शेष अबलतम विभक्तियां पुंस् से और ३, विं० का द्विवचन और शेष मध्यम
विभक्तियां पुम् से जैसे

१, वि० पुमान् पुमांसौ पुमांसः २, वि० पुमांसम् पुमांसौ पंसः ३.वि० पुंसा पु
म्भ्याम् पुम्भिः ४. वि० पुंसे इत्यादि ५, वि० पुंसः इत्यादि ६, वि० पुंसः पुंसोः पुं
साम् ७, वि० पुंसि पुंसोः पुंसु ८, वि० पुमन् पुमांसौ इत्यादि

१७० वां सूत्र

उशनस् पु० (शुक्र का मंत्री) की १, वि० का एकवचन अपूर्णपद उशनन् से
उशना होताहै (१४७ वां सूत्र देखो) ऐसे ही पुरुदंशस् पु० (इन्द्र) और अनेह
स् पु० (समय) दूसरी विभक्तियां विधिपूर्वक हैं जैसे १, वि० द्विवचन उशनसौ पर
न्तु उशनस् से ८, वि० का एकवचन इच्छानुसार उशनः वा उशन वा उशनन् होस
कता है.

१७१ वां सूत्र

जरस् स्त्री० (बुढ़ापा) की व्यञ्जनादि विभक्तियां अर्थात् १. ८, वि० एकवच
न ३, ४. ५, वि० द्विवचन बहुवचन और ७. वि० बहुवचन जरा स्त्री० से बनतीहैं
दूसरी विभक्तियां जरस् वा जरा से जैसे १. वि० एकवचन जरा ८, वि० जरे २,
वि० जरसम् * वा जराम् ३, वि० जरसा वा जरया जराभ्याम् जराभिः इत्यादि

टीका

* जरसम् आता है इसलिये १, २, ८. वि० का द्विवचन जरसौ वा जरे होसक
ता है और १, २. ८. वि० का बहुवचन जरसः वा जराः ये रुप ईश्वरचन्द्र विद्या

सागर के व्याकरण की ५१ वीं पृष्ठ में आये हैं

८ वें भागवाले अपूर्णपद जो त् द् न् स को छोड़के कोई दूसरा व्यञ्जन अन्त में रखतेहैं

१७२वां सूत्र

इस भाग के मूल विशेष करके नामों के सदृश अकेले वा मिश्रितों के अन्त में आते हैं अथवा कोई उपसर्ग वा कोई क्रियाविशेषणसम्बन्धी प्रत्यय अपने पहले रखते हैं अन्त में त् वा द् रखनेवाले अपूर्णपद इस प्रकार से बनेहुए बहुत आते हैं परन्तु उनकी वर्तनी ऐसी होती है जैसी ५ वें भागवाले अपूर्णपदों की (१३६ वां सूत्र देखो)

जो अपूर्णपद अन्त में दूसरे व्यञ्जन रखते हैं और ८ वें भाग के कहलाते हैं उनकी वर्तनी में कठिनता केवल व्यञ्जनादि अन्तों के पहले सुस्वरतासम्बन्धी मिलावट से होती है

१७३ वां सूत्र

१, वि० के एकवचन में पिछले व्यञ्जन की जो उलटापलटी होती है सो ही सब व्यञ्जनादि अन्तों के पहले होती है परन्तु केवल ऐसे अन्तों के पहले सुस्वरतासम्बन्धी संधि के सूत्र लगाने पड़ते हैं

१७४ वां सूत्र

स्वरादि अन्तों के पहले अपूर्णपद का पिछला व्यञ्जन कोई वर्ण नहीं बनाता है जो किसी नाम की २, वि० के बहुवचन की बनावट में कुछ मुख्यता होती है तो यही मुख्यता दूसरी अवलतम अर्थात् स्वरादि विभक्तियों में चलीजाती है

अन्तों में कुछ उलटापलटी नहीं होती है परन्तु १. वि० के एकवचन का सु (स्) यथार्थ में ४१ वें सूत्र की १ ली विधि के अनुसार कटजाता है (परन्तु १३५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों के लिये बहुधा वर्तनी का

वल एक रूप है, परन्तु नपुन्सकलिङ्ग दूसरे व्यञ्जनादि अपूर्णपदों के अनुसार ाते हैं

१७५ वां सूत्र

क् ख् ग् घ् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यों वर्तनी कियेजातेहैं

शक् पु० स्त्री० (शक्तिवान्) जैसे सर्वशक् (सम्पूर्ण शक्ति रखनेवाला)

शक् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
१	शक्	शकौ	शकः
२	शकम्	शकौ	शकः
३	शका	शग्भ्याम्	शग्भिः
४	शके	शग्भ्याम्	शग्भ्यः
५	शकः	शग्भ्याम्	शग्भ्यः
६	शकः	शकोः	शकाम्
७	शकि	शकोः	शक्षु
८	शक्	शकौ	शकः

नपुंसकलिङ्ग १, २, ८, वि० शक् शकी शङ्कि इत्यादि शेष पु० के अनुसार

१ ली शाखा

ऐसेही लिख् (लिखनेवाला) जैसे चित्रलिख् (चित्र लिखनेवाला) १. ८.वि० लिक् (४१ वें सूत्र की २ री और १ ली विधि देखो) लिखौ (१७४ वां सूत्र देखो) लिखः २. वि० लिखम् इत्यादि ३. वि० लिखा लिग्भ्याम् लिग्भिः इत्यादि ७, वि० बहुवचन लिक्षु

नपुन्सक १, २, ८. वि० लिक् लिखी लिङ्खि इत्यादि शेष पुलिङ्ग के अनुसार

२ री शाखा

ऐसेही पिछला ग् वा घ् क् होजाताहै और जब पिछला घ् द् ध् भ् वा ह् भ पना स्वासयुक्त रूप छोड़ देताहै तब ये स्वासयुक्त अपने पहले वर्ण से जो कुछ पहला वर्ण ग् ड् द् वा ब् होता है पलटजाता है (४४ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

३ री शाखा

सुवल्ग् पु० स्त्री० (अच्छा कूदनेवाला) १, ८, वि० सुवल्क् (४१ वें सूत्र की १ ली विधिदेखो) सुवल्गौ इत्यादि २. वि० सुवल्गम् इत्यादि ३. वि० सुवल्गा सुवल्ग्भ्याम् इत्यादि ४ वि० सुवल्गे इत्यादि ५, ६. वि० सुवल्गः इत्यादि ७. वि० सुवल्गि सुवल्गोः सुवल्क्षु (७० वां सूत्र देखो) नपुन्सकलिङ्ग १, २, ८, वि० सुवल्क् सुवल्गी सुवल्गि अथवा (१७६ वें सूत्र की ८ वीं शाखा देखो) सुवल्गि

१७६ वां सूत्र

च् छ् ज् झ् अन्त में रखनेवाले अपूर्ण पद यों वर्तनी कियेजाते हैं

पिछला च् क् वा ग् होजाताहै पिछला छ् श् से पलटकर व्यञ्जनादि अन्तों के पहले ट् वा ड् होजाताहै पिछला ज् व्यञ्जनादि अन्तों के पहले क् और ग् होजाताहै अथवा ट् और ड् होजाताहै और पिछला झ् कभी आता है सो व्यञ्जनादि अन्तों के पहले क् वा ग् होजाता है [४१ वें सूत्र की २ री विधि और ९२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो]

वाच् स्त्री० (वोली) वच् से १, ८, वि० वाक् पलटे वाक्स् के (३१ वें सूत्र की १ ली विधि देखो) वाचौ वाचः २. वि० वाचम् वाचौ वाचः ३. वि० वाचा वाग्भ्याम् वाग्भिः ४, वि० वाचे वाग्भ्याम् वाग्भ्यः ५, वि० वाचः वाग्भ्याम् वाग्भ्यः ६, वि० वाचः वाचोः वाचाम् ७, वि० वाचि वाचोः वाक्षु ऐसे ही मुच् (छुड़ानेवाला) १. ८. वि० मुक् मुचौ मुचः

भुज् पु० स्त्री० (खानेवाला वा वाली) १, ८, वि० भुक् भुजौ भुजः २. वि० भुजम् इत्यादि ३. वि० भुजा भुग्भ्याम् भुग्भिः इत्यादि

प्राछ् पु० स्त्री० (पूछनेवाला वा वाली) प्रछ् से १. ८. वि० प्राट् प्राशौ प्राशः २. वि० प्राशम् इत्यादि ३. वि० प्राशा प्राड्भ्याम् इत्यादि ७. वि० बहुवचन प्राट्सु

भज् भाज् होजाता है जैसे वच् वाच् होजाता है जैसे १. ८. वि० भाक् पु० स्त्री० न० (भाग लेनेवाला वा वाली)

१ ली शाखा

नपुन्सक ऐसे वनायेजाते हैं १. २. ८. वि० वाक् वाची वाञ्चि इत्यादि जैसे सुवाच् (अच्छा वोलनेवाला) भुक् भुजी भुञ्जि इत्यादि प्राट् प्राशी प्राञ्छि इत्यादि

२ री शाखा

अञ्च् (जा) के जव कोई उपसर्ग और क्रियाविशेषणसम्बन्धी प्रत्यय पहले आते हैं तव उससे थोड़े सूत्र विरुद्ध नाम बनते हैं ऐसे जैसे प्राञ्च् (पूर्वी) और थोड़े मिश्रितों के अन्त में अ रखनेवाले शब्दों के पीछे आता है जैसे अधराञ्च् (नीचे झुकनेवाला) इत्यादि

इन सव का अनुनासिक २, वि० के वहुवचन और शेष विभक्तियों के पुलिङ्ग में छूटजाताहै १. वि० के एकवचन में पिछला च् क् होके अपने पहले अनुनासिक को कंठस्थानी रूप देता है और फिर वुह क् ३१ वें सूत्र की १ ली विधि के अनुसार गिरजाताहै २. वि० के वहुवचन में और शेष अवलनम विभक्तियों में प्रत्यञ्च् इ

त्यादि अपूर्णपद का कुछ और भी सुधारा होताहै.

प्राञ्च् पु० (पूर्वी वा आगेजाताहुआ) १. ८, वि० प्राङ् प्राञ्चौ प्राञ्चः २, वि० प्राञ्चम् प्राञ्चौ प्राचः ३, वि० प्राचा प्राग्भ्याम् प्राग्भिः ४, वि० प्राचे इत्यादि ७, वि० बहुवचन प्राक्षु ऐसे ही अवाञ्च् पु० (दक्षिणी)

प्रत्यञ्च् पु० (पश्चिमी) १, ८, वि० प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः २, वि० प्रत्यञ्चम् प्रत्यञ्चौ प्रतीचः ३, वि० प्रतीचा प्रत्यग्भ्याम् प्रत्यग्भिः ४, वि० प्रतीचे इत्यादि ऐसे ही सम्यञ्च् (साथ जाताहुआ) और उदञ्च् (उत्तरी) २, वि० के बहुवचन और शेष अबलतम विभक्तियों में होता है समीचः उदीचः

ऐसे ही विष्वञ्च् (प्रत्येक स्थान में जाताहुआ) २, वि० के बहुवचन में और शेष अबलतम विभक्तियों में होता है विषूचः इत्यादि अपूर्णपद विषूच् से

ऐसेही तिर्यञ्च् (तिर्छा जाताहुआ एक जन्तु) २, वि० के बहुवचन और अबलतम विभक्तियों में अपूर्णपद तिरश्च् से होता है तिरश्चः इत्यादि

इन नामों का स्त्रीलिङ्ग रूप और नपुन्सकलिङ्ग द्विवचन २ वि० के बहुवचन के अनुसार आतेहैं जैसे १, वि० स्त्री० प्राची इत्यादि अवाची इत्यादि प्रतीची इत्यादि उदीची इत्यादि समीची इत्यादि तिरश्ची इत्यादि और नदी के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं

नपुन्सक होता है १, २, ८. वि० प्राक् प्राची प्राञ्चि इत्यादि प्रत्यक् प्रतीची प्रत्याञ्चि इत्यादि

३ री शाखा

प्राञ्च् जब [पूजताहुआ] का अर्थ देता है तब अपने अनुनासिक को जो कण्ठस्थानी बनजाताहै ज्यों का त्यों रखता है परन्तु च् क् होजाताहै सो व्यञ्जनादि अन्तों के पहले छूटजाताहै जैसे

१. ८. वि० प्राङ् प्राञ्चौ इत्यादि २, वि० प्राञ्चम् इत्यादि ३. वि० प्राञ्चा प्राङ्भ्याम् इत्यादि

ऐसे ही क्रुञ्च् (सारस) १, ८ वि० क्रुङ् क्रुञ्चौ इत्यादि २, वि० क्रुञ्चम् इ०

त्यादि ३; वि० कुञ्चा कुङ्भ्याम् इत्यादि ७. वि० बहुवचन कुङ्क्षु वा कुङ्क्षु (५५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

४ थी शाखा

असृन् न० (रुधिर) यथाविधि आताहै जैसे १, २, ८, वि० असृक् असृजी, असृञ्जि इत्यादि परन्तु विह अपना २, वि० का बहुवचन और दूसरी विभक्तियां एक पूरी वर्तनी न रखनेवाले अपूर्णपद असन् से लेसकताहै जैसे १, ८. वि० बहुवचन असृञ्जि २, वि० बहुवचन असृञ्जि वा असानि ३, वि० असृजा वा अस्ना असृग्भ्याम् वा असभ्याम् इत्यादि ७, वि० असृजि वा असनि वा अस्नि इत्यादि

५ वीं शाखा

जो नाम यज् (पूज) राज् (चमक) मृज् (मल) भ्राज् (चमक) भ्रज्ज् (तल) मज् (घूम) सृज् (उत्पन्नकर) से बनते हैं बहुधा उनका पिछला ज् व्यञ्जनादि अन्तों के पहले ट् वा ड् से पलटजाता है जैसे

देवेज् पु० (देवताओं को पूजनेवाला) [यज् इज् होगयाहै] १, ८, वि० एकवचन देवेट् ऐसे ही राज् पु० (राजा) १, वि० एकवचन राट् ३, वि० राजा राड्भ्याम् इत्यादि ऐसे ही परिमृज् (स्वच्छ करनेवाला) १, वि० एकवचन परिमृट् ऐसेही विभ्राज् पु० स्त्री० (चमकीला) १, वि० एकवचन विभ्राट् ऐसे ही परिव्राज् पु० (तपस्वी) (यहां व्रज् व्राज् होगयाहै) १, वि० एकवचन परिव्राट् ऐसे ही विश्वसृज् पु० (विश्व को उत्पन्नकरनेवाला) १, वि० एकवचन विश्वसृट्

परन्तु विश्व् जब राज् के पहले आता है जैसे विश्वराज् पु० (विश्व का राजा) तब जहां ज् ट् वा ड् होजाता है वहां विश्वा होजाता है जैसे १. वि० विश्वाराट् विश्वराजौ इत्यादि

ऋत्विज् पु० (यज्ञ करनेवाला) (ऋतु और यज् के पलटे इज् से मिलके बना है) यथाविधि आता है जैसे १, ८, वि० ऋत्विक्

६ ठी शाखा

अवयाज् पु० (यज्ञ करनेवाला और यज्ञ का एक भाग) की व्यञ्जनादि वि[illegible]
कियां उसके पलटे एक अप्रसिद्ध अपूर्णपद अवयस् से वर्तती हैं १, ८. वि०।
चन द्विवचन बहुवचन अवयाः अवयाजौ अवयाजः २. वि० अवयाजम् इत्या[illegible]
३. वि० अवयाजा अवयोभ्याम् इत्यादि ७. वि० बहुवचन अवयस्सु वा अ[illegible]
:सु

७ वीं शाखा

भ्रज्ज् (तलनेवाला) अपने अपूर्णपद के लिये भृज्ज् लेसकता है और १, ८
० भृट् भृज्जौ भृज्जः २. वि० भृज्जम् इत्यादि ऐसे ही व्रश्च् (काटनेवाला) कि
र की मति के अनुसार वृट् इत्यादि होता है वट् इत्यादि नहीं होता परन्तु को
कहते हैं कि होता है

८ वीं शाखा

ऊर्ज् स्त्री० (शक्ति) १, ८, वि० ऊर्क् इत्यादि (२१ वें सूत्र की १ ली शि[illegible]
वर्णन देखो) २. वि० ऊर्जम् इत्यादि ३. वि० ऊर्जा ऊर्भ्याम् इत्यादि मिश्रि[illegible]
अन्त में नपुन्सक होता है १, २, ८, वि० ऊर्क् ऊर्जी ऊर्ञ्जि परन्तु इन विभक्ति[illegible]
जब कोई शब्द अन्त में मिलाहुआ व्यञ्जन रखता है जिसका पहला अं[illegible]
वा र् होता है तब अनुनासिक बहुवचन में इच्छानुसार छूटसकता है इसलि[illegible]
र्जि भी शुद्ध है

९ वीं शाखा

खञ्ज् (लंगड़ा) होता है १, वि० खन् खञ्जौ खञ्जः ३. वि० बहुवचन ख[illegible]
गः ७. वि० बहुवचन खन्सु

१७७ वां सूत्र

थ् वा ध् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यों वर्तनी कियेजाते हैं

पिछला स्वासयुक्त वर्ण व्यञ्जनादि अन्तों के पहले अपने अस्वासयुक्त से पलट जाता है (२१ वें सूत्र की २ री विधि और ४३ वां सूत्र देखो) परन्तु स्वरादि अन्तों के पहले नहीं (४३ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) कथ् पु० स्त्री० (कहनेवाला वा वाली) १. ८ वि० कत् कथौ कथः २ वि० कथम् इत्यादि ३ वि० कथा कद्भ्याम् इत्यादि ऐसे ही युध् स्त्री० (लड़ाई) १. ८ वि० युत् युधौ युधः २ वि० युधम् इत्यादि ३ वि० युधा युद्भ्याम् इत्यादि

बुध् पु० स्त्री० (जाननेवाला वा वाली) में पहला ब् जहां ध् त् वा द् होता है वहां भ् होजाता है (१७५ वें सूत्र की २ री शाखा और ४४ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) जैसे १, ८ वि० भुत् बुधौ बुधः २ वि० बुधम् इत्यादि ३ वि० बुधा भुद्भ्याम् इत्यादि ७ वि० बहुवचन भुत्सु

१ ली शाखा

नपुन्सक १, २. ८ वि० कत् कथी कन्थि इत्यादि युत् युधी युन्धि इत्यादि

१७८ वां सूत्र

प् फ् ब् भ् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यौं वर्तनी कियेजाते हैं

गुप् पु० स्त्री० (बचानेवाला वा वाली) १. ८ वि० गुप् गुपौ गुपः २ वि० गुपम् इत्यादि ३ वि० गुपा गुब्भ्याम् गुब्भिः इत्यादि

लभ् पु० स्त्री० (पानेवाला वा वाली) १. ८ वि० लप् लभौ लभः २ वि० लभम् इत्यादि ३ वि० लभा लब्भ्याम् लब्भिः इत्यादि ७ वि० बहुवचन लप्सु

१ ली शाखा

नपुन्सक १. २, ८ वि० गुप् गुपी गुम्पि इत्यादि लप् लभी लम्भि इत्यादि

२ री शाखा

अप् स्त्री० (जल) केवल बहुवचन में आता है और भ् के पहले अपने पिछ-

ले के पलटे त् लेताहै सो द् होजाता है जैसे १. ८ वि० आपः २ वि० अपः ३ वि० अद्भिः ४. ५. वि० अद्भ्यः ६ वि० अपाम् ७ वि० अप्सु वेद में कभी एकवचन भी आताहै

१७९ वां सूत्र

म् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यौं वर्तनी कियेजाते हैं

पिछला म् व्यञ्जनादि अन्तों के पहले न् होजाता है शम् पु० स्त्री० (शान्त करनेवाला वा वाली) १, ८ वि० शन् शमौ शमः २ वि० शमम् इत्यादि ३ वि० शमा शन्भ्याम् शन्भिः इत्यादि ७ वि० बहुवचन शन्सु

१ ली शाखा

ऐसेही प्रशाम् पु० स्त्री० (शान्त) १. ८ वि० प्रशान् प्रशामौ प्रशामः २ वि० प्रशामम् इत्यादि ३ वि० प्रशामा प्रशान्भ्याम् इत्यादि ७ वि० बहुवचन प्रशान्सु वा प्रशान्त्सु (५३ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

२ री शाखा

नपुन्सक १. २, ८ वि० शन् शमी शामि इत्यादि प्रशान् प्रशामी प्रशामि इत्यादि

१८० वां सूत्र

र् और व् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यौं वर्तनी कियेजाते हैं

जो स्वर पिछले र् के पहले आता है सो जो इ वा उ होता है तो व्यञ्जनादि अन्तों के पहले दीर्घ होजाता है (१६६ वां सूत्र देखो) और पिछला र् मूलस्थ न्भी होताहै तो ७ वि० के बहुवचन के स् के पहले विसर्ग नहीं होता (७१ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) चर् पु० स्त्री० (जानेवाला वा वाली) १, ८, वि० चर् चरौ

रः २ वि० चरम् इत्यादि ३ वि० चरा चभ्र्याम् चर्भिः इत्यादि ७ वि० बहुवचन चर्षु

द्वार् स्त्री० (द्वार) १, ८ वि० द्वार् द्वारौ द्वारः इत्यादि

गिर् स्त्री० (बोली) १, ८ वि० गीर् गिरौ गिरः २ वि० गिरम् इत्यादि ३ वि० गि रा गीर्भ्याम् गीर्भिः इत्यादि ७ वि० बहुवचन गीर्षु

१ ली शाखा

नपुन्सक १, २, ८ वि० चर् चरी चरि इत्यादि गीर् गिरी गिरि इत्यादि ऐसे ही वार् न० (जल) १, २ वि० वार् वारी वारि

२ री शाखा

दिव् स्त्री० (आकाश) व् अन्त में रखनेवाला एक सूत्रविरुद्ध नाम है उसकी १, ८ वि० एकवचन द्यो से बनती है (१३३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और दूसरी व्यञ्जनादि विभक्तियां द्यु से जैसे

१, ८ वि० द्यौः दिवौ दिवः २ वि० दिवम् दिवौ दिवः ३ वि० दिवा द्युभ्याम् इत्यादि

ऐसे ही सुदिव् पु० स्त्री० (अच्छे आकाशवाला वा वाली) परन्तु नपुन्सक होता है १, २, ८ वि० सुद्यु सुदिवी सुदीवि

१८१ वां सूत्र

श् और ष् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यों वर्तनी कियेजाते हैं

इनकी वर्तनी में यिह जानना कठिन है कि कौनसे अपूर्णपद अपने पिछले वर्ण को क् से पलटते हैं और कौनसे ट् से [२१ वें सूत्र की ५ वीं विधि देखो] मूल दिश् दृश् मृश् स्पृश् और धृष् में [धृष् से दधृष् (ढीठ) होताहै] पिछला वर्ण क् होताहै और नश् में इच्छानुसार क् वा ट् होताहै अर्थात् नक् वा नट् और प्रत्येक अवस्था में अपूर्णपदों के पिछले श् और ष् दोनों ट् होजातेहैं

विश् पु० स्त्री० (प्रवेश करनेवाला वा वाली, वैश्य) १, ८ वि० विट् (४१ वें ... की ५ वीं विधि देखो) विशौ विशः २ वि० विशम् इत्यादि ३ वि० विशा विड्‌... इत्यादि दिश् स्त्री० (दिशा) १. ८ वि० दिक् (४१ वें सूत्र की ५ वीं विधि औ... वां सूत्र देखो) दिशौ दिशः २ वि० दिशम् इत्यादि ३ वि० दिशा दिग्भ्याम् इ... द्विष् पु० स्त्री० (द्वेष करनेवाला वा वाली) १, ८ वि० द्विट् (४१ वें सूत्र ... वीं विधि देखो) द्विषौ द्विषः २ वि० द्विषम् इत्यादि ३ वि० द्विषा द्विड्भ्याम्... दि मृष् पु० स्त्री० (सहनेवाला वा वाली) १. ८ वि० मृट् (४१ वें सूत्र की ... विधि देखो) मृषौ मृषः २ वि० मृषम् इत्यादि ३ वि० मृषा मृड्भ्याम् इत्यादि (छूनेवाला) १. ८ वि० स्पृक् स्पृशौ स्पृशः इत्यादि ...

नपुन्सक १, २, ८ वि० विट् विशी विंशि इत्यादि दिक् दिशी दिंशि ... द्विट् द्विषी द्विंषि इत्यादि मृट् मृषी मृंषि इत्यादि ...

१ ली शाखा

पुरोडाश् (यज्ञकरनेवाला) वेद में आला है १. ८ वि० के एकवचन में ह... पुरोडाः इसकी दूसरी व्यञ्जनादि विभक्तियां एक अप्रसिद्ध अपूर्णपद पुरोडस् ... नती हैं (१५६ वें सूत्र की ६ठी शाखा देखो)

२ री शाखा

सुहिंस् पु० स्त्री० (बहुत सतानेवाला वा वाली) १, ८ वि० सुहिन् सुहिंसौ ... दि २वि० सुहिंसम् इत्यादि ३ वि० सुहिंसा सुहिन्भ्याम् इत्यादि परन्तु जो नाम... में स् रखते हैं और उसके पहले कोई स्वर. सो १६३ वें सूत्र के अनुसार अ...

३ री शाखा

गोरक्ष् (गाय रखनेवाला) १, ८ वि० गोरक् वा गोरट् गोरक्षौ इत्यादि

४ थी शाखा

ऐसेही इच्छार्थक अपूर्णपदों से बनेहुए नाम जैसे पिपक्ष् (पकायाचाहने... और विवक्ष् (कहाचाहनेवाला) १. ८ वि० पिपक् पिपक्षौ इत्यादि विवक्...

इत्यादि (१६६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१८२ वां सूत्र

ह् अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद यों वर्तनी कियेजाते हैं

जो अपूर्णपद आदि में द् रखते हैं उनका पिछला स्वासयुक्त वर्ण व्यञ्जनादि अन्तों के पहले क् (ग्) होजाताहै और दूसरे अपूर्णपदों का पिछला ट् (ड्) होजाता है और जिन अपूर्णपदों में पहला द् वा ग् होताहै उनमें पिछला ह् जातारहताहै और उसके पलटे जब कभी पिछला ह् क् (ग्) वा ट् (ड्) होजाता है तब वुह पहला स्वासयुक्त ध् वा घ् होजाता है (४४ वें सूत्र की ३ री शाखा और १७५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) जैसे लिह् पु० स्त्री० (चाटनेवाला वा वाली) १, ८ वि० लिट् २१ वें सूत्र की ३ री विधि देखो) लिहौ लिहः २ वि० लिहम् इत्यादि ३ वि० लिहा लिड्भ्याम् इत्यादि ७ वि० बहुवचन लिट्सु वा लिट्त्सु दुह् पु० स्त्री० (दोहनेवाला वा वाली) १. ८ वि० धुक् दुहौ दुहः २ वि० दुहम् इत्यादि ३ वि० दुहा धुग्भ्याम् धुग्भिः ७ वि० बहुवचन धुक्षु

नपुन्सक १, २. ८ वि० लिट् लिही लिंहि इत्यादि धुक् दुही दुंहि इत्यादि

१ ली शाखा

द्रुह् पु० स्त्री० (सतानेवाला वा वाली) १ वि० ध्रुक् वा ध्रुट् [४४ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो] ३ वि० द्रुहा ध्रुग्भ्याम् वा ध्रुड्भ्याम् इत्यादि ७ वि० बहुवचन ध्रुक्षु वा ध्रुट्सु ऐसेही मुह् पु० स्त्री० (मोह करनेवाला वा वाली १ वि० मुक् वा मुट् स्निह् [प्यार करनेवाला] और स्नुह (उलटी करनेवाला) भी ऐसी ही इच्छानुसार रखते हैं

२ री शाखा

उष्णिह् स्त्री० (एक प्रकार का छन्द) का पिछला व्यञ्जनादि अन्तों के पहले

दकारादि अपूर्णपदों के सदृश क् (ग्) होजाताहै । वि॰ उष्णिक उष्णिग्

३ री शाखा

वाह् (उठानेवाला) वह् (उठा) से इसका वा । २ वि॰ के बहुवचन में और
व अवलम्ब विभक्तियों में और स्त्रीलिङ्गवाले ई के पहले ऊ होजाता है और
मिश्रित शब्द का पहला अंग अन्त में अ वा आ रखताहै तो वृद्ध अ वा आ
ऊ से मिलके ओ के पलटे औ होजाता है (३१ वां सूत्र देखो) जैसे

भारवाह् पु॰ स्त्री॰ (बोझ उठानेवाला वा वाली) १, ८ वि॰ पु॰ भारवाट् भा
वाहौ भारवाहः २ वि॰ भारवाहम् भारवाहौ भारौहः ३ वि॰ भारौहा
म् इत्यादि १ वि॰ स्त्री॰ भारौही इत्यादि ऐसे ही प्रष्ठवाह् पु॰ (पीठ पर उठाने
ला) और विश्ववाह् (सब उठानेवाला) दूसरी अवस्थाओं में वाह् का ऊह् होना
ना इच्छानुसार है जैसे शालिवाह् (चांवल उठाने वाला) २ वि॰ बहुवचन शालि
हः वा शालिवाहः

४ थी शाखा

श्वेतवाह् पु॰ इन्द्र (धौले घोड़े पर चढ़ाहुआ अर्थात् इन्द्र) का वा २ वि॰
बहुवचन इत्यादि में बनारहसकताहै और व्यञ्जनादि विभक्तियों में ऐसा बर्ताव
कियाजाता है मानो उसका अपूर्णपद श्वेतवस् है जैसे १, ८ वि॰ श्वेतवाः श्वेतवाहौ
श्वेतवाहः २ वि॰ श्वेतवाहम् श्वेतवाहौ श्वेतौहः वा श्वेतवाहः ३ वि॰ श्वेतौ
हा वा श्वेतवाहा श्वेतवोभ्याम् श्वेतवोभिः इत्यादि

५ वीं शाखा

तुरासाह् (इन्द्र) का स् जहां ह् ट् वा ड् होताहै वहां ष् से पलटजाता है जै
से १ वि॰ तुराषाट् तुरासाहौ तुरासाहः २ वि॰ तुरासाहम् इत्यादि ३ वि॰ तुरासा
हा तुराषाड्भ्याम् इत्यादि

६ ठी शाखा

अनडुह् पु॰ (बैल) (पलटे अनोवाह् के जो अनस् (गाड़ी) और वाह् (

टानेवाला) से बना है) इसकी १, ८ वि० एकवचन अनड्वन् से और दूसरी सबल विभक्तियां अनड्वाह से और मध्यम विभक्तियां अनडुत् से बनती हैं जैसे १ वि० अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः २ वि० अनड्वाहम् अनड्वाहौ अनडुहः ३ वि० अनडुहा अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः इत्यादि ७ वि० बहुवचन अनडुत्सु ८ वि० अनड्वन् इस का स्त्रीलिङ्ग रूप है अनड्वाही परन्तु मिश्रितों के अन्त में स्त्री० १ वि० एकवचन होता है अनडुही नपुन्सक १, ८ वि० अनडुत् अनडुही अनड्वांहि

१८३ वां सूत्र

नह् (बांधनेवाला) का पिछला मिश्रितों के अन्त में द् वा ड् के पलटे त् वा द् से पलटजाता है जैसे उपानह् स्त्री० (जूती) १, ८ वि० उपानत् उपानहौ उपानहः २ वि० उपानहम् इत्यादि ३ वि० उपानहा उपानद्भ्याम् इत्यादि ७ वि० बहुवचन उपानत्सु (३०६ ठे सूत्र की २री शाखा देखो)

अपूर्णवर्तनीवाले नाम

१८४ वां सूत्र

जो नाम आगे लिखेजाते हैं सो पहली पांच विभक्तियों में नहीं आते उनके पलटे दूसरे आते हैं (पा० ६, १, ६३) असन् न० (१७६ वें सूत्र की ४थी शाखा देखो) आसन् न० (१०८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) उदन् न० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) दत् पु० (१०८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) दोषन् पु० न० (१६६ वें सूत्र की ४थी शाखा देखो) नस् स्त्री० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) निश् स्त्री० (१०८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) पद् पु० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) पृत् स्त्री० (१०८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) मांस् न० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) मास् पु० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) यकन् न० (१२२ वां सूत्र और १५६ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) यूषन् पु० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो) शकन् न० (१२२ वां सूत्र और [illegible] सूत्र की ३ री शाखा देखो) शीर्षन् न० (१५६ वें सूत्र की २ री शाखा

देखो) स्रु न० (११६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) त्वष्ट्र न० (१०८ वें सूत्र की ५वीं शाखा देखो)

१८५ वां सूत्र

जो नाम दूसरी विभक्तियों में अपूर्ण हैं उनके दृष्टान्त ये हैं अहन् न० (१५६ वां सूत्र देखो) क्रोष्टु पु० (१२८ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) जरस् स्त्री० (१७ वां सूत्र देखो)

३ रा प्रकरण
विशेषणों के विषय में

१८६ वां सूत्र

संज्ञाओं की वर्तनी में विशेषणों की वर्तनी भी आजाती है जैसा ऊपर बताया है संज्ञाओं के तीन दृष्टान्त प्रत्येक भाग में दिये हैं सोही उन्हीं भागों के तीनों लिङ्गवाले विशेषणों के लिये दृष्टान्त होसकते हैं विशेषण तीन प्रकार के हैं पहले दूसरे तीसरे जैसे आगे बताये जाते हैं

१ ले प्रकार के

मूलसम्बन्धी वा अमिश्रित विशेषण हैं जो मूलों से निकले हैं संज्ञाओं से निकले ये संज्ञाओं के पहले दूसरे और तीसरे भाग से सम्बन्ध रखतेहैं (८० वां सूत्र प्रथमपद ८१ वां सूत्र प्रथमपद ८२ वां सूत्र प्रथमपद १०३ रे सूत्र से ११९ वें सूत्र तक देखो)

२ रे प्रकार के

संज्ञासम्बन्धी वे विशेषण हैं जो द्वितीयपदवाले अर्थात् तद्धित प्रत्यय लगाके संज्ञाओं से बनायेजाते हैं सो संज्ञाओं के १ ले ५ वें और ६ ठे भाग से सम्बन्ध रखते हैं (८० वां सूत्र द्वितीयपद ८४ वां सूत्र द्वितीयपद ८५ वां सूत्र द्वितीयपद १०३

(ा १४० वां और १५९ वां सूत्र देखो)

३ रे प्रकार के

मिश्रित विशेषण वे हैं जो मिश्रितों के अन्त में मूल वा संज्ञाओं के लगने से ब नते हैं ये आठों भाग के अनुसार आते हैं

१८७ वां सूत्र

पहले प्रकार वाले अमिश्रित वा मूलसम्बन्धी विशेषणों के दृष्टान्त

शुभ (अच्छा) पु॰ न॰ अपूर्णपद शुभ स्त्री॰ अपूर्णपद शुभा १ ले भाग के विशेषण का एक दृष्टान्त आगे पूरा लिखाजाता है जिससे पु॰ स्त्री॰ और न॰ की वर्तनी एक साथ देखने में आजावे इन विशेषणों में से किसी२ का स्त्री॰ अन्त में इ रखता है सो नदी के सदृश आता है (१०५ वां सूत्र देखो) अगले दृष्टान्तों में केवल १ वि॰ के एकवचन लिखेजाएँगे

एकवचन

विभक्ति	पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुन्सकलिङ्ग
१	शुभः	शुभा	शुभम्
२	शुभम्	शुभाम्	शुभम्
३	शुभेन	शुभया	शुभेन
४	शुभाय	शुभायै	शुभाय
५	शुभात्	शुभायाः	शुभात्
६	शुभस्य	शुभायाः	शुभस्य

७	शुभे	शुभायाम्	शुभे
८	शुभ	शुभे	शुभ

द्विवचन

विभक्ति	पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुन्सकलि
१, २, ८	शुभौ	शुभे	शुभे
३, ४, ५	शुभाभ्याम्	शुभाभ्याम्	शुभाभ्याम्
६, ७	शुभयोः	शुभयोः	शुभयोः

बहुवचन

विभक्ति	पुल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुन्सकलि
१, ८	शुभाः	शुभाः	शुभानि
२	शुभान्	शुभाः	शुभानि
३	शुभैः	शुभाभिः	शुभैः
४, ५	शुभेभ्यः	शुभाभ्यः	शुभेभ्यः
६	शुभानाम्	शुभानाम्	शुभानाम्
७	शुभेषु	शुभासु	शुभेषु

भाग	उपपर्ण	अर्थ	एकवचन पुल्लिङ्ग	एकवचन स्त्रीलिङ्ग		एकवच नपुन्स

१	प्रिय	प्यारा	प्रियः	प्रिया	१०५	प्रियम्	
	सुन्दर	सुरूपवान	सुन्दरः	सुन्दरा वा सुन्दरी		सुन्दरम्	
२	शुचि	पवित्र	शुचिः	शुचिः		शुचि	
३	पाण्डु	पीला	पाण्डुः	पाण्डुः		पाण्डु	
	साधु	भला	साधुः	साधुः वा साध्वी	१०५	साधु	
	मृदु	कोमल	मृदुः	मृद्वी		मृदु	
	भीरु	डरपोक	भीरुः	भीरुः वा भीरूः	१०५	भीरु	

वर्णन

इ और उ अन्त में रखनेवाले नपुन्सक विशेषण २. ५.६ और ७ वि० के एकवचन और ६ और ७ वि० के द्विवचन में इच्छानुसार पुलिङ्ग के सदृश आते हैं जैसे २ वि एकवचन शुचिने वा शुचये मृदुने वा मृदवे ५. ६ वि० एकवचन शुचिनः वा शुचेः मृदुनः वा मृदोः ७ वि० एकवचन शुचिनि वा शुचौ मृदुनि वा मृदौ ६. ७ वि० द्विवचन शुचिनोः वा शुच्योः मृदुनोः वा मृद्वोः (११९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१८८वां सूत्र

२ रे प्रकारवाले संज्ञासम्बन्धी विशेषणों के दृष्टान्त जो संज्ञाओं से बनते हैं

भाग	अनुपद	अर्थ	एकवचन पु०	एकवचन स्त्री०	सूत्र	एकवचन न०

४	मानुष धार्मिक	मान्वी धर्मवाला	मानुषः धार्मिकः	मानुषी धार्मिकी		मानुषम् धार्मिकम्
५	वलवत् श्रीमत्	वलवाला श्रीवाला	वलवान् श्रीमान्	वलवती श्रीमती	१०५ १०५	वलवत् श्रीमत्
६	सुखिन्	सुखी	सुखी	सुखिनी	१०५	सुखि

१८९ वां सूत्र

तीसरे प्रकारवाले मिश्रित विशेषणों के दृष्टान्त

भाग	उदाहरण	अर्थ	एकवचन पु०	एकवचन स्त्री०	एकवचन न०
१	वहुविद्य	वहुतजाननेवाला	वहुविद्यः	वहुविद्या	वहुविद्यम्
२	दुर्बुद्धि	मूर्ख	दुर्बुद्धिः	दुर्बुद्धिः	दुर्बुद्धि
३	अल्पतनु	छोटे शरीरवाला	अल्पतनुः	अल्पतनुः	अल्पतनु
४	वहुदातृ	वड़ादानी	वहुदाता	वहुदात्री १०५	वहुदातृ
५	सर्वजित्	सबकोजीतनेवाला	सर्वजित्	सर्वजित्	सर्वजित्
६	सुजन्मन्	अच्छेजन्मवाला	सुजन्मा	सुजन्मा	सुजन्म
	गतचेतस्	अचेत	गतचेताः	गतचेताः	गतचेतः
	मर्मस्पृश्	मनमेंचुभनेवाला	मर्मस्पृक्	मर्मस्पृक्	मर्मस्पृक्

१९० वां सूत्र

दूसरे कई मिश्रित विशेषणों के दृष्टान्त

अपूर्णपद	अर्थ	सूत्र	एकवचन पुल्लिङ्ग	एकवचन स्त्रीलिङ्ग	एकवचन नपुन्सक
शङ्खध्मा	शङ्ख फूंकने वाला	१०८वां सूत्र १ली शाखा	शङ्खध्माः	शङ्खध्माः	शङ्खध्मम्
नष्टश्री	विगड़ाहुआ	१२६वां सूत्र ८वीं शाखा	नष्टश्रीः	नष्टश्रीः	नष्टश्रि
खलपू	झाड़नेवाला भङ्गी	१२६वां सूत्र २री शाखा	खलपूः	खलपूः	खलपु
दिव्यमातृ	देवतासी मा रखनेवाला	१३०वांसूत्र	दिव्यमाता	दिव्यमाता	दिव्यमातृ
बहुरै	बहुत धन वाला.	१३४वां सूत्र १ली शाखा	बहुराः	बहुराः	बहुरि
बहुनौ	बहुत नाव रखनेवाला	१३४वां सूत्र १ली शाखा	बहुनौः	बहुनौः	बहुनु

अतिता वा अत्यन्तता सूचकपद

१११ वां सूत्र

अतिता वा अत्यन्ततासूचकपद दो रीति से बनते हैं

१ ली रीति

यिह है कि अतितासूचक के लिये अपूर्णपद के पीछे तर बढ़ता है (८० वें सूत्र का ६१ वां प्रत्यय देखो) और अत्यन्ततासूचक के लिये तम (८० वें सूत्र का ५९ वां प्रत्यय देखो) ये दोनों प्रत्यय पु० स्त्री० और न० में शुभ के सदृश वर्तनी

कियेजाते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे

पुण्य (पवित्र) पुण्यतर १ वि० पु० पुण्यतरः स्त्री० पुण्यतरा और न० पुण्यतरम् (अति पवित्र) पुण्यतम १ वि० पु० पुण्यतमः स्त्री० पुण्यतमा न० पुण्यतमम् (अत्यन्त पवित्र) ऐसेही धनवत् (धनवान) धनवत्तर (अति धनवान) धनवत्तम (अत्यन्त धनवान)

१ ली शाखा

पिछला न् छोड़दियाजाता है जैसे धनिन् (धनवान) धनितर (अति धनवान) धनितम (अत्यन्त धनवान)

२ री शाखा

विद्वस् (बुद्धिवान) होताहै विद्वत्तर विद्वत्तम (१६८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

१९२ वां सूत्र

२ री रीति

विदि है कि अतिशासूचक के लिये अपूर्णपद के पीछे ईयस् बढ़ता है १ वि० पु० ईयान् स्त्री० ईयसी न० ईयः (८६ वें सूत्र का ५वां प्रत्यय देखो) और अत्यन्तासूचक के लिये इष्ठ पु० इष्ठः स्त्री० इष्ठा न० इष्ठम् (८० वें सूत्र का १४ प्रत्यय देखो) इनकी धर्तनी शुभ के सदृश की जातीहै (१८७ वां सूत्र देखो)

वर्णन

तर तम और ईयस् इष्ठ में भिन्नता विदि जानपड़ती है कि ईयस् और इष्ठ उन पदवाले प्रत्ययों की प्रकृति रखते हैं इसलिये बहुधा मूल के वा मूल के सुधारे के पीछे लगते हैं और मूल कभी अबल होजाता है और कभी गुण चाहता है और तर और तम बहुत आते हैं

१९३ वां सूत्र

ईयस् और इष्ठ के पहले अपूर्णपद अपने पिछले स्वर को वा अति भारी व्यञ्

् विन् वत् मत् और त् को छोड़के हलकाहोजाताहै जैसे बलिन् (बलवान) बलीयस् [अति बलवान) बलिष्ठ (अत्यन्त बलवान) पापिन् (पापी) पापीयस् अति पापी) पापिष्ठ (अत्यन्त पापी) लघु (हलका) लघीयस् (अति हलका लघिष्ठ (अत्यन्त हलका) मेधाविन् (बुद्धिवान) मेधीयस् (अतिबुद्धिवान) मेधिष्ठ [अत्यन्त बुद्धिवान] ऐसे ही महत् (बड़ा) महीयस् (अति बड़ा) महिष्ठ (अत्यन्त बड़ा)

१ ली शाखा

ऐसे ही स्वादु (मीठा) से स्वादीयस् १ वि० स्वादीयान् और स्वादिष्ठः बलीयस् पु० की वर्तनी यहां पूरी लिखीजाती है (१६७ वां सूत्र देखो)

बलिन् की वर्तनी

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	बलीयान्	बलीयांसौ	बलीयांसः
२	बलीयांसम्	बलीयांसौ	बलीयसः
३	बलीयसा	बलीयोभ्याम्	बलीयोभिः
४	बलीयसे	बलीयोभ्याम्	बलीयोभ्यः
५	बलीयसः	बलीयोभ्याम्	बलीयोभ्यः
६	बलीयसः	बलीयसोः	बलीयसाम्
७	बलीयसि	बलीयसोः	बलीयःसु
८	बलीयन्	बलीयांसौ	बलीयांसः

स्त्री० वरीयसी नदी के सदृश वर्तनी कियाजाताहै (१०५ वां सूत्र देखो)
न० वरीयस् नामस् के सदृश (१६४ वां सूत्र देखो)

१९४ वां सूत्र

पिछला छोड़ने के उपरान्त अपूर्णपद बहुधा उलटापलटी उठाताहै और क
सके पलटे दूसरा प्रतिनिधि आताहै

यिह आगे प्रतिनिधियों का सूची पत्र है

यथार्थता सूचक	अर्थ	प्रतिनिधि	मूल	अतिता सूचक	अत्यन्ता सूचक
अन्तिक	पास	नेद	निद्	नेदीयस्	नेदिष्ठ
अल्प	छोटा †	कन	कन्	कनीयस्	कनिष्ठ
उरु	बड़ा	वर	वृ	वरीयस्	वरिष्ठ
ऋजु	सीधा †	ऋज	ऋञ्ज्	ऋजीयस्	ऋजिष्ठ
कृश	पतला	क्रश	कृश्	क्रशीयस्	क्रशिष्ठ
क्षिप्र	शीघ्र	क्षेप	क्षिप्	क्षेपीयस्	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र	छोटा,शुद्र	क्षोद	क्षुद्	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
गुरु	भारी	गर	गृ	गरीयस्	गरिष्ठ
तृप्र	तृप्त	त्रप	तृप्	त्रपीयस्	त्रपिष्ठ
दीर्घ	लम्बा बड़ा	द्राघ	द्राघ्	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
दूर	दूर	दव	दु	दवीयस्	दविष्ठ
दृढ	पक्का	द्रढ	दृंह	[illegible]	[illegible]

परिवृढ	प्रसिद्ध	परिव्रढ	०	परिव्रढीयस्	परिव्रढिष्ठ
पृथु	चौड़ा	प्रथ	प्रथ्	प्रथीयस्	प्रथिष्ठ
प्रशस्य	अच्छा	श्र * ज्या *	श्री ज्या	श्रेयस् ज्यायस्	श्रेष्ठ ज्येष्ठ
प्रिय	प्यारा	प्र *	प्री	प्रेयस्	प्रेष्ठ
बहु	बहुत	भू *	भू	भूयस्	भूयिष्ठ
बहुल	बहुत	बंह	बंह्	बंहीयस्	बंहिष्ठ
भृश	अधिक	भ्रश	भृश्	भ्रशीयस्	भ्रशिष्ठ
मृदु	कोमल	म्रद	म्रद्	म्रदीयस्	म्रदिष्ठ
युवन्	तरुण	यव	यु	यवीयस्	यविष्ठ
बाढ	दृढ मोटा	साध	साध्	साधीयस्	साधिष्ठ
वृद्ध	बूढ़ा	वर्ष ज्या *	वृष् ज्या	वर्षीयस् ज्यायस्	वर्षिष्ठ ज्येष्ठ
वृन्दार	उत्तम	वृन्द	०	वृन्दीयस्	वृन्दिष्ठ
स्थिर	दृढ	स्थ	स्था	स्थेयस्	स्थेष्ठ
स्थूल	मोटा	स्थव	स्थू	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
स्फिर	फूटाहुआ	स्फ	स्फाय्	स्फेयस्	स्फेष्ठ
ह्रस्व	छोटा	ह्रस	ह्रस्	ह्रसीयस्	ह्रसिष्ठ

१ ली टीका

1 अल्प यथाविधि अल्पीयस् अल्पिष्ठ भी होसकता है और ऋजु रजीयस् इत्यादि होसकता है

२ री टीका

* श्र और प्र में पिछला स्वर नहीं गिरता है परन्तु ईयस् और इष्ठ मे संधि के

सूत्रों के अनुसार मिलजाता है ज्या और भू में ईयस् के पलटे यस् आता है

१९५ वां सूत्र

तर और तम संज्ञाओं से भी लगते हैं जैसे राजन् (राजा) से राजतर इत्य
दुःख (कष्ट) से दुःखतर इत्यादि जो सर्पिस् (घी) जैसे शब्द से लगते हैं तो
स्वरतासम्बन्धी सामान्य उलटापलटियां होती हैं जैसे सर्पिष्टर इत्यादि (७० वां
त्र देखो)

यिह प्रत्यय अलग न होसकनेवाले उपसर्गों से भी लगते हैं जैसे उत् (ऊं
उत्तर (अति ऊंचा) उत्तम (अत्यन्त ऊंचा) और सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपद
भी लगते हैं (२३६ वां सूत्र देखो) और तम संख्यावाचकों से लगता है [
वां और २११ वां सूत्र देखो]

१९६ वां सूत्र

तरा और तमा ऐसे हैं और ऊ अन्त में रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपदों से
लगते हैं जैसे स्त्री (नारी) सती (पतिव्रता) विदुषी (बुद्धिवान स्त्री) और
अन्तवाला ई इच्छानुसार कभी ह्रस्व होजाता है और कभी बनारहता है जैसे
तरा स्त्रीतमा या स्त्रितरा स्त्रितमा सतीतरा सतीतमा या सतितरा सतितमा विदु
मा या विदुषितमा [पा० ६, ३, ४४. ४५]

परन्तु जो स्त्रीलिङ्ग किसी पुल्लिङ्ग संज्ञा का स्त्रीलिङ्ग होता है जैसा ब्राह
ब्राह्मण का तो उस ई को ह्रस्व अवश्य करनापड़ता है जैसे ब्राह्मणितरा [पा०
१, ४२]

१९७ वां सूत्र

तर और तम क्रियाओं की वर्त्तना में शब्दभाग आम् के साथ भी मिलकर
सकते हैं जैसे जल्पतितराम् (वह अधिक बोलता है) [८० वें सूत्र का ५
और ८१ वां अध्याय देखो]

१ वां भाग

कर्मा ईयस् और तर इष्ठ और तम एकहीं शब्द में मिलजाते हैं जैसे श्रेयस्तर श्रेष्ठतम ज्येष्ठतम नेदिष्ठतम इत्यादि और तर इष्ठ से भी लगता है जैसे ज्येष्ठतर

४ था प्रकरण

संख्यासम्बन्धियों के विषय में

संख्यासूचक

१९८ वां सूत्र.

संख्यासूचक ये हैं एक पु० स्त्री० न० (१) द्वि पु० स्त्री० न० (२) त्रि पु० स्त्री० न० (३) चतुर् पु० स्त्री० न० (४) पञ्चन् पु० स्त्री० न० [५] षष् पु० स्त्री० न० (६) सप्तन् पु० स्त्री० न० (७) अष्टन् पु० स्त्री० न० (८) नवन् (९) दशन् (१०) एकादशन् (११) द्वादशन् (१२) त्रयोदशन् (१३) चतुर्दशन् (१४) पञ्चदशन् (१५) षोडशन् (१६) सप्तदशन् [१७] अष्टादशन् (१८) नवदशन् वा ऊनविंशति (१९) विंशति स्त्री० २० एकविंशति २१ द्वाविंशति २२ त्रयोविंशति २३ चतुर्विंशति २४ पञ्चविंशति २५ षड्विंशति २६ सप्तविंशति २७ अष्टाविंशति २८ नवविंशति वा ऊनत्रिंशत् २९ त्रिंशत् स्त्री० ३० एकत्रिंशत् ३१ द्वात्रिंशत् ३२ त्रयस्त्रिंशत् ३३ चतुस्त्रिंशत् ३४ पञ्चत्रिंशत् ३५ षट्त्रिंशत् ३६ सप्तत्रिंशत् ३७ अष्टात्रिंशत् ३८ नवत्रिंशत् वा ऊनचत्वारिंशत् ३९ चत्वारिंशत् ४० एकचत्वारिंशत् ४१ द्विचत्वारिंशत् वा द्वाचत्वारिंशत् ४२ त्रिचत्वारिंशत् वा त्रयश्चत्वारिंशत् ४३ चतुश्चत्वारिंशत् ४४ पञ्चचत्वारिंशत् ४५ षट्चत्वारिंशत् ४६ सप्तचत्वारिंशत् ४७ अष्टाचत्वारिंशत् वा अष्टचत्वारिंशत् ४८ नवचत्वारिंशत् वा ऊनपञ्चाशत् ४९ पञ्चाशत् ५० एकपञ्चाशत् ५१ द्विपञ्चाशत् वा द्वापञ्चाशत् ५२ त्रिपञ्चाशत् वा त्रयःपञ्चाशत् ५३ चतुःपञ्चाशत् ५४ पञ्चपञ्चाशत् ५५ षट्पञ्चाशत् ५६ सप्तपञ्चाशत् ५७ अष्टपञ्चाशत् वा अष्टापञ्चाशत् ५८ नवपञ्चाशत् वा ऊनषष्टि ५९ ष-

ष्टि ६० एकषष्टि ६१ द्विषष्टि वा द्वाषष्टि ६२ त्रिषष्टि वा त्रियःषष्टि * ६३ चतुःषष्टि ६४ पञ्चषष्टि ६५ षट्षष्टि ६६ सप्तषष्टि ६७ अष्टषष्टि वा अष्टाषष्टि ६८ नवषष्टि वा ऊनसप्तति ६९ सप्तति ७० एकसप्तति ७१ द्विसप्तति वा द्वासप्तति ७२ त्रिसप्तति वा त्रयःसप्तति ७३ चतुःसप्तति ७४ पञ्चसप्तति ७५ षट्सप्तति ७६ सप्तसप्तति ७७ अष्टसप्तति वा अष्टासप्तति ७८ नवसप्तति वा ऊनाशीति ७९ अशीति ८० एकाशीति ८१ द्व्याशीति ८२ त्र्यशीति ८३ चतुरशीति ८४ पञ्चाशीति ८५ षडशीति ८६ सप्ताशीति ८७ अष्टाशीति ८८ नवाशीति वा ऊननवति ८९ नवति ९० एकनवति ९१ द्विनवति वा द्वानवति ९२ त्रिनवति वा त्रयोनवति ९३ चतुर्नवति ९४ पञ्चनवति ९५ षण्णवति ९६ (४३ वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो) सप्तनवति ९७ अष्टनवति वा अष्टानवति ९८ नवनवति ९९ वा ऊनशत न० (पु० भी) शत न० (पु० भी) वा एकंशतम् १०० एकशत न० १०१ द्विशत न० १०२ त्रिशत १०३ चतुःशत १०४ पञ्चशत १०५ षट्शत १०६ सप्तशत १०७ अष्टशत १०८ नवशत १०९ दशशत ११० द्विशतम् (१ वि० एकवचन न०) वा द्वे शते (१ वि० द्विवचन न०) वा शते (१ वि० द्विवचन न०) २०० त्रिशतम् (१ वि० एकवचन न०) वा त्रीणि शतानि (१ वि० बहुवचन न०) ३०० चतुःशतम् वा चत्वारि शतानि (१ वि० बहुवचन न०) ४०० पञ्च शतम् वा पञ्च शतानि ५०० षट् शतम् वा षट्शतानि ६०० और ऐसे ही सहस्र न० (पु० भी) १००० इसको एकं सहस्रम् वा दश शतानि वा दशशती भी बोलते हैं द्वे सहस्रे २००० त्रीणि सहस्राणि ३००० चत्वारि सहस्राणि ४००० इत्यादि २

१ ली टीका

* इनको त्रयष्षष्टि चतुष्षष्टि भी लिखते हैं (६२ वें सूत्र की १ ली शाखा और ६३ वां सूत्र देखो)

२ री टीका

: गर्ग शताः गौ गौ और सप्तशताः गाव जो महाभारत में शताः के विशेषण

के आए हैं

टीका

— चतुःसहस्रम् ऋगवेद ५, ३०, १५ में ४००० के लिये आया है और इसी सूत्र के अनुसार त्रिसहस्रम् ३००० के लिये और द्विसहस्रम् २००० के लिये इत्यादि आसकते हैं परन्तु यिह प्रश्न उत्पन्न होसकता है कि यिह यथाक्रम १००१. १००३ १००२ इत्यादि के लिये भी आते हैं वा नहीं आते

१११ वां सूत्र

१०० और १००० और १००० और २००० इत्यादि की बीचवाली संख्याएं विशेषण अधिक और कभी२ उत्तर संख्यासूचकों के साथ मिलने से प्रकट होसकते हैं जैसे १०१ होता है एकशतम् (ऊपर देखो) वा एकाधिकं शतम् और कभी एकोत्तरं शतम् अर्थात् १००+१ अथवा एक सौ के ऊपर एक जैसे एकाधिकशतम् ऐसेही द्व्यधिकं शतम् वा द्व्यधिकशतम् १०२ त्र्यधिकं शतम् वा त्र्यधिकशतम् १०३ सप्ताधिकं शतम् वा सप्तोत्तरं शतम् १०७ त्रिंशदधिकशतम् १३० पञ्चाशदधिकशतम् १५० (इसको सार्धशतम् (आधे समेत सौ) भी कहते हैं) षड्विंशत्यधिकद्विशतम् २२६ त्र्यशीत्यधिकत्रिशतम् ३८३ पञ्चाशीत्यधिकचतुःशतम् ४८५ षण्णवत्यधिकपञ्चशतम् ५९६ षट्षष्ट्यधिकषट्शतम् ६६६ षष्ट्यधिकसहस्रम् वा षष्ट्युत्तरसहस्रम् १०६० षोडशशतम् वा षट्शताधिकसहस्रम् १६०० षट्षष्ट्यधिक षोडशशतम् १६६६ +

टीका

+ ऐसेही २१३० को त्रिंशदधिकैकविंशतिशतम् वा त्रिंशदधिकैक विंशतिशतानि बोलते हैं अथवा पर मिलाके जैसे त्रिंशदधिकैकशतपरे द्वे सहस्रे दूसरे रूप संख्याओं के प्रकट करने के ऐसे देखने में आते हैं जैसे २१८७० सहस्राण्येकविंशतिः शतान्यष्टौ भूयश्च सप्ततिः १०९३५० शतसहस्रं नवसहस्राणि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि पा० ६ ३, ७६ के अनुसार एकान्न (एक नहीं वा एक न्यून) संख्या के साथ लाने से भी बोलसकते हैं जैसे एकान्नविंशति (एक न्यून बीस वा बीस से एक नहीं) (अ—

६०

र्थात् ११)

ऐसेही संख्यासूचक के पहले विशेषण ऊन (रहित) उस संख्या में एक न्यून दिखाने के लिये आता है और एक लिखा भी जाता है और नहीं भी लिखाजाता जैसे ऊनविंशति वा एकोनविंशति (एक रहित वीस या उन्नीस) एक के उपरान्त दूसरे संख्यासूचक कभी२ ऊन के पहले आते हैं और चिह्न दिखाते हैं कि पीछे आने वाले संख्यासूचक से इतने घटाने चाहियें जैसे पञ्चोनं शतम् वा पञ्चोनशतम् (पांच रहित सौ वा पञ्चानवें)

१ ली शाखा

और कभी कमसूचक संख्यासूचकों के साथ लगाये जाते हैं और चिह्न दिखाते हैं कि इतने बढ़ाने चाहियें जैसे एकादशं शतम् वा एकादशशतम् १११ पञ्चदशं शतम् ११५ विंशं शतम् १२० त्रिंशं शतम् वा त्रिंशशतम् १३० पञ्चाशं शतम् १५० चतुर्णवतं शतम् १९४ पञ्चदशं द्विशतम् २१५ विंशं सहस्रम् वा विंशसहस्रम् १०२०

२ री शाखा

बड़ी संख्याओं के लिये अकेले शब्द हैं जैसे अयुत न० (पु० भी) (दस सहस्र) लक्ष न० वा लक्षा स्त्री० वा नियुत न० (पु० भी) शतसहस्र (लाख वा सौ सहस्र प्रयुत न० (पु० भी) (दस लाख) कोटि स्त्री० (कोड़ वा दस प्रयुत) अर्बुद पु० न० (दस कोटि) महार्बुद पु० न० वा पद्म न० वा अब्ज न० (दस अर्बुद) खर्व न० (दस महार्बुद) निखर्व न० (दस खर्व) महापद्म न० (दस निखर्व) शङ्कु पु० वा महाखर्व न० (दस महापद्म) शङ्कु पु० न० वा समुद्र पु० (दस शङ्कु) महाशङ्कु पु० न० वा अन्त्य (दस शङ्कु) हाहा पु० वा मध्य (दस महाशङ्कु) महाहाहा पु० वा परार्ध पु० (दस हाहा) धुन न० वा धुल (दस महा हाहा) महाधुन न० वा महाधुल (दस धुन) अक्षौहिणी स्त्री० (दस महाधुन) महाक्षौहिणी (दस अक्षौहिणी)

टीका

भिन्न२ मतियों के अनुसार ऊपरवाले नामों में बड़ी संख्याओं के लिये कुछ भि
ना पाईजाती है

संख्यासूचकों की वर्तनी

२०० वां सूत्र

एक १. द्वि. २. त्रि. ३. चतुर् ४. तीनों लिङ्ग में वर्तनी कियेजाते हैं

एक. १ द्विवचन नहीं रखता सर्वनामों के सदृश वर्तनी कियाजाताहै (२३७ वां
सूत्र देखो) १ वि० पु० एकः ४ वि० पु० एकस्मै १ वि० स्त्री० एका ४ वि० स्त्री०
एकस्यै १ वि० न० एकम् १ वि० पु० बहुवचन एके (कोई) इसके साथ तर और
तम भी लगते हैं जैसे एकतर (दो में से एक) एकतम (बहुतों में से एक) ये भी
सर्वनामों के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (२३६ और २३८ वां सूत्र देखो)

२०१ ला सूत्र

द्वि २ केवल द्विवचन में आता है और इसका द्व अपूर्णपद हो ऐसा शिवा के स
दृश वर्तनी कियाजाताहै जैसे १. २. ८ वि० पु० द्वौ स्त्री० न० द्वे ३. ४. ५ वि०
पु० स्त्री० न० द्वाभ्याम् ६. ७ वि० द्वयोः

२०२ रा सूत्र

त्रि ३ केवल बहुवचन में आता है और पु० में उन बहुवचनवाली संज्ञाओं के
सदृश आताहै जिनके अपूर्णपद अन्त में ई रखते हैं (११० वां सूत्र देखो) परन्तु
६ वि० में नहीं जैसे १. ८ वि० पु० त्रयः २ वि० त्रीन् ३ वि० त्रिभिः ४, ५ वि०
त्रिभ्यः ६ वि० त्रयाणाम् (वेद में त्रीणाम्) ७ वि० त्रिषु इसके स्त्रीलिङ्ग रूप अपू
र्णपद तिसृ से बनते हैं जैसे १. २. ८ वि० स्त्री० तिस्रः ३ वि० तिसृभिः ४. ५ वि०
तिसृभ्यः ६ वि० तिसृणाम् ७ वि० तिसृषु १. २. ८ वि० न० त्रीणि शेष पु० के अ
नुसार

२०३ रा सूत्र

चतुर् ४ केवल बहुवचन में आताहै और ऐसे वर्तनी कियाजाताहै १. ८ वि० पु०

चत्वारः २ वि० चतुरः ३ वि० चतुर्भिः ४, ५ वि० चतुर्भ्यः ६ वि० चतुर्णाम् ७ वि० चतुर्षु १. २, ८ वि० स्त्री० चतस्रः ३ वि० चतसृभिः ४. ५ वि० चतसृभ्यः ६ वि० चतसृणाम् ७ वि० चतसृषु १. २. ८ वि० न० चत्वारि शेष पुल्लिङ्ग के अनुसार

१ ली शाखा

चतुर् षष्-पञ्चन् इत्यादि में ६ वि० के अन्त आम् के पहले पा० ७. १.५५ के अनुसार न् बढ़जाता है

२०४ था सूत्र

पञ्चन् ५ केवल बहुवचन में आताहै तीनों लिङ्गों में एकसा है इसकी वर्तनी ३, ४. ५. ७ वि० में अन् अन्त में रखनेवाले नामों के सदृश होती हैं [१४६ वां सूत्र देखो] ६ वि० में पिछले का पहला दीर्घ होजाता है जैसे १. २. ८ वि० पञ्च ३ वि० पञ्चभिः ४. ५ वि० पञ्चभ्यः ६ वि० पञ्चानाम् ७ वि० पञ्चसु

पञ्चन् के सदृश सप्तन् ७ नवन् ९ दशन् १० एकादशन् ११ द्वादशन् १२ और दूसरे सब अन् अन्त में रखनेवाले संख्यासूचक वर्तनी कियेजाते हैं परन्तु अष्टन् नहीं

२०५ वां सूत्र

षष् ६ तीनों लिङ्ग में एकसा आता है और ऐसे वर्तनी कियाजाता है १, २, ८ वि० षट् ३ वि० षड्भिः ४, ५ वि० षड्भ्यः ६ वि० षण्णाम् (४३ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) ७ वि० षट्सु

१ ली शाखा

ऐसेही तीनों लिङ्ग में अष्टन् ८ जैसे १, २, ८ वि० अष्टौ वा अष्ट ३ वि० अष्टाभिः वा अष्टभिः ४, ५ वि० अष्टाभ्यः वा अष्टभ्यः ६ वि० अष्टानाम् ७ वि० अष्टासु वा अष्टसु

२ री शाखा

संख्यासूचक पञ्चन् ५ से नवदशन् (१९) तक लिङ्ग की कुछ पृथकता नहीं है

स्तु वचन और विभक्ति में उन नामों के अनुसार आते हैं जिन से सम्बन्ध रख हैं जैसे पञ्चभिः नारीभिः (पांच स्त्रियों से)

२०६ ठा सूत्र

और सब संख्यासूचक ऊनविंशति १९ से शत १०० सहस्र १००० तक और अधिक एकवचन में वर्तनी कियेजाते हैं चाहे तीनों लिङ्गवाले नामों के बहुवचन में ों आवें जो अन्त में ति रखते हैं सो स्त्री० होते हैं और मति के सदृश वर्तनी कि जाते हैं [११२ वां सूत्र देखो] और जो अन्त में त् रखते हैं सो भी स्त्री० हो- हैं और सरित् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१३६ वां सूत्र देखो) ३ वि० बहुव चन विंशत्या पुरुषैः (बीस पुरुषों से) २ वि० बहुवचन विंशतिं नरान् (बीस नरों को ३ वि० बहुवचन त्रिंशता पुरुषैः (तीस पुरुषों से) २ वि० बहुवचन त्रिंशतं नरान् तीस नरों को) शत १०० और सहस्र १००० और दूसरे अधिक संख्यासूचक अपनेर पिछले स्वर के अनुसार अ आ इ ई और उ में से कोई हो वर्तनी किये- जाते हैं जैसे शतं पितरः (सौ पिता) शतात् पितृभ्यः (सौ पिताओं से) एकाधिकश- तं पितरः (एक सौ एक पिता) सहस्रेण पितृभिः (सहस्र पिताओं के साथ) प्रयुतं नराः (दस लाख नर) कोट्या पुरुषैः (क्रोड़ पुरुषों के साथ) इत्यादि

२०७ वां सूत्र

ये संख्यासूचक ऊनविंशति १९ इत्यादि में से कोई जब बहुवचन संज्ञाओं के साथ आते हैं तब एकवचन में वर्तनी कियेजाते हैं तो भी जब अकेले और मुख्य मिलावट में आते हैं तब ये द्विवचन और बहुवचन लेसकतेहैं जैसे विंशती (दो बीस) त्रिंशतौ (दो तीस) त्रिंशतः (बहुत तीस) शते (दो सौ) शतानि (बहुत सौ) सहस्राणि (बहुत सहस्र) षष्टिः पुत्रसहस्राणि (साठ सहस्र पुत्र)

जिन वस्तुओं की संख्या की जातीहै सो बहुधा ६ वि० में आती हैं जैसे द्वे सह स्रे रथानाम् (रथों के दो सहस्र अथवा दो सहस्र रथ) सप्तशतानि नागानाम् (हा- थियों के सात सौ अथवा सात सौ हाथी) एकविंशतिः शराणाम् (शरों के इकीस

अथवा इक्कीस शर) दूसरे दृष्टान्त वाक्यरचना में मिलेंगे (८३५ वां सूत्र देखो)

क्रमसूचक

२०८ वां सूत्र

क्रमसूचक ये हैं प्रथम (पहला) द्वितीय (दूसरा) त्रितीय (तीसरा) ये शिव और शुभ के सदृश वर्तनी किये जाते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) परन्तु पहला चन पु० १, ८ वि० में इच्छानुसार सर्व का अनुगामी होता है । २३७ वां सूत्र देखो से प्रथमे वा प्रथमाः और दूसरे दो तीनों लिङ्गवाले एकवचन ४. ५ वि० और ७ सर्वनामों के सदृश आते हैं (२३७ वां और २३८ वां सूत्र देखो) जैसे ४ वि० पु द्वितीयस्मै वा द्वितीयाय स्त्री० द्वितीयस्यै वा द्वितीयायै (२३९ वां सूत्र भी

टीका

+ प्रथम के अर्थ में दूसरे विशेषण भी आसकते हैं जैसे पु० आद्यः स्त्री न० आद्यम् पु० आदिमः स्त्री० आदिमा न० आदिमम् पु० अग्रः स्त्री० अग्रम पु० अग्रिमः स्त्री० अग्रिमा न० अग्रिमम्

२०९ वां सूत्र

चतुर्थ (चौथा) पञ्चम (पांचवां) षष्ठ (छठा) सप्तम (सातवां) अ ठवां) नवम (नवां) दशम (दसवां) पु० और न० में शिव और शुभ और स्त्री० में नदी के सदृश (१०५ वां सूत्र देखो) वर्तनी किये जाते हैं जै पु० चतुर्थः स्त्री० चतुर्थी पञ्चम इत्यादि में अत्यन्ततासूचक प्रत्यय म अ

टीका

+ तुरीयः तुरीया तुरीयम् तुर्यः तुर्या तुर्यम् भी चौथे के अर्थ में आते हैं

२१० वां सूत्र

क्रमसूचक ११ वें से १९ वें तक संख्यासूचकों का पिछला न गिराने जैसे एकादशन् (ग्यारह) से एकादश (ग्यारहवां) १ वि० पु० स्त्री० न० एकादशी एकादशम् [१०३ रा १०५ वां १०४ था सूत्र देखो]

२११ वां सूत्र

बीसवां तीसवां चालीसवां और पचासवां संख्यासूचक के साथ अत्यन्ततासूचक प्रत्यय तम बढ़ाने से बनते हैं (१९५ वां सूत्र देखो) अथवा संख्यासूचक का पिछला शब्दभाग वा वर्ण गिराने से जैसे विंशति (बीस) से विंशतितम वा विंश (बीसवां) १ वि० पु० स्त्री० न० विंशतितमः विंशतितमी विंशतितमम् वा विंशः विंशी विंशम् (१०३ रा १९५ वां १०४ थां सूत्र देखो) ऐसे ही त्रिंशत्तम वा त्रिंश (तीसवां) पञ्चाशत्तम वा पञ्चाश (पचासवां) इत्यादि बीच में आनेवाले क्रमसूचक संख्यासूचक के सदृश पहले संख्या रखने से बनाये जाते हैं जैसे एकविंशतितम वा एकविंश (इक्कीसवां) इत्यादि

२१२ वां सूत्र

दूसरे क्रमसूचक साठवें से नब्बे तक तम बढ़ने से बनते हैं और जब कोई दूसरी संख्या पहले आती है तब ति को त करने से भी बनते हैं जैसे षष्टि (साठ) षष्टितम (साठवां) परन्तु षष्टितम (साठवां) के बदले षष्ट केवल तब आता है जब कोई दूसरी संख्या उसके पहले आती है जैसे एकषष्ट वा एकषष्टितम (इकसठवां) त्रिषष्ट वा त्रिषष्टितम (तिरेसठवां) नवति (नब्बे) से नवतितम (नब्बेवां) परन्तु नवत (नब्बेवां) केवल तब आता है जब कोई दूसरी संख्या उसके पहले आती है (पा० ५, २, ५८)

२१३ वां सूत्र

सौवां और सहस्रवां शत और सहस्र में तम बढ़ाने से बनते हैं और तीनों लिङ्ग में आते हैं जैसे शततम (सौवां) १ वि० पु० स्त्री० न० शततमः शततमी शततमम् ऐसेही सहस्रतमः सहस्रतमी सहस्रतमम् (सहस्रवां)

२१४ वां सूत्र

दो वा अधिक संख्याओं का समूह क्रमसूचक संख्याओं के सुधार से दिखाया जाता है जैसे द्वयम् (दो का समूह) त्रयम् (तीन का समूह) चतुष्टयम् (चार

का समूह)

२१५ वां सूत्र

थोड़ी क्रिया विशेषणसम्बन्धी संख्याएं हैं जैसे सकृत् (एकसमय) द्विस् (दो समय) त्रिस् (त्रिः) (तीन समय) चतुर् (चतुः) (चार समय) संख्याओं के साथ कृत्वस् (कृत्वः) भी इसी अर्थ में आता है जैसे पञ्चकृत्वः (समय) क्रमसूचक का नपुंसक क्रियाविशेषण के अर्थ में आसकता है जैसे प्र (पहले पहल) संख्यासम्बन्धी चिन्हों के लिये (१ ले सूत्र का यंत्र देखो)

५ वां अध्याय

सर्वनाम

२१६ वां सूत्र

सर्वनाम (सर्वनामन्) ऐसा एक अपूर्णपद नहीं रखते जो सब विभक्तियों में आसकें प्रथम वा उत्तमपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम में एकवचन का अपूर्णपद अभ्यासानुसार १ वि० में अह है और दूसरी विभक्तियों में म द्वितीय वा मध्यम पुरुषसम्बन्धी सर्वनाम में एकवचन का अपूर्णपद अभ्यासानुसार त्व वा तु है और द्विवचन और बहुवचन का यु है और त्रितीय वा अन्यपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम में एकवचन का अपूर्णपद १ वि० में स है और दूसरी विभक्तियों में त †

टीका

† संक्षिप्तता के लिये कभी प्रथम वा उत्तमपुरुष १ पु० वा उ० और द्वितीय वा मध्यमपुरुष २ पु० वा म० तृतीय वा अन्यपुरुष ३ पु० वा अ० लिखेजाएंगे

२१७ वां सूत्र

तो भी सर्वनाम का जो रूप निमृत और मिश्रित शब्दों में आता है उसको व्याकरणी बहुत सामान्य और समझ में आने योग्य समझते हैं और यह उत्तम

और मध्यम पुरुपसम्बन्धी सर्वनामों में ५ वीं विभक्तिवाले एकवचन और बहुवचन से और दूसरे सर्वनामों में १ ली और २ री विभक्ति के एकवचनवाले नपुन्सक में मिलता है

पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों की वर्तनी वर्णन

जैसे और भाषाओं में वैसे संस्कृत भाषा में भी दो उत्तमपुरुष और मध्यमपुरुषसम्बन्धी सर्वनामों की सामान्यता लिङ्ग का भेद न रखने से पाईजाती है इसलिये किसी२ सर्वनाम की पहली विभक्ति का अन्त नपुन्सक से मिलता है और यही कारण है जिससे अन्यपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम स १ वि० के स् (:) को सब व्यञ्जनों के पहले गिरा देता है इन में ८ वि० नहीं है

२१८ वां सूत्र

मद् उ० एकवचन (मैं) अस्मद् उ० बहुवचन (हम) तीनों लिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	अहम्	आवाम्	वयम्
२	माम् वा मा	आवाम् वा नौ	अस्मान् वा नः
३	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
४	मह्यम् वा मे	आवाभ्याम् वा नौ	अस्मभ्यम् वा नः
५	मत् +	आवाभ्याम्	अस्मत्
६	मम वा मे	आवयोः वा नौ	अस्माकम् वा नः

७	मयि	आवयोः	अस्मासु

२१९ वां सूत्र

त्वद् न० पु० एकवचन [तू] युष्मद् वहुवचन [तुम] तीनों लिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
१	त्वम्	युवाम्	यूयम्
२	त्वाम् वा त्वा	युवाम् वा वाम्	युष्मान् वा वः
३	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
४	तुभ्यम् वा ते	युवाभ्याम् वा वाम्	युष्मभ्यम् वा वः
५	त्वत् +	युवाभ्याम्	युष्मत्
६	तव वा ते	युवयोः वा वाम्	युष्माकम् वा वः
७	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

वर्णन

दूसरे रूप मा मे नौ इत्यादि झटका नहीं रखते और वाक्यों के पहले नहीं आसकते और निपात च (और) वा (अथवा) एव (ही) इत्यादि के पहले भी नहीं आसकते

टीका

+ अपूर्णपद मद् और त्वद् बहुधा मिश्रिनों में आते हैं इसलिये मत्तः और त्वत्तः ५ वि० के पलटे आयाकरते हैं (७१९ वां सूत्र देखो) ऐसेही ५ वि० के बहुव-

चेन ,पुष्मत्तः अस्मत्तः परन्तु पे फारी २ आते हैं

३२० वां सूत्र

तद् अन्यपुरुष (वुह)

सस् पु० (वुह (पुरुष)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	सः (स ‡)	तौ	ते
२	तम्	तौ	तान्
३	तेन	ताभ्याम्	तैः
४	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
५	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
६	तस्य	तयोः	तेषाम्
७	तस्मिन्	तयोः	तेषु

टीका

‡ स ६७ वें सूत्र के अनुसार विधिपूर्वक रूप है और सः सदा सो होजाता है (६४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

सा स्त्री० (वुह (स्त्री)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	सा	ते	ताः

२	ताम्	ते	ताः
३	तया	ताभ्याम्	ताभिः
४	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
५	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
६	तस्याः	तयोः	तासाम्
७	तस्याम्	तयोः	तासु

न० तत् [वुह]

१. २ वि० तत् ते तानि शेष पुल्लिङ्ग के अनुसार

संकेतसूचक पुरुषसम्बन्धी सर्वनाम

२२१ वां सूत्र

अन्यपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम तद् (वुह) जिसकी वर्तनी ऊपर बताई है सदा संकेतसूचक के अर्थ में भी आताहै और वुह वा यिह का अर्थ देता है

१ ली शाखा

यिह कभी दृढ़ता दिखाने के लिये दूसरे सर्वनामों के साथ आताहै जैसे सोऽहम् (वुह मैं) ते वयम् (वे हम) स त्वम् (वुह पुरुष तू) सा त्वम् (वुह (स्त्री) तू) ते यूयम् (वे तुम) सएषः (वुह यिह पुरुष) तद् एतत् न० (वुह यिह)

२२२ वां सूत्र

यिह दूसरा संकेतसूचक सर्वनाम बनाने के लिये अपेक्षापूरक सर्वनाम य (जो) के साथ भी आताहै (परन्तु वेद छोड़के और कहीं कभी आता है) इसका अपूर्णपद त्यद् होताहै १ वि० स्य. (६७ वां सूत्र देखो) त्यौ त्ये २ वि० त्यम् इत्यादि स्त्री० १ वि० स्या त्ये त्याः इत्यादि न० त्यत् त्ये त्यानि इत्यादि

२२३ वां सूत्र

ए तद् के पहले बढ़ाने से एक दूसरा सामान्य सर्वनाम बहुत करके संकेतसूचक ...ायाजाताहै जैसे

एतद् [यिह]

पु० एषः [यिह]

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	एषः (एष) ७०वां सूत्र	एतौ	एते
२	एतम् वा एनम्	एतौ वा एनौ	एतान् वा एनान्
३	एतेन वा एनेन	एताभ्याम्	एतैः
४	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
५	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
६	एतस्य	एतयोः वा एनयोः	एतेषाम्
७	एतस्मिन्	एतयोः वा एनयोः	एतेषु

स्त्री० १ वि० एषा एते एताः २ वि० एताम् वा एनाम् एते वा एने एता वा ...ाः ३ वि० एतया वा एनया एताभ्याम् एताभिः ४ वि० एतस्यै इत्यादि

...न० १ वि० एतत् एते एतानि २ वि० एतत् वा एनत् एते वा एने एतानि वा ...ानि इत्यादि

१ ली शाखा

दूसरे रूप एनम् एनेन एनाम् इत्यादि उत्तम और मध्यमपुरुष के सदृश पहले ...ब्दभाग पर झटका रखनेवाले हैं सो किसी वाक्य के पहले नहीं आने चाहियें और ... पहले वाक्य में जो कोई आताहै उसकी ओर फिरने से आसकते हैं (वाक्यपरंपरा

(८३६ वां सूत्र देखो)

२२४ वां सूत्र

एक दूसरा सामान्य संकेतसूचक सर्वनाम है इदम् (यिह) १ वि० न० सो अपूर्ण पद समझाजाताहै परन्तु यथार्थ में दो अपूर्णपद हैं अ और इ (७१९ वें सूत्र में अतः और इतः देखो) यिह पिछला अर्थात् इतः कई ऐसे सर्वनामसम्बन्धी विशेषणों का जैसे इतर ईदृश इयत् हैं अपूर्णपद होके आताहै (२३४ वां और २३४ वें सूत्र की २ री शाखा और २३६ वां सूत्र देखो)

पु० अयम् (यिह)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	अयम्	इमौ	इमे
२	इमम्	इमौ	इमान्
३	अनेन	आभ्याम्	एभिः*
४	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
५	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
६	अस्य	अनयोः	एषाम्
७	अस्मिन्	अनयोः	एषु

टीका

* यिह ३ वि० के बहुवचन के लिये १ ले भाग के पुल्लिङ्ग नामों के पुराने रूपों का एक दृष्टान्त है सो वेद में आताहै

स्त्री० इयम् [यिह]

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	इयम्	इमे	इमाः
२	इमाम्	इमे	इमाः
३	अनया	आभ्याम्	आभिः
४	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
५	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
६	अस्याः	अनयोः	आसाम्
७	अस्याम्	अनयोः	आसु

न० इदम् [यिह]

१. २ वि० इदम् इमे इमानि

२२५ वां सूत्र

एक दूसरा संकेतसूचक सर्वनाम है सो १ वि० एकवचन छोड़के और कहीं कहीं इसका सामान्य स्वरूप अदस् (यिह वा वुह) समझाजाताहै परन्तु अमु है और १ वि० एकवचन में असु इसकी वर्तनी यों की जाती है पु० १ वि० असौ अमू अमी २ वि० अमुम् अमू अमून् ३ वि० अमुना अमूभ्याम् अमीभिः ४ वि० अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः ५ वि० अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्यः ६ वि० अमुष्य अमुयोः अमीषाम् ७ वि० अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु स्त्री० १ वि० असौ अमू अमूः २ वि० अमूम् अमू अमूः ३ वि० अमुया अमूभ्याम् अमूभिः ४ वि० अमुष्यै अमूभ्याम् अमूभ्यः ५ वि० अमुष्याः इत्यादि ६ वि० अमुष्याः अमुयोः अमूषाम् ७ वि० अमुष्याम् अमुयोः अमूषु न० १. २ वि० अदः अमू अमूनि

अपेक्षापूरक सर्वनाम

२२६ वां सूत्र

अपेक्षापूरक सर्वनाम तद् के त के पलटे (२२० वां सूत्र देखो) य लाने से बनताहै जैसे

पु० यद् (जो)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
१	यः	यौ	ये
२	यम्	यौ	यान्
३	येन	याभ्याम्	यैः
४	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
५	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
६	यस्य	ययोः	येपाम्
७	यस्मिन्	ययोः	येपु

इसके स्त्रीलिङ्ग और नपुन्सकलिङ्ग तद् के स्त्रीलिङ्ग और नपुन्सकलिङ्ग के अनुसार आते हैं (२२० वां सूत्र देखो) जैसे स्त्री० १ वि० या ये याः २ वि० याम् इत्यादि इत्यादि न० १. २ वि० यत् ये यानि शेप पुलिङ्ग के अनुसार

प्रश्नसूचक सर्वनाम

२२७ वां सूत्र

प्रश्नसूचक सर्वनाम और अपेक्षापूरक सर्वनाम में यिह भेद है कि यह तद् के त के पलटे (२२० वां सूत्र देखो) य लाने से बनता है वैसे यिह क लाने से-परन्तु

...और विलिअम्स कृपा रूपी

...वचन १. २ वि० में कत्+ के पलटे किम् आताहै जैसे १ वि पु० का:
न) की के २ वि० कम् (किसको) इत्यादि १ वि० स्त्री० का के का: इत्यादि
२ वि० न० किम् के कानि इत्यादि इसका यथार्थ अपूर्णपद क है परन्तु ...
मान्य रूप किम् है सो थोड़े एक मिश्रितों में आताहै जैसे किमर्थम् (किसलिए)

टीका

+ परन्तु कत् वा कद् पुराना स्वरूप है और किम् के सदृश मिश्रितों के ...
आताहुआ देखने में आयाहै जैसे कच्चिद् (कदाचित्) कदर्थ (किस का ...
...र्थात् निकम्मा) कदध्वन् (कुपा मार्ग वा बुरा मार्ग)

१ ली शाखा

शुद्ध अपूर्णपद क के साथ ति बढ़ाने से कति (कितने) बनता है जिसकी ...
अन्यपुरुष सम्बन्धी सर्वनाम और अपेक्षापूरक सर्वनाम के यथोचित अ...
...और य के पीछे बढ़ाने से तति (तितने) और यति (इतने वा जितने) ...
...की वर्तनी केवल बहुवचन में यों की जातीहै १. २. ८ वि० कति ३ वि० ...
४. ५ वि० कतिभ्यः ६ वि० कतीनाम् ७ वि० कतिषु

अनियततासूचक सर्वनाम

२२८ वां सूत्र

...नीय प्रत्यय चिद् अपि और चन (७१८ वां सूत्र देखो) सन्धि के ...
...र प्रश्नसूचक सर्वनामों की कई विभक्तियों में लगाके उनको
...हैं जैसे कश्चिद् (कोई)

पु० कश्चित् कोई

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन

१	कश्चित् ६२ वां सूत्र	कौचित्	केचित्
२	कश्चित् ५९ वां सूत्र	कौचित्	कांश्चित् ५१ वां सूत्र
३	केनचित्	काभ्याश्चित्	कैश्चित् ६२ वां सूत्र
४	कस्मैचित्	काभ्याश्चित्	केभ्यश्चित्
५	कस्माचित् ४८वां सूत्र	काभ्याश्चित्	केभ्यश्चित्
६	कस्याचित्	कयोश्चित् ६२वां सूत्र	केषाश्चित
७	कस्मिश्चित् ५३वां सूत्र	कयोश्चित् ६२वां सूत्र	केषुचित्

ऐसेही स्त्रीलिङ्ग १ वि० काचित् केचित् काश्चित् २ वि० काञ्चित् इत्यादि औ नपुन्सक १. २ वि० किञ्चित् (कुछ) केचित् कानिचित् इत्यादि

२२९ वां सूत्र

ऐसेही अपि लगने से जैसे १ वि० पु० कोऽपि (३४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) (कोई) कावपि केऽपि (३७ वां और ३५ वां सूत्र देखो) २ वि० कमपि इत्यादि ३ वि० केनापि इत्यादि (३१ वां सूत्र देखो) ४ वि० कस्मायपि इत्यादि (३१ वां सूत्र देखो) ५ वि० कस्मादपि इत्यादि ६ वि० कस्यापि इत्यादि ७ वि० कस्मिन्नपि इत्यादि (५२ वां सूत्र देखो) १ वि० स्त्री० कापि इत्यादि २ वि० कामपि इत्यादि ३ वि० कयापि इत्यादि इत्यादि १ वि० न० किमपि (कुछ) इत्यादि प्रत्यय चन कभी आता है परन्तु १ वि० पु० में जैसे कश्चन (कोई) और वि० न० में जैसे किञ्चन (कुछ)

२३० वां सूत्र

ऐसेही प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण अनियत अर्थ के लिये बनायेजातेहैं जैसे कति (कितने) से कतिचिद् (थोड़े एक) कदा (कब) से कदाचिद् वा कदाचन वा कदापि (किसी समय) कथम् (कैसा) से कथञ्चन (कैसेही) क्व (कहां) से क्वचित् क्वापि (कहीं)

१ ली शाखा

जो कोई और जो कुछ अपेक्षापूरक सर्वनाम अनियततासूचक सर्वनाम के साथ लगाने से बनायेजातेहैं जैसे यः कश्चित् वा यः कोऽपि (जो कोई) यत् किञ्चित् (जो कुछ) और कभी प्रश्नसूचक के साथ लगाने से-जैसे-येन-केन उपायेन (जिस किसी उपाय से) और कभी अपेक्षापूरक को दुहराने से जैसे यो यः यद् यत्

सम्बन्धसूचक सर्वनाम

२३१ वां सूत्र

सम्बन्धसूचक सर्वनाम (पा० ४, ३. १. से ३. तक) विशेषकरके उन पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों में जो अन्त में द् रखते हैं ईय बढ़ने से बनते हैं (८० वें सूत्र का ५ वां प्रत्यय देखो) और अपूर्णपद होते हैं जैसे मद् (मैं) से मदीय (मेरा) अस्मद् (हम) से अस्मदीय (हमारा) त्वद् (तू) से त्वदीय (तेरा) तद् (वुह) से तदीय (उसका) ऐसेही भवदीय (आपका) (पा० ४, २. ११५.) भवद् से बनता है, विधिपूर्वक भवत् से (२३३ वां सूत्र देखो) इनकी वर्तनी शुभ के सदृश होती है (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे १ वि० पु० मदीयः स्त्री० मदीया न० मदीयम्.

१ ली शाखा

दूसरे सम्बन्धसूचक सर्वनाम पृथक२ रीति से बनतेहैं सो ये हैं मामक (स्त्री० मामकी परन्तु विशेषकरके मामिका) और मामकीन (स्त्री० मामकीना) मेरा तावक (स्त्री० तावकी) और तावकीन (स्त्री० तावकीना) तेरा आस्माक (स्त्री० आस्माकी) और आस्माकीन (स्त्री० आस्माकीना) हमारा यौष्माक (स्त्री० यौष्माकी और यौष्माकीन (स्त्री० यौष्माकीना) तुम्हारा मामक और ये जो ईन प्रत्यय बढ़ने से बनते हैं (८० वें सूत्र का ११ वां प्रत्यय देखो। इनके स्त्री० अन्त में आ रखते हैं और शुभ के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) और दूसरे पु० और न० के लिये शिव या शुभ के सदृश और स्त्री० के लिये नदी के सदृश (१०५ वां सूत्र देखो।

वर्णन

पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों की ६ वि० बहुधा सम्बन्धसूचक के अर्थ में आती है जैसे तस्य पुत्रः (उसका लड़का) मम पुत्री (मेरी लड़की)

तीनों पुरुषों से सम्बन्ध रखनेवाले सर्वनाम

२३२वां सूत्र

आत्मन् (आप) की एकवचनवाली विभक्ति तीनों पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों के पलटे आती है इसकी १२६ वें सूत्र के अनुसार वर्तनी की जाती है

जैसे आत्मानम् अनाहारेण हनिष्यामि (आपको न खाने से मारूंगा) आत्मानम् मृतवद् दर्शय (आप को मृतक सा दिखा) आत्मानम् निन्दति (वुह आपको निन्दता है) और बहुवचन के पलटे आताहै तो भी एकवचन में आताहै जैसे आत्मानम् पुनीमहे (हम आपको पवित्र करते हैं) अबुधैः आत्मा परोपकरणी कृतः (अबुध से आत्मा पराये काम के लिये की जाती है)

१ ली शाखा

अवर्तनीय सर्वनाम स्वयम् कर्ता२ तीनों पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों के साथ आता है और आप का अर्थ देता है जैसे अहं स्वयम् (मैं आप) इत्यादि

२ री शाखा

स्व तीनों पुरुष के साथ ६ वि० के अर्थ में आता है और बहुधा मिश्रित शब्द के पहले आता है जैसे स्वगृहं गच्छति (वुह अपने घर को जाता है)

आत्मन् की ६ वि० और बहुधा उसका अमिश्रित अपूर्णपद भी इसी अर्थ में आते हैं जैसे आत्मनो गृहं वा आत्मगृहं गच्छति (वुह अपने घर को जाता है यदि एक से अधिक का अर्थ देता है तब भी एकवचन में आताहै जैसे पुत्रं आत्मनः स्पृष्ट्वा निपेततुः (वे दो अपने बेटे को छूके गिरपड़े) अब की संस्कृत भाषा में स्व और आत्मन् के पलटे बहुधा निज आता है और अपनी भाषा में भी आ

१ ली शाखा

जो कोई और जो कुछ अपेक्षापूरक सर्वनाम अनियततासूचक सर्वनाम के साथ ल गाने से बनायेजातेहैं जैसे यः कश्चित् वा यः कोऽपि (जो कोई) यत् किञ्चित् (जो कुछ) और कभी प्रश्नसूचक के साथ लगाने से जैसे येन केन उपायेन (जिस किसी उपाय से) और कभी अपेक्षापूरक को दुहराने से जैसे यो यः यद् यत्

सम्बन्धसूचक सर्वनाम

२३१ वां सूत्र

सम्बन्धसूचक सर्वनाम (प्रा० ४. ३. १. से ३. तक) विशेपकरके उन पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों में जो अन्त में द् रखते हैं ईय बढ़ने से बनते हैं (८० वें सूत्र का ५ वां प्रत्यय देखो) और अपूर्णपद होते हैं जैसे मद् (मैं) से मदीय (मेरा) अस्मद् (हम) से अस्मदीय (हमारा) त्वद् (तू) से त्वदीय (तेरा) तद् (वुह) से तदीय (उसका) ऐसेही भवदीय (आपका) (प्रा० ४, २, ११५.) भवद् से बनता है विधिपूर्वक भवत् से (२३३ वां सूत्र देखो) इनकी वर्तनी शुभ के सदृश होती है (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे १ वि० पु० मदीयः स्त्री० मदीया न० मदीयम्

१ ली शाखा

दूसरे सम्बन्धसूचक सर्वनाम प्रथक२ रीति से बनतेहैं सो ये हैं मामक (स्त्री० परन्तु विशेपकरके मामिका) और मामकीन [स्त्री० मामकीना] मेरा तावक (स्त्री० तावकी) और तावकीन (स्त्री० तावकीना) तेरा आस्माक (स्त्री० आस्माकी) और आस्माकीन (स्त्री० आस्माकीना) हमारा यौष्माक (स्त्री० यौष्माकी और यौष्माकीन (स्त्री० यौष्माकीना) तुम्हारा मामक और वे जो ईन प्रत्यय बढ़ने से बनते हैं (८० वें सूत्र का २१ वां प्रत्यय देखो) इनके स्त्री० अन्त में आ रखते हैं और शुभ के सदृश वर्तनी किये जाते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) और दूसरे पु० और न० के लिये शिव या शुभ के सदृश और स्त्री० के लिये नदी के सदृश (१०५ वां सूत्र देखो)

वर्णन

पसम्बन्धी सर्वनामों की ६ वि० बहुधा सम्बन्धसूचक के अर्थ में आती है
स्य पुत्रः (उसका लड़का) मम पुत्री (मेरी लड़की)

तीनों पुरुषों से सम्बन्ध रखनेवाले सर्वनाम

२३२ वां सूत्र

त्मन् (आप) की एकवचनवाली विभक्ति तीनों पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों के आती है इसकी १४६ वें सूत्र के अनुसार वर्तनी की जाती है
ते आत्मानम् अनाहारेण हनिष्यामि (आपको न खाने से मारूंगा) आत्मा ृतवद् दर्शय (आप को मृतक सा दिखा) आत्मानम् निन्दति (वुह आपको ा है) और बहुवचन के पलटे आताहै तो भी एकवचन में आताहै जैसे आ म् पुनीमहे (हम आपको पवित्र करते हैं) अवुधैः आत्मा परोपकरणी कृतः ुध से आत्मा पराये काम के लिये की जाती है)

१ ली शाखा

ावर्तनीय सर्वनाम स्वयम् कर्त्ता २ तीनों पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों के साथ आता ौर आप का अर्थ देता है जैसे अहं स्वयम् (मैं आप) इत्यादि

२ री शाखा

ा तीनों पुरुष के साथ ६ वि० के अर्थ में आता है और बहुधा मिश्रित श- े पहले आता है जैसे स्वगृहं गच्छति (वुह अपने घर को जाता है)
आत्मन् की ६ वि० और बहुधा उसका अमिश्रित अपूर्णपद भी इसी अर्थ में ा है जैसे आत्मनो गृहं वा आत्मगृहं गच्छति (वुह अपने घर को जाता है ह एक से अधिक का अर्थ देता है तब भी एकवचन में आताहै जैसे पुत्रं आ ःस्पृश्य निपेततुः (वे दो अपने पेट को छूके गिरपड़े) अब की संस्कृत भाषा में और आत्मन् के पलटे बहुधा निज आता है और अपनी भाषा में भी आ

६५

ता है

स्व अपने के अर्थ में सर्व के सदृश वर्तनी कियाजाता है (२३७ वां सूत्र देखो) और जब सर्वनामसम्बन्धी होताहै तब ५ और ७वि० के एकवचन पु० न० और १वि० के बहुवचन पु० इच्छानुसार शुभ के अनुगामी होते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे १ वि० बहुवचन पु० स्वे वा स्वाः (अपना) परन्तु जब द्रव्यवाचक संज्ञा के सदृश सम्बन्धी वा द्रव्य के अर्थ में आता है तब स्व शिव वा शुभ के सदृश वर्तनी कियाजाता है (१ वि० बहुवचन पु० स्वाः)

३ री शाखा

स्वीय (स्त्री० आ) स्वकीय (स्त्री० आ) और स्वक (स्त्री० अका वा इका) शुभ के सदृश वर्तनी कियेजातेहैं और कभी २ अपने के अर्थ में स्व के पलटे आतेहैं

प्रतिष्ठासूचक सर्वनाम

२३३ वां सूत्र

भवत् (आप) अन्यपुरुषवाली क्रिया चाहता है और धनवत् के सदृश वर्तनी कियाजाता है (१४० वां सूत्र देखो) १ वि० पु० भवान् भवन्तौ भवन्तः ८ वि० भवन् १ वि० स्त्री० भवती भवत्यौ भवत्यः इत्यादि ८ वि० भवति मध्यमपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम के पलटे आके यिह बहुधा प्रतिष्ठा दिखाता है जैसे भवान् गृहं गच्छतु (आप घर को जाएं) पलटे (तू घर को जा) के

अनुमानसूचक और सदृशतासूचक सर्वनाम

२३४ वां सूत्र

संकेतसूचक अपेक्षापूरक और प्रश्नसूचक सर्वनाम सुधरके अनुमान दिखाने के लिये अपने पीछे प्रत्यय वत् चाहते हैं और सदृशता दिखाने के लिये दृश दृक्ष वा दृश् चाहते हैं ये तीनों (१ वि० पु० और न० में दृक् और स्त्री० में दृशी) हो जाते हैं और बहुधा अवश्यकतासूचक सर्वनामों के सदृश आते हैं जैसे तावत् (ति

ना) एतावत् (इतना) यावत् (जितना) ये धनवत् के सदृश वर्तनी कियेजातेहैं १४० वां सूत्र देखो) तादृश वा तादृक्ष वा तादृश् (वैसा) एतादृश वा एतादृश् ऐसा) जो अन्त में श वा क्ष रखते हैं उनके पु० और न० के लिये शुभ के सदृ ा (१८७ वां सूत्र देखो) और जो अन्त में श् रखते हैं उनके पु० और न० के लि ा दिश् के सदृश (१८९ वां सूत्र देखो) और इन तीनों के स्त्री० के लिये नदी के दृश (१०५ वां सूत्र देखो) वर्तनी किये जाते हैं ऐसेही अवश्यकतासूचक यादृश ा यादृक्ष वा यादृश् (जैसा कैसा) ईदृश वा ईदृक्ष वा ईदृश् (ऐसा) कीदृश वा कीदृक्ष वा कीदृश् (कैसा)

१ ली शाखा

दृश मूल दृश् (देख वा दीख) से निकलाहै और श् क् से पलट किना है

२ री शाखा

कियत् (कितना) और इयत् (इतना) धनवत् के सदृश वर्तनी किये जाते हैं (१४० वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

थोड़ अनुमानसूचक मुख्य सर्वनाम हैं उनमें थोड़े कमसूचक की प्रकृति रखते हैं और थ (इथ) प्रत्यय के लगने से बनते हैं कोई २ व्याकरणी इसको पुराना अत्प- तासूचक या तिथ समझते हैं (८० वें सूत्र का ६३ वां प्रत्यय देखो) जैसे याव- थ (अः ई अम्) (जितना किनना इतना) कतिथ [अः ई अम्] (कितना) तिथो दिवसः (कौनसा दिन महीने का) कतिपयथ (अः ई अम्) (कितना)

सर्वनाम सम्बन्धी

२३५ वां सूत्र

कुछ सामान्य विशेषण हैं जो सर्वनामसम्बन्धी कहे जाते हैं सो सर्वनाम की प्रकृ ति रखते हैं और तद् के सदृश वर्तनी किये जाते हैं (२२० वां सूत्र देखो) परन्तु

८ वि० भी चाहते हैं

२३६ वां सूत्र

ये ये हैं इतर (दूसरा) परन्तु वेद में नपुंसक इतरम् और इतरत् होसकता है पा० ७. १. २६) कतर (दो में से कौन) कतम (बहुतों में से कौन) ततर (दो में से कुछ) ततम (बहुतों में से कुछ) यतर (दो में से जो) यतम (बहुतों में से जो) ये अतितासूचक और अत्यन्ततासूचक प्रत्यय कई सर्वनामसम्बन्धी अङ्गों में लगने से बनते हैं (१९५ वां सूत्र देखो) जैसे अन्य (दूसरा) अन्यतर (दो में से एक) और एकतम (बहुतों में से एक) ये तद् के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं और १. २. ८ वि० के न० एकवचन अत् पीछे लगने से बनते हैं जैसे अन्यत् इतरत् अन्यतरत् कतरत् कतमत् इत्यादि परन्तु ये एक सम्बोधन रखते हैं अर्थात् ८ वि० पु० अन्य ८ वि० स्त्री० अन्ये ८ वि० न० अन्यत् इत्यादि ८ वि० के द्विवचन और बहुवचन १ वि० के सदृश आते हैं

१ ली शाखा

इतर की सर्वनामसम्बन्धी वर्तनी मिश्रित द्वन्द्व के पीछे छूटजाती है परन्तु द्वन्द्व के पीछे नहीं (७४८ वां सूत्र देखो) यदि इच्छानुसार १ वि० बहुवचन में राम के सदृश आता है जैसे वर्णाश्रमेतराः वा वर्णाश्रमेतरे (वर्ण आश्रम इत्यादि)

२३७ वां सूत्र

इतरे सर्वनामसम्बन्धी हैं जो १. २ वि० न० में अत् के पलटे अम् चाहते हैं और सर्व (सब) के सदृश वर्तनी किये जाते हैं जैसे

पुल्लिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन

१	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
२	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
३	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
४	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
५	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
६	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम
७	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
८	सर्व	सर्वौ	सर्वे

स्त्रीलिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
२	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
३	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
४	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
५	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
६	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
७	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
८	सर्वे	सर्वे	सर्वाः

नपुन्सकलिङ्ग

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१, २	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
८	सर्व	सर्वे	सर्वाणि

शेष पुल्लिङ्ग के अनुसार

२३८वां सूत्र

सर्व के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं उभय (दोनों) [यिह केवल एकवचन और वहुवचन में आता है द्विवचन में उभ आता है उभय का स्त्री० उभयी होताहै सो नदी के सदृश वर्तनी कियाजाता है] विश्व (सब) एकतर (दो में से एक) अन्यतम (वहुतों में से एक) सम जव (सब) का अर्थ देता है परन्तु जब समान का अर्थ देता है तब नहीं) सिम [सब] त्व (दूसरा) नेम (आधा) इनका १ और २ वि० का न० एकवचन अन्त में अम् रखता है परन्तु त्व इच्छानुसार त्वत् होजाता है १, ८ वि० के वहुवचन पु० में नेम वा नेमे वा नेमाः होजाता है

वर्णन

उभ (दोनों) सर्व के सदृश वर्तनी कियाजाता है परन्तु केवल द्विवचन में जैसे १. २. ८ वि० पु० उभौ स्त्री० और न० उभे ३, ४, ५ वि० उभाभ्याम् ६. ७ वि० उभयोः

१ ली शाखा

अधर (निचला) पर (दूसरा) अपर (दूसरा) अवर (पिछला वा पश्चिम) उत्तर (ऊपरला वा उत्तर) दक्षिण (दाहिना वा दक्षिण) पूर्व (आगे वा पूर्व) अन्तर (बाहिर वा भीतर) स्व (अपना) सर्व के सदृश (२३२ वां सूत्र देखो) और इच्छानुसार ५. ७ वि० एकवचन पु० और न० में और १. ८ वि० वहुवचन पु० में शुभ के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे अधरस्मात् वा अ...

धरात् इत्यादि ये सर्वनाम सम्बन्धियों के सदृश केवल तब वर्तनी कियेजाते हैं जब अपेक्षापूरक स्थान दिखाते हैं इसलिये दक्षिणाः होता है न दक्षिणे कवयः (कवि) परन्तु कई मिश्रितों में सर्वनामसम्बन्धी वर्तनी इच्छानुसार होतीहै

२३९ वां सूत्र

एक (एक) सर्व के सदृश आताहै (२०० वां सूत्र देखो) द्वितीय (दूसरा) त्रितीय (तीसरा) शुभ के सदृश (१८७ वां सूत्र देखो) और कई विभक्तियों में इच्छानुसार सर्व के सदृश आते हैं (२०८ वां सूत्र देखो) इनका स्त्री० आ लगने से बनता है

२४० वां सूत्र

अल्प (थोड़े) अर्ध वा अर्द्ध (आधा) कतिपय (स्त्री० आ वा ई) (कई वा कोई) प्रथम (पहला) चरम (पिछला) द्वय (स्त्री० ई) द्वितय (स्त्री० ई) (दुगुना) पञ्चतय (स्त्री० ई) (पचगुना) और दूसरे सब य और तय अन्त में रखने वाले शुद्धता से शिव के सदृश वर्तनी कियेजाते हैं (१०३ रा सूत्र देखो) परन्तु १. ८ वि० बहुवचन पु० अन्त में ए लगने से भी बनासक्ते हैं जैसे अल्पे वा अल्पाः (थोड़े) इत्यादि (पा० १. १, ३३)

१ ली शाखा

अन्योन्य इतरेतर (आपसमें वा एक दूसरा) की १, २ वि० एकवचन न० अन्त में अम् लगने से बनतीहैं न अत् लगने से और ८ वि० अ लगने से बनतीहै

२ री शाखा

किसी २ सर्वनाम में शब्दभाग क वा अक् बहुधा पिछले स्वर वा शब्दभाग के पहले अनादर दिखाने के लिये पड़ता है ऐसेही क संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों में भी पड़ताहै जैसे मयका पलटे मया के (मुझ से) युष्मकाभिः पलटे युष्माभिः के (तुम से) ऐसे ही सर्वके विश्वके पलटे सर्वे विश्वे के (सब) (पा० ५, ३. ७१)

६ ठा अध्याय

क्रियाओं का सामान्य वर्णन

२४१ वां सूत्र

संस्कृत में आख्यात् अर्थात् क्रियाओं के रूप वा काल १० हैं उनमें ७
आते हैं सो ये हैं पहला वर्तमान जिसको लट् कहते हैं सो दूसरे नियत
के साथ प्रत्येक रूप के अन्तों से भी यथाक्रम लगसकताहै दूसरा अपूर्ण वा
प्रभूत जिसको लङ् कहते हैं तीसरा शक्त्यर्थ जिसको लिङ् कहते हैं चौथा
नुमत्यर्थ जिसको लोट् कहते हैं पांचवां पूर्ण वा द्वितीयभूत जिसको लिट् कह
छठा प्रथम भविष्यत जिसको लुट् कहते हैं सातवां द्वितीय भविष्यत जिसको
कहते हैं और तीन बहुत नहीं आते सो ये हैं आठवां अनियत वा तृतीय
जिसको लुङ् कहतेहैं नवां आशीर्वादवाचक जिसको लिङ् वा आशिलिङ्
दसवां आशंसार्थ जिसको लृङ् कहते हैं एक भाववाचक और कई
हैं इन सब में वर्तमान और तीन भूत और दो भविष्यत स्वार्थनियम से
रखते हैं अनुमत्यर्थ शक्त्यर्थ आशीर्वादवाचक और आशंसार्थ (२४२ वां

खो।) नियम हैं सो कई काल रखसकते हैं परन्तु प्रत्येक के लिए केवल एक२ रूप है इसलि
ए इनको रूप कहना और स्वार्थनियम के रूपों के साथ लाना अनुचित नहीं जानपड़ता
पहले चार अर्थात् वर्तमान अपूर्णभूत शक्त्यर्थ और अनुमत्यर्थ बहुधा मुख्य रूप
कहेजाते हैं इसलिए कि इन में मूलों के दस गणों में से प्रत्येक अपनी कुछ मुख्य ब
नावट रखता है जैसी आगे बताईजाएगी (२४८ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

वेद की प्राचीन संस्कृत में व्याकरणसम्बन्धी रूप नवीन संस्कृत से बहुत आते हैं
क वैदिक आशंसार्थ है जिसको लेट् कहते हैं सो वर्तमान और अपूर्णभूत और
निपतभूत रखता है और वैदिक शक्त्यर्थ और अनुमत्यर्थ प्रथक२ कालों के प्र-
क रूप रखते हैं और वैदिक भाववाचक भी दस वा ग्यारह रूप रखता है (४५९
सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२४२वां सूत्र

तीनों भूतकाल के अर्थ में बहुत भिन्नता नहीं पाईजाती तो भी जानना चाहि-
कि वे व्यतीतकाल का प्रथक२ क्रम दिखाते हैं अपूर्ण वा प्रथमभूत अनद्यतनभू
कहाजाता है सो बुह काल दिखाता है जो अभी होचुका है परन्तु वर्तमान दिव-
से पहले यिह बीता और रहताहुआ काल भी दिखासकता है इसलिए अपूर्णभू-
कहलाताहै पूर्ण वा द्वितीयभूत परोक्षभूत कहलाताहै सो बुह काल दिखाता है
ो वर्तमान दिवस से बहुत पहले होचुका है और बोलने वाले की दृष्टि से दूर और
अनिपत वा तृतीयभूत के सदृश भी आसकताहै अनिपत वा तृतीयभूत बुह का-
ल दिखाता है जो किसी अनियत समय पर वर्तमान दिवस में अथवा वर्तमान दि-
स से पहले होचुका है १ दोनों भविष्यत भविष्यतता दिखाते हैं पहला नियत
और दूसरा अनियत १ परन्तु दूसरा बहुत आता है शक्त्यर्थ सम्भावना अर्थात् आ
ज्ञा, इच्छा, निश्चय, अवस्था, और विचार दिखाता है (पा० ३. ३, १६१) वा-
क्यरचना में (८७९ वां सूत्र देखो) आशंसार्थ अपूर्णभविष्यत कहाजाताहै सो स-

मुच्चयसूचक यदि और चेद् (जो) के पीछे कभी२ आता है यिह
नियतभूत के सदृश आगम चाहता है और इसलिए इसको साथ
साथ आना चाहिए (८९१वां सूत्र देखो) आशीर्वादवाचक वृत्
आशीर्वाद देने के लिए आता है यिह शत्तयर्थ का एक सुधारा है
तभूत का कोई रूप नहीं है उसके पलटे कोई२ अनियतभूत बोल
ओं में और दसवें गणवाली और प्रेरणार्थक क्रियाओं में आताहै
का अर्थ अवर्तनीय भूतगुणक्रिया अथवा कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रि
तस्मिन्नपक्रान्ते (उसके जाने पर अर्थात् पीछे इससे कि वुह ग
ना में ८४० वां सूत्र और ८९१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो

टीका

।यथार्थ में यिह बात है कि तीनों भूत किसी काम की पूर्ण
था नहीं आते पूर्णता कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया तीसरी विभक्ति
उसके साथ वत् लगाके अस् (हो) के वर्तमान रूप के साथ लाते
है जैसे उक्तान् अस्मि (मैंने कहा है) (वाक्यरचना
देखो)

२ री टीका

। प्रथम भविष्यत (लुट) को अनद्यतने (आज के दिन न
ए अर्थात् यिह वुह काम दिखाता है जो आनेवाले कल में ह
दिवस् में नहीं जैसे श्वो गन्तास्मि [कल जाऊंगा] (पा० ३,
तीयभविष्यत वुह काम दिखासकताहै जो वर्तमान दिवस् में वा
समीप होगा जैसे अद्य सायं काले श्वो वा गमिष्यामि (आज
कल जाऊंगा)

१ ली शाखा

किसी२ की मति के अनुसार अपूर्णभूत और अनियतभूत

म में आगम छोड़देने पर बचारहता है और जो विशेषकरके निपात मा और म के पीछे आता है (८८४ वें सूत्र का वर्णन और ८८९ वां सूत्र देखो) उन आशंसार्थ अपूर्णभूत और आशंसार्थ अनियतभूत कहना चाहिए

२ री शाखा

भाववाचक बहुधा कर्तरिवाच्य का अर्थ देताहै परन्तु कर्मणिवाच्य के अर्थ में आसकताहै (वाक्यरचना में ८६७ वें सूत्र से ८७२ वें सूत्र तक देखो)

२४३वां सूत्र

प्रत्येक रूप तीन वचन रखते हैं एकवचन द्विवचन और बहुवचन

प्रत्येक रूप में दो प्रकार के कर्तरिवाच्य अन्त लगते हैं पहले कर्तरिवाच्य (प-) के लिये दूसरे कर्तरिवाच्य [स्वार्थ] के लिए पहले को व्याकरणी परस्मैपद दूसरे के लिये पद) कहते हैं इसलिए कि वुह काम परस्मैपद (अर्थात् दूसरे के समझाजाता है और पिछले को आत्मनेपद + (अपने लिए पद) कहते हैं इ- लिए कि वुह काम आत्मने अर्थात् अपने लिये समझाजाता है परन्तु यिह भेद नहीं रहता और परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों सकर्मक क्रियाओं के लिए से आते हैं

परन्तु कोई२ क्रियाएं केवल आत्मनेपद में आती हैं विशेषकरके जब वे अकर्म- होती हैं अथवा जब उनका फल कर्ता को पहुंचता है (उदात्तः और अनुदात्तः भेद) (७५ वें सूत्र की ३ री शाखा में देखो) अथवा जब उनके साथ कोई सर्ग आता है जैसे

मुद् और रुच् (प्रसन्न हो वा आप को प्रसन्न कर) भुज् (खा) (परन्तु रक्षा अर्थ देते तब नहीं) दा (दे) जब इसके साथ आ उपसर्ग आता है और आप दे वा ले का अर्थ देता है तब केवल आत्मनेपद में आते हैं कभी२ जब कोई क्रिया दोनों पद में आती है तब मूल का अर्थ पलटे बिना इसको यिह दिखाने लिए आत्मनेपद में लाते हैं कि इसका फल किसी रीति से कर्त्ता को पहुंचता

है जैसे पचति (वुह पकाताहै) परन्तु पचते (वुह अपने लिए पकाता है) वुह यज्ञ करता है] यजते (वुह अपने लिये यज्ञ करता है) नमति (? है) नमते [वुह आप को झुकाता है). दर्शयति (प्रेरणार्थक) (वुह दर्शयते (वुह आपको दिखाता है या दीखता है) कारयति (वुह कारयते (वुह अपने लिए कराता है) और प्राच् [पूछ] दोनों पद में तो भी बहुधा आत्मनेपद में आता है इसलिए कि पूछने का फल बूझ वाले के लिए होताहै इस विषय की अधिक स्पष्टता के लिए [? देखो)

टीका

† पद वर्तनीकियाहुआ शब्द है जैसा अपने मूल से जानपड़ता है (? १४) पद यहां केवल अन्तों के यंत्र से सम्बन्ध रखता है ऐसा कि संस्कृत विषय के केवल दो पद हैं अर्थात् वाच्य सो बहुधा मिलेहुए आते हैं

झना उचित जानते हैं (२६१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२४४ वां सूत्र

जैसे संज्ञाओं में मूल से संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट वर्तनी से पहले आती है क्योंकि विभक्तियों के अन्त लगने से पहले बहुधा मूल में कुछ उलटापलटी वा घटाबढ़ी होती है वैसेही क्रियाओं में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट उनकी वर्तनी से पहले आती है फिर जैसे संज्ञाओं में प्रत्येक विभक्ति अपना उचित अन्त रखती है वैसे क्रियाओं में तीनों पुरुषों में से प्रत्येक पुरुष प्रत्येक वचन में विभक्ति अर्थात् अन्त रखता है एक परस्मैपद के लिये और एक आत्मनेपद के लिए सो दोनों दोनों पदों के लिए पृथक२ एक मुख्य प्रकार के हैं और जैसे संज्ञाओं में वैसे क्रियाओं में भी कोई२ अन्त अधिक वा संकेतिक वर्ण साथ रखतेहैं सो यिह दिखाते हैं कि जहां वे आते हैं वहां पर मूल कुछ उलटापलटी चाहताहै जैसे वर्तमान रूप के उत्तम मध्यम और अन्यपुरुष के अन्त परस्मैपद के लिए मि सि ति हैं सो अपने पीछे अधिक प् रखते हैं जैसे मिप् सिप् तिप् यिह पिछला प् केवल यिह दिखाता है कि दूसरे और तीसरे गण के मूल इन अन्तों में लगने से पहले (२५८ २५९ और २९० वां सूत्र देखो) एक मुख्य रीति से सुधारे जाएंगे

यिह आगे परस्मैपद और आत्मनेपद के लिए अन्तों का एक यंत्र है अत्यन्त लाभकारी संकेतिक वर्णों समेत जिनके ऊपर ' — एसी आड़ी वा ऐसी । खड़ी रेखा लिखी है आड़ी रेखा स्वर रहित वर्ण पर आतीहै सो यिह दिखातीहै कि यिह वर्ण संकेतिक है और खड़ी रेखा स्वर सहित वर्ण पर आतीहै सो जो वर्ण की आड़ी रेखा के पहले भाग पर आती है तो यिह दिखाती है कि इस में व्यञ्जन संकेतिक है और जो पिछले भागपर तो यिह कि इसमें स्वर पिछले व्यञ्जन के साथ संकेतिक है इस यंत्र में जानना चाहिये पहले यिह कि सब रूपों में चारों मुख्य रूप पहले रखे हैं दूसरे यिह कि कई गणों के मूल इन रूपों में कुछ उलटापलटी चाहते हैं जो अंक लिखेहैं सो उन गणों को दिखाते हैं जिनमें उलटापलटी होती है (२५७ वां सूत्र

है जैसे पचति (वुह पकाताहै) परन्तु पचते (वुह अपने लिए पकाता है) यजति (वुह यज्ञ करता है] यजते (वुह अपने लिये यज्ञ करता है) नमति (वुह झुकाता है) नमते (वुह आप को झुकाता है) दर्शयति (प्रेरणार्थक) (वुह दिखाताहै) दर्शयते (वुह आपको दिखाता है वा दीखता है) कारयति (वुह कराता है) कारयते (वुह अपने लिए कराता है) और प्राच् (पूछ) दोनों पद में आता तो भी बहुधा आत्मनेपद में आता है इसलिए कि पूछने का फल बहुधा पूछने वाले के लिए होताहै इस विषय की अधिक स्पष्टता के लिए [७८६ वां सूत्र देखो)

टीका.

† पद वर्तनीकियाहुआ शब्द है जैसा अपने मूल से जानपड़ता है (पा० १,४ १४) पद यहां केवल अन्तों के यंत्र से सम्बन्ध रखता है ऐसा कि संस्कृत में इस विषय के केवल दो पद हैं अर्थात् वाच्य सो बहुधा मिलेहुए आते हैं

१ ली शाखा

कर्मणिवाच्य क्रियाएं आत्मनेपद में वर्तनी कीजाती हैं यथार्थ में पहले चार रूप रूपों को छोड़के सब रूपों में इनकी वर्तनी अनिसृत क्रियाओं की आत्मने पद वाली वर्तनी से कुछ पृथकता नहीं रखती परन्तु चार मुख्य रूपों में अर्थात् वर्तमान अपूर्णभूत शक्त्यर्थ और अनुमत्यर्थ में कर्मणिवाच्य क्रिया आ... अन्त रखती है तो भी सब क्रियाओं में अपनी कुछ मुख्य बनावट रखती है औ चौथे गण की क्रियाओं को छोड़के * सब क्रियाओं में आत्मनेपद वाली वर्तनी स्वरूप से उसकी वर्तनी का स्वरूप पृथक होता है जैसे श्रु (सुन) की आत्मने वाली वर्तनी का स्वरूप शृण्वे अशृण्वि शृण्वीय शृण्वै होताहै और कर्मणिवाच्य के लिए श्रूये अश्रूये श्रूयेय श्रूयै

टीका

* इसीलिए कर्मणिवाच्य क्रिया को कर्मप्रधान कहना और मूल से निमृत

उचित जानते हैं (२६१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२४४ वां सूत्र

जैसे संज्ञाओं में मूल से संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट वर्तनी से पहले आ है क्योंकि विभक्तियों के अन्त लगने से पहले बहुधा मूल में कुछ उलटापलटी टावड़ी होती है वैसेही क्रियाओं में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट उ- वर्तनी से पहले आती है फिर जैसे संज्ञाओं में प्रत्येक विभक्ति अपना उचित त रखती है वैसे क्रियाओं में तीनों पुरुषों में से प्रत्येक पुरुष प्रत्येक वचन में वि क अर्थात् अन्त रखता है एक परस्मैपद के लिये और एक आत्मनेपद के लिए दोनों दोनों पदों के लिए पृथक२ एक मुख्य प्रकार के हैं और जैसे संज्ञाओं में क्रियाओं में भी कोई२ अन्त अधिक वा संकेतिक वर्ण साथ रखतेहैं सो यिह दि ते हैं कि जहां वे आते हैं वहां पर मूल कुछ उलटापलटी चाहताहै जैसे वर्तमान के उत्तम मध्यम और अन्यपुरुष के अन्त परस्मैपद के लिए मि सि ति हैं सो इने पीछे अधिक प् रखते हैं जैसे मिप् सिप् तिप् यिह पिछला प् केवल यिह दि ता है कि दूसरे और तीसरे गण के मूल इन अन्तों में लगने से पहले (२५८ १९ और २९० वां सूत्र देखो) एक मुख्य रीति से सुधारे जाएंगे

यिह आगे परस्मैपद और आत्मनेपद के लिए अन्तों का एक यंत्र है अत्यन्त प्रकारी संकेतिक वर्णों समेत जिनके ऊपर ' – ऐसी आड़ी वा ऐसी । खड़ी रेखा लिखी आड़ी रेखा स्वर रहित वर्ण पर आतीहै सो यिह दिखातीहै कि यिह वर्ण संकेतिक और खड़ी रेखा स्वर सहित वर्ण पर आतीहै सो जो वर्ण की आड़ी रेखा के पहले भा पर आती है तो यिह दिखाती है कि इस में व्यञ्जन संकेतिक है और जो पि ले भागपर तो यिह कि इसमें स्वर पिछले व्यञ्जन के साथ संकेतिक है इस यंत्र जानना चाहिये पहले यिह कि सब रूपों में चारों मुख्य रूप पहले रखे हैं दूसरे यिह कि कई गणों के मूल इन रूपों में कुछ उलटापलटी चाहते हैं जो अंक लि- खेहैं सो उन गणों को दिखाते हैं जिनमें उलटापलटी होती है (२५७ वां सूत्र

६८

देखो)

२४५ वां सूत्र

मुख्य रूपों के अन्त

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
			वर्तमान			
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन	एकवचन	द्विवचन	वहुव न
उत्तम	मिप्	वस्	मस्	ए	वहे	महे
मध्यम	सिप्	थस्	थ	से	आथे	ध्वे
अन्य	तिप्	तस्	अन्ति	ते	आते	अन्ते

अपूर्ण वा प्रथमभूत [२५१ वें सूत्र के अनुसा अ का आगम चाहता है]

उत्तम	अमप्	व	म	इ	वहि	महि
मध्यम	सिप्	तम्	त	थास्	आथाम्	ध्वम्
अन्य	दिप्	ताम्	अन्	त	आताम्	अन्त

शक्त्यर्थ

उत्तम	याम्	याव	याम	ईय	ईवहि	ईमहि
मध्यम	यास्	यातम्	यात	ईथास्	ईयाथाम्	ईध्वम्
अन्य	यात्	याताम्	युस्	ईत	ईयाताम्	ईरन्

अनुमत्यर्थ

उत्तम	आनिप्	आवप्	आमप्	ऐप्	आवहैप्	आमहैप्
मध्यम	हि	तम्	त	स्व	आथाम्	ध्वम्
अन्य	तुप्	ताम्	अन्तु	ताम्	आताम्	अन्ताम्

सामान्य रूपों के अन्त

पूर्ण वा द्वितीयभूत [२५२ वें सूत्र के अनुसार दुहरावट चाहता है]

म	णप्	व	म	ए	वहे	महे
ध्यम	थप्	अथुस्	अ	से	आथे	ध्वे (ढ्वे)
न्य	णप्	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे

प्रथम भविष्यत वा नियत भविष्यत

म	तास्मि	तास्वस्	तास्मस्	ताहे	तास्वहे	तास्महे
ध्यम	तासि	तास्थस्	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
न्य	ता	तारौ	तारस्	ता	तारौ	तारस्

द्वितीय भविष्यत वा अनियत भ

उत्तम	स्यामि	स्यावम्	स्यामम्	स्ये	स्यावहे
मध्यम	स्यसि	स्यथम्	स्यथ	स्यसे	स्येथे
अन्य	स्यति	स्यतम्	स्यन्ति	स्यते	स्येते

अनियत वा तृतीयभूत [२५१ वें
अनुसार अ का आगम चाहता

उत्तम	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि
मध्यम	सीम्	स्तम्	स्त	स्थास्	साथाम्
अन्य	सीत्	स्ताम्	सुस्	स्त	साताम्

आशीर्वादवाचक

उत्तम	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि
मध्यम	यास्	यास्तम्	यास्त	सीष्ठास्	सीयास्थाम्
अन्य	यात्	यास्ताम्	यासुस्	सीष्ट	सीयास्ताम्

आशंसार्थ [२५१ वें सूत्र के अनु
का आगम चाहता है]

उत्तम	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि
मध्यम	स्यस्	स्यतम्	स्यत	स्यथास्	स्येथाम्
अन्य	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्

२४६ वां सूत्र

येही अन्त संकेतिक वर्णों को छोड़के और पिछले स् को ८ वें सूत्र के २ रे भाग के अनुसार विसर्ग करके उन प्रतिनिधियों के साथ जो कई गणों में आते हैं

मुख्य रूपों के अन्त

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
			वर्तमान			
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
उत्तम	मि	वः	मः	इ १, ४, ६, १० ए २, ३, ७, ५, ८, ९	वहे	महे
मध्यम	सि	थः	थ	से	इथे १. ४, ६. १० आथे २. ३. ७, ५., ८- ९	ध्वे

६१

द्वितीय भविष्यत वा अनियत भविष्यत

उत्तम	स्यामि	स्यावम्	स्यामम्	स्ये	स्यावहे	स्यामहे
मध्यम	स्यसि	स्यथस्	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
अन्य	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते

अनियत वा तृतीयभूत [२५१ वें सूत्र के अनुसार अ का आगम चाहता है]

उत्तम	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि
मध्यम	सीस्	स्तम्	स्त	स्थास्	साथाम्	ध्वम् (
अन्य	सीत्	स्ताम्	सुस्	स्त	साताम्	सत

आशीर्वादवाचक

उत्तम	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि	सी[illegible]
मध्यम	यास्	यास्तम्	यास्त	सीष्ठास्	सीयास्थाम्	सी[illegible]
अन्य	यात्	यास्ताम्	यासुम्	सीष्ट	सीयास्ताम्	सी[illegible]

आशंसार्थ [२५१ वें सूत्र के अनुसार का आगम चाहता है]

उत्तम	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	[illegible]
मध्यम	स्यस्	स्यतम्	स्यत	स्यथास्	स्येथाम्	[illegible]
अन्य	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	[illegible]

२४६ वां सूत्र

येही अन्त संकेतिक वर्णों को छोड़के और पिछले स् को ८ वें सूत्र के २ रे भाग के अनुसार विसर्ग करके उन प्रतिनिधियों के साथ जो कई गणों में आते हैं

मुख्य रूपों के अन्त

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
			वर्तमान			
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	मि	वः	मः	इ १, ४, ६, १० ए २, ३, ७, ५, ८, ९	वहे	महे
मध्यम	सि	थः	थ	से	इथे १, ४, ६, १० आथे २, ३, ७, ५, ८, ९	ध्वे

अन्य	ति	तः	न्ति १.४.६, १० अन्ति २.७, ५, ८, ९. अति ३. (२)	ते	इते १. ४. ६. १० आते २, ३. ७. ५. ८. ९	न्ते १. ४. ६, १० अते २, ३, ७, ५, ८, ९

टीका

पहला म् जैसा सि से इत्यादि में ७० वें सूत्र के अनुसार प् होजाता है

अपूर्ण वा प्रथम भूत [२५१ वें सूत्र के अनुसार अ का आगम चाहता है]

उत्तम	म् १, ४.६, १०, अम् २, ३; ७.५; ८. ९	व	म	इ	वहि	महि
मध्यम	:	तम्	त	थाः	इथाम् १.४. ६. १० आथाम् २, ३.७,५,८.९	ध्वम्
अन्य	त	ताम्	न् १.४.६.१० अन् २. ७. ५, ८. ९ उः ३. (२)	त	इताम् १, ४. ६, १० आताम् २, ३. ७. ५. ८. ९	न्त १, १० अत २, ३ ७, ५, ८.

शत्त्यर्थ

१, ४, ६, १०, में

उत्तम	इयम्	इव	इम
मध्यम	इः	इतम्	इत
अन्य	इत्	इताम्	इयुः

२, ३, ७, ५, ८, ९ में

उत्तम	याम्	याव	याम
मध्यम	याः	यातम्	यात
अन्य	यात्	याताम्	युः

सब गणों में

उत्तम	ईय	ईवहि	ईमहि
मध्यम	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
अन्य	ईत	ईयाताम्	ईरन्

अनुमत्यर्थ

उत्तम	आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै
मध्यम	– १.४.६. १०,५.८ हि २.३.५,९ धि (ढि) २. ३, ७, – आन के पीछे ९	तम्	त	स्व	इथाम् १. ४, ६, १० आथाम् २.३ ७, ५. ८,९	ध्वम्
अन्य	तु	ताम्	न्तु १,४,६, १० अन्तु २.७ ५,८,९. अतु ३,(२)	ताम्	इताम् १, ४, ६, १० आताम २,३, ७,५,८,९	न्ताम् १,४,६, १० अताम् २, ३ ७,५, ८, ९

टीका

९ वें गण में हि आन के पीछे जो व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में पर्स्मै पदवाले अनुमत्यर्थ के एकवचनवाले मध्यमपुरुष की पर्नी सम्बन्धी नी के आताहै गिरादियाजाता है हि और तृ और त के पलटे भी वेद में आताहै लिये तात् आताहै

सामान्य रूपों के अन्त

पूर्ण वा द्वितीयभूत [२५२ वें सूत्र के अनुसार दुहरावट चाहता है]

उत्तम	अ	+ इव	+ इम	ए	+ इवहे	+ इमहे
मध्यम	इथ वा थ	अथुः	अ	+ इषे	आथे	+ इध्वे वा ढ्वे
अन्य	अ	अतुः	उः	ए	आते	इरे

टीका

+केवल आठ मूल हैं श्रु स्तु द्रु स्रु कृ भृ सृ वृ सो जो अन्त इस + चिन्ह से विन्हित हैं उन से पहला इ गिरादेते हैं और इन आठों में से वृ (छिपा) को छोड़ के सब उसको परस्मैपद के एकवचनवाले मध्यमपुरुष में भी छोड़देते हैं (३६९ सूत्र से ३७२ वें सूत्र तक देखो)

प्रथम भविष्यत वा नियत भविष्यत

उत्तम	तास्मि	तास्वः	तास्मः	ताहे	तास्वहे	तास्महे
मध्यम	तासि	तास्थः	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
अन्य	ता	तारौ	तारः	ता	तारौ	तारः

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले अन्तों के पहले इ चाहते हैं जैसे उ० इतास्मि म० इतासि इत्यादि यह इस इ की दीर्घता चाहता है ग्रह और दूसरे सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले मूल भी इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

द्वितीय भविष्यत वा अनियत भविष्यत

उत्तम	स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे
मध्यम	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
अन्य	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले अन्तों के पहले इ चाहते हैं जैसे उ० इष्यामि (७० सूत्र देखो) म० इष्यसि इत्यादि ग्रह इस इ की दीर्घता चाहता है ग्रह और दू सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले मूल भी इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

अनियत वा तृतीयभूत [२५१ वें सूत्र के अनुसार अ का आगम चाहता है]

पहला रूप यंत्र के विधिपूर्वक अन्त

उत्तम	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि
मध्यम	सीः	स्तम् वा तम्	स्त वा त	स्थाः वा थाः	साथाम्	ध्वम्
अन्य	सीत्	स्ताम् वा ताम्	सुः	स्त वा त	साताम्	सत

टीका

ध्वम् अ और आ को छोड़के किसी स्वर के पीछे वा अपने आतेहुए इ के पीछे ढ्वम् होजाता है

येहीं अन्त पहले आनेवाले इ के साथ म और अन्यपुरुष के १ व० को छोड़के में पहला स् गिरजाता है फिर लिखेजा

उत्तम	इषम्	इष्व	इष्म	इषि	इष्वहि	इष्म
मध्यम	ईः	इष्टम्	इष्ट	इष्ठाः	इषाथाम्	इढ्व
अन्य	ईत्	इष्टाम्	इषुः	इष्ट	इषाताम्	इषत

टीका

जब कोई अर्द्धस्वर वा ह् पासही पहले आताहै तब इध्वम् के पलटे ताहै प्रह् इस इ की दीर्घता चाहता है इ और सब दीर्घ ऋ अन्त में रख ठ भी आत्मनेपद में इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

दूसरा रूप, अन्त जो अपूर्णभूत के अन्तों से मि

उत्तम	अम्	आव वा व	आम वा म	ए वा इ	आवहि	आम
मध्यम	अः वा :	अतम् वा तम	अत वा त	अथाः	एथाम् वा आथाम्	अध
अन्य	अत् वा त्	अताम् वा ताम	अन् वा उः	अत	एताम वा आताम्	अन वा

आशीर्वादवाचक

उत्तम	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि	सीमहि
मध्यम	याः	यास्तम्	यास्त	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
अन्य	यात्	यास्ताम्	यासुः	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले अन्तों के पहले आत्मनेपद में इ चाहते हैं परन्तु पर-स्मैपद में नहीं जैसे उ० इषीय इत्यादि ग्रह् इस रूप में भी इस इ की दीर्घता चाहता है परन्तु दूसरे मूल ऐसा नहीं चाहते

अ और आ को छोड़के प्रत्येक स्वर के पीछे सिष्म् सीढ्म् होजाता है और जब कोई अर्द्धस्वर या ह् पासही पहले आता है तब इस पहले आएहुए इ के पीछे इच्छानुसार ऐसा होता है (२४२ वां सूत्र देखो)

आशंसार्थ [२५१ वें सूत्र के अनुसार अ का आगम चाहता है]

उत्तम	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि
मध्यम	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
अन्य	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले सब अन्तों के पहले इ चाहते हैं जैसे उ० इष्यम् म० इष्यः इत्यादि ग्रह् इस इ को दीर्घ चाहताहै ऋ और सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले मूल भी इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

२३७ वां सूत्र

जो अन्त प् रखते हैं सो प् रखनेवाले अन्त कहलावेंगे इनको व्याकरणी पित् अर्थात् प् इत् रखनेवाले कहते हैं वे ये हैं

वर्तमान परस्मै० उ० म० अ० ए० व०, अपूर्णभूत परस्मै० उ० म० अ० ए० व० अनुमत्यर्थ परस्मै० उ० अ० ए० व० उ० द्वि० व० उ० व० व०, आत्म० उ० ए० व० उ० द्वि० व० उ० व० व० परन्तु इन में प् केवल कई गणों का दिखानेवाला है (२४१ वां सूत्र देखो) परन्तु पूर्णभूत परस्मै० में

ध्वम् अ और आ को छोड़के किसी स्वर के पीछे वा अपने पहले पास आतेहुए इ् के पीछे ढ्वम् होजाता है

येही अन्त पहले आनेवाले इ के साथ मध्यम और अन्यपुरुष के १ व ० को छोड़के जिस में पहला स् गिरजाता है फिर लिखेजाते हैं

उत्तम	इषम्	इष्व	इष्म	इषि	इष्वहि	इष्महि
मध्यम	ईः	इष्टम्	इष्ट	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्
अन्य	ईत्	इष्टाम्	इषुः	इष्ट	इषाताम्	इषत

टीका

जब कोई अर्द्धस्वर वा ह् पासही पहले आताहै तब इध्वम् के पलटे इढ्वम् ताहै पर इस इ की दीर्घता चाहता है ह और सब दीर्घ ऋ अन्त में वाला ट भी आत्मनेपद में इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

दूसरा रूप, अन्त जो अपूर्णभूत के अन्तों से मिल

उत्तम	अम्	आव वा व	आम वा म	ए वा इ	आवहि	आमहि
मध्यम	अः वा :	अतम् वा तम	अत वा त	अथाः	एथाम् वा आथाम्	अध्वम्
अन्य	अत् वा त्	अताम् वा ताम्	अन् वा उः	अत	एताम वा आताम्	[illegible]

आशीर्वाद्वाचक

उत्तम	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि	सीमहि
मध्यम	याः	यास्तम्	यास्त	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
अन्य	यात्	यास्ताम्	यासुः	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले अन्तों के पहले आत्मनेपद में इ चाहते हैं परन्तु परस्मैपद में नहीं जैसे उ० इषीय इत्यादि ग्रह् इस रूप में भी इस इ की दीर्घता चाहता है परन्तु दूसरे मूल ऐसा नहीं चाहते

अ और आ को छोड़के प्रत्येक स्वर के पीछे सिध्वम् सिढ्वम् होजाता है और जब कोई अर्द्धस्वर वा ह् पासही पहले आता है तब इस पहले आएहुए इ के पीछे इच्छानुसार ऐसा होता है (२४२वां सूत्र देखो)

आशंसार्थ [२५१ वें सूत्र के अनुसार अ का आगम चाहता है]

उत्तम	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि
मध्यम	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्,
अन्य	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त

टीका

बहुत से मूल ऊपरवाले सब अन्तों के पहले इ चाहते हैं जैसे उ० इष्यम् म० इष्यः इत्यादि ग्रह् इस इ को दीर्घ चाहताहै ऋ और सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले मूल भी इच्छानुसार ऐसा चाहते हैं

२४७ वां सूत्र

जो अन्त प् रखते हैं सो प् रखनेवाले अन्त कहलावेंगे इनको व्याकरणी पित् अर्थात् प् इत् रखनेवाले कहते हैं वे ये हैं

वर्तमान परस्मै० उ० म० अ० ए० व० अपूर्णभूत परस्मै० उ० म० अ० ए० व० अनुमत्यर्थ परस्मै० उ० अ० ए० व० उ० द्वि० व० उ० व० व० आत्म० उ० ए० व० उ० द्वि० व० उ० व० व० परन्तु इन में प् केवल कई वर्णों का दिखानेवाला है (२३९ वां सूत्र देखो) परन्तु पूर्णभूत परस्मै० में

जो पृ० उ० म० अ० ए० व० में आताहै सो सब गणों का दिखानेवाला है

वर्णन

वोपदेव णप् थप् णप् लिखता है और इनके पलटे पाणिनि णल् थल् णल् रखता है और यिह ल् ष् के सदश झटका दिखाता है

१ ली शाखा

परन्तु कभी२ वोपदेव की मति के अनुसार जो रूप प् रखनेवाले अन्त ग्रहण करते हैं उनको सबल रूप कहना अच्छा है ये अन्त आप अबल कहेजाते हैं

२ री शाखा

यथार्थ में प् रखनेवाले वा पित् वाले अन्त अनुदात्त हैं अर्थात् झटका नहीं रखते और जब ये लगते हैं तब जिस अपूर्णपद पर झटका आताहै उसको सबल कहते हैं और दूसरी अवस्थाओं में झटका अन्तों पर आताहै और तब अपूर्ण को अबल वा अनुदात्त अर्थात् झटका नहीं रखनेवाला कहते हैं

३ री शाखा

पहले चार मुख्य रूपों के अन्तों को पाणिनि ने सार्वधातुक अर्थात् क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद का पूरा रूप लिखा है यिह नाम शानच् (आन) शतृ (अत्) से प्रत्ययों से भी जिनका श् संकेतिक है लगताहै परन्तु शप् इत्यादि विकरण प्रत्ययों से नहीं लगता आर्द्धधातुक अर्थात् क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद का आधा छोटा रूप नाम है पूर्णभूत (लिट्) के अन्तों का और आशीर्वादवाचक (आशीर्लिङ्) का और शेष चार रूपों के अन्तों के पहले जो मूल में कई संकेतिक अक्षर आते हैं (ऐसे जैसे तास् और स्य दोनों भविष्यत और आशंसार्थ में और अनियतभूत में और यास् और सीय् आशीर्वादवाचक में) उनका भी और इसलिये छःओं सामान्य रूपों के अन्तों का नाम है

४ थी शाखा

जो इन अन्तों को ध्यान से देखोगे तो जानपड़ेगा कि ये दो पृथक तत्वों से बने हैं एक पुरुष वचन और वाच्य दिखाताहै और दूसरा नियम और काल जिन अन्तों में पहला तत्व अधिक है सो अमिश्रित कहलासकते हैं और वर्तमान अपूर्णभूत अनुमत्यर्थ पूर्णभूत और दूसरे रूपवाले अनियतभूत से सम्बन्ध रखते हैं और जिन अन्तों में दूसरा तत्व अधिक है सो मिश्रित कहेजासकते हैं और दूसरे रूपों के साथ मुख्यता रखते हैं जैसे शक्त्यर्थ के अन्तों में इ वा ई या या आते हैं सो नियम दिखाते हैं और अम् स् (ः) त् व तम् ताम् इत्यादि आते हैं सो पुरुष वचन और वाच्य दिखाते हैं ऐसेही द्वितीयभविष्यत में स्य सब अन्तों के पहले आते हैं सो भविष्यतकाल दिखाताहै और मि सि ति वस् (वः) थस् (थः) तस् (तः) इत्यादि पुरुष वचन और वाच्य दिखाते हैं जो प्रत्येक अन्त के ऐसे पहले आनेवाले भाग जो नियम वा काल दिखाते हैं छोड़ दियेजावें और शेष भागों को देखें तो वर्तमान और अपूर्णभूत सब दूसरे रूपों के अन्तों की मूल प्रतिमा जानपड़ते हैं अर्थात् प्रत्येक दूसरे रूप के अन्त इन दो में से एक के साथ आसकते हैं इसी रीति से वर्तमान दो भविष्यतों में से किसी न किसी के साथ मिलसकताहै ये तीनों रूप की पूर्णता दिखाते हैं सो उन में से बहुतसों में नहीं पाईजाती जो अपूर्णभूत के साथ मिलते हैं परन्तु पूर्णभूत के अन्त वर्तमान और अपूर्णभूत दोनों की सदृशता रखते हैं आत्मनेपद में वे वर्तमान से बहुत मिलते हैं और बहुत से उनमें से [illegible] पूर्णता दिखाते हैं जो मुख्य दिखाता है और पूर्णभूत के दूसरे अन्तों में से को[illegible] अधिक अपूर्णता दिखाताहै उससे जो अपूर्णभूत के अन्त दिखाते हैं फिर भी जानना चाहिए कि अनुमत्यर्थ के अन्त प्रत्यक्ष में अपूर्णभूत के साथ मिलते हैं और [illegible] किसी २ अवस्था में वर्तमान के अन्तों से अधिक पूर्णता रखते हैं

५ वीं शाखा

व्याकरणियों ने संस्कृत के क्रियासम्बन्धी अन्तों की आदश ढूंढने में बहुत परिश्रम किया है परन्तु इतनाही निश्चय करसके हैं कि वे सर्वनामसम्बन्धी अपूर्ण

जो पू उ० म० अ० ए० व० में आताहै सो सब गणों का दिखानेवाला है

वर्णन

वोपदेव णप् थप् णप् लिखता है और इनके पलटे पाणिनि णल् थल् णल् लिखता है और यिह ल् ष् के सदृश झटका दिखाता है

१ ली शाखा

परन्तु कभी२ वोपदेव की मति के अनुसार जो रूप प् रखनेवाले अन्त ग्रहण करते हैं उनको सबल रूप कहना अच्छा है ये अन्त आप अबल कहेजाते हैं

२ री शाखा

यथार्थ में प् रखनेवाले वा पित् वाले अन्त अनुदात्त हैं अर्थात् झटका नहीं रखते और जब ये लगते हैं तब जिस अपूर्णपद पर झटका आताहै उसको सबल कहते हैं और दूसरी अवस्थाओं में झटका अन्तों पर आताहै और तब अपूर्णपद को अबल वा अनुदात्त अर्थात् झटका नहीं रखनेवाला कहतेहैं

३ री शाखा

पहले चार मुख्य रूपों के अन्तों को पाणिनि ने सार्वधातुक अर्थात् क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद का पूरा रूप लिखा है यिह नाम शानच् (आन) शतृ (अत्) जैसे प्रत्ययों से भी जिनका श् संकेतिक है लगताहै परन्तु शप् इत्यादि विकरणः प्रत्ययों से नहीं लगता आर्द्धधातुक अर्थात् क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद का आधा वा छोटा रूप नाम है पूर्णभूत (लिट्) के अन्तों का और आशीर्वादवाचक (आशिर्लिङ्) का और शेष चार रूपों के अन्तों के पहले जो मूल में कई संकेतिक अधिक आते हैं (ऐसे जैसे तास् और स्य दोनों भविष्यत और आशंसार्थ में और स अनियतभूत में और यास् और सीय् आशीर्वादवाचक में) उनका भी और इस लिये छःओं सामान्य रूपों के अन्तों का नाम है

४ थी शाखा

जो इन अन्तों को ध्यान से देखोगे तो जानपड़ेगा कि ये दो पृथक तत्वों से बने हैं एक पुरुष वचन और वाच्य दिखाताहै और दूसरा नियम और काल जिन अन्तों में पहला तत्व अधिक है सो अमिश्रित कहलासकते हैं और वर्तमान अपूर्ण अनुमत्यर्थ पूर्णभूत और दूसरे रूपवाले अनियतभूत से सम्बन्ध रखते हैं और अन्तों में दूसरा तत्व अधिक है सो मिश्रित कहेजासकते हैं और दूसरे रूपों पर मुख्यता रखते हैं जैसे शक्त्यर्थ के अन्तों में इ वा ई या या आते हैं सो दिखाते हैं और अम् स् (:) त् व तम् ताम् इत्यादि आते हैं सो पुरुष वचन और वाच्य दिखाते हैं ऐसेही द्वितीयभविष्यत में स्य सब अन्तों के पहले आ भविष्यतकाल दिखाताहै और मि सि ति वस् (वः) थस् (थः) तस् (तः) आदि पुरुष वचन और वाच्य दिखाते हैं जो प्रत्येक अन्त के ऐसे पहले आ भाग जो नियम वा काल दिखाते हैं छोड़ दियेजावें और शेष भागों को देखें वर्तमान और अपूर्णभूत सब दूसरे रूपों के अन्तों की मूल प्रतिमा जानपड़े अर्थात् प्रत्येक दूसरे रूप के अन्त इन दो में से एक के साथ आसकते हैं जिनि से वर्तमान दो भविष्यतों में से किसी न किसी के साथ मिलसकताहै ये रूप की पूर्णता दिखाते हैं सो उन में से बहुतसों में नहीं पाईजाती जो अपूर्ण के साथ मिलते हैं परन्तु पूर्णभूत के अन्त वर्तमान और अपूर्णभूत दोनों की रखते हैं आत्मनेपद में ये वर्तमान से बहुत मिलते हैं और बहुत से उनमें से पूर्णता दिखाते हैं जो वुह दिखाता है और पूर्णभूत के दूसरे अन्तों में से को अधिक अपूर्णता दिखाताहै उससे जो अपूर्णभूत के अन्त दिखाते हैं फिर भी ना चाहिए कि अनुमत्यर्थ के अन्त प्रत्यक्ष में अपूर्णभूत के साथ मिलते हैं और कर्मीर अवस्था में वर्तमान के अन्तों से अधिक पूर्णता रखते हैं

५ वीं शाखा

याकरणियों ने संस्कृत के क्रियासम्बन्धी अन्तों की आद्यता ढूंढने में बहुत श्रम किया है परन्तु इतनाही निश्चय करसके हैं कि ये सर्वनामसम्बन्धी अपूर्ण

पद म त्व स त के साथ कुछ सम्बन्ध रखते हैं उत्तमपुरुषों का म् अपूर्णपद म :
र्थात् २१८ वें सूत्रवाले मद् से सम्बन्ध रखता है मध्यमपुरुषों के स् थ् थ् स् म
मपुरुषसम्बन्धी सर्वनाम के अपूर्णपद त्व से सम्बन्ध रखते हैं और अन्यपुरुष का
अपूर्णपद त से सम्बन्ध रखता है अन्यपुरुषवाले बहुवचन के अन्त न्ति और
वत् जैसे नपुन्सकलिङ्गवाले नामों के बहुवचन धनवन्ति में भी कुछ प्रकृति की
मानता पाईजाती है परन्तु द्विवचन का व् सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपद व से जो अ
वाम् और वयम् में आता है कुछ सम्बन्ध रखता है वा नहीं और द्विवचन अ
बहुवचनवाले अन्तों का स् पृथक२ सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपदों की मिलावट का
जैसा वस् = वासि (मैं) मस् = मसि (तू) फल है वा नहीं और आत्मनेपद
अन्त परस्मैपद के अन्तों से गुण करने से अथवा परस्मैपद के अन्तों को दूसरे
पूर्णपदों के साथ मिलाने से बने हैं वा नहीं ये सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर ठ
क नहीं पाते

६ ठी शाखा

यिह बात कैसीही हो परन्तु पढ़नेवाले को ध्यान रखना चाहिये कि म् बहु
परस्मैपदवाले उत्तमपुरुष के एकवचन में आताहै स् परस्मैपद और आत्मनेपद
ले मध्यमपुरुष के एकवचन में आताहै और त् सब रूपों के परस्मैपद और आत
नेपदवाले अन्यपुरुष के तीनों वचनों में आता है और जानना चाहिये कि व् उ
त्तमपुरुष द्विवचन में आता है म् सब रूपों के उत्तमपुरुष बहुवचन में आता
और ध्व् प्रत्येक आत्मनेपद के मध्यमपुरुष बहुवचन में आता है अपूर्ण
भूत और शत्त्वर्थ आत्मनेपद में और पूर्णभूत परस्मैपद में स् के पलटे मध्यमपुर
ष एकवचन में थ् आताहै और इस पिछले रूप के मध्यमपुरुष बहुवचन में भारी
हरावट के प्रभाव से थ् गिरादियागयाहै इसी कारण से पूर्णभूत के उ० और अ०
ए० ब० में म् और त् गिरादियेजाते हैं और जानना चाहिये कि जब उत्तमपुरुष
द्विवचन परस्मैपद अन्त में वस् वः रखता है तब प्रथम भविष्यत के अ० द्वि० व०

को छोड़के म० और अ० अन्त में अम् (अः) रखते हैं और उ० ब० व० मम् (मः) रखता है जब उ० द्वि व० परस्मैपद अन्त में व रखता है तब पूर्णभूत को छोड़के म० और अ० तम् और ताम् रखते हैं और उ० व० व० म रखता है जब उ० द्वि० व० आत्मनेपद अन्त में वहे रखता है तब उ० व० व० महे रखता है और पिछला वर्ण शेष अन्तों का बहुधा ए होजाता है जब उ० द्वि० व० आत्मनेपद अन्त में वहि रखता है तब म० और अ० आम् रखते हैं और उ० ब० व० महि और म० ब० व० ध्वम्

२४८वां सूत्र

जो अन्त ऊपरवाले यंत्रों में लिखे हैं सो सब क्रियाओं से चाहे आनिमूत हों चाहे निमूत लगसकते हैं और जैसा संज्ञाओं में वैसा क्रियाओं में भी (व्याकरणियों का कहना यिह है कि) इन अन्तों को लगाने से पहले कई सूत्रों के अनुसार पहले चार रूपों के लिये जो मूल दस गण में से जिस गण का होता है उसके अनुकूल दस प्रकार के हैं इसलिये पहले चार रूपों में मूलों से क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद बनाने के लिये दस मुख्य सूत्र बताए हैं इसलिये वे पहले चार मुख्य रूप कहेजाते हैं और सब क्रियाएं जो रूप अपूर्णपद इन दस सूत्रों से किसी न किसी सूत्र से लेता है उसके अनुसार दस गण में आती हैं दूसरे रूपों में अपूर्णपद बनाने का एक सामान्य सूत्र है सो प्रत्येक गण की सब क्रियाओं से लगसकता है और ये रूप इसलिये सामान्य कहेजाते हैं

इसलिये मूलों के दसों गण दस वर्तनियों में से किसी न किसी वर्तनी के अनुगामी समझेजाते हैं और इन वर्तनीसम्बन्धी सूत्रों का प्रभाव केवल पहले चार रूप अर्थात् वर्तमान अपूर्णभूत शक्त्यर्थ और अनुमत्यर्थ उठाते हैं इसलिये वे कभी२ वर्तनीसम्बन्धी रूप कहे जाते हैं परन्तु यिह बात स्पष्ट है कि संस्कृत के सब मूल चाहे जिस गण के हों मुख्य चार रूपों के लिये प्रत्येक मूल के गण के अनुसार अपूर्णपद की एक मुख्य बनावट चाहते हैं तोभी अनिमूत कि

सामान्य वर्तनी के अनुगामी होते हैं

२४९वां सूत्र

मूलों के दस गण में चार मुख्य रूपों का अपूर्णपद बनाने के लिये व्याकरणों की मति के अनुसार दस सूत्रों का एक संक्षिप्त सूचीपत्र लिखते हैं

वर्णन

देखो व्याकरणी क्रियाओं के दसों गण को जो मूल सूचीपत्र में पहले आता उससे नाम देते हैं जैसे पहला गण भ्वादि (भू आदि में रखने वाला) दूसरा गण अदादि [अद् आदि में रखनेवाला] तीसरा जुहोत्यादि (जु अर्थात् हु आदि में रखनेवाला) चौथा दिवादि (दिव् आदि में रखनेवाला) पांचवां स्वादि (सु आदि में रखनेवाला) छठा तुदादि (तुद् आदि में रखनेवाला) सातवां रुधादि (रु आदि में रखनेवाला) आठवां तनादि (तन् आदि में रखनेवाला) नवां क्रयादि की आदि में रखनेवाला) दसवां चुरादि (चुर् आदि में रखनेवाला)

१ ले गण का मुख्य सूत्र

मूल के स्वर को मुख्य रूपों के प्रत्येक अन्त के पहले गुण करो और अ वा ओ जो पहले आनेवाले म् * और व् के पहले दीर्घ होके आ होजाता है परन्तु जो मूल का स्वर अ वा कोई दीर्घ स्वर होवे और पिछला न होवे वा कोई स्व स्वर होवे और उसके पीछे कोई दुहरा व्यञ्जन आवे तो नहीं [२८ वां सूत्र देखो)

झटका मूल के स्वर पर रहताहै जबतक आगम को नहीं दियाजाता

टीका

* परन्तु पिछले म् के पहले नहीं जो परस्मैपदवाले अपूर्णभूत के एकवचनवाले उत्तमपुरुष का अन्त है

२ रे गण का मुख्य सूत्र

मूल के स्वर को जो गुण करने के योग्य होवे तो केवल प् रखनेवाले अन्तों के पहले (२१६ वें सूत्रवाला यंत्र देखो) गुण करो दूसरे सब अन्तों के पहले मूल सम्बन्धी स्वर बनारहता है

झटका मूल के स्वर पर रहताहै परन्तु जब प् रखनेवाले अन्त लगाएजाते हैं त वहीं रहता है दूसरी प्रत्येक अवस्था में वुह प् न रखनेवाले अन्तों के पहले स्वर पर रहताहै

३ रे गण का मुख्य सूत्र

मूल के पहले व्यञ्जन और स्वर को (२५२ वां सूत्र देखो) दुहराओ और मूलसम्बन्धी स्वर को (परन्तु दुहराएहुए स्वर को नहीं) केवल प् अन्त में रखनेवाले अन्तों के पहले गुण करो जैसा दूसरे गण में करते हो

झटका प् न रखनेवाले अन्तों के पहले अपूर्णपद के पहले शब्दभाग पर रहताहै और प् रखनेवाले स्वरादि अन्तों के पहले

४ थे गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे य बढ़ाओ जो पहले आनेवाले म् * और व् के पहले दीर्घ होके या होजाता है परन्तु बहुधा मूल के स्वर की कुछ उलटापलटी नहीं होती

झटका मूल के स्वर पर रहताहै न य पर (१६१ वां सूत्र देखो)

टीका

परन्तु पिछले म् के पहले नहीं जो परस्मैपदवाले अपूर्णभूत के ए० व० वाले उ० का अन्त है

५ वें गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे नु बढ़ाओ और इस नु को केवल प् रखनेवाले अन्तों के पहले गुण करके नो करो

इस गण में जैसा ८ वें और ९ वें गण में झटका "

७२

९ वें गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे प् रखनेवाले अन्तों के पहले ना बढ़ाओ और दूसरे सब अन्तों के पहले नी और स्वरादि अन्तों के पहले केवल न्

१० वें गण का मुख्य सूत्र

जो मूलसम्बन्धी स्वर गुण के योग्य होवे तो सब रूपों के सब पुरुषों में उसको गुण करो और प्रत्यय अय उसके पीछे बढ़ाओ जो पहले म् १ और व् के पहले दीर्घ होके अया होजाता है

झटका बढ़ाएहुए अय के पहले स्वर पर रहता है

टीका

१ परस्मैपदवाले अपूर्णभूत के एकवचनवाले उ० के अन्त अर्थात् पिछले म् के पहले नहीं

२५० वां सूत्र

पूर्वोक्त सूत्रों पर ध्यान करने से जानपड़ेगा कि आशय इन सब का एक स्वर कभी अकेला और कभी प् वा न् के साथ बढ़ाना अथवा किसी भांति का कोई वर्ण सुधारेहुए मूल और अन्तों के बीच में लाना है १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण में जो स्वर अन्तों के पहले पासही आता है सो अ वा आ होता है २ रे ३रे और ७ वें गण में कोई स्वर मूल के पिछले वर्ण और अन्तों के बीच में नहीं आता ५ वें ८ वें और ९ वें गण में न् के पीछे उ वा आ वा ई आता है

१ ली शाखा

जो कोई वर्ण वा शब्दभाग ऊपरवाले १० सूत्रों से बढ़ता है सो केवल चार मुख्य रूपों में बढ़ता है (परन्तु १० वें गण में नहीं) दूसरे ६ छः रूपों में प्रत्येक गण के सब मूलों के लिये अपूर्णपद एक सामान्य सूत्र के अनुसार बनता है और इसीलिये ये रूप सामान्य रूप कहेजाते हैं परन्तु इनमें भी पूर्णभूत को छोड़के और सब में

पहले बढ़ाएहुए विकरण पर रहताहै (२५० में सूत्र की २ री शाखा देखो) और दूसरी अवस्थाओं में प् नरखनेवाले अन्तों के पहले स्वर पर रहताहै

६ ठे गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे अ बढ़ाओ जो पहले म् १ और व् के पहले दीर्घ होके आ हो जाताहै और वुह मूल दूसरी प्रत्येक अवस्था में बहुधा कुछ उलटापलटी नहीं सहता

विकरण अ पर झटका होने से मूलसम्बन्धी स्वर को गुण नहीं होता (२५० में सूत्र की २ री शाखा देखो)

टीका

१ परन्तु पिछले म् के पहले नहीं जो परस्मैपदवाले अपूर्णभूत के ए० व० वाले उ० का अन्त है

७ वें गण का मुख्य सूत्र

प् रखनेवाले अन्तों के पहले मूल के स्वर और पिछले व्यञ्जन के बीच में न बढ़ाओ और दूसरे अन्तों के पहले न् बढ़ाओ

देखो इस वर्तनी की मुख्यता यिह है कि वर्तनीसम्बन्धी न वा न् मूल के बीच में बढ़ता है पीछे नहीं बढ़ता झटका प् रखनेवाले अन्तों के पहले बढ़ाएहुए न पर रहता है और दूसरी प्रत्येक अवस्था में प् नरखनेवाले अन्तों पर

८ वें गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे उ बढ़ाओ और केवल प् रखनेवाले अन्तों के पहले इस उ को गुण करके ओ करो

देखो इस गण के दस मूलों में से ९ मूल अन्त में न् वा ण् रखते हैं इसलिये यिह गण ५ वें गण से मिलता है

९ वें गण का मुख्य सूत्र

मूल के पीछे ए् रखनेवाले अन्तों के पहले ना बढ़ाओ और दूसरे सब अन्तों के पहले नी और स्वरादि अन्तों के पहले केवल न्

१० वें गण का मुख्य सूत्र

जो मूलसम्बन्धी स्वर गुण के योग्य होवे तो सब रूपों के सब पुरुषों में उसको गुण करो और प्रत्यय अय उसके पीछे बढ़ाओ जो पहले म् १ और व् के पहले दीर्घ होके अया होजाता है

झटका बढ़ाएहुए अय के पहले स्वर पर रहता है

टीका

१ परस्मैपदवाले अपूर्णभूत के एकवचनवाले उ० के अन्त्य अर्थात् पिछले म् के पहले नहीं

२५० वां सूत्र

पूर्वोक्त सूत्रों पर ध्यान करने से जानपड़ेगा कि आशय इन सब का एक स्वर कभी अकेला और कभी य् वा न् के साथ बढ़ाना अथवा किसी भांति का कोई वर्ण सुधारेहुए मूल और अन्तों के बीच में लाना है १ ले २ थे ६ ठे और १० वें गण में जो स्वर अन्तों के पहले पासही आता है सो अ वा आ होना है २ रे ३ रे और ७ वें गण में कोई स्वर मूल के पिछले वर्ण और अन्तों के बीच में नहीं आता ५ वें ८ वें और ९ वें गण में न् के पीछे उ वा आ वा ई आता है

१ ली शाखा

जो कोई वर्ण वा शब्दभाग ऊपरवाले १० सूत्रों से बढ़ता है सो केवल चार मुख्य रूपों में बढ़ताहै (परन्तु १० वें गण में नहीं) दूसरे ६ उ. रूपों में अनेक गण के मूलों के लिये अपूर्णपद एक सामान्य सूत्र के अनुसार बनता है और इसी से ये रूप सामान्य रूप कहेजाते हैं परन्तु इनमें भी पूर्वसूत्र को छोड़के आगे के

कोई वर्ण वा शब्दभाग बढ़ताहै

२ री शाखा

जो वर्णनीसम्बन्धी स्वर वा व्यञ्जन वा शब्दभाग बढ़ताहै सो विधिपूर्वक विकरण कहाजाता है सुधरे हुए मूल और अन्तों के बीच में १० सौं गण में जो अधिक आते हैं पाणिनि ने यथाक्रम उनके नाम ये लिखे हैं शप् शपो लुक् श्लु श्यन् श्नु श श्नम् उ श्ना णिच् परन्तु पिह पिछला विकरण नहीं रखता यथार्थ में जो अधिक १० वें गण में और प्रेरणार्थकों में आता है सो अय है और णिच् के इ से दिखायाजाताहै ये विकरण णिच् समेत उन कृत् प्रत्ययों के पहले आते हैं जो सांकेतिक श् रखते हैं (जैसे शत्रि वा शानच् में) (२४७ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) कर्मप्रधान और अकर्मक क्रियाओं में यिह अधिक यक् कहलाताहै जिसका क् छूटकर य रहजाताहै सो यिह दिखाताहै कि यिह ४ थे गण के विकरण श्यन् से अलग हैं छः सामान्य रूपों में पूर्णभूत कोई विकरण नहीं रखता केवल इट् का इ रखता है सो आगम कहलाताहै परन्तु १० वें गण की क्रियाओं में और प्रेरणार्थक जैसी निमृत क्रियाओं में और इक्ष् जैसी थोड़ी अनिमृत क्रियाओं में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे आम् बढ़ता है दूसरे सामान्य रूपों में आगम इट् अर्थात् इ किसी रीति से नहीं बढ़ता परन्तु कई वर्ण वा शब्दभाग अलग मूल के साथ बढ़ते हैं जो प्रथम भविष्यत में बढ़ताहै सो तासि (= तास्) कहलाताहै जो द्वितीय भविष्यत और आशंसार्थ में बढ़ताहै सो स्य कहाजाताहै जो अनियतभूत में बढ़ताहै सो च्लि कहलाताहै जिसके पलटे सदा सिच् या स या चन् वा अन् या चिन् आता है जो आशीर्वादवाचक में बढ़ताहै सो परस्मैपद के लिये यासुट् (= यास्) और आत्मनेपद के लिए सीयुट् (=सीय्) कहाजाता है और जो वेदसम्बन्धी लेट् में बढ़ता है सो सिप् कहलाताहै

आगम अ

२५१ वां सूत्र

संस्कृत भाषा में (परन्तु बहुधा वेद में नहीं) अ आगम या आना कहलाता है सो अपूर्णभूत अनियतभूत और आशंसार्थ के रूपों के अपूर्णपदों के पहले आता है और जब अपूर्णपद अ वा आ पहले रखता है तब यिह अ ३१ वें सूत्र के अनुसार उससे मिलके आ होजाता है

१ ली शाखा

परन्तु जब यिह अ उन अपूर्णपदों के पहले आताहै जो पहले इ उ और ऋ ह्रस्व वा दीर्घ रखते हैं तब उनसे मिलके ऐ औ आर् होजाता है सो ३२ वें सूत्र से विहद है उसके अनुसार ए ओ अर् होताहै जैसे

अपूर्णभूत के ए० ध० अन्यपुरुष में अपूर्णपद इच्छ जो मूल इष् (चाह) से बनताहै ऐच्छत् होजाता है और ऊह आत्मनेपदवाले अपूर्णभूत में औहत होता है कभी आर्धोत् होता है और ओख औखत् होताहै

२ री शाखा

जब किसी मूल में एक वा अधिक उपसर्ग मिले रहते हैं तब आगम उपसर्ग वा उपसर्गों और मूल के बीच में आताहै जैसे अन्वतिष्ठम् (अनु स्था) से उपसंहरत् (उप संह) से

जब कई उपसर्गों के पीछे स् मूल कृ के पहले आताहै (५३ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) तब आगम स् के पहले आताहै जैसे समस्करोत्

वर्णन

देखो कोई२ व्याकरणी आगम अ को एक रीति का संकेतसूचक निपात समझते हैं जो भूतकाल का अर्थ देता है और संकेतसूचक सर्वनाम इदम् का अपूर्णपद अ बनारहता है (२२४ वां सूत्र देखो) और अलग होनेवाला निपात स्म संकेतसूचक सर्वनामसम्बन्धी अपूर्णपद सम का संक्षिप्त समझाजाताहै यिह भी भूतकाल का अर्थ देता है बहुधा आगम अ का काम करता है (८७८ वां सूत्र देखो) अब प्रयक्त ... समझाजाताहै

दुहरावट

२५२ वां सूत्र

आगम का वर्णन करने के पीछे दुहरावट अर्थात् अभ्यास के सूत्र बताने सरल जानपड़ते हैं क्योंकि ये सूत्र तीसरे गण की अनियत क्रियाओं के मुख्य रूपों में औ सब अनियत क्रियाओं के पूर्णभूत में और थोड़ी अनियत क्रियाओं के और १० गण की क्रियाओं के और थोड़ी संज्ञासम्बन्धी क्रियाओं के (५२१ वां सूत्र देखो अनियतभूत में और इच्छार्थक और अधिकतार्थक क्रियाओं में भी काम आते हैं

दुहरावट में प्रत्येक मूल का पहला व्यञ्जन और पहला स्वर दुहराया जाताहै जैसे लिलिप् लिप् से दरिद्रा दरिद्रा से परन्तु कुछ मुख्य सूत्र हैं सो आगे लिखे जाते हैं

पहले व्यञ्जनों के लिए

१ ली शाखा

प्रत्येक स्वासयुक्त के पलटे उसका अनुरूप अस्वासयुक्त आता है जैसे द् पलटे ध् के दधा में धा से

२ री शाखा

कठोर तालुस्थानी च् पलटे कोमल कण्ठस्थानी क् वा ख् के जैसे चखन् में खन् से और कोमल तालुस्थानी ज् पलटे कोमल कण्ठस्थानी ग् घ् वा ह् के जैसे जगम् में गम् से जघस् में घस् से जुहु में हु से

वर्णन

देखो हन् (मार) और हि (जा) जब दुहराएजाते हैं तब ह् के पलटे घ् चा हते हैं जैसे जघन् हन् से

३ री शाखा

जब कोई मूल आदि में दुहरा व्यञ्जन रखता है तब केवल पहला व्यञ्जन अ

तब उसका प्रतिनिधि दुहरायाजाता है जैसे च् पलटे छ् के चिक्षिप् में क्षिप् से स् पलटे स्य के सस्यन्द् में स्यन्द् से ज् पलटे ह् के जहृस् में हृस् से

परन्तु जब कोई दुहरा व्यञ्जन जिसका पहला कोई सीटीयुक्त होताहै और दूसरा कोई कठोर तब दूसरा अथवा उसका प्रतिनिधि दुहरायाजाताहै जैसे च् पलटे स्क् के चस्कन्द् में स्कन्द् से त् पलटे स्थ् के तस्था में स्था से प् पलटे स्प् के पस्पृश् में स्पृश् से

दूसरे स्वरों के लिये

४ थी शाखा

ह्रस्व स्वर पलटे दीर्घ स्वर के दुहराया जाताहै और मिश्रित स्वर अपने दूसरे तत्त्व से दुहराया जाताहै अर्थात् आ के पलटे अ दुहराया जाताहै और ई ए और ऐ के पलटे इ दुहराया जाताहै और ऊ ओ और औ के पलटे उ दुहराया जाताहै

वर्णन

कभी२ अवस्था में अ और आ के पलटे भी इ दुहरायाजाताहै क्योंकि यिह हलका स्वर है और द्युत् (चमक) होताहै दिद्युत् पलटे दद्युत् के

५ वीं शाखा

यथार्थ में यिह बात जानने के योग्य है कि जब कोई दीर्घ स्वर मूलशब्दवर्ती शब्दभाग में बहुत भारी होताहै तब वुह दुहराएहुए शब्दभाग में हलका कर दिया जाताहै

६ ठी शाखा

जब कोई रूप एकबार दुहरायागयाहै तब वुह दूसरे निमूल बनाने में फिर कभी नहीं दुहरायाजाता (५१० वें सूत्र की ९ ठी शाखा देखो) और जब कोई मूल जो दुहराएजाने को हैं कोई सुधाराहुआ रूप रखते हैं तब दुहराव में वुह सुधारा

हुआ रूप आताहै जैसे स्मृ (स्मर्ण कर) इच्छार्थक में सुधर के स्मूर् होताहै तब दुहरावट में मूल का स्वर नहीं आता जैसे सुस्मूर्

अनिसृत कर्मणिवाच्य वा कर्मप्रधान प्रेरणार्थक इच्छार्थक इत्यादि क्रियाएं

२५३ वां सूत्र

क्रिया की वर्तनी करने में दो बातें अवश्य हैं पहली पहले चार रूपों के लिये पूर्वोक्त दस सूत्रों के अनुसार और शेष ६ छः रूपों के लिये एक सामान्य सूत्र के अनुसार मूल से अपूर्णपद का बनाना दूसरी ऐसे बनाएहुए अपूर्णपद को सन्धि के विधिपूर्वक सूत्रों के अनुसार वर्तनीसम्बन्धी अन्तों के साथ लगाना परन्तु अब तक दसों गण की अनिसृत क्रिया के अपूर्णपद की बनावट का सामान्य वर्णन बतायाहै सब मूलों से चाहे जिस गण के हों चार दूसरी क्रियाएं बनसकती हैं

२५४ वां सूत्र

यथार्थ में प्रत्येक संस्कृत मूल एक प्रकार का भंडार है जिससे पांच जाति की क्रियाओं के वर्तनी योग्य अपूर्णपद निकलसकते हैं १ ला अनिसृत सकर्मक वा अकर्मक का २ रा कर्मणिवाच्य वा कर्मप्रधान का ३ रा प्रेरणार्थक का जो बहुधा प्रेरणार्थक और सकर्मक अर्थ में आती हैं ४ था इच्छार्थक का जो मूल को इच्छा का अर्थ देती हैं ५ वां अधिकतार्थक का जो मूल के अर्थ में अधिकता दिखाती हैं (परन्तु ५०७ वां सूत्र देखो)

२५५ वां सूत्र

पहली या अनिसृत क्रिया उन मूलों से दस पृथक सूत्रों के अनुसार बनतीहै जो पहले चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने के लिये बताए हैं

दूसरी या कर्मणिवाच्य क्रिया उस सूत्र के अनुसार बनती है जिससे चौथे गण वाली क्रियाओं के मूल की उलटापलटी होती है अर्थात् पहले चार मुख्य रूपों

में य बढ़ाना पड़ता है

तीसरी वा प्रेरणार्थक क्रिया उस सूत्र के अनुसार बनती है जिससे दसवें गणवाली क्रियाओं के मूल की उलटापलटी होती है अर्थात् अनियतभूत को छोड़के सब रूपों में मूल के साथ अय बढ़ानापड़ताहै

चौथी वा इच्छार्थक स वा इष बढ़ने से बनती है और मूल में दुहरावट भी होती है

पांचवीं वा अधिकतार्थक क्रिया कर्मणिवाच्य क्रिया के सदृश उस सूत्र से बनती है जो चौथे गणवाली क्रियाएं चाहती हैं यथार्थ में इसका रूप ऐसा रूप होता है जैसा दुहराईहुई कर्मणिवाच्य क्रिया का यिह अनुमान से तीसरे गणवाली क्रियाओं के सूत्र से भी बनती है

जैसे जो मूल शुभ् (चमक) के अर्थ में लियाजावे तो इससे पहले अनिमूत क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद शोभ (चमक) बनता है दूसरे कर्मणिवाच्य क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद शुभ्य (चमकायाजा) तीसरे प्रेरणार्थक क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद शोभय (चमकवा) चौथे इच्छार्थक क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद शुशोभिष (चमकाचाह) पांचवें अधिकतार्थक क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद शोशुभ्य वा शोशुभ् (अधिक चमक वा चमका कर)

१ ली शाखा

जैसे प्रत्येक मूल पांच प्रथक२ निमूत क्रियाओं का भण्डार है वैसे ये क्रियापद वाली निमूत क्रियाएं संज्ञासम्बन्धी क्रियाओं से भी बनती हैं इनका वर्णन अधिकतार्थक क्रियाओं के पीछे मिलेगा (५१८ वां सूत्र देखो)

२५६ वां सूत्र

[illegible] के सदृश क्रियाओं के भी दो भाग कियेजाते हैं

१ ला भाग

[illegible] से अनिमूत के अपूर्णपद का २ रे कर्मणिवाच्य के अ

पूर्णपद का ३ प्रेरणार्थक के अपूर्णपद का ४ थे इच्छार्थक के अपूर्णपद का ५ वें अधिकतार्थक के अपूर्णपद का और उनकी गुणक्रियाओं का

२ रा भाग

क्रियाओं के पांचों रूपों में से प्रत्येक रूप में अपूर्णपद का उसके अन्तों के साथ लगाना

अनियत क्रियाएं

दसों गण में पहले चार मुख्य रूपों के अपूर्णपद का बनाना

दसों गण के मूलों से पहले चार मुख्य रूप अर्थात् वर्तमान अपूर्णभूत शक्य और अनुमत्यर्थ के अपूर्णपद की बनावट के लिए दस सूत्रों का संक्षिप्त वर्णन भी ऊपर बतायाहै (१४९ वां सूत्र देखो) ये दस सूत्र तीन जथों में आसकते हैं तीनों पृथक२ सामान्य वर्तनी कहेजासकते हैं जैसे

२५७ वां सूत्र

१ ला जथा अथवा १ ली वर्तनी

यह पहले भागवाली संज्ञाओं की जिनके अपूर्णपद अन्त में अ वा आ रखते हैं वर्तनी के सदृश बहुत आवश्यक है इसमें १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण के मूल आते हैं सो अपने अपूर्णपदों के अन्त में अ रखते हैं जो दीर्घ होके आ होसकताहै ये मूल आपस में कई अन्तों के लिये प्रतिनिधि लेने में भी मिलते हैं उन संज्ञाओं के अपूर्णपदों के सदृश जो अन्त में अ या आ रखते हैं (९७ वां सूत्र देखो) (और ये प्रतिनिधि देखो जो २४६ वें सूत्र के यंत्र में बताए हैं)

टीका

संस्कृत भाषा में अनुमान से दो सहस्र मूल हैं उनमें से तेरहसौ १३०० के लग
ग इस पहली वर्तनी में आते हैं इसके उपरान्त जितने मूल इस भाषा में आते हैं
ी प्रत्येक कर्मप्रधान और प्रेरणार्थक का रूप लेसकते हैं और ऐसा रूप लेने पर
४ थे और १० वें गण की क्रियाओं के सदृश वर्तनी किये जासकते हैं

२५८ वां सूत्र

२ रा जथा अथवा २ री वर्तनी

इस में २ रे ३ रे और ७ वें गण के मूल आते हैं सो अपने पिछले वर्ण के सा
ि कोई स्वर बीच में आए बिना विधिपूर्वक अन्त लेने में एकसे हैं (२४६ वां सूत्र
खो) पिछले चार भागवाले नामों के सदृश जिनके अपूर्णपद अन्त में व्यञ्जन र
ते हैं

२५९ वां सूत्र

३ रा जथा अथवा ३ री वर्तनी

इस में ५ वें ८ वें और ९ वें गण के मूल आते हैं सो अपने साथ विधिपूर्वक
अन्त लेते हैं (३४६ वां सूत्र देखो) परन्तु पहले आनेवाले व्यञ्जन न् के साथ उ
ा आ या ई लेने के पीछे

२६० वां सूत्र

गणों के जैसे जथे संस्कृत में हैं वैसे ग्रीक और लैटिन में भी हैं ये परस्पर मङ्गम
मिलते हैं मिस्टर मानिअर विलिअम्स के अंग्रेजी संस्कृत व्याकरण का (२६० वां
त्र देखो)

१ ला जथा

१ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण के मूलों के अपूर्णपद की बनावट

२६१ वां सूत्र

१ ला गण अनुमान से एक सहस्र अनिमृत मूल रखताहै चार मुख्य रूपों में इस गण के मूल से अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल के स्वर को जो २८ वें सूत्र से वर्जित नहो तो चारों मुख्य रूपों के प्रत्येक अन्त के पहले गुण करो और ऐसे गुण कियेहुए मूल के पीछे अ बढ़ाओ परन्तु चेत रखो कि प्रत्येक अन्त के पहले म् और व् के पहले यिह अ दीर्घ होके आ होजाताहै परन्तु जब म् पिछला होताहै जैसे अपूर्णभूत के ए० व० उ० में तब न हीं होता

२६२ वां सूत्र

जैसे बुध् (जान) से अपूर्णपद होताहै बोध सो म् और व् के पहले बोधा हो जाता है जैसे वर्तमान उ० ए० व० बोधा + मि = बोधामि म० ए० व० बोध + सि = बोधसि अ० ए० व० बोध + ति = बोधति उ० द्वि० व० बोधा+ वः= बोधावः इत्यादि आत्म० वर्त० बोध + इ = बोधे (३२ वां सूत्र देखो) बोध + से = बोधसे इत्यादि (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो)

२६३ वां सूत्र

ऐसेही जि (जीत) से (५९० वां सूत्र देखो) अपूर्णपद होताहै जे + अ = जय (३६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) सो दीर्घ होके जया होसकताहै जैसा ऊपर बताया है नी (मार्ग दिखा) से नय और नया भू (हो से भो + अ = भव) (३६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और भवा (वर्त० उ० ए० व० भवामि म० ए० व० भवसि (५८४ वां सूत्र देखो) सृप् (रेंग) से सर्प और सर्पा (२७ वां सूत्र देखो) कॢप् (बना) से कल्प और कल्पा

वर्णन

भू (हो) संस्कृत भाषा में एक सामान्य क्रिया है सो अस् (हो) के सदृश (५८४ वां और ३२० वां सूत्र देखो) कभीकभी सहायक क्रिया की रीति से आती है ५८५ वें सूत्र में भू की वर्तनी पूरी बताई है

२६४ वां सूत्र

अपूर्णभूत का अपूर्णपद २५१ वें सूत्र के अनुसार आगम अ लगने से वनता है जैसे अपूर्णभूत उ० अवोध + म् = अवोधम् म० अवोध + ः = अवोधः इत्यादि

२६५ वां सूत्र

शक्त्यर्थ में अपूर्णपद का पिछला अ अन्त के पहले इ के साथ मिलके ३२ वें सूत्र से ए होजाता है जैसे शक्त्यर्थ उ० वोध + इयम् = वोधेयम् ऐसेही वर्त० आत्म० में होताहै वोधे इत्यादि (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो)

२६६ वां सूत्र

अनुमत्यर्थ के म० ए० व० में अन्त गिरादियाजाताहै[1] जैसे अनुमत्यर्थ उ० वोध + आनि = वोधानि म० वोध अ० वोध + तु = वोधतु

२६७ वां सूत्र

ऐसे मूल जैसे पच् (पका) भिक्ष् (मांग) जीव् (जी) (६०३ रा सूत्र देखो) अपने मूलसम्बन्धी स्वर को पलटते नहीं (२७ वें सूत्र की १ली शाखा और २८ वां सूत्र देखो) परन्तु पीछे अ चाहते हैं जैसा ऊपर वताया है सो दीर्घ होके आ हो जाताहै जैसे वर्त० उ० पचामि इत्यादि वर्त० आत्म० उ० भिक्षे इत्यादि वर्त० उ० जीवामि इत्यादि

२६८ वां सूत्र

कोई२ मूल अन्त में वृद्धिवाला ऐ रखते हैं सो गुण नहीं पासकते परन्तु अ और आ के पहले ३७ वें सूत्र के अनुसार सन्धिसम्बन्धी विधिपूर्वक उलटापलटी सहते हैं जैसे गै (गा) ग्लै (थक) त्रै आत्म० (बचा) ध्यै (सोच) म्लै (कुम्हला) से अपूर्णपद होते हैं गाय ग्लाय त्राय ध्याय म्लाय (५९५ वें सूत्र की १ ली और २ री शाखा देखो)

टीका

[1] इस मूल के अनुमत्यर्थ के म० ए० व० के लिए पौराणिक संस्कृत में आदि

और त्रायस्व भी आते हैं

२६९ वां सूत्र

१ ले गण के थोड़े मूल पहले चार मुख्य रूपों में अपने अपूर्णपद एक मुख्य रीति की उलटापलटी से बनातेहैं ऐसी उलटापलटी यथार्थ में दूसरे रूपों में नहीं होती जैसे स्था (खड़ा हो) (५८७ वां सूत्र देखो) घ्रा (सूंघ) (५८८ वां सूत्र देखो) पा (पी) (५८९ वां सूत्र देखो) ध्मा (फूंक) म्ना (फिर कह या सोच) से अपूर्णपद बनतेहैं तिष्ठ जिघ्र पिब धम मन पिछला अ जैसे ऊपर बताया है दीर्घ होसकताहै

१ ली शाखा

जानना चाहिये कि स्था और घ्रा यथार्थ में तीसरे गण की दुहराईहुई क्रियाएं हैं (३३० वां सूत्र देखो) २५२ वें सूत्र से इनके दुहराएहुए अपूर्णपद होतेहैं तस्था और जघ्रा परन्तु यिह दुहरावट विधिपूर्वक नहीं है और मूलसम्बन्धी आ वर्तमानसम्बन्धी अ से दब जाताहै इसलिये व्याकरणी इन मूलों को पहले गण में लाते हैं

२७० वां सूत्र

फिर दृश् (देख) गम् [जा] यम् (रोक) ऋ (जा) सद् (डूब) शद् (गिर मर) से अपूर्णपद (आत्मनेपद मुख्य रूपों में और परस्मैपद दूसरे रूपों में) पश्य गच्छ यच्छ ऋच्छ सीद शीय (वर्त० उ० पश्यामि इत्यादि)

१ ली शाखा

पा० ७, ३, ७८ के अनुसार दा (दे) से कभी२ यच्छ होताहै और सृ (जा) से धाव

२ री शाखा

गुह् (छिपा) से गूह ष्ठिव् (थूक) से ष्ठीव मृज् (स्वच्छकर) से मार्ज वर्त० उ० गूहामि इत्यादि

३ री शाखा

क्रम् (चल) क्लम् (थक) चम् (आ के साथ) (चूस) अपने बिचले स्वर को

र्थ करते हैं परन्तु पहला केवल परस्मैपद में करताहै जैसे वर्त० उ० कामामि इ-
त्यादि परन्तु आत्म० में कमे

४ थी शाखा

दंश् (काट) रञ्ज् (रंग) सञ्ज् (चिपक) स्वञ्ज् (मिल) अपने २ अनुनासि
क को गिरादेते हैं जैसे वर्त० उ० दशामि इत्यादि रजामि इत्यादि

५ वीं शाखा

जम् आत्म० (जमाईले) से जम्भ और लभ् आत्म० (पा) से कभी पौराणिक
लाप में लम्भ होताहै

२७१ वां सूत्र

कम् आत्म० (प्यारकर) से १० वें गण के अनुसार होताहै वर्त० उ० कामये इ
त्यादि और कई दूसरे मूलों के अपूर्णपद में आय बढ़ताहै जैसे गुप् (बचा) से गो
पाय धूप् (धूंआंदे) से धूपाय विछ् (जा) से विच्छाय पण् आत्म० (सराह) से
पणाय परन्तु जब होड़लगा का अर्थ देताहै तब नहीं पन् आत्म० (सराह) से पनाय

१ ली शाखा

कुर्द् आत्म० (खेल) दूसरे सब इर् और उर् रखनेवाले किसी दूसरे व्यञ्जन से
मिलेहुए मूलों के सदृश अपने स्वर को दीर्घ करताहै जैसे वर्त० उ० कूर्दे इ-
त्यादि

२७२ वां सूत्र

४ थे गण में १३० के लगभग अनिवृत क्रियाएं आतीहैं चार मुख्य रूपों में उ
नके अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल के पीछे य बढ़ाओ मूल के स्वर को गुण नहीं होना और बहुधा जैसा है
वैसा रहताहै परन्तु बढ़ायाहुआ य अन्तों के पहले म् और व् के पहले या होता-
है परन्तु परस्मै० वाले अपूर्णभूत के ए० व० उ० के म् के पहले नहीं जैसा १ ले
गण में (२६१ वां सूत्र देखो)

२७३ वां सूत्र

जैसे सिध् (पूराकर) से अपूर्णपद सिध्य वर्त० उ० सिध्या+मि=सिध्यामि म० सिध्य + सि = सिध्यसि इत्यादि अपूर्णभूत असिध्य + म् = असिध्यम् इत्यादि शक्त्यर्थ उ० सिध्य + इयम् = सिध्येयम् म० सिध्य + इः = सिध्येः इत्यादि अनुमत्यर्थ उ० सिध्य + आनि = सिध्यानि इत्यादि वर्त० आत्म० उ० सिध्य + इ = सिध्ये सिध्य + से = सिध्यसे इत्यादि (२६९ वां सूत्र देखो)

२७४ वां सूत्र

ऐसे ही मा (नाप) से अपूर्णपद माय वर्त० उ० आत्म० माय + इ = माये इत्यादि क्षिप् (फेंक) से क्षिप्य नृत् (नाच) से नृत्य डी (उड़) डीय वर्त० आत्म० उ० डीये

२७५ वां सूत्र

जो मूल अन्त में अम् और इव् रखते हैं और एक अन्त में अद् रखता है सो अपने स्वर को दीर्घ करतेहैं जैसे दिव् (खेल) से दीव्य भ्रम् (१ ला गण भी) (घूम फिर) से भ्राम्य मद् (मस्तवाला हो) से माद्य ऐसे ही क्रम् (१ ला गण भी) (चल) क्षम् (सह) क्लम् [थक] तम् (दुखपा) दम् (हिल) परन्तु भ्रम् से इच्छानुसार भ्रम्य होता है

२७६ वां सूत्र

जो मूल कोई अनुनासिक रखताहै सो बहुधा छोड़दियाजताहै जैसे भ्रंश् (गिर) से भ्रश्य रञ्ज् [रंग] से रज्य जन् [उत्पन्नहो] से जाय होताहै वर्त० आत्म० उ० जाये न् के पलटे इसका स्वर दीर्घ होजाताहै

१ ली शाखा

जो मूल अन्त में ओ रखतेहैं वर्तमानसम्बन्धी य के पहले उनका ओ गिरजाता है जैसे सो (समाप्त हो) का अपूर्णपद स्य होताहै ऐसे ही छो (काट) शो (पैना) दो (बांट) का

२७७ वां सूत्र

ये आगे आनेवाले सूत्रविरुद्ध बनते हैं जॄ (पुरानाहो) से जीर्य व्यध् (चुभ) से विध्य (२७२ वां सूत्र देखो) मिद् (चिपक) से मेद्य

वर्णन

इस गण में केवल १३० अनिमृत क्रियाएं आती हैं सो बहुधा अकर्मक का अर्थ देती हैं तोभी दोसहस्र मूल से प्रत्येक मूल संस्कृत भाषा में कर्मणिवाच्य का रूप लेसकताहै और सब इस गण के आत्म० का अनुगामी होताहै केवल झटके में उससे कुछ भयकना रखताहै (४६१ वां सूत्र देखो)

२७८ वां सूत्र

६ठे गण में १४० के लगभग अनिसृत क्रियाएं आती हैं चार मुख्य रूपों में उनका अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल के पीछे अ बढ़ाओ मूल को गुण नहीं होता और दूसरी अवस्थाओं में बहुधा जैसा होताहै वैसा रहताहै परन्तु यिह बढ़ाहुआ अ चारों मुख्य रूपों के अन्तों के पहले म् और व् के पहले आ होजाताहै परन्तु अपूर्णभूत के ए० व० उ० के म् के पहले नहीं जैसे १ ले और ४ थे गण में (२६१ वां और २७२ वां सूत्र देखो)

२७९ वां सूत्र

जैसे क्षिप् (फेंक) से अपूर्णपद क्षिप वर्त० उ० क्षिपा + मि = क्षिपामि म० क्षिप + सि = क्षिपसि शक्यर्थ उ० क्षिप + इयम् = क्षिपेयम् इत्यादि आत्म० वर्त० उ० क्षिप + इ = क्षिपे (६३५ वां सूत्र देखो) ऐसेही तुद् (मार) से तुद दिश् (दिखा) से दिश

२८० वां सूत्र

जो मूल अन्त में इ उ वा ऊ ऋ और ॠ रखते हैं सो इन स्वरों को यथाक्रम

इय् उव् रिय् और इर् से पलट देते हैं जैसे रि (जा) से रिय नु (सराह) से नुव धू (अचैन हो) से धुव मृ (मार) से म्रियँ (२२६ वां सूत्र देखो) कृ (बखेर) से किर (६२७ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

गृ (निगल) से गिर वा गिल होता है

२८१ वां सूत्र

६ ठे गण के बहुत से मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो मुख्य चार रूपों में पिछले व्यञ्जन के पहले एक अनुनासिक का आना चाहते हैं जैसे मुच् (छोड़) से अपूर्णपद मुञ्च लिप् (लीप) से लिम्प कृत् (काट) से कृन्त सिच् (छिड़क) से सिञ्च लुप् (तोड़) से लुम्प पिश् (बना) से पिंश ऐसे ही विद् (जान) और खिद् (सता) से

२८२ वां सूत्र

ये आगे आनेवाले सूत्रविरुद्ध बनते हैं इष् (चाह) से इच्छ प्रछ् (पूंछ) से पृच्छ भ्रज्ज् (तल) से भृज्ज व्रच् (छल) से विच व्रश्च् (काट) से वृश्च (६७२ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

मूल शद् और सद् कभी २ इस गण के समझे जाते हैं (इनके अपूर्णपद के लिए २७० वां सूत्र देखो)

२८३ वां सूत्र

१० वें गण में थोड़ी अनिमृत क्रियाएं और सब प्रेरणार्थक क्रियाएं और कुछ संज्ञासम्बन्धी क्रियाएं आती हैं (५२१ वां सूत्र देखो) चार मुख्य रूपों में इनका अपूर्णपद बनाने की विद्द रीति है

मूल के स्वर को चारों मुख्य रूपों के प्रत्येक पुरुष में जो २८ वां सूत्र रोके नहीं तो गुण करो और ऐसे गुण किये हुए मूल के पीछे अय बढ़ाओ फिर अय मुख्य चा

गे रूपों के अन्तों के पहले म् और व् के पहले अया होजाताहै परन्तु अपूर्णभूत के ए० व० उ० के म् के पहले नहीं

२८४ वां सूत्र

जैसे चुर् (चुरा) से चोरय वर्त० उ० चोरया + मि = चोरयामि म० चोरय + सि = चोरयसि इत्यादि अपूर्णभूत उ० अचोरय + म् = अचोरयम् इत्यादि (६३८ वां सूत्र देखो) शक्त्यर्थ उ० चोरय + इयम् = चोरयेयम् अनुमत्यर्थ उ० चोरय + आनि = चोरयाणि इत्यादि (५८ वां सूत्र देखो)

२८५ वां सूत्र

जो मूल अन्त में स्वर रखते हैं सो बहुधा गुण के पलटे वृद्धि चाहते हैं (४८३ वां सूत्र देखो) जैसे पी (प्रसन्न कर) से प्रायय (४८५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) धृ (रख) से धारय परन्तु वृ (चुन) से होता है वरय परन्तु इस पिछले को बहुधा प्रेरणार्थक समझते हैं

२८६ वां सूत्र

जो मूल अकेले व्यञ्जन के पहले ह्रस्व अ रखते हैं सो इस स्वर को बहुधा दीर्घ करते हैं जैसे ग्रस् (निगल) से ग्रासय परन्तु मिलेहुए व्यञ्जन के पहले नहीं जैसे अङ्क् (पहचान) से अङ्कय दण्ड् [दण्डदे] से दण्डय

१ ली शाखा

परन्तु ये आगे आनेवाले बिचले अ को अकेले व्यञ्जन के पहले आता है तो दीर्घ नहीं करते कथ् (कह) (कथय) गण् (गिन) अघ् (पापकर) रच् (बना) रच् (बना) पट् आत्म० (घेर) रट् (पुकार) मण् (लपेट) श्रथ् और श्लथ् (ढीला हो) रह् (छोड़) पद् आत्म० (जा) गद् (बोल) स्वन् स्तन् सन् (शब्द कर) कल् (गिन) (पौराणिक काव्य में दीर्घ भी होता है) व्यय् (व्यय कर) और दूसरे जो थोड़े आते हैं

२८७ वां सूत्र

इय् उव् रिय् और इर् से पलट देते हैं जैसे रि (जा) से रिय नु (सराह) से नुव धू (अचैन हो) से धुव मृ (मर) से म्रियं (२६ वां सूत्र देखो) कृ (बखेर) से किर (६२७ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

गृ (निगल) से गिर वा गिल होता है

२८१ वां सूत्र

६ ठे गण के बहुत से मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो मुख्य चार रूपों में पिछले व्यञ्जन के पहले एक अनुनासिक का आना चाहते हैं जैसे मुच् (छोड़) से अपूर्णपद मुञ्च लिप् (लीप) से लिम्प कृत् (काट) से कृन्त सिच् (छिड़क) से सिञ्च लुप् (तोड़) से लुम्प पिश् (बना) से पिंश ऐसे ही विद् (जान) और विद् (सता) से

२८२ वां सूत्र

ये आगे आनेवाले सूत्रविरुद्ध बनते हैं इष् (चाह) से इच्छ प्रछ् (पूंछ) से पृच्छ भ्रज्ज् (तल) से भृज्ज व्यच् (छल) से विच व्रश्च् (काट) से वृश्च (४७२ वां सूत्र देखो)

७ ली शाखा

मूल शद् और सद् कभी२ इस गण के समझेजाते हैं (इनके अपूर्णपद के लिए २७० वां सूत्र देखो)

२८३ वां सूत्र

१० वें गण में थोड़ी अनिमृत कियाएं और सब प्रेरणार्थक कियाएं और कुछ संज्ञासम्बन्धी कियाएं आती हैं (५२१ वां सूत्र देखो) चार मुख्य रूपों में इनका अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल के स्वर को चारों मुख्य रूपों के प्रत्येक पुरुष में जो २८ वां सूत्र रोके नहीं तो गुण करो और ऐसे गुण किये हुए मूल के पीछे अय बढ़ाओ यिह अय मुख्य चा

गों रूपों के अन्तों के पहले म् और व् के पहले अथा होजाताहै परन्तु अपूर्णभूत के ए० व० उ० के म् के पहले नहीं

२८४ वां सूत्र

जैसे चुर् (चुरा) से चोरय वर्त० उ० चोरया + मिं = चोरयामि म० चोरय सि = चोरयसि इत्यादि अपूर्णभूत उ० अचोरय + म् = अचोरयम् इत्यादि (६३८ वां सूत्र देखो) शक्त्यर्थ उ० चोरय + इयम् = चोरयेयम् अनुमत्यर्थ उ० चोरय + आनि = चोरयाणि इत्यादि (५८ वां सूत्र देखो)

२८५ वां सूत्र

जो मूल अन्त में स्वर रखते हैं सो बहुधा गुण के पलटे वृद्धि चाहते हैं (४८१ वां सूत्र देखो) जैसे पी (प्रसन्न कर) से भावय (४८५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) धृ (रख) से धारय परन्तु वृ (चुन) से होता है वरय परन्तु इस पिछले को बहुधा प्रेरणार्थक समझते हैं

२८६ वां सूत्र

जो मूल अकेले व्यञ्जन के पहले ह्रस्व अ रखते हैं सो इस स्वर को बहुधा दीर्घ करते हैं जैसे ग्रस् [निगल] से ग्रासय परन्तु मिलेहुए व्यञ्जन के पहले नहीं जैसे अङ्क् [पहचान] से अङ्कय दण्ड् [दण्डदे] से दण्डय

१ ली शाखा

परन्तु पे आगे आनेवाले पिछले अ को अकेले व्यञ्जन के पहले आता है तो भी दीर्घ नहीं करते कथ् (कह) (कथय) गण् (गिन) अघ् (पापकर) रच् (बांध) रच (बना) पट् आत्म० (घेर) रट् (पुकार) व्रण् (लपेट) श्रथ् और श्लथ् (ढीला हो) रह् (छोड़) पद् आत्म० (जा) गद् (बोल) ध्वन् स्तन् स्वन् (शब्द कर) कल् (गिन) (पौराणिक काव्य में दीर्घ भी होता है) व्यय् (व्यय कर) और दूसरे जो थोड़े आते हैं

२८७ वां सूत्र

रूप बहुधा अनिमृत के रूप से मिलताहै फिर थोड़ी क्रियाएं यथार्थ में प्रेरणार्थक का अर्थ रखती हैं परन्तु १० वें गण समझी जाती हैं इसलिये यिह समझना कठिन होताहै कि इस गण की यिह क्या अनिमृत है या प्रेरणार्थक है इसलिये १० वां गण मूल के प्रेरणार्थकसम्ब- धी रूप से बहुत मिलताहै देखो वे मुख्य उलटापलटियां जो ४८३ वें सूत्र से ४८८ सूत्र तक प्रेरणार्थक के लिये बताई हैं

१ ली शाखा

जो क्रियाएं चाहे अनिमृत चाहे प्रेरणार्थक १० वें गण में आती हैं सो यिह ए बड़ी मुख्यता रखती हैं कि वर्तनीसम्बन्धी अय उस क्रिया के सब सामान्य औ मुख्य रूपों में आताहै केवल अनियतभूत और आशीर्वादवाचक परस्मै० में नहीं आता इस कारण से १० वें गण की क्रियाओं के सामान्य रूपों के अपूर्णपद का बनाना सामान्य रूपों में बताया जाएगा (३६३ वां सूत्र देखो) परन्तु वुह प्रेरणा- र्थक के तले आएगा।

२ री शाखा

१० वें गण की बहुतसी क्रियाएं दूसरे गणों की क्रियाओं के सदृश भी वर्तनी होती हैं और बहुतसी क्रियाएं संज्ञासम्बन्धी समझी जाती हैं

दूसरा और तीसरा जथा

अर्थात् २ रे ३ रे और ७ वें गणवाले और ५ वें ८ वें और ९ वें गणवाले मू- लों मे अपूर्णपद का बनाना

आरम्भसम्बन्धी वर्णन

२९० वां सूत्र

दूसरे और तीसरे जथे की क्रियाओं के अपूर्णपद का बनाना पहले जथे की अ र्थात् १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण की क्रियाओं के अपूर्णपद बनाने से अ-

कृत् (सराह) से कीर्तय [वर्त० कीर्तयामि]

२८८ वां सूत्र

थोड़े विचला ऋ रखनेवाले मूल ऋ की उलटापलटी नहीं चाहते जैसे स्पृह् [चाह] से स्पृहय मृग् [ढूंढ] से मृगय मृष् (उठा) से मृषय बहुधा मर्षय गृह् आत्म० (ले) से गृहय और ग्राहय भी कृप् (दयाकर) से कृपय परन्तु मृज् (पोंछ) वृद्धि चाहताहै जैसे मार्जय इनमें से कोई २ संज्ञासम्बन्धी समझेजाते हैं

१ ली शाखा

ये आगे आनेवाले भी अपने विचले स्वर को गुण नहीं चाहते हैं सुख (सुखी कर) पुट् (बांध) स्फुट् [प्रसिद्ध हो] कुण् वा गुण् (अनुमतिकर)

२ री शाखा

थोड़े एक से अधिक शब्दभागवाले मूल (७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) १० वें गण के कहेजाते हैं वे ये हैं सभाज् (पूज) अवधीर् (द्वेषकर) संग्राम् (लड़) कुमार् वा कुमाल् (खेल) गवेष् (ढूंढ) विडम्ब् (देखादेखी कर) निवास् (पहन) संकेत् (निमंत्रणकर) आन्दोल् हिन्दोल् हिल्लोल् प्रेङ्खोल् (झूल) पल्पूल् वा पल्पुल् वा वल्पूल् (काट) ये और थोड़े एकशब्दभागवाले १० वें गण के मूल ऐसे जैसे अंश् (बांट) अर्थ् (पूछ) मिश्र् (मिला) अंक् (पहचान) मूत्र् (मूत) सूत्र् (पिरो) वीज् (पवनकर) छिद्र् (छेदकर) शब्द् (बोल) और दूसरे जो थोड़े आते हैं किसी २ व्याकरणी की मति के अनुसार अपने अपूर्णपद इच्छानुसार आपय बढ़ने से बनाते हैं जैसे अंश् वर्त० उ० अंशापयामि वा अंशयामि

२८९ वां सूत्र

आगे बतायाहै कि प्रत्येक मूल प्रेरणार्थक का रूप लेसकताहै और १० वें गण की वर्तनी का अनुगामी होताहै यथार्थ में यिही कारण है कि बहुतसी अनिसुत सकर्मक क्रियाएं प्रेरणार्थक का अर्थ नहीं रखतीं परन्तु प्रेरणार्थक के सदृश वर्तनी कीजाती हैं और १० वां गण प्रेरणार्थक से अलग है इस गण की क्रियाओं में प्रेरणार्थक

का रूप बहुधा अनिसृत के रूप से मिलताहै

फिर थोड़ी क्रियाएं यथार्थ में प्रेरणार्थक का अर्थ रखती हैं परन्तु १० वें गण की समझी जाती हैं इसलिये यिह समझना कठिन होताहै कि इस गण की यिह क्रिया अनिसृत है वा प्रेरणार्थक है इसलिये १० वां गण मूल के प्रेरणार्थकसम्बन्धी रूप से बहुत मिलताहै देखो वे मुख्य उलटापलटियां जो ४८३ वें सूत्र से ४८८ वें सूत्र तक प्रेरणार्थक के लिये बताई हैं

१ ली शाखा

जो क्रियाएं चाहे अनिसृत चाहे प्रेरणार्थक १० वें गण में आती हैं सो यिह एक बड़ी मुख्यता रखती हैं कि वर्तनीसम्बन्धी अय उस क्रिया के सब सामान्य और मुख्य रूपों में आताहै केवल अनियतभूत और आशीर्वादवाचक परस्मै० में नहीं आता इस कारण से १० वें गण की क्रियाओं के सामान्य रूपों के अपूर्णपद का बनाना सामान्य रूपों में बतायाजाएगा (३६३ वां सूत्र देखो) परन्तु वुह प्रेरणार्थक के तले आएगा

२ री शाखा

१० वें गण की बहुतसी क्रियाएं दूसरे गणों की क्रियाओं के सदृश भी वर्तनी की जाती हैं और बहुतसी क्रियाएं संज्ञासम्बन्धी समझी जाती हैं

दूसरा और तीसरा जथा

अर्थात् २ रे ३ रे और ७ वें गणवाले और ५ वें ८ वें और ९ वें गणवाले मूलों में अपूर्णपद का बनाना

आरम्भसम्बन्धी वर्णन

२९० वां सूत्र

दूसरे और तीसरे जथे की क्रियाओं के अपूर्णपद का बनाना पहले जथे की अर्थात् १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण की क्रियाओं के अपूर्णपद बनाने से अ-

धिक कठिन है १ ले जथे में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद प्रत्येक गण में कुछ प्रभकता रखता है तोभी जो रूप प्रत्येक मुख्य रूप के अन्तों के पहले ए० व० में लेताहै सो बनारहताहै परन्तु दूसरे और तीसरे जथे में वुह अपूर्णपद बहुत से रूपों को पृथक २ पुरुष और वचन में पलटवारहताहै ऐसी उलटापलटी यंत्र को पू इत्यादि संकेतिक वर्णों से दिखाई है [२४६ वां सूत्र देखो]

१ ली शाखा

पू चिह्न दिखाताहै कि रूप की पूर्णता वा शक्ति इन अबल अन्तों क पहले मूल को दीजाती है (२४७ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) जैसे इ २ रा गण (जा) वर्त० ए० व० में एमि एपि एति होताहै द्वि० व० में इवः इथः इतः और ब० व० में इमः इत्यादि ऐसे ही स्तृ (ढकना) वर्त० ए० व० में स्तृणोमि स्तृणोपि स्तृणोति द्वि० व० में स्तृणुवः स्तृणुथः स्तृणुतः ब० व० में स्तृणुमः इत्यादि ऐसे ही क्री (मोललेना) वर्त० ए० व० में क्रीणामि क्रीणासि क्रीणाति द्वि० व० इत्यादि में क्रीणीवः क्रीणीथः क्रीणीतः क्रीणीमः इत्यादि क्योंकि आ ई से भारी होताहै अनुमत्यर्थ परस्मै० और आत्म० के पहले तीन पुरुषों के अन्तों के पीछे पू चिह्न दिखाताहै कि इन भारी अन्तों के पहले भी अपूर्णपद पूर्णता रखता है जब कोई व्यञ्जन अन्त में रखनेवाला मूल प्रकृति वा स्थान से दीर्घ होताहै तो अधिक शक्ति की कुछ अवश्यकता नहीं रहती और गुण भी नहीं होसकता (२८ वां सूत्र देखो) परन्तु गुण के पलटे हलके अन्तों के पहले अपूर्णपद कभी २ कटता नहीं और भारी अन्तों के पहले कटजाताहै ऐसे ही उन मूलों में होताहै जो अन्त में आ रखते हैं जैसे दा और धा सबल अन्तों के पहले अपने पिछले स्वरों को दबाते हैं और अबल अन्तों के पहले नहीं (३३५ वां और ३३६ वां सूत्र देखो) ऐसे ही अस् (हो) २८ वें सूत्र से गुण नहीं चाहता तोभी सबल अन्तों के पहले अपने पहले स्वर को गिराताहै और अबल अन्तों के पहले रखता है (३२७ वां और ३२८ वां सूत्र देखो)

२९१ वां सूत्र

दूसरी कठिनता यिह है कि दूसरे जथे में अर्थात् २ रे ३ रे और ७ वें गण में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद अन्त में बहुधा कोई व्यञ्जन रखताहै इसलिये क्रियासम्बन्धी अपूर्णपदों का चिह्न जथा संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों के पिछले चार भागों से मिलताहै और प्रत्येक अपूर्णपद के पिछले व्यञ्जन का इन तीन गण के मुख्य रूपों में अन्त के पहले त् थ् ध् वा स् के साथ मिलना सन्धि के सूत्रों का जो आगे बताए हैं और दूसरे सूत्रों का भी जो आगे बताए जाएंगे ज्ञान चाहताहै -

२९२ वां सूत्र

अन्तों के विषय में २४६ वें सूत्र में जो यंत्र लिखा है उसके देखने से जानपड़ेगा कि पिछले दो जथे उस यंत्र के विधिपूर्वक अन्त ग्रहण करतेहैं और थोड़े पतिनिधि चाहते हैं परन्तु वर्तमान और अनुमत्यर्थ आत्म० के अ० ब० व० में छःओं गणों में और तीसरे गण में दुहरावट से जो बोझ पड़ताहै उससे अनुनासिक गिरजाताहै परन्तु इन दो रूपों में परस्मै० वाले अ० व० व० में भी अनुनासिक गिरजाताहै यिह गण भी अपूर्णभूत के अ० ब० व० में अन् के पलटे उः लेताहै

२९३ वां सूत्र

इसके उपरान्त २ रे और ३ रे गण के जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं और ७ वें गण के सब मूल और ३ रे गणवाला मूल हु अनुमत्यर्थ के म० ए० व० में हि के पलटे धि चाहते हैं (२४६ वां सूत्र देखो) और ५ वें गण के जो मूल अन्त में स्वर रखते हैं और ८ वें गण के सब मूल और ९ वें गण के जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो गणों के पहले जथे से अन्त हि छोड़ने में भिन्न हैं (२५७ वां सूत्र देखो)

टीका

1 श्राँदि म धि था इसलिये वेद में श्रुधि आया है और महाभारत में अपावृधि किर धि हि होगयाहै जैसे श्रृणु दिन होगयाहै -

२९४ वां सूत्र

फिर जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो ४१ वें सूत्र की १ ली विधि के अनुसार अपूर्णभूत के म० और अ० के ए० व० वाले अन्त स् और त् को छोड़देते हैं और मूल के पिछले वर्ण को जो कोमल व्यञ्जन होताहै कठोर अश्वासयुक्त से पलटदेते हैं और दूसरी अवस्थाओं में पिछले व्यञ्जन को पलटते हैं जैसा ४१ वें सूत्र की १ ली और ४ थी विधि में बतायाहै जो मूल अन्त में त् थ् द् ध् रखते हैं उनमें अ० यथाविधि अन्त त् को छोड़ताहै और इसलिए अन्त में अकेला त् रखता है और म० इच्छानुसार अन्त स् को छोड़ता है और इसलिए अन्त में त् रखता है अथवा मूल के पिछले दन्ती को छोड़ता है और इसलिए अन्त में स् रखताहै (३०८ वां सूत्र देखो)

२९५ वां सूत्र

ये आगे आनेवाले सन्धि के नए सूत्र भी परस्मै० वाले अधिकतार्थक के मुख्य रूपों के बनाने में (५१४ वां सूत्र देखो) और १० वें गण की क्रियाओं को छोड़ के सब अनिसृत क्रियाओं के सामान्य रूपों के अपूर्णपद बनाने में और थोड़ी गुण क्रियाओं के बनाने में काम आतेहैं क्योंकि बहुतसे व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में स्वर इ (३९१ वां सूत्र देखो) इन रूपों के अन्तों को पहले बढ़ाया जाताहै तोभी बहुतसे साधान्य मूल इस स्वर का बढ़ना नहीं चाहते और अपूर्णपद के पिछले वर्ण को अन्त के पहले व्यञ्जन से मिलादेते हैं इसलिये सामान्य रूपों के और गुणक्रियाओं के कुछ दृष्टान्त पहले से बताने अच्छे जानपड़ते हैं

क्रियासम्बन्धी कई अपूर्णपदों की सुस्वरता सम्बन्धी मिलावट अन्तों और प्रत्ययों के साथ

पिछले च् छ् ज् झ् की मिलावट त् थ् ध् स्

के साथ

२९६ वां सूत्र

पिछला च् और ज् पिछले त् थ् ध् और स् के ४१ वें सूत्र की ४ थी विधि के अनुसार क् के साथ पलट जाते हैं और क् स् के साथ मिलकर ७० वें सूत्र से क्ष् होजाताहै और ध् के पहले ग् होजाताहै जैसे वच् + ति = वक्ति वच् + थः = वक्थः वच् + सि = वक्षि मोच् + स्यामि = मोक्ष्यामि मुच् + त = मुक्त त्यज् + त = त्यक्त त्यज् + स्यामि = त्यक्ष्यामि यिही सूत्र पिछले झ् से लगता है परन्तु ऐसा कभी होता नहीं देखा

१ ली शाखा

ऐसेही पिछला छ् स् के पहले जैसे प्रछ् + स्यामि = प्रक्ष्यामि

२९७ वां सूत्र

परन्तु पिछला छ् वा ज् कभी २ त् वा थ् के पहले ष् होजाताहै और तब त् वा थ् ट् वा ठ् होजाताहै जैसे मार्ज् + ति = मार्ष्टि मृज् + थः = मृष्ठः मृज् + त = मृष्ट प्रछ् + ता = प्रष्टा

१ ली शाखा

ऐसेही पिछला ज् ध् के पहले ड् से पलट सकता है और ध् तब ढ् होजाताहै

२ री शाखा

भज्ज् (तल) मज्ज् (डूब) भ्रस्ज् (भाड़) अपना पिछला व्यञ्जन छोड़देते हैं और पहले दो ऐसे होजाते हैं जैसे अन्त में ज् रखते हों और पिछला ऐसा होता है जैसा अन्त में श् रखता हो (६३२ वां ६३३ वां और ६३० वां सूत्र देखो)

पिछले ध् वा भ् की मिलावट त् थ् वा स् के साथ

२९८ वां सूत्र

पिछला ध् वा भ् पहले त् वा थ् के पलटता है पहला द् के साथ और दूसरा ब् के साथ और दोनों त् और थ् तब ध् होजाते हैं जैसे रुन्ध् + तः वा थः = रुन्द्धः लभ् + ताहे = लब्धाहे बोध् + ताहे = बोद्धाहे

ऐसाही सूत्र पिछले घ् से लगता है और घ् तब ग् होजाता है परन्तु कभी ऐसा होता नहीं देखा

१ ली शाखा

पिछला ध् मिलेहुए न् के पीछे आता है जैसे रुन्ध् में तब पिछला त् और थ् के पहले जो ध् होता है द् होजाता है और इच्छानुसार छूटजाता है जैसे रुन्ध् + तः = रुन्द्धः वा रुन्धः रुन्ध् + तम् = रुन्धम् वा रुन्द्धम् (पा० ८, ४, ६५)

२ री शाखा

इसी सूत्र के अनुसार तृण्ढः के पलटे तृण्ढः लिखाजाता है तृह् से (६७४ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

ऐसे ही जो मूल अन्त में त् और द् रखते हैं सो इन वर्णों को थ् व् धि के पहले जब इनके पहले पासही न् आता है छोड़सकते हैं इसलिए भिन्त्ते के पलटे भिन्ते भिन्त्तः के पलटे भिन्तः और भिन्द्धि के पलटे भिन्धि लिखसकते हैं

२९९ वां सूत्र

पिछले ध् और भ् ४४ वें सूत्र से स् के पहले पलटते हैं पहला त् के साथ और दूसरा प् के साथ जैसे रुणध् + सि = रुणत्सि सेध् + स्यामि = सेत्स्यामि लभ् + स्ये = लप्स्ये (४१ वें सूत्र की २ री विधि देखो)

१ ली शाखा

जो शब्दभाग पिछला वर्ण कोई स्वासयुक्त रखता है उसका पहला वर्ण जो ग् द् ब् वा द् होता है तो वह स्वास जो पिछले में छूटजाता है पहले में आजाता है जैसे बोध् + स्ये = भोत्स्ये दध् + स्व = धत्स्व विहीं सूत्र दध् से व् और ध् के पहले २८९

वें सूत्र के विरुद्ध लगताहै (४४ वें सूत्र की ३री शाखा और १३६ वां और ६६४ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

जब पिछला ध् अन्त ध्व और ध्वम् के पहले द् से पलटताहै तब पहला वर्ण बांसयुक्त होजाता है (१३६ वां और ६६४ वां सूत्र देखो)

पिछले श् ष् स् की मिलावट त् थ् स् ध् के साथ

३०० वां सूत्र

पिछला श् पहले त् और थ् के ष् होजाता है और त् थ् मुर्द्धन्य ट् ठ् होजाते हैं जैसे ईश् + ते = ईष्टे ऐश् + थाः = ऐष्ठाः

३०१ला सूत्र

ऐसे ही पिछला ष् पहले त् और थ् के चाहता है कि त् और थ्-ट् और ठ् के साथ पलटजावें जैसे द्वेष् + ति = द्वेष्टि और द्विष् + थः = द्विष्ठः

३०२ रा सूत्र

पिछला श् वा ष् पहले स् के ४१ वें सूत्र की ५ वीं विधि के अनुसार क् से पलटजाताहै और स् तब ७० वें सूत्र के अनुसार ष् से पलटजाता है जैसे वश् + सि वक्षि द्वेष् + सि = द्वेक्षि दश् + स्यामि = दक्ष्यामि

१ ली शाखा

पिछला स् भी क् के साथ पलटताहै जैसे घस् + से = घक्षे

३०३ रा सूत्र

पिछला श् वा ष् ध् के पहले ड् से पलटताहै और ध् ५१ वें सूत्र से ढ् होजाताहै जैसे द्विष् + धि = द्विड्ढि ऐसेही द्विष् + ध्वम् = द्विड्ढ्वम् पिछला ज् भी इसी

सूत्र का अनुगामी होताहै (६३२ वां और ६५१ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

पिछला ध् भी फ् गिरजाने से ढ् होजाताहै जैसे घस् + ध्वे = घड्ढ्वे

पिछला स् अपूर्णभूत अ० ए० ... में (अन्त त् छूटजाने से) त् के पहले त् होजाताहै और ध् के पहले गिरजाताहै वा द् से पलट जाताहै जैसे चकास् + धि = चकाधि वा चकाद्धि शास् + धि = शाधि हिंस् + धि = हिन्धि वा हिन्द्धि (६५८ वां और ६७३ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

पिछला स् स् के पहले त् से पलटजाताहै जैसे वस् + स्यामि = वत्स्यामि ऐसेही इच्छानुसार शास् के अपूर्णभूत के म० ए० व० में अशास् + स् = अशात् = अशात् वा अशाः

२ री शाखा

परन्तु जब पिछला स् सि और से के पहले अ वा आ के पीछे आता है तब नहीं

पिछले ह् की मिलावट त् थ् स् ध् के साथ

३०५ वां सूत्र

जो मूल आदि में द् रखते हैं जैसे दुह् (दोह) उनका पिछला ह् घ् समझा जाताहै और त् और थ् के पहले ग् से पलटजाता है और तब दोनों त् और थ् ध् होजाते हैं जैसे दुह् + तः वा थः = दुग्धः दह् + तास्मि = दग्धास्मि परन्तु दह् + स = ढ्ढ

टीका

मूल नह् में पिछला ह् ध् समझाजाताहै और द् होजाता है फिर त् और थ् दोनों ध् होजाते हैं (६२४ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

परन्तु जो कोई मूल आदि में द् और न् को छोड़ के कोई दूसरा वर्ण रखताहै तो उसका पिछला ह् गिरजाताहै और अन्त के दोनों त् और थ् ढ् होजाते हैं ब-रन पिछले ह् के पलटे ऋ को छोड़के मूलसम्बन्धी स्वर गुण नहीं चाहता तो दीर्घ होजाताहै और मूल सह् और वह् (उठा) में ओ से पलटजाताहै जैसे मुह् + त = मूढ रुह् + त = रूढ लेह् + ति = लेढि रोह् + तास्मि = रोढास्मि सह + ता = सोढा वह् + ता = वोढा

वर्णन

परन्तु तृह् + त = तृढ वृह् + त = वृढ (पा० ६, ३, १११)

२ री शाखा

द्रुह् (सता) मुह् (मोहितहो) स्निह् (प्यारकर) स्नुह् (वमनकर) इच्छानुसार ३०५ वें सूत्र के वा ३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुगामी होते हैं

३०६ ठा सूत्र

पिछला ह् स् के पहले पिछले श् और ष् के अनुमान पर आताहै और क् से पलटजाताहै और फिर क् स् से मिलकर क्ष् होजाताहै जैसे लेह् + सि = लेक्षि रोह् + स्यामि = रोक्ष्यामि

१ ली शाखा

जो ह् अन्त में रखनेवाले शब्दभाग का पहला वर्ण द् ग् ब् वा ध् (ये दो पिछले नहीं आते) होताहै तोभी पिछला ह् स् के पहले क् से पलटताहै परन्तु पहला द् वा ग् ३२ वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार श्वासयुक्त होजाताहै जैसे दोह् + सि = धोक्षि दह् + स्यामि = धक्ष्यामि अगुह् + सम् = अघुक्षम्

२ री शाखा

मूल नह् में पिछला ह् ध् समझाजाताहै और स् के पहले त् होजाताहै (१८१

१ ली शाखा

परन्तु जो कोई मूल आदि में द् और न् को छोड़ के कोई दूसरा वर्ण रखताहै तो उसका पिछला ह् गिरजाताहै और अन्त के दोनों त् और थ् ढ् होजाते हैं व-त पिछले ह् के पहले ऋ को छोड़के मूलसम्बन्धी स्वर गुण नहीं चाहता तो दीर्घ होजाताहै और मूल सह् और वह् (उठा) में ओ से पलटजाताहै जैसे मुह् + त = मूढ रुह् + त = रूढ लेह् + ति = लेढि रोह् + तास्मि = रोढास्मि सह + ता = सोढा वह् + ता = वोढा

वर्णन

परन्तु तृह् + त = तृढ वृह् + त = वृढ (पा० ६, ३, १११)

२ री शाखा

द्रुह् (सता) मुह् (मोहितहो) स्निह् (प्यारकर) स्नुह् (वमनकर) इच्छानुसा १३०५ वें सूत्र के वा ३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुगामी होते हैं

३०६ ठा सूत्र

पिछला ह् स् के पहले पिछले श् और ष् के अनुमान पर आताहै और क् से पलटजाताहै और फिर क् स् से मिलकर क्ष् होजाताहै जैसे लेह् + सि = लेक्षि रोह् + स्यामि = रोक्ष्यामि

१ ली शाखा

जो ह् अन्त में रखनेवाले शब्दभाग का पहला वर्ण द् ग् ब् वा ह् (ये दो पिछले नहीं आते) होताहै तोभी पिछला ह् स् के पहले क् से पलटताहै परन्तु पहला द् वा ग् ११ वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार श्वासयुक्त होजाताहै जैसे दोह् + सि = धोक्षि दह् + स्यामि = धक्ष्यामि अगुह् + सम् = अघुक्षम्

२ री शाखा

मूल नह् में पिछला ह् ध् समझाजाताहै और स् के पहले त् होजाताहै (१८३

५१

वाँ और ६२१ वाँ सूत्र देखो)

३ री शाखा

जो मूल दुह् और दिह् के सदृश आदि में द् रखते हैं उनका पिछला ह् ध् के पहले ग् होजाताहै जैसे अनुमत्यर्थ के म० ए० व० के धि के पहले और अन्त ध्वे और ध्वम् के पहले होताहै (३०६ ठे सूत्र की ४ थी शाखा देखो) जैसे दुह् तधि = दुग्धि और जो मूल नह् के सदृश आदि में न् रखते हैं उनका पिछला ह् इन्हीं अन्तों के पहले द् होजाताहै

परन्तु जो मूल द् वा न् को छोड़के दूसरा कोई वर्ण आदि में रखता है उसका पिछला ह् गिरजाता है और अन्त का ध् ढ् होजाताहै और ऋ को छोड़के मूलसम्बन्धी स्वर दीर्घ होजाताहै जैसे लिह् + धि = लीढि लिह् + ध्वम् = लीढ्वम् परन्तु उन मूलों में इच्छा के अनुगामी होते हैं जो ३०५ वें सूत्र की दूसरी शाखा में बताए हैं

४ थी शाखा

अनुमत्यर्थ के धि के पहले नहीं परन्तु ध्वे और ध्वम् के पहले जब पिछला ह् ग् होजाताहै वा गिरजाताहै तब ३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा लगतीहै जैसे दुह् + ध्वे = दुग्ध्वे और अगुह् + ध्वम् = अघूढ्वम्

५ वीं शाखा

देखो जो मूल अन्त में ह् रखता है तो द् आदि में रखनेवाले मूलों के अपूर्णभूत म० और अ० के ए० व० में पिछला ह् (पुरुषसम्बन्धी अन्त स् और त् गिरजाने से) क् होजाता है और दूसरे सब मूलों में पिछला ह् ४१ वें सूत्र की १ ली विधि के अनुसार ट् होजाताहै दोनों अवस्था में पिछ पलटाहुआ ह् १०१ठे सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार मूल के पहले व्यञ्जन को स्वाशयुक्त करताहै

दूसरा जथा अथवा दूसरी बर्तनी

३०७ वां सूत्र

२रे गण में ७० के लगभग अनिसृत क्रियाएं हैं उनसे चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

२८ वें सूत्र से वर्जित नहोवे तो मूल के स्वर को सबल रूपों में अर्थात् केवल उन अन्तों के पहले जो २२६ वें सूत्रवाले यंत्र में प रखते हैं गुण करो और दूसरे सब अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी स्वर को जैसा है वैसा रखो मूल और अन्तों के बीच में कोई स्वर नहीं आता (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

३०८ वां सूत्र

जैसे विद् (जान) से वर्त० ए० व० का अपूर्णपद होता है वेद् जैसे उ० वेद्+मि =वेद्मि इत्यादि और द्वि० व० और ब० व० का विद् जैसे द्वि० व० उ० विद् + वः =विद्वः इत्यादि ब० व० उ० विद् + मः = विद्मः इत्यादि ऐसे ही अपूर्णभूत का अपद और अविद् जैसे उ० अवेद् + अम् = अवेदम् म० अवेद् + : = अवेत् वा अवेः (२१ वें सूत्र की १ ली विधि और २९२ वां सूत्र देखो) और शक्त्यर्थ का विद् जैसे उ० विद् + याम् = विद्याम् इत्यादि और अनुमत्यर्थ का वेद् और विद् जैसे उ० वेद् + आनि = वेदानि म० विद् + धि = विद्धि (२९३ वां सूत्र देखो) वेद् + तु = वेत्तु द्वि० व० उ० वेद् + आव = वेदाव इत्यादि * (५८३ वें सूत्रवाला पंत्र देखो)

टीका

* विद् का अनुमत्यर्थ इच्छानुसार शब्दसाग आम् और सहायक किया कृ लगाने से बनता है (३८५ वां सूत्र देखो) जैसे ए० व० अ० विदांकरोतु या विदांकरोतु (पा० ३, १, ४१) और यिह मूल वर्त० अपूर्णभूत और अनुमत्यर्थ के अन्य० अ० ब० व० में इच्छानुसार र् का बढ़ना चाहता है जैसे विदते या विद्रते अविदत या अविद्रत विदताम् वा विद्रताम्

१ ली शाखा

वां और ६२१ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

जो मूल दुह् और दिह् को सदृश आदि में द् रखते हैं उनका पिछला ह् घ्
पहले ग् होजाताहै जैसे अनुमत्यर्थ के म० ए० व० के धि के पहले और अन्त
और ध्वम् के पहले होताहै (३०६ ठे सूत्र की ४ थी शाखा देखो) जैसे दुह्
= धुग्धि और जो मूल नह् के सदृश आदि में न् रखते हैं उनका पिछला ह् इन
अन्तों के पहले द् होजाताहै

परन्तु जो मूल द् वा न् को छोड़के दूसरा कोई वर्ण आदि में रखता है उस
पिछला ह् गिरजाता है और अन्त का ध् ढ् होजाताहै और ऋ को छोड़के मूल
म्बन्धी स्वर दीर्घ होजाताहै जैसे लिह् + धि = लीढि लिह् + ध्वम् = लीढ्वम् पर
उन मूलों में इच्छा के अनुगामी होते हैं जो ३०५ वें सूत्र की दूसरी शाखा में
गाए हैं

४ थी शाखा

अनुमत्यर्थ के धि के पहले नहीं परन्तु ध्वे और ध्वम् के पहले सब पिछला
ग् होजाताहै या गिरजाताहै तब ३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा लगती है जैसे दु
+ ध्वे = दुग्ध्वे और अगुह् + ध्वम् = अघूढ्वम्

५ वीं शाखा

देखो जो मूल अन्त में ह् रखता है तो द् आदि में रखनेवाले मूलों के
अपूर्णभूत म० और अ० के ए० व० में पिछला ह् (पुरुषसम्बन्धी अन्त म् और
न् गिरजाने से) क् होजाता है और दूसरे सब मूलों में पिछला ह् ४१ वें सूत्र की
१ ली विधि के अनुसार ट् होजाताहै दोनों अवस्था में फिर पहला द ३०६ ठे
सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार मूल के पहले व्यञ्जन को महाप्राण करताहै

दूसरा जथा अथवा दूसरी बर्तनी

३०७ वां सूत्र

२रे गण में ७० के लगभग अनिसृत क्रियाएं हैं उनसे चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

२८वें सूत्र से वर्जित नहोवे तो मूल के स्वर को सबल रूपों में अर्थात् केवल उन अन्तों के पहले जो २२६ वें सूत्रवाले यंत्र में पू रखते हैं गुण करो और दूसरे सब अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी स्वर को जैसा है वैसा रखो मूल और अन्तों के बीच में कोई स्वर नहीं आता (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

३०८ वां सूत्र

जैसे विद् (जान) से वर्त० ए० व० का अपूर्णपद होताहै वेद् जैसे उ० वेद्+मि = वेद्मि इत्यादि और द्वि० व० और ब० व० का विद् जैसे द्वि०व० उ० विद् + वः = विद्वः इत्यादि ब० व० उ० विद् + मः = विद्मः इत्यादि ऐसे ही अपूर्णभूत का अवेद् और अविद् जैसे उ० अवेद् + अम् = अवेदम् म० अवेद् + : = अवेत् वा अवेः (३१ वें सूत्र की १ ली विधि और २९४ वां सूत्र देखो) और शक्त्यर्थ का विद् जैसे उ० विद् + याम् = विद्याम् इत्यादि और अनुमत्यर्थ का वेद् और विद् जैसे उ० वेद् + आनि = वेदानि म० विद् + धि = विद्धि (२९३ वां सूत्र देखो) वेद् + तु = वेत्तु द्वि० व० उ० वेद् + आव = वेदाव इत्यादि * (५८३ वें सूत्रवाला यंत्र देखो)

टीका

* विद् का अनुमत्यर्थ इच्छानुसार शब्दभाग आम् और सहायक क्रिया कृ लगाने से बनता है (३८५ वां सूत्र देखो) जैसे ए० व० अ० विदांकरोतु वा विदाङ्करोतु (पा० ३, १, ४१) और यिह मूल वर्त० अपूर्णभूत और अनुमत्यर्थ के आ० अ० ब० व० में इच्छानुसार र् का बढ़ना चाहता है जैसे विदते वा विद्रते अविदत वा अविद्रत विदताम् वा विद्रताम्

१ ली शाखा

आताहै जैसे ए० म० बेद वेत्थ वेद द्वि० व० विद्व विदथुः विदतुः ब० व० विद्म विदुः (१६८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

३०९ वां सूत्र

ऐसे ही द्विष् (द्वेषकर) का अपूर्णपद द्वेष् और द्विष् होताहै जैसे वर्त० ए० द्वे द्वि० व० उ० द्विष्वः इत्यादि (६५७ वां सूत्र देखो)

३१० वां सूत्र

ऐसे ही इ (जा) से ए और इ होताहै जैसे वर्त० उ० एमि म० एषि [७० वां देखो] अ० एति व० व० उ० इमः [६४५ वां सूत्र देखो]

१ ली शाखा

ऐसेही जागृ (जाग) से जागर् और जागृ जैसे वर्त० उ० जागर्मि इत्यादि द्वि०व० जागृवः ब० व० अ० जाग्रति अपूर्णभूत म० और अ० अजागर् वा अजागः व० अ० अजागृताम् व० व० अ० अजागरुः शक्त्यर्थ उ० जागृयाम् अनुम अ० जागर्तु व० व० अ० जाग्रतु

वर्णन

२ रे गण के जो मूल एक से अधिक शब्दभाग रखते हैं जैसे ऊपरवाला जागृ दरिद्रा (दरिद्रीहो) चकास् (चमक) (सब दुहरावट से बने हैं) और शास् (आज्ञा) भी (दुहराएहुए शशास् से संक्षिप्त होगा) और जक्ष् (खा) (जघस् से संक्षिप्त होगा) सो सब वर्तमान और अनुमत्यर्थ परस्मैपद के अ० ब० व० से अनुनासिक रहने में और अपूर्णभूत के ब० व० अ० में अन् के पलटे उः लेने में ३ रे गण की दुहराईहुई क्रियाओं से मिलते हैं और थोड़े मूल जैसे ऊपरवाले विद् और द्विष् और थोड़े आ अन्त में रखनेवाले जैसे या (जा) और पा (बचा) अपूर्णभूत अन् के पलटे जिसके पहले पिछला आ गिरजाताहै इच्छानुसार उः चाहते हैं

३११ वां सूत्र

उपसर्ग अधि (ऊपर) मूल इ (जा) के पहले आके उसका (केवल आ त्म० में) पढ़ने का अर्थ देता है तब इ इय् होजाता है (१२३ वां सूत्र देखो) और वर्त० अपूर्णभूत और शक्त्यर्थ के स्वरादि अन्तों के पहले अधि के इ से मिलके अधीय् हो जाताहै और व्यञ्जनादि अन्तों के पहले अधी होजाता है इस लिए होतेहैं वर्त० उ० अधीये म० अधीषे अ० अधीते द्वि० व० उ० अधीवहे इत्यादि ब० व० अ० अधीयते अपूर्णभूत उ० अधि + अ + इय् + इ = २५१ वें सूत्र की १ ली शाखा से अध्यैयि म० अध्यैथाः अ० अध्यैत द्वि० व० उ० अध्यैवहि म० अध्यैयाथाम् इत्यादि शक्त्यर्थ उ० अधीयीय अधीयीथाः इत्यादि अनुमत्यर्थ उ० अधि + ए + ऐ = ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से अध्ययै म० अधीष्व इत्यादि

१ ली शाखा

उपसर्ग आ सन्धि के विधिपूर्वक सूत्रों के अनुसार मूल इ के पहले आताहै और उसको आने का अर्थ देताहै जैसे वर्त० ऐमि ऐषि ऐति एवः इत्यादि अपूर्णभूत आयम् ऐः इत्यादि शक्त्यर्थ एयाम् एयाः इत्यादि अनुमत्यर्थ आयानि एहि एतु इत्यादि फिर उपसर्ग अप पहले आता है और चलेजाने का अर्थ देता है जैसे वर्त० अपैमि इत्यादि और उपसर्ग अव पहले आके जानने का अर्थ देताहै जैसे वर्त० अवैमि

३१२ वां सूत्र

ऐसे ही जो दूसरे मूल अन्त में इ और उ वा ऊ रखते हैं सो इन वर्णों को स्वरादि अन्तों के पहले इय् और उव् से पलटते हैं (१२३ वां सूत्र और १२५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जैसे वी (जा) से वे,वी और वियू होतेहैं वर्त० उ० वेमि इत्यादि द्वि०व० उ० वीवः ब० व० अ० वियन्ति ? ऐसे ही सू [जन] से [केवल आत्म० में] वर्त० ए० व० द्वि० व० ब० व० अ० सूते सुवाते सुवते और अ

के उ० ए० व० में जो अन्नवम् वा अन्नुवम् होताहै

३१५ वां सूत्र

शी (लेट) (केवल आत्म० में) सब अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहताहै और वर्त० अपूर्णभूत और अनुमत्यर्थ के अ० व० व० में शक्त्य र्थ के अ० व० व० के अनुमान पर र् का बढ़ना चाहताहै (६३६ वां सूत्र देखो)

३१६ वां सूत्र

ऊर्णु (ढांक) पू रखनेवाले व्यञ्जनादि अन्तों के पहले पिछले उ को वृद्धि वा गुण चाहताहै परन्तु अपूर्णभूत के म० और अ० ए०व० के पहले नहीं यहां केवल गुण होसकताहै स्वरादि अन्तों के पहले ३१२ वें सूत्र का अनुगामी होताहै परन्तु अपूर्णभूत के उ० ए०व० को छोड़के पू रखनेवाले स्वरादि अन्तों के पहले गुण होताहै इसलिये इसके अपूर्णपद होतेहैं ऊर्णौ ऊर्णो ऊर्णु और ऊर्णुव् वर्त० परस्मै० उ० ऊर्णौमि वा ऊर्णोमि द्वि० व० उ० ऊर्णुवः ब० व० अ० ऊर्णुवन्ति (३१० वें सूत्र का वर्णन देखो) अपूर्णभूत उ० और्णवम् वा २५१ वें सूत्र की १ ली शाखा से और्णुवम् म० और्णोः इत्यादि शक्त्यर्थ उ० ऊर्णुयाम् अनुमत्यर्थ ए० व० उ० ऊर्णवानि अ० ऊर्णौतु वा ऊर्णोतु वर्त० आत्म० अ० ऊर्णुते ऊर्णुवाते ऊर्णुवते

३१७ वां सूत्र

या (जा) पा (बचा) अद् (खा) आस् आत्म० (बैठ) और दूसरे स्वरों के पहले अ वा आ रखनेवाले मूल नहीं पलटसकते परन्तु आपही अपनी योग्य अपूर्णपद होते हैं वर्त० उ० या + मि = यामि (६४४ वां सूत्र देखो) अद् + मि = अद्मि म० अद् + सि = अत्सि अ० अद् + ति = अत्ति द्वि० व० अ० अद् + तः = अत्तः इत्यादि (६५२ वां सूत्र देखो)

आस् (बैठ) ऐसाही है जैसे आस् + ए = आसे आस् + से = आस्से आस् + ते = आस्ते ध् के पहले आस् का पिछला स् गिरजाताहै जैसे अ० म० ब० आध्वे इत्या

दि

२ री शाखा

अद् (खा) अपूर्णभूत के म० और अ० ए० व० के अन्तों के पहले मुख्य सूत्र से अ का आना चाहताहै (६५२ वां सूत्र देखो) और इस गण के थोड़े दूसरे मूल मुख्य उलटापलटी चाहते हैं जैसी आगे

३१८ वां सूत्र

दरिद्रा (दरिद्री हो) ३१० वें सूत्र के वर्णन का अनुगामी होता है प् न रखने वाले व्यञ्जनादि अन्तों के पहले इसका अपूर्णपद दरिद्रि और अति उः अतु के पहले दरिद्र् जैसे वर्त० ए० व० द्वि० व० ब० व० अ० दरिद्राति-दरिद्रितः दरिद्रति अपूर्णभूत उ० अदरिद्राम् ब० व० अ० अदरिद्रुः शक्त्यर्थ अ० दरिद्रियात् अनुमत्यर्थ उ० दरिद्राणि द्वि० व० उ० दरिद्राव ब० व० अ० दरिद्रतु

३१९ वां सूत्र

दीधी आत्म० (चमक) और वेवी आत्म० (जा) अपने पिछले स्वर को स्वरादि अन्तों के पहले य् से पलटते हैं इय् से नहीं पलटते (३१२ वां सूत्र देखो) परन्तु शक्त्यर्थ में पिछला ई अन्तों के ई के साथ मिलजाताहै वर्त० ए० व० उ० दीध्ये वेव्ये ब० व० अ० दीध्यते वेव्यते शक्त्यर्थ उ० दीधीय इत्यादि

३२० वां सूत्र

वच् (बोल) सब कठोर व्यञ्जनादि अन्तों के पहले १७६ वें सूत्र के अनुसार अपने पिछले तालुस्थानी को कण्ठस्थानी से पलटता है परन्तु ध् को छोड़के किसी कोमल के पहले नहीं फिर मूल वर्तमान और अनुमत्यर्थ के ब० व० अ० में नहीं आता यहां इसके पलटे ब्रू आताहै (३१२ वां और ६३९ वां सूत्र देखो) इसलिये इसके अपूर्णपद वच् और वक् होते हैं (६५० वां सूत्र देखो)

३२१ वां सूत्र

मृज् (मांज) सबल रूपों में वृद्धि चाहताहै और प् न रखनेवाले स्वरादि अन्तों

के पहले इच्छानुसार वृद्धि चाहताहै इसलिये इसके अपूर्णपद मार्ज् और मृज् होते हैं (६५१ वां सूत्र देखो)

३२२ वां सूत्र

रुद् (रो) प् रखनेवाले अन्तों के पहले विधिपूर्वक गुण चाहताहै इसके उपरान्त प् को छोड़के सब व्यञ्जनादि अन्तों के पहले इ का बढ़ना और अपूर्णभूत के म० और अ० ए० व० में इच्छानुसार अ वा ई का बढ़ना इसलिये इसके अपूर्णपद रोदि रुदि रुद् होते हैं (६५३ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

स्वप् (सो) श्वस् और अन् (स्वासले) और जक्ष् (खा) ऐसेही हैं परन्तु गुण नहीं चाहते पिछला ३१० वें सूत्र के वर्णन का अनुगामी है पौराणिक काव्यों में स्वपामि और स्वपिमि जैसे रूप देखने में आते हैं और वेद में पूर्वोक्त पांच मूल के उपरान्त दूसरे मूल इ चाहते हैं जैसे शोचिमि वमिति ज्वलिमि क्षरिति इत्यादि (पा० ७, २, ७६, ३४)

३२३ वां सूत्र

हन् (मार) का अपूर्णपद त् और थ् के पहले ह होताहै (५७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और अन्ति अन् अन्तु के पहले घ्न् और हि के पहले ज होते हैं फिर पिछली उलटापलटी दो स्वासयुक्त की निकटता रोकने को होतीहै (६५४ वां सूत्र और २५२ वें सूत्र की २ री शाखा का वर्णन देखो)

३२४ वां सूत्र

वश् (चाह स्वीकार कर) अ को खोता है और प् नरखनेवाले अन्तों के पहले व् को उ से पलटता है (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और उश् ३०० वें सूत्र से त् और थ् के पहले उष् होजाता है (६५६ वां सूत्र देखो)

३२५ वां सूत्र

ईड् आत्म० (सराह) २८ वें सूत्र से गुण नहीं चाहता और मूल और म०

के अन्त से स्व ध्वे और ध्वम् के बीच में इ का आना चाहताहै वर्त० उ० ई म० ईडिपे अ० ईट्टे (४८ वें सूत्र की २ री शाखा का वर्णन देखो) द्वि० म० ई ईड्वहे ब० व० म० ईडिध्वे अपूर्णभूत अ० ऐट्ट इत्यादि शक्त्यर्थ उ० ईडीय इत्या अनुमत्यर्थ उ० ईडै म० ईड्डिष्व अ० ईट्टाम् व० व० म० ईडिध्वम्

१ ली शाखा

ऐसे ही ईश् (आज्ञाकर) (केवल आत्म०) वर्त० उ० ईशे म० ईशिपे अ ३०० वें सूत्र से ईष्टे अपूर्णभूत अ० ऐष्ट इत्यादि अनुमत्यर्थ अ० ईष्टाम् इ त्यादि

३२६ वां सूत्र

चक्ष् आत्म० (वोल) का पिछले वर्ण का पहला क् सब व्यञ्जनादि अन्त के पहले गिरजाताहै परन्तु उनके पहले नहीं गिरता जो आदि में म् वा व् रखतेहैं र्तं० उ० चक्षे म० चष् + से = चक्षे अ० चष्टे इत्यादि (३०२ रे सूत्र की अ ३०३ रे सूत्र की १ ली शाखा देखो) अपूर्णभूत अ० अचष्ट शक्त्यर्थ अ० चक्ष त कात्यायन चशा को आदि मूल समझता है इसलिए ख्या होजाता है कि पिछला सामान्य रूपों में चक्ष् के पलटे आता है

३२७ वां सूत्र

अस् (हो) (केवल परस्मैपद) बहुत काम की सहायक क्रिया है सो २१ सूत्र की १ ली शाखा का अनुगामी है इसका पहला अ छूटजाताहै परन्तु पूर नेवाले अन्तों के पहले नहीं इसका वर्त० म० ए० व० अस्सि के पलटे असि हो है अपूर्णभूत अनियतभूत की प्रकृति रखताहै और पहले अ को सब अवस्था में बनारखताहै और म० और अ० ए० व० के स् और त् के पहले ई चाहता (५८४ वां सूत्र देखो) अनुमत्यर्थ म० ए० व० अ के पलटे ए चाहताहै और न्त धि को ग्रहण करताहै यिह मूल आत्म० में जब वर्त० का ए० व० होताहै व उपसर्ग वि और अति के साथ आताहै, जैसे व्यतिहे व्यतिसे व्यतिस्ते द्वि० व० व्य

निषह व्पनिपाव व्पनिपाने व्पनिस्महे व्पनिध्वे व्पनिपने शक्तपर्य व्पतिपीय इत्यादि (पी० ८, ३, ८७) (५८४ वां सूत्र देखो)

३२८ वां सूत्र

शास् (आज्ञाकर) परस्मै० में परन्तु आत्म० में नहीं प् नरखनेवाले व्यञ्जनादि अन्तों के पहले अपने स्वर को इ से पलटनाहै परन्तु अनुमत्यर्थ म० ए० व० के अन्त के पहले नहीं उसके और सब स्वरादि अन्तों के पहले और सबल रूपों में भी मूल का स्वर पलटा नहीं जाता और इ के पीछे स् ७० वें सूत्र से प् होजाता है इसलिये इसके अपूर्णपद दो होते हैं शास् और शिप् (६५८ वां सूत्र देखो)

३२९ वां सूत्र

चकास् (चमक) वर्त० उ० चकास्मि म० चकास्सि अ० चकास्ति द्वि०व० उ० चकास्वः ब०व० अ० चकासति (३१० वें सूत्र का वर्णन देखो) अपूर्णभूत उ० अचकासम् म० अचकाः वा अचकात् (२९४ वां सूत्र देखो) अ० अचकात् द्वि० व० उ० अचकास्व ब० व० अ० अचकासुः शक्तपर्य उ० चकास्याम् अनुमत्यर्थ उ० चकासानि म०, चकाधि वा चकाद्धि (३०४ वा सूत्र देखो) अ० चकास्तु द्वि० व० उ० चकासाव म० चकास्तम् ब० व० अ० चकासतु

३३० वां सूत्र

दुह् (दोह) और लिह् (चाट) के अपूर्णपद ३०५ वें और ३०६ ठे सूत्र में बताये हैं इनकी वर्तनी ६६० वें और ६६१ वें सूत्र के अनुसार होती है

३३१ वां सूत्र

३ रे गण में अनियमित क्रियाएं अनुमान से २० हैं उन से चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल के पहले व्यञ्जन और स्वर को दुहराओ और मूलसम्बन्धी शब्दभाग के स्वर को केवल प् रखनेवाले अन्तों के पहले गुण करो जैसा, २ रे गण में

वर्णन

देखो यिह गण मूल और अन्तों के बीच में स्वर रखने में २ रे गण से मिल ताहै यिही गण है जो अनुनासिक को वर्तमान और अनुमत्यर्थ परस्मैपद के अ० व० व० में अवश्य छोड़ताहै (२१२ वां सूत्र देखो) और अपूर्णभूत परस्मैपद के अ० ब० व० में अन् के पलटे उः लेताहै और उस उः के पहले बहुधा गुण होताहै (२१२ वें सूत्र से २९४ वें सूत्र तक देखो)

३३२ वां सूत्र

जैसे भृ (उठा) से अपूर्णपद वर्त० ए० व० होताहै बिभर् उ० बिभर् + मि = बिभर्मि द्वि० व० और ब० व० का बिभृ जैसे द्वि० व० उ० बिभृ + वः = बिभृवः ब० व० उ० बिभृ + मः = बिभृमः ब० व० अ० बिभृ + अति = ३४ वें और २९१ वें सूत्र से बिभ्रति (५८३ वें सूत्र का पत्र देखो)

३३३ वां सूत्र

ऐसेही भी (डर) से दो अपूर्णपद बनतेहैं बिभे और बिभी हु (हवनकर) से दो अपूर्णपद बनते हैं जुहो और जुहु इन मूलों में से पहला मूलसम्बन्धी स्वर को जब गुण नहीं होता तब व्यञ्जन के पहले इच्छानुसार ह्रस्व करताहै (६६६ वां सूत्र देखो) और पिछला अपने पिछले स्वर को वः और मः के पहले इच्छानुसार छोड़ता हैं और यिही एक मूल है जो अन्त में स्वर रखता है जो स्वर अनुमत्यर्थ म० ए० व० में हि के पलटे धि लेताहै (६६२ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

ह्री (लजा) भी के सदृश है परन्तु अपने पिछले ई को ३२३ वें सूत्र के अनुसा र स्वरादि अन्तों के पहले इय् से पलटताहै (६६६ वें सूत्र की १ली शाखा देखो)

३३४ वां सूत्र

ऋ (जा) इस गण में केवल एक क्रिया है जो आदि में स्वर रखती है यिह दु हरावट में ऋ के पलटे इय् लेतीहै इसके अपूर्णपद इयर् और इयृ होते हैं वर्त० ए० व० द्वि० व० ब० व० अ० इयर्ति इयृतः इयृति अपूर्णभूत उ० ऐयरम् म० ऐयः

(ऐपः) अ० ऐपद् (ऐपः) अ० द्वि० ब० ऐपताम् शत्त्यर्थ अ० इयपात् अनुमत्य र्थ उ० इयराणि

३३५ वां सूत्र

दा (दे) का पिछला आ प् रखनेवाले अन्तों को छोड़के सब अन्तों के पहले गिरजाताहै इसलिए इसके अपूर्णपद ददा और दद् होते हैं और अनुमत्यर्थ के हि के पहले दे (६६३ वां सूत्र देखो)

३३६ वां सूत्र

ऐसाही धा (रख) है इसलिए इसके अपूर्णपद दधा और दध् होते हैं परन्तु दध् त् थ् और स् के पहले धत् होजाता है और ध्वे और ध्वम् के पहले २९९ वें सूत्र की १ ली और २ री शाखा से धद् होताहै और अनुमत्यर्थ के हि के पहले धे (६६४ वां सूत्र देखो)

३३७ वां सूत्र

हा (छोड़) का पिछला आ प् न रखनेवाले व्यञ्जनादि अन्तों के पहले इ से पलटजाताहै और स्वरादि अन्तों के पहले और शत्त्यर्थ के प् के पहले छूटजाता है इसलिए इसके अपूर्णपद जहा जही और जह् होते हैं और अनुमत्यर्थ के हि के पहले इच्छानुसार जहा जही वा जाहि होता है किसी२ की मति के अनुसार वर्तमान अपूर्णभूत और अनुमत्यर्थ में जही जाहि होसकता है (६६५ वां सूत्र देखो)

३३८ वां सूत्र

मा आत्म० (नाप) और हा आत्म० (जा) के अपूर्णपद प् न रखनेवाले अन्तों के पहले मिमी और जिही होते हैं और स्वरादि अन्तों के पहले मिम् और जिह् जैसे ए० व० द्वि० व० ब० व० अ० जिहीते जिहाते जिहते अपूर्णभूत अ० अजिहीत अनुमत्यर्थ अ० जिहीताम् (६६४ वें सूत्र की १ ली शाखा में मा देखो)

३३९ वां सूत्र

जन् परस्मै० (उत्पन्न कर) का पिछला अनुनासिक छूटजाताहै (५७ वें सूत्र

७ वें गण में अनुमान से २४ अनिमूल क्रियाएं हैं इन से चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की विध रीति है

(१) रखनेवाले अन्तों के पहले मूल के स्वर और पिछले व्यञ्जन के बीच में न बढ़ाओ जो क इत्यादि के पीछे ५८ वें सूत्र से ण होसकता है और दूसरे सब अन्तों के पहले न् बढ़ाओ जो पासही पीछे आनेवाले व्यञ्जन के अनुसार ङ् ञ् ण् म् वा अनुस्वार ं से पलटसकता है

टीका

इस गण के सब मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं

पिह न् अनुस्वार से सीटयुक्त और ह के पहले पलटता है ६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो)

वर्णन

पिह गण मूल के पिछले व्यञ्जन और अन्तों के बीच में स्वर न रखने में २ रे और ३ रे गण से मिलता है

१ ली शाखा

७ वें गण के मूलों को छोड़के दूसरे सब मूलों में अनुनासिक बढ़ते हैं (२७० वें सूत्र की ४ थी शाखा और २८१ वां सूत्र और ४८७ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

३४३ वां सूत्र

जैसे भिद् (फाटना तोड़ना) से वर्त० का (अपूर्णपद) प० व० भिनद् होता है और द्वि० व० और ब० व० का भिन्द् होता है सो ४६ वें सूत्र से भिनत् या भिन्त् होजाता है जैसे उ० भिनद् + मि = भिनद्मि अ० भिनद् + ति = भिनत्ति द्वि० व० उ० भिन्द् + वः = भिन्द्वः अ० भिन्द् + तः = भिन्त्तः या भिन्तः (२९८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ब० व० अ० भिन्द् + अन्ति = भिन्दन्ति (५८३ में सूत्र का पत्र देखो)

३४४ वां सूत्र

ऐसे ही रुध् (रोक) से दो अपूर्णपद होते हैं रुणध् और रुन्ध् सो रुणत् और रुणद् और रुन्द् से पलटजाते हैं जैसे उ० रुणध् + मि = रुणध्मि म० रुणध् + सि = रुणत्सि अ० रुणध् + ति = रुणद्धि द्वि० व० अ० रुन्ध् + तः = रुन्द्धः (६७१ वां सूत्र देखो) ऐसे ही पिष् (पीस) से दो अपूर्णपद होते हैं पिनष् और पिंष् से वर्त० अ० पिनष् + ति = पिनष्टि अनुमत्यर्थ म० पिंष् + धि = पिंड्ढि वा पिंढि

३४५ वां सूत्र

देखो जो मूल अन्त में त् और द् रखते हैं सो इन वर्णों को जब न् पासही पहले आताहै तब थ् त् और धि के पहले छोड़देते हैं (२९८ वें सूत्र की १ ली २री और ३ री शाखा देखो)

३४६ वां सूत्र

भुज् (खा) युज् (जोड़) विच् (पहचान) २९६ वें सूत्र के अनुगामी हैं इस लिये भुज् से अपूर्णपद भुनज् और भुञ्ज् होते हैं सो भुनक् और भुंक् होजाते हैं (६६८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

३४७ वां सूत्र

भञ्ज् (तोड़) अञ्ज् (मल) उन्द् (भिगो) इन्ध् (जला) हिंस् (सता) तञ्च् वा तञ्ज् (सकोड़) इसी गण में आते हैं परन्तु मूलसम्बन्धी अनुनासिक वर्तनीसम्बन्धी अनुनासिक का स्थान लेता है और सबलरूपों में न होजाता है इस लिए भञ्ज् से दो अपूर्णपद होते हैं भनज् और भञ्ज् सो भनक् और भंङ् होजाते हैं और उन्द् से उनद् और उन्द् होते हैं जैसे वर्त० अ० उनत्ति उन्तः उन्दन्ति अपूर्णभूत उ० औनदम् म० औनः अ० औनत् द्वि० व० अ० औन्ताम् इत्यादि (६६९ वां ६६८ वां और ६७३ वां सूत्र देखो) ऐसेही इन्ध् से वर्त० उ० इन्धे म० इन्त्से अ० इन्द्धे ब० व० अ० इन्धते अपूर्णभूत म० ऐन्द्धाः अ० ऐन्द्ध अनुमत्यर्थ उ० इनधै इत्यादि

३४८ वां सूत्र

मृद् (मार) प् रखनेवाले सब व्यञ्जनादि अन्तों के पहले ण के पलटे णे चाहता है (पा० ७, ३, १२) परन्तु स्वरादि अन्तों के पहले नहीं (६७४ वां सूत्र देखो)

तीसरा जथा अथवा तीसरी वर्तनी

३४९ वां सूत्र

५ वें गण में अनुमान से ३० अनियत क्रियाएं हैं इस से चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल में नु बढ़ाओ सो ५८ वें सूत्र से णु होजाताहै और प् रखनेवाले अन्तों के पहले गुण पाने से नो होके णो होजाता है (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं सो स्वरसम्बन्धी अन्तों के पहले नु के पलटे नुव् चाहते हैं जो मूल अन्त में स्वर रखतेहैं सो प् न रखनेवाले पहले व् और म् के पहले नु के उ को गिरादेते हैं और अनुमत्यर्थ के अन्त हि को सदा छोड़देते हैं (२९१ वां सूत्र देखो)

३५० वां सूत्र

जैसे चि (जोड़) से अपूर्णपद चिनो और चिनु होते हैं वर्त० उ० चिनो + मि = चिनोमि चिनो + सि = ७० वें सूत्र से चिनोषि द्वि० व० उ० चिनु + वः = चिनुवः वा चिन्वः ब० व० उ० चिनु + मः = चिनुमः वा चिन्मः अ० चिनु + अन्ति = ३४ वें सूत्र से चिन्वन्ति अनुमत्यर्थ उ० चिनो + आनि = ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से चिनवानि म० २९१ वें सूत्र से चिनु (५८३ वें सूत्र का पत्र देखो)

३५१ वां सूत्र

ऐसे ही दु (जला) से अपूर्णपद दुनो दुनु और दुनुव् होते हैं आप् (पा) से आप्नो आप्नु और आप्नुव् होते हैं (६८१ वां सूत्र देखो) तृप् (सन्तुष्टकर) से तृप्नो तृप्नु और तृप्नुव् होते हैं (६१८ वां सूत्र देखो)

३५२ वां सूत्र.

श्रु (सुन) क्रमी २ १ ले गण में आता है सो शृ होजाता है इसके अपूर्णपद शृ णो और शृणु होते हैं (६७६ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

दम्भ् (धोका दे) स्कम्भ् और स्तम्भ् (सहारादे) स्कुम्भ् (ठहरा) और स्तुम्भ् (चकितकर) अपने अनुनासिक को वर्तनीसम्बन्धी नु के लिये छोड़देते हैं जैसे दभ्नु स्कभ्नु इत्यादि

३५३ वां सूत्र

८ वें गण में दस अनियुक्त क्रियाएं हैं उन से चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

मूल में उ बढ़ाओ सो प रखनेवाले अन्तों के पहले गुण पाने से ओ होजाता है (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

टीका

केवल दस मूल हैं जो इस गण में बताए हैं और इन में से ९ अन्त में न वा ण रखते हैं इसलिए उ और ओ का बढ़ना ऐसा ही है जैसा ५ वें गण में नु और नो का बढ़ना

३५४ वां सूत्र

जैसे तन् (फैला) से अपूर्णपद तनो और तनु होते हैं वर्त० उ० तनो + मि = तनोमि म० तनो+ सि = ७० वें सूत्र से तनोषि द्वि० व० उ० तनु + वः = तनुवः वा तन्वः ब० व० उ० तनु + मः = तनुमः वा तन्मः अनुमत्यर्थ उ० तनो + आनि = ३६ वें सूत्र की १ ली शाखा से तनवानि म० तनु (२९३ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

सन् (दे) का न् इच्छानुसार गिरजाता है और मूलसम्बन्धी अ शत्त्पर्थ के य के पहले दीर्घ होजाता है जैसे सन्याम् वा साथाम् इत्यादि

२-री शाखा

जब मूल के स्वर को गुण होसकता है तब वृद्ध इच्छानुसार होसकता है जैसे ऋण् (जा) का अपूर्णपद ऋणु वा अर्णु होसकता है उ० अर्णोमि वा ऋणोमि

३५५ वां सूत्र

एक मूल इस गण का कृ (कर बना) है सो इस भाषा में बहुत आता है और बहुत काम का है इसका मूलसम्बन्धी ऋ और बर्तनीसम्बन्धी उ प् रखनेवाले अन्तों के पहले गुण चाहते हैं दूसरे अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी ऋ उर् होजाता है बर्तनीसम्बन्धी उ का छोड़ना प् न् रखनेवाले पहले म् के पहले और पहले यू के पहले जो ५ वें गण में होसकता है इस गण में अवश्यक है वरन पहले य् के पहले अवश्य है इसलिये इसके तीन अपूर्णपद होते हैं करो कुरु और कुर् (६८२ वां सूत्र देखो)

३५६ वां सूत्र

१ वें गण में अनुमान से ५२ अनिमूल क्रियाएं हैं उन से चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

प् रखनेवाले अन्तों के पहले मूल में ना बढ़ाओ और दूसरे सब अन्तों के पहले नी परन्तु स्वरादि अन्तों के पहले केवल न् बढ़ाओ (२९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

वर्णन

देखो ना नी और न् ५८ वें सूत्र से णा णी और ण् होजाते हैं

३५७ वां सूत्र

जैसे पु (जोड़) से तीन अपूर्णपद बनते हैं पुना पुनी और पुन् वर्त० उ० पुना + मि = पुनामि द्वि० प० उ० पुनी + वः = पुनीवः प० व० उ० पुनी + मः = पुनीमः अ० पुन् + अन्ति = पुनन्ति वर्त० आत्म० उ० पुन् + ए = पुने अनुमत्य ए० उ० पुना + आनि = पुनानि म० पुनी + हि = पुनीहि इत्यादि

ज्या (जीण हो) जि होजाता है इसके अपूर्णपद जिना जिनी और जिन् होतेहैं

३६० वां सूत्र

बन्धू ग्रन्थ् मन्थ् श्रन्थ् कुन्थ् और स्तम्भ् वर्तनीसम्बन्धी अनुनासिक के लिए अपने मूलसम्बन्धी अनुनासिक को छोड़देते हैं जैसे बन्धू से तीन अपूर्णपद बनते हैं बधा बधी और बध्न्[(६९२ वां ६९३ वां और ६९५ वां सूत्र देखो)

३६१ वां सूत्र

ज्ञा (जान) भी ऐसाही है अपने अनुनासिक को वर्तनीसम्बन्धी अनुनासिक के लिए छोड़देता है इसके अपूर्णपद जाना जानी और जान् होते हैं (६८८ वां सूत्र देखो)

३६२ वां सूत्र

खद् (मृतसा दीख) के अपूर्णपद कहते हैं कि खौना खौनी और खौन् होते हैं

पहले ९ गणों की अनिसृत क्रियाएं

छः सामान्य रूपों में

३६३ वां सूत्र

पूर्णभूत प्रथमभविष्यत द्वितीयभविष्यत अनियतभूत आशीर्वादवाचक और भावार्थ में अपूर्णपद बनाने के सामान्य सूत्र पहले ९ गण की सब क्रियाओं में लगते हैं (२५० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) केवल १० वां गण अपना वर्तनीसम्बन्धी चिन्ह बहुत से सामान्य रूपों में रखता है इसलिए इसके पिछले रूपों का विचार बहुत सरलता से प्रेरणार्थक क्रियाओं में आता है (२८९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

दुहरायाहुआ पूर्णभूत अथवा द्वितीयभूत

२४६ वें सूत्र से ये अन्त फिर बतायेजाते हैं

परस्मैपद			आत्मनेपद		
अ (औ)	* इव	* इम	ए	* इवहे	* इमहे
इथ वा थ	अथुः	अ	* इषे	आथे	* इध्वे वा इढ्वे
अ (औ)	अतुः	उः	ए	आते	इरे

२६४ वां सूत्र

पहले १ गणवाली क्रियाओं में अपूर्णपद बनाने की यह रीति है

पहले दुहरावट के लिये जो मूल पहले कोई व्यञ्जन रखता है उसको २५२ वें सूत्र में बताये हुए सूत्रों के अनुसार दुहराओ परन्तु मूलसम्बन्धी अ आ ऋ ॠ लृ के पलटे और मूलसम्बन्धी ए ऐ ओ के पलटे भी जो निकले हों अ दुहराया जाता है और इ ई ए के पलटे इ दुहराया जाता है और उ ऊ ओ के पलटे उ दुहराया जाता है जैसे पच् (पका) से पपच् याच् (मांग) से ययाच् कृ (कर) से चकृ नृत् (नाच) से ननृत् तॄ (पारहो) से ततॄ क्ऌप् (शक्तिमान हो) से चक्ऌप् मे (पलट) से ममे गै (गा) से जगै सो (समाप्त कर) से ससो सिध् (पूराकर) से सिषिध् (७० वां सूत्र देखो) जीव् (जी) से जिजीव सेव् (सेवाकर) से सिषेव् द्रु (दौड़) से दुद्रु पू (पवित्र कर) से पुपू बुध् (जान) से बुबुध् लोक् (देख) से लुलोक् स्मि (मुसका) से सिष्मि स्था (खड़ा हो) से तस्था

१ ली शाखा

और जो मूल पहले स्वर रखता हो तो उस स्वर को दुहराओ जैसे अन् (हो) से अ + अन् = ३१ वें सूत्र से आन् आप् (पा) से अ + आप् = आप् इष् (चाह) से इ + इष् = ईष् (३१ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

२ रे मूलसम्बन्धी उलटापलटी के लिये जो मूल अन्त में कोई व्यञ्जन रखते हैं तो मूलसम्बन्धी शब्दभाग के स्वर को जो गुण होसकता है (२८ वां सूत्र देखो) तो परस्मै० के ए० व० उ० म० और अन्य० में गुण करो † परन्तु दूसरे सब अन्तों के पहले उस स्वर को जैसा हो वैसा रखो चाहे परस्मै० हो चाहे आत्म०

टीका

† गुण करना ऐसे अन्तों में णप् थप् और णप् के प् से दिखायाजाताहै (२४५ वें सूत्र का यंत्र देखो)

३ री शाखा

जो मूल अन्त में कोई अमिश्रित व्यञ्जन रखता है और उसके पहले ह्रस्व अ आता है तो वुह अ० उ० में इच्छानुसार और अ० ए० व० में अवश्य दीर्घ होजाताहै और दूसरे अन्तों के पहले वुह जैसा है वैसा रहताहै अथवा ए होजाताहै (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

४ थी शाखा

जो मूल अन्त में कोई स्वर रखताहो तो परस्मै० * के उ० और अ० ए० व० में मूलसम्बन्धी शब्दभाग के स्वर को वृद्धि करो और म० ए० व० में उसको गुण करो और उ० ए० व० में इच्छानुसार दूसरे सब अन्तों के पहले चाहे परस्मै० हो चाहे आत्म० मूल अपना आद्य स्वरूप रखताहै परन्तु अन्त सुस्वरतासम्बन्धी और के सूत्रों के अनुसार लगाएजाते हैं।

टीका

* वृद्धि करना णप् के प् से दिखायाजाताहै (२४५ वें सूत्र का यंत्र देखो)

३६५ वां सूत्र

जैसे पहले गणवाले बुध् से ए० व० परस्मै० का अपूर्णपद बुबोध् होता है और रूपों का बुबुध् उ० बुबोध् + अ = बुबोध म० बुबोध् + इथ = बुबोधिथ अ० बुबोध् + अ = बुबोध द्वि० व० उ० बुबुध् + इव = बुबुधिव म० बुबुध् ...

बुबुधुः इत्यादि आत्म० उ० बुबुध् + ए = बुबुधे इत्यादि

ऐसे ही दूसरे गणवाले विद् (जान) से दो अपूर्णपद होते हैं विवेद् और विवि द् उ० अ० विवेद द्वि० व० उ० विविदिव व० व० उ० विविदिम इत्यादि

पच् (पका) से दो अपूर्णपद बनते हैं पपाच् और पपच् जैसे उ० पपाच वा प पच अ० पपाच इत्यादि

३६६ वां सूत्र

फिर कृ (कर) से (६८२ वां सूत्र देखो) परस्मै० उ० और अ० ए० व० का अपूर्णपद होताहै चकार् (२५२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) म० ए० व० का चकर् सो इच्छानुसार उ० ए० व० का भी होताहै और शेष रूप का चकृ होताहै जैसे उ० चकार् + अ = चकार वा चकर म० चकर् + थ = चकर्थ अ० चकार् + अ = चकार द्वि० उ० चकृ + व = चकृव (३६९ वां सूत्र देखो) म० चकृ + अथुः = ३४ वें सूत्र से चक्रथुः आत्म० उ० चकृ + ए = चक्रे ब० व० म० चकृ + ढ्वे = चकृढ्वे (६८२ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

देखो जो मूल ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताए हैं सो म० ए० व० में गु ण नहीं चाहते जैसे विज् से उ० अ० विवेज परन्तु म० विविजिथ ऐसे ही कु वा कू (पुकार) से उ० चुकाव वा चुकव म० चुकुविथ

३६७ वां सूत्र

३६४ वें सूत्र की १ ली शाखा में देखा है कि जो मूल अन्त में अकेला व्य ञ्जन रखता है और आदि में कोई स्वर तो वह स्वर दुहरायाजाता है और वे दो एक से स्वर मिलके ३१ वें सूत्र से एक दीर्घ स्वर बनजाते हैं परन्तु जब पहले इ वा उ को ए० व० परस्मै० में गुण होता है तब वह दुहरायाहुआ इ ए के पहले इय् होजाता है और वह दुहरायाहुआ उ ओ के पहले उव् होजाता है ऐसे इष् (चा ह) से दो अपूर्णपद होते हैं इयेष् और ईष् जैसे उ० अ० इयेष द्वि० व० उ० ई-

पिवे (१६७ वां सूत्र देखो) और उख् (चल) से उवोख् और ऊख् जैसे उ० अ० उवोख द्वि० व० उ० ऊखिव

१ ली शाखा

ऐसे ही मूल इ (जा) में होता है इसका दुहरायाहुआ शब्दभाग ए० व० के वृद्धि और गुण के पहले इय् होता है और शेष रूपों में इय् (३७५ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) सो दुहराने से इय् होजाता है जैसे उ० अ० इयाय म० इयथिथ वा इयेथ द्वि० व० उ० ईयिव परन्तु जब उपसर्ग अधि पहले आताहै तब पूर्णभूत ऐसा बनता है जैसा गा से बनता है केवल आत्म० (जैसे ए० व० द्वि० व० ब० व० अ० अधिजगे अधिजगाते अधिजगिरे)

२ री शाखा

और जो मूल आदि में अ रखता है और अन्त में कोई दुहरा व्यञ्जन अथवा आदि में ऋ रखता है और अन्त में कोई इकहरा व्यञ्जन तो दुहरायाहुआ शब्दभाग आन् होताहै ऐसे अर्च् (पूज) से अपूर्णपद आनर्च् होताहै जैसे उ० अ० आनर्च ऋध् (वृद्धिपा) से आनर्ध् जैसे उ० अ० आनर्ध द्वि० व० उ० आनृधिव इत्यादि

३ री शाखा

अश् आत्म० (छा फैला) अन्त में इकहरा व्यञ्जन श् रखता है तो भी पिछले सूत्र का अनुगामी है जैसे उ० अ० आनशे

३६८ वां सूत्र

देखो पूर्णभूत में उ० और अ० ए० व० परस्मै० और आत्म० एकसा अन्त रखते हैं और बहुधा स्वरूप भी एकसा रखते हैं तो भी जब दोनों में पिछला स्वर वृद्धि चाहताहै तब पहले में इच्छानुसार गुण होताहै और जब पिछला अ दीर्घ हो जाताहै तब वृह अ पहले में इच्छानुसार पलटा नहीं जाता जैसे कृ [कर] उ० ए० व० में चकार वा चकर होसकताहै और पच् (पका) उ० ए० व० में पपाच वा

प्पथ होसकताहै परन्तु अ० ए० व० में ये केवल थकार और पथ होसकते हैं

३६९ वां सूत्र

३६१ और २४६ वें सूत्र का यंत्र देखने से जानपड़ेगा कि म० ए० व० परस्मै को इच्छानुसार छोड़के इस रूप के सब अन्त आदि में स्वर रखतेहैं सो सब इस चिन्ह से चिन्हित हैं क्योंकि इस भाषा में केवल ये आठ मूल हैं कृ (कर) † ऋ (उठा) सृ (जा) वृ (घेर) श्रु (सुन) स्तु (सराह) द्रु (दौड़) स्रु (बह) सो अवश्य इन अन्तों से इ को अलग करदेते हैं

परन्तु कोई२ मूल इन अन्तों से इ को इच्छानुसार अलग करते हैं (३७१ वें सूत्र में क्षम् देखो)

इथ [म० ए० व० पूर्णभूत परस्मै०] के इ का छोड़ना

३७० वां सूत्र

ऊपरवाले आठ मूल वृ को जब (ढांक) का अर्थ देता है और कृ (कर) को जब उपसर्ग सम् † के साथ आता है छोड़के म० ए० व० परस्मै० से भी इ को अलग करते हैं

टीका

† परन्तु कृ (कर) जो किसी उपसर्ग के पीछे स् बढ़ाताहै जैसे संस्कृ में तो इस इ को नहीं छोड़ता और ३७४ वें सूत्र की ११ वीं शाखा का अनुगामी होता है जैसे म० संचस्करिथ

१ ली शाखा

वरन म० ए०व० परस्मै० ऋ अन्त में रखनेवाले मूलों के पीछे इथ के पलटे थ लगने से वनायाजाता है परन्तु मूल ऋ और वृ और जागृ के पीछे नहीं इनके पीछे केवल इथ लगने से वनता है जैसे आरिथ ववरिथ जागरिथ परन्तु स्मृ को छोड़के (

। सूत्र की २ री शाखा देखो)

२ री शाखा

और मूल स्तृ (शब्दकर) के पीछे इच्छानुसार थ वा इथ लगने से जैसे सस्तर्थ । सस्तरिथ

३ री शाखा

और मूल व्ये को छोड़के जो केवल इथ चाहता है सब आ और ए अन्त में रखनेवाले मूलों से और उन मूलों को छोड़के जो १९२ वें सूत्र में बताये हैं कि भविष्यत इत्यादि में अवश्य इ चाहते हैं सब ऐ ओ इ ई उ अन्त में रखनेवाले मूलों से और ऊ अन्त में रखनेवाले मूल धू (हिला) से इच्छानुसार थ वा इथ पीछे लगने से बनता है जैसे श्रि से केवल शिश्रयिथ और ऐसेही बहुत से ऊ अन्त में रखनेवाले मूलों से

४ थी शाखा

और उन मूलों से भी इच्छानुसार थ वा इथ लगने से बनता है जो २०० वें सूत्र से २१४ वें सूत्र तक बताये हैं और विचला वर्ण अ रखते हैं और भविष्यत इत्यादि में अवश्य वा इच्छानुसार इ को छोड़ते हैं जैसे शक् से शेकिथ वा शशक्थ क्षम् से चक्षमिथ वा चक्षन्थ इत्यादि परन्तु अद् और वस् से नहीं जिन से केवल आदिथ और उवसिथ बनते हैं

५ वीं शाखा

और थ और इथ के साथ उन मूलों में बहुत से मूलों से इच्छानुसार बनते हैं जो २१५ वें सूत्र में बताए हैं कि भविष्यत इत्यादि में इच्छानुसार इ चाहते हैं

६ ठी शाखा

परन्तु दूसरे सब मूलों से जो अवश्य इ चाहतेहैं और उन मूलों में भी बहुतसे मूलों में जो विचला अ नहीं रखते और २०० वें सूत्र से २१२ वें सूत्र तक बताए हैं कि भविष्यत इत्यादि में अवश्य इ को छोड़ते हैं पूर्णभूत का म० ए० केवल इथ लगने से बनते हैं जैसे बुद् से प्रथमभविष्यत म० ए० व० बोधितासि परन्तु पूर्णभूत म० ए० व० बुबो

दिथ द्वि० ब० उ० तुतुदिथ परन्तु इन में से थोड़े थ से भी बनसकतेहैं जैसे सृज् (उत्पन्नकर) से ससर्जिथ वा सस्रष्ठ दृश् (देख) से ददर्शिथ वा दद्रष्ठ ये दोनों मूल मूलसम्बन्धी ऋ को जब थ लगताहै गुण होने के पलटे र् से पलटतेहैं

७ वीं शाखा

मज्ज् (डुबकी ले) और नश् (मिट) जो ३७० वें सूत्र की ४ थी शाखा से लगते हैं थ के पहले अनुनासिक चाहते हैं जैसे ममज्जिथ वा ममंक्थ और नेशिथ वा ननंष्ठ

८ वीं शाखा

तृप् (तृप्तहो) और दृप् (अभिमानीहो) ३७० वें सूत्र की ५ वीं शाखा से लगते हैं सो जब थ लगताहै तब मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहते हैं वा उसका र से पलटना चाहते हैं जैसे ततर्पथ वा तत्रप्थ वा ततर्पिथ

वर्णन

जब थ व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में लगताहै तब २९६ वें सूत्र से ३०६ ठ सूत्र तक संधि के सूत्र काम आते हैं

ऐसे चिन्ह* से चिन्हित परस्मै० और आत्म० पूर्णभूत के द्वि० ब० और शेष अन्तों से कई अवस्थाओं में इ का इच्छानुसार छोड़ना

३७१ वां सूत्र

जो मूल ३१५ वें सूत्र में बताए हैं कि भविष्यत इत्यादि में इ का आना वा छोड़ना इच्छानुसार चाहते हैं सो ३६३ वें सूत्र के पत्र में ऐसे * चिन्ह से चिन्हित पूर्णभूत के द्वि० ब० और शेष अन्तों से भी उसको इच्छानुसार छोड़सकते हैं जैसे क्षम् से चक्षमिव वा चक्षण्व चक्षंसे वा चक्षमिषे चक्षमिवहे वा चक्षण्वहे परन्तु इ

खनेवाले रूप बहुत आते हैं और दूसरे सब मूल और वे मूल भी जो ३६९ वें सूत्र में बताएहुए आठ मूलों को छोड़के भविष्यत इत्यादि में इ को अवश्य छोड़ते हैं ऐसे चिन्ह * से चिन्हित पूर्णभूत को छोड़के व० और शेष अन्नों में इ का आना अवश्य चाहते हैं

वर्णन

देखो वेद को छोड़के आत्म० व०, ब० अ० से पिह इ कभी नहीं छोड़ाजाता

आत्म० पूर्णभूत व० व० म० के अन्त ध्वे के पलटे ढ्वे का लाना

३७२ वां सूत्र

३६९ वें सूत्र में जो आठ मूल बताए हैं और ३७१ वें सूत्र में जो मूल बताए सो भी कई अवस्थाओं में ध्वे के पलटे ढ्वे चाहते हैं परन्तु तब सन्धि के विधि के सूत्रों का ध्यान रखना पड़ताहै जैसे बभृढ्वे भृ से

१ ली शाखा

जब कोई अर्द्धस्वर वा ह् पासही पहले आता है तब इध्वे के पलटे इढ्वे इच्छा भी आसकताहै जैसे लुलुविध्वे वा लुलुविढ्वे लू से और चिकिपिध्वे या चिकिपिढ्वे क्षी से

पूर्णभूत को अपूर्णपद बनाने में निषेध

३७३ वां सूत्र

जो मूल अन्त में आ रखते हैं जैसे दा (दे) धा (रख) पा (जा) स्था (खड़ा हो) सो म० ए० व० के थ को छोड़के सब अन्नों के पलटे आ को गिरा देते और परस्मै० उ० और अ० ए० व० के अन्नों के पलटे औ ग्रहण करते हैं इस

लिए दा से अपूर्णपद दद् होताहै जैसे उ० अ० ददौ म० ददिथ वा ददाथ द्वि० व० उ० ददिव आत्म० उ० अ० ददे म० ददिषे इत्यादि (६६३ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

दरिद्रा (दरिद्री हो) से उ० अ० ददरिद्रौ द्वि० व० अ० ददरिद्रतुः ब० व० अ० ददरिद्रुः अथवा अधिक शुद्धता से पूर्णभूत का बढ़ाहुआ रूप लेताहै (३८५ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

ज्या (जीर्ण हो) से दुहरायाहुआ अपूर्णपद जिज्या होताहै जैसे उ० अ० जिज्यौ म० जिज्याथ वा जिज्यिथ द्वि० व० उ० जिज्यिव ऐसे ही थोड़े काम में आनेवाले मूल ज्यो आत्म० [सिखा] से उ० अ० जिज्ये

३ री शाखा

मि (फेंक) मी (बिगाड़ नष्टकर) ए० व० में ऐसे आते हैं जैसे अन्त में आ रखते हों और ९ वें गण का ली (पा) भी इच्छानुसार ऐसा आसकताहै जैसे ए० व० उ० ममौ म० ममाथ वा ममिथ अ० ममौ द्वि० व० उ० मिम्यिव परन्तु ली से उ० ललौ वा लिलाय म० ललाथ वा ललिथ वा लिलेथ वा लिलयिथ द्वि० व० उ० लिल्यिव

४ थी शाखा

ह्वे दे व्ये वे इत्यादि को (इसी सूत्र की ५ वीं और ६ ठी शाखा देखो) छोड़के ए ऐ वा ओ अन्त में रखनेवाले बहुत से मूल ३७३ वें सूत्र के अनुगामी हैं इनका पूर्णभूत ऐसा बनता है मानो अन्त में आ रखते हों जैसे पहले गणवाले धे (पी) से उ० और अ० ए० व० दधौ म० दधिथ वा दधाथ द्वि० व० उ० दधिव १ ले गणवाले गै (गा) से उ० अ० जगौ म० जगिथ वा जगाथ १ ले गणवाले म्लै (कुम्हला) से उ० अ० मम्लौ ४ थे गणवाले शो (पैना) से उ० अ० शशौ

५ वीं शाखा

परन्तु ह्वे (बुला) से अपूर्णपद ऐसा बनता है जैसा हू से (५९५ वां सूत्र देखो) जैसे उ० अ० जुहाव इत्यादि

६ ठी शाखा

दे आत्म० (दयाकर बचा) से अपूर्णपद दिगि बनता है जैसे उ० अ० दिग्ये म० दिग्यिषे इत्यादि

७ वीं शाखा

व्ये (ढांक) से विव्याय् विव्यय् और विव्य् उ० अ० विव्याय म० विव्ययिथ द्वि० व० उ० विव्यायिव वा विव्यिव इत्यादि

८ वीं शाखा

वे (बुन) से अपूर्णपद ऐसे होते हैं जैसे वा या वव् वा वय् से होते हैं जैसे उ० अ० ववौ वा उवाय म० वविथ वा ववाथ वा उवयिथ द्वि० उ० वविव वा ऊ-यिव वा ऊयिव इत्यादि आत्म० उ० अ० ववे वा ऊवे वा ऊये इत्यादि

९ वीं शाखा

प्यै आत्म० (मोटा हो) से यथाविधि पप्ये पप्यिषे इत्यादि होते हैं परन्तु मूल प्याय् पिहीं अर्थ देता है और प्यै सा आताहै जैसे पिप्ये पिप्यिषे इत्यादि

३७४ वां सूत्र

जो मूल अन्त में इ वा ई रखता है तो पिछ स्वर परस्मै० द्वि० व० व० व० में और आत्म० ए० व० द्वि० व० व० व० में अन्त के पहले इ से मिलता नहीं परन्तु ११ वें सूत्र के विरुद्ध य् से पलटजाता है जैसे ५ वें गणवाले चि (जोड़) से अपूर्णपद चिचि चिचे और चिचि होते हैं सो चिचाय् चिचय् और चिच्य् होजाते हैं जैसे उ० अ० चिचाय म० चिचयिथ वा चिचेथ द्वि० व० उ० चिच्यिव म० (१२ वें सूत्र से) चिच्यथुः आत्म० उ० अ० चिच्ये (५८) वें सूत्र का यंत्र देखो)

वर्णन

देखो चि से चिचाय के पलटे चिकाय और चिच्ये के पलटे चिक्ये भी आते हैं

१ ली शाखा

ऐसेही नी (मार्ग दिखा) से उ० अ० निनाय द्वि० व० उ० निन्यिव आत्म उ० निन्ये इत्यादि और ली से द्वि० व० उ० लिल्यिव आत्म० उ० लिल्ये

२ री शाखा

जि (जीत) से अपूर्णपद जिगि होता है जैसा गि से होता है जैसे उ० अ जिगाय द्वि० व० उ० जिग्यिव इत्यादि (५९० वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

हि (जा भेज) से जिघि होता है जैसा घि से होता है जैसे उ० अ० जिघाय

४ थी शाखा

दी आत्म० (डूब बिगड़) से सब रूपों में दिदीय् होता है जैसे उ० अ० दिदीये म० दिदीयिषे इत्यादि

५ वीं शाखा

परन्तु जो मूल अन्त में इ वा ई रखते हैं और पहला कोई दुहरा व्यञ्जन रखते हैं सो परस्मै० ए० व० के अन्तों को छोड़के सब अन्तों के पहले इ वा ई को इय् से पलटते हैं इसलिए १ ले गणवाले श्रि (आश्रयले) से तीन अपूर्णपद बनते हैं शिश्रे शिश्रै और शिश्रिय् जैसे उ० अ० शिश्राय म० शिश्रयिथ द्वि० व० उ० शिश्रियिव इत्यादि ऐसे ही ९ वें गणवाले क्री (मोल ले) से उ० अ० चिकाय म० चिकेयिथ वा चिकेथ द्वि० व० उ० चिक्रियिव इत्यादि (६८९ वां सूत्र देखो)

६ ठी शाखा

श्वि (सूज फूल) से ३०३ वें सूत्र की ५ वीं शाखावाले ह्वे के सदृश ऐसा अपूर्णपद होता है जैसा शु से परन्तु इच्छानुसार जैसे उ० अ० शिश्वाय वा शुशाव म० शिश्वेथ वा शिश्वयिथ वा शुशोथ वा शुशविथ

७ वीं शाखा

और जो मूल अन्त में उ वा ऊ रखते हैं सो परस्मै० ... ब० और ब० ब० के अन्तों के पहले और आत्म० के सब अन्तों के पहले उ वा ऊ को उव् करदेते हैं परन्तु श्रु स्नु द्रु स्रु २४६ वें सूत्र में जो पुरुष * से चिन्हित हैं उनमें और भू (हो) में नहीं करते (इसी सूत्र की ९ वीं शाखा देखो) जैसे धू (हिला) से अपूर्ण पद दुधौ दुधो और दुधुव् होते हैं जैसे उ० अ० दुधाव म० दुधविथ वा दुधोथ द्वि० व० उ० दुधुविव आत्म० उ० अ० दुधुवे ऐसे ही उ आत्म० (शब्दकर) से उ० अ० ऊवे म० ऊविषे ...

८ वीं शाखा

परन्तु श्रु से होते हैं उ० अ० शुश्राव म० शुश्रोथ द्वि० व० उ० शुश्रुव म० शुश्रुवथुः आत्म० उ० अ० शुश्रुवे और ऐसेही स्नु द्रु और स्रु से

९ वीं शाखा

भू (हो) सूत्र विरुद्ध है इसका अपूर्णपद सब रूपों में होता है बभूव् (५८५ और ५८६ वां सूत्र देखो) ऐसेही सू (उत्पन्न कर) से वेद में होता है ससूव

१० वीं शाखा

ऊर्णु (ढांक) शुद्धता से पूर्णभूत का बढ़ाहुआ रूप चाहता है (३८५ वां सूत्र देखो) तो भी दुहरायाजाने से ऊर्णुनु होजाता है और म० ए० व० में गुण को छोड़सकता है जैसे ऊर्णुनविथ वा ऊर्णुनुविथ अ० ए० व० ऊर्णुनाव द्वि० व० उ० ऊर्णुनुविव अ० ऊर्णुनुवतुः ब० व० अ० ऊर्णुनुवुः

११ वीं शाखा

जो मूल अन्त में ऋ रखतेहैं और उसके पहले कोई दुहरा व्यञ्जन हो और बहुत से दीर्घ ॠ अन्त में रखनेवाले मूल इस स्वर को रखने और ३६२ वें सूत्र की ३ वीं शाखा के अनुसार र् से पलटने के पलटे म० ए० व० में गुण करके अर् करदेते हैं और उ० और अ० ए० व० को छोड़के सब रूपों में और उ० में भी ३६८ वें सूत्र

से इच्छानुसार गुण होसकता है जैसे स्मृ (स्मर्ण कर) से उ० सस्मार वा सस्मर म० सस्मर्थ अ० स्मार द्वि० व० उ० सस्मरिव इत्यादि आत्म० उ० अ० सस्मरे

१२वीं शाखा

परन्तु धृ (थाम) से पहले दुहरा व्यञ्जन नहीं रखना इसलिये यथाविधि होते हैं उ० ए० व० द्वि० व० ब० व० दधार दधृव दधृम

१३वीं शाखा

पॄ (भर) शॄ (सता) और दॄ (फाड़) इच्छानुसार ऋ को रखसकते हैं सो होसकता है जैसे द्वि० व० पपरिव वा पप्रिव

१४वीं शाखा

ऋ (जा) वृद्धि चाहता है इसका अपूर्णपद सब पुरुषों में आर् होता है जैसे उ० अ० आर म० आरिथ द्वि० व० उ० आरिव

१५वीं शाखा

मृ आत्म० (मर) शुद्धता से आत्म० है परन्तु पूर्णभूत में परस्मै० होसकता है जैसे उ० अ० ममार म० ममर्थ

१६वीं शाखा

जागृ (जाग) शुद्धता से पूर्णभूत का बढ़ाहुआ रूप लेता है जैसे (जागराञ्चकार ३८५ वां सूत्र देखो) तोभी दुहरायाहुआ रूप लेसकता है और इच्छानुसार दुहराएहुए शब्दभाग को छोड़सकता है जैसे उ० अ० जजागार वा जागार म० जजागरिथ वा जागरिथ (३७० वें सूत्र की १ली शाखा देखो)

१७वीं शाखा

गृ (निगल) इच्छानुसार र् को ल् से पलटसकता है जैसे जगार वा जगाल

१८वीं शाखा

गृ (पाग्ला) ३७५ वें सूत्र की १ली शाखा का अनुगामी है ऐसा जैसा गॄ

होवे जैसे उ० अ० ततार म० तेरिथ द्वि० ब० उ०

११ वीं शाखा

तृ (जीर्ण हो) इच्छानुसार ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा का अनुगामी है जैसे अ० जजार म० जजरिथ वा जेरिथ द्वि० ब० अ० जजरतुः वा जेरतुः

३७५ वां सूत्र

अभी ३६४ वें सूत्र में देखा है कि जो मूल आदि में कोई व्यञ्जन रखते हैं और अन्त में कोई इकहरा व्यञ्जन और उनके बीच में ह्रस्व अ सो अ० ए० ब० में इस अ को दीर्घ करते हैं और इच्छानुसार उ० में जैसे पच् (पका) से अपूर्ण पद पपाच् और त्यज् (छोड़) से तत्याज् जैसे उ० अ० तत्याज म० तत्यजिथ वा तत्यक्थ द्वि० ब० उ० तत्यजिव इत्यादि ।

१ ली शाखा

यान इस के पहले और द्वि० ब० और ब० ब० परस्मै० में और आत्म० के सब पुरुषों में जो मूल का पहला और पिछला व्यञ्जन इकहरा होताहै और जो मूल आदि में व् नहीं रखता और दुहरावट में कोई पलटे का व्यञ्जन नहीं चाहता तो दुहरावट दबजातीहै और उसके पलटे अ ए होजाताहै जैसे पच् से अपूर्णपद होते हैं पपाच् पपच् और पेच् जैसे उ० पपाच वा पपच म० पेचिथ वा ३११ वें सूत्र से पपक्थ अ० पपाच द्वि० ब० उ० पेचिव आत्म० ए० अ० पेचे इत्यादि ऐसे ही पहले गणवाले लभ् आत्म० (पा) से अपूर्णपद सब पुरुषों में लेभ् होताहै जैसे लेभे लेभिषे लेभे लेभिवहे इत्यादि ऐसे ही नह् (बांध) से उ० ननाह वा ननह म० नेहिथ वा ३०५ वें सूत्र से ननद्ध अ० ननाह द्वि० ब० उ० नेहिव इत्यादि आत्म० नेहे इत्यादि ।

ऐसे ही नश् (नाश हो) से उ० ननाश वा ननश म० नेशिथ वा ननंष्ठ अ० ननाश इत्यादि (६२० वां सूत्र और ३७० वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

टीका

* वोपदेव पेचीव जैसे रूपों को पपचिव से निकालताहै यिह समझके कि दूसरा प् दवजाताहै और दोनों अ मिलके आ होजाते हैं और आ अवल होके ए होजाताहै

२री शाखा

जो मूल दुहरावट में कोई पलटे का व्यञ्जन चाहते हैं सो ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा से वर्जित हैं परन्तु भज् और फल् नहीं हैं (इसी सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) जैसे भण् (बोल) से उ० अ० बभाण द्वि० व० उ० बभणिव

३री शाखा

विच् (बोल) वद् (कह) वप् (बो) वश् (चाह) वस् (रह) वह् (लेजा) आदि में व् रखते हैं सो भी वर्जित हैं ये चाहते हैं कि परस्मै० के ए० व० के अन्तों को छोड़के प्रत्येक अन्त के पहले दुहरायाहुआ शब्दभाग उ होवे अथवा अर्द्ध स्वर का अनुरूप स्वर होवे और मूल का व् उ होजावे तो दोनों मिलके एक दीर्घ ऊ बनजावें जैसे वच् (बोल) से दो अपूर्णपद होते हैं उवाच् और ऊच् जैसे उ० उवाच वा उवच म० उवचिथ वा उवक्थ अ० उवाच द्वि० व० अ० ऊचतुः व० व० अ० ऊचुः

वर्णन

देखो यिह पलटना अर्द्धस्वर का अपने अनुरूप स्वर से सम्प्रसारण कहलाताहै (पा० १, १, ४५)

४ थी शाखा

वह् (लेजा) का मूलसम्बन्धी स्वर थ के पहले ओ होजाताहै (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और इथ के पहले इच्छानुसार जैसे उ० अ० उवाह म० उवहिथ वा उवोढ (२२४ वां सूत्र देखो)

वर्णन

देखो वम् (वमनकर) ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा से वर्जित है जैसे अ० व-वाम ववमतुः ववमुः (पा० ६, ४,१२६) वोपदेव की मति के अनुसार यिह ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा का भी अनुगामी होता है जैसे अ० ववाम वेमतुः वेमुः

५ वीं शाखा

यज् (यज्ञकर) ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा से वर्जित है और ३७५ वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार आता है जैसे उ० अ० इयाज द्वि० व० अ० ईजतुः ब० व० अ० ईजुः म० ए० व० होता है इयजिथ वा ३९७ वें सूत्र से इयष्ट आत्म० उ० अ० ईजे म० ईजिषे (५९७ वां सूत्र देखो) येज् अवल रूपों में इच्छानुसार आसकताहै और म० ए० व० में भी इच्छानुसार आसकताहै विशेष करके वेद में

६ ठी शाखा

शस् (सना) और दद् आत्म० (दे) ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा से वर्जित हैं जैसे शशास शशसिव ददिवहे

७ वीं शाखा

भज् (आदर कर) श्रथ् (खोल) त्रप् (लजा) फल् (फल दे) शुद्धता से वर्जित हैं तो भी ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अवश्य अनुगामी होते हैं जैसे भेजिव भेजिव इत्यादि ये आगे लिखेहुए मूल इच्छानुसार ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुगामी होते हैं फण् (जा) स्वन् (शब्दकर) किसी की मति के अनुसार) स्तन् (शब्दकर) भ्रम् (घूम) वम् (वमनकर) और किसी की मति के अनुसार) स्तम् और स्यम् (शब्दकर) त्रस् (कांप) जैसे पफणिथ वा फेणिथ पफणिव वा फेणिव इत्यादि

८ वीं शाखा

ये नीचे लिखेहुए मूल भी इच्छानुसार ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुगामी हैं ग्रन्थ् (बांध) श्रन्थ् (खोल) दम्भ् (धोका दे) जब ये ऐसे होते हैं तब

इनके अनुनासिक गिरजाते हैं जैसे जग्रन्थिथ वा ग्रेथिथ जग्रन्थुः वा ग्रेथुः

९वीं शाखा

इन नीचे लिखेहुए मूलों का मूलसम्बन्धी स्वर दीर्घ है तो भी इच्छानुसार ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुगामी हैं राज् भ्राज् आत्म० भाश् और भ्राश् सबका अर्थ है (चमक) जैसे रराजिथ वा रेजिथ इत्यादि

१०वीं शाखा

राध् जब सता का अर्थ देता है तब अवश्य ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा का अनुगामी होता है जैसे म० रेधिथ द्वि० व० उ० रेधिव अ० रेधतुः ब०व० अ० रेधुः

११वीं शाखा

तॄ (पार हो) ३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा का अनुगामी होता है और जॄ (जीर्ण हो) भी होसकता है (३७४ वें सूत्र की १८ वीं और १९वीं शाखा देखो)

३७६ वां सूत्र

गम् (जा) जन् (उत्पन्न हो) खन् (खोद) हन् (मार) इस पिछले का पूर्णभूत ऐसा बनता है जैसा घन् का) इन सबका बिचला अ परस्मै० के ए० व० वाले अन्तों को छोड़के सब अन्तों के पहले गिरजाता है (१४८ वें सूत्र में राजन् की वर्तनी देखो) इसलिए गम् ए० व० द्वि० व० ब० व० प्र० अ० में होता है जगाम जग्मतुः जग्मुः जन् होता है जजान जज्ञतुः जज्ञुः खन् होता है चखान चख्नतुः चख्नुः और हन् होता है उ० अ० जघान जघ्नतुः जघ्नुः म० जघनिथ वा जघन्थ

३७७ वां सूत्र

घस् (खा) सूत्रविरुद्ध है इससे होता है जघास जक्षतुः जक्षुः द्वि०व० उ० जक्षिव (४४ वां और ७० वां सूत्र देखो) और वेद में थोड़े और मूल भी इसी अनुमान पर आते हैं जैसे पत् (गिर) से पप्तिव इत्यादि तन् (फैला) से तत्निषे इत्यादि भस् (खा) से बप्सिव इत्यादि

३७८ वां सूत्र

सञ्ज् (चिपके) स्वञ्ज् (मिले) और दंश् (काटे) का अनुनासिक परस्मै॰ के द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ में और आत्म॰ के सब वचनों में इच्छानुसार गिरजा ताहै जैसे ससजिव वा ससञ्जिव सस्वजे वा सस्वञ्जे

३७९ वां सूत्र

रध् (मर) और जभ् आत्म॰ (जम्हाई ले) स्वरसम्बन्धी अन्तों के पहले एक अनुनासिक चाहसकते हैं जैसे ररन्ध ररन्धिथ वा ररद्ध द्वि॰ व॰ उ॰ ररन्धिव वा रेध्व (३७१ वां सूत्र देखो) उ॰ अ॰ जजम्भे

३८० वां सूत्र

मृज् (स्वच्छकर) से परस्मै॰ ए॰ व॰ में ममार्ज और शेष अन्तों के पहले भी ऐसा ही होताहै जैसे उ॰ अ॰ ममार्ज म॰ ममार्जिथ वा ममार्ष्ठ द्वि॰ व॰ उ॰ ममार्जिव वा ममृजिव वा ममृज्व (६५१ वां सूत्र देखो)

३८१ वां सूत्र

प्रछ् (पूछ) से पप्रछ् १ सो स्वर के पहले ५१ वें सूत्र से सब रूपों में पप्रच्छ् हो जाताहै (६३१ वां सूत्र देखो) ६ ठे गणवाले भ्रज्ज् (तल) से बभर्ज् वा बभ्रज्ज् सब रूपों में (६३२ वां सूत्र देखो)

टीका

१ यिह सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार है (१३४ वां सूत्र देखो) कोई२ व्याकरणी इसका अपूर्णपद द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ इत्यादि में पपृच्छ् बनाते हैं

१ ली शाखा

ऋछ् (जा) अपने मूलसम्बन्धी स्वर को सब वचनों में गुण चाहताहै जैसे उ॰ अ॰ आनर्छ म॰ आनर्छिथ द्वि॰ व॰ उ॰ आनर्छिव

३८२ वां सूत्र

स्वप् (सो) से अपूर्णपद होते हैं सुष्वाप् और सुषुप् (६५५ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

ष्ठिव् वा ष्ठीव् (थूक) दुहरावट में ट् के पलटे त् आसकता है जैसे उ० अ० टि-ष्ठेव वा तिष्ठेव-टिष्ठीव वा तिष्ठीव

६८३ वां सूत्र

व्यध् (चुभ) व्यच् (घेर धोकादे) व्यथ् आत्म० (दुखित हो) का दुहराया-हुआ शब्दभाग वि होता है और पहले दो मूलों का व्य सो परस्मै० ए० व० को छोड़के सब अन्तों के पहले वि होजाता है जैसे व्यध् से ए० व० द्वि० व० व० व० अ० विव्याध विविधतुः विविधुः आत्म० विविधे इत्यादि व्यच् से विव्याच विवि-तुः विविचुः व्यथ् से विव्यथे विव्यथाते विव्यथिरे (६१५ वां और ६२९ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

१ ले गणवाले द्युत् आत्म० (चमक) से दुहराया हुआ शब्दभाग होता है दि जैसे उ० अ० दिद्युते

३८४ वां सूत्र

९ वें गणवाले ग्रह् (ले) से अपूर्णपद होते हैं जग्राह् और जगृह् ए० व० द्वि० व० व० व० अ० जग्राह जगृहतुः जगृहुः परन्तु ए० व० म० होता है जग्रहिथ (६९९ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

गुह् (छिपा) का विचला स्वर परस्मै० ए० व० में गुण चाहने के पलटे दीर्घ होजाता है जैसे जुगूह जुगूहिथ इत्यादि

२ री शाखा

अह् (कह) केवल पूर्णभूत में आता है यिह ए० व० द्वि० व० व० म० उ० में और व० व० म० में नहीं आता इसका म० ए० व० अत् से बनता है जैसे म० आत्थ अ० आह द्वि० व० म० आहथुः अ० आहतुः ब० व० अ० आहुः

३ री शाखा

भू (कह) अपना पूर्णभूत नहीं रखता परन्तु वच् का लेता है (३७५ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) अथवा अह् के ऊपर बनाएहुए रूप लेता है फिर अव् (खा) अपना पूर्णभूत रखता है परन्तु उसके पलटे घस् का लेसकताहै (३७७ वां सूत्र देखो) ऐसेही अज् (हांक) वी का लेसकताहै

वढ़ाहुआ पूर्णभूत

३८५ वां सूत्र

सर आ को छोड़के जैसा आप् (पा) में (३६४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और आञ्छ् (फैला) में जो मूल आदि में ऐसा कोई स्वर रखता है जो अपने स्वभाव वा स्थान से दीर्घ होता है और जो मूल आदि में दो व्यञ्जन के पहले अ रखते हैं (३६७ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) और ऊर्णु (ढांक) (१७४ वें सूत्र की १० वीं शाखा देखो) और इच्छानुसार जागृ [जाग] ३७४ वें सूत्र की १६ वीं शाखा देखो) और दरिद्रा (दरिद्री हो) (३०३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) को छोड़के जो मूल एक से अधिक शब्दभाग रखते हैं उन सब के पूर्णभूत मूल वा अपूर्णपदमें आम् बढ़ने से बनते हैं और उनके पिछले स्वर को जो इ उ वा ऋ होता है ह्रस्व चाहे दीर्घ तो बहुधा गुण होता है और सहायक क्रिया अस् (हो) भू (हो) कृ (कर) में से किसी का पूर्णभूत उनके साथ पीछे आता है

१ ली शाखा

यिह आम् क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद से बनाहुआ स्त्री० संक्षिप्त नाम २ वि० का कर्मकारकवाहै पिछ् चकार के साथ ५९ वें सूत्र से आञ्चकार वा आंचकार होताहै जैसे ईश् (आज्ञाकर) से उ० अ० ए० व० ईशाञ्चकार वा ईशाम्बभूव वा ईशामास इस पिछले का अर्थ है (इसने आज्ञा करनेवाला किया) और पहले दो का (हुए आज्ञाकरनेवाला हुआ) ऐसेही चकास् (चमक) से चकासाञ्चकार (उसने चमकनेवाला किया)

अपूर्णपद आम् समेत कभी २ सहायक किया से अलग होसकता है जैसे त
पातयां प्रथमम् आस (पहले उसने उसको गिरनेवाला किया) [रघुवंश ९, ६१]
और प्रभ्रंशयां यो नघुषं चकार (रघुवंश १३, ३६)

२री शाखा

जब आत्म० वाली वर्तनी आती है तब केवल कृ आता है जैसे ईड् आत्म०
(सराहना) से उ० अ० पु० वि० ईडांचक्रे (उसने उसको सराहनेवाला किया सराहा
था किया)

३री शाखा

(८१०) वें गणवाले मूलों का भी पूर्णभूत इसी रीति से बनता है शब्दभाग आम्
अपूर्णपद के पिछले आ से मिलजाता है जैसे १०वें गण चुर् (चुरा) से चोर
यामास (मैंने वा उसने चुराया है)

४थी शाखा

सब प्रेरणार्थक इच्छार्थक और अधिकतार्थक जैसी निमूल क्रियाओं का भी (
४९० वां ५०४ था ५१३ वां और ५१६ वां सूत्र देखो)

५वीं शाखा

मूल अय् (जा) दय् आत्म० [दयाकर] आस् आत्म० (बैठ) कास् (खां
स चमक) का भी जैसे कासाञ्चक्रे इत्यादि (पा० ३. १. ३७. ३५)

और इच्छानुसार भी ३ रा गण (डर) का बिभाय वा बिभयाञ्चकार ह्री ३ रा
गण (लजा) का जिह्राय वा जिह्रयाञ्चकार भृ ३ रा गण (उठा) का बभार वा
बिभराञ्चकार हु ३ रा गण (हवनकर) का जुहाव वा जुहवाञ्चकार विद् २ रा गण
(जान) का विवेद वा विदाञ्चकार और उष् १ ला गण (जला) का उवोष वा
ओषाञ्चकार

६ ठी शाखा

कप् आत्म० गुप् धूप् विछ् पण् पन् जिनके वर्तमानसम्बन्धी रूप की मुख्यता २७१ वें सूत्र में बताई है और कम् आत्म० (दीपलगा) इच्छानुसार एक बढ़ाहुआ पूर्ण-भूत लेसकते हैं जो मूल से नहीं निकलता परन्तु वर्तमानसम्बन्धी अपूर्णपद से निकलताहै जैसे चकमे या कामयाञ्चके जुगोप या गोपायाञ्चकार दुधूप या धूपायाञ्चकार विविछ या विछायाञ्चकार पेणे या पणायाञ्चकार (वोपदेव की मति के अनुसार पणायाञ्चके) पेने या पनायाञ्चकार आनर्त या कर्तायाञ्चके

७ वीं शाखा

देखो इ उ वा ऋ ह्रस्व वा दीर्घ अन्त में रखनेवाले अपूर्णपद बहुधा आम् के पहले गुण चाहते हैं परन्तु दीधी (चमक) और वेवी (जा) से होते हैं दीध्याञ्चके वेव्याञ्चके इत्यादि

३८६ वां सूत्र

प्रथम और द्वितीय भविष्यत

प्रथम भविष्यत के अन्त २४६ वें सूत्र से फिर बताएजाते हैं

यंत्र

परस्मैपद			आत्मनेपद		
तास्मि	तास्वः	तास्मः	ताहे	तास्वहे	तास्महे
तासि	तास्थः	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
ता	तारौ	तारः	ता	तारौ	तारः

द्वितीय भविष्यत के अन्त २४६ वें सूत्र से फिर बताएजाते हैं

यंत्र

परस्मैपद			आत्मनेपद		
स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे
स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते

वर्णन

देखो प्रथम भविष्यत सहायकक्रिया अस्‌ (हो) के वर्तमान के साथ कर्तृवाचक नाम की जो प्रत्यय तृ के लगने से बनता है (८३ वां सूत्र देखो) १ वि॰ के पहले मिलने से बनताहै जैसे दातृ (देनेवाला) की (जिसकी वर्तनी १२७ वें सूत्र में की गई है) १ वि॰ को अस्मि और हे के साथ मिलाने से बनतेहैं दातास्मि और दाताहे (मैं देनेवाला हूं अर्थात्‌ मैं दूंगा) सो प्रथमभविष्यत का उ॰ ए॰ व॰ परस्मै॰ और आत्म॰ है ऐसे ही दातासि और दातासे (तू देनेवाला है अर्थात्‌ तू देगा) उ॰ पु॰ द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ में इस नाम का ए॰ व॰ इस सहायक क्रिया के द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ के साथ मिलायाजाता है अ॰ में सहायक क्रिया छोड़ दीजाती है और तब प्रथमभविष्यत के ए॰ व॰ द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ अ॰ दोनों वाच्य में कर्तृवाचक नाम की १ वि॰ के ए॰ व॰ द्वि॰ व॰ और ब॰ व॰ के सदृश होते हैं जैसे दाता [देनेवाला वा वृह देगा] दातारौ [वे दो देनेवाले वा वे दो देंगे] इत्यादि

इसलिए यिह रूप कर्मी २ बढ़ाहुआ प्रथम भविष्यत कहलाताहै

३८७ वां सूत्र

द्वितीय भविष्यत के अन्त भी मिलीहुई सहायक क्रिया अस् से निकलेहुए जा पड़ते हैं जैसे मूल या (जा) के य् के साथ कर्मणिवाच्य और ४ थे गणवाली क्रिया बनाने में

३८८ वां सूत्र

पहले ९ गणवाली क्रियाओं में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

जो मूल २८ वें सूत्र से वर्जित हैं और ६ ठे गण के जो कई मूल ३९० वें सूत्र में और ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताएहैं उनको छोड़के मूल के स्वर को दोनों प्रथम भविष्यत और द्वितीय भविष्यत के सब पुरुषों में गुण करो और जो मूल ४०० वें सूत्र से ४१४ वें सूत्र तक बताएहैं उनको छोड़के सब व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में और थोड़े स्वर अन्त में रखनेवाले ३९२ वें सूत्र में बताएहुए मूलों में ऐसे गुण किएहुए मूल और अन्तों के बीच में इ बढ़ाओ

३८९ वां सूत्र

जैसे मूल जि १ ला गण (जीत) से अपूर्णपद होताहै जे जैसे प्रथम भविष्यत जे + तास्मि = जेतास्मि इत्यादि आत्म० जे + ताहे = जेताहे द्वितीय भविष्यत जे + स्यामि = जेष्यामि इत्यादि आत्म० जे + स्ये = ७० वें सूत्र से जेष्ये ऐसे ही श्रु ५ वां गण (सुन) से श्रो जैसे प्रथम भविष्यत श्रो + तास्मि = श्रोतास्मि इत्यादि द्वितीय भविष्यत श्रो + स्यामि = श्रोष्यामि इत्यादि

१ ली शाखा

ऐसे ही बुध् १ ला गण (जान) से बोधि जैसे प्रथम भविष्यत बोधि + तास्मि = बोधितास्मि इत्यादि आत्म० बोधि + ताहे = बोधिताहे द्वितीयभविष्यत बोधि + स्यामि = बोधिष्यामि इत्यादि आत्म० बोधि + स्ये = बोधिष्ये

३९० वां सूत्र

जो ६ ठे गण के मूल अन्त में उ वा ऊ रखते हैं और गुण को रोकते हैं सो ये हैं कु वा कू (पुकार) गु वा गू (मैलाकर) घु वा घू (दृढ़ हो) नु वा नू (सराह) धू (हिला) इनका पिछला ऊ उव् होजाता है जैसे कुवितास्मि इत्यादि कू से परन्तु कुतास्मि इत्यादि कु से गुवितास्मि इत्यादि गू से परन्तु गुतास्मि इत्यादि गु से

१ ली शाखा

६ ठे गण के जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं और गुण नहीं चाहते सो ये हैं कुच् (सुकड़) गुज् (शब्दकर) कुट् (टेढ़ा कर) घुट् (रोक) चुट् वा छुट् (काट) तुट् (झगड़) त्रुट् (तोड़) पुट् (मिल) मुट् वा मुड् वा मृड् (कूट) स्फुट् (फूट) लुठ् (लुढ़क) कुड् (खेल) कुड् वा घुड् (डूब) खुड् चुड् छुड् तुड् पुड् मुड् त्रुड् स्खुड् स्थुड् स्फुड् (ढांक) गुड् (रक्षाकर) घुड् (रोक) जुड् (बांध) तुड् (पीट) पुड् (छोड़) लुड् (चिपक) हुड् (इकट्ठा कर) डिप् (फेंक) गुर् आत्म० (श्रमकर) छुर् (काट) स्फुर् वा स्फुल् (झूम) घुष् (दृढ़ हो जा) कुस् (मा) ये सब क्रिया होके यङ्गत नहीं आते इनमें सातवें गण का विज् (कांप) भी आना चाहिए

२ री शाखा

ऊर्णु (ढांक) का पिछला स्वर गुण चाहता है वा उव् होजाता है जैसे ऊर्णवितास्मि वा ऊर्णुवितास्मि ऊर्णविष्यामि वा ऊर्णुविष्यामि

३ री शाखा

दीधी आत्म० (चमक) वेवी आत्म० (जा) के पिछले स्वर पड़ेहुए इ के पहले गिरजाते हैं जैसे दीधिताहे इत्यादि ऐसे ही दरिद्रा (दरिद्री हो) से जैसे दरिद्रतास्मि इत्यादि वा दरिद्रिष्यामि इत्यादि

४ थी शाखा

ए ऐ वा ओ अन्त में रखनेवाले मूलों के ये वर्ण आ होजाते हैं जैसे ह्वे (बुला) से ह्वातास्मि ह्वास्यामि

५ वीं शाखा

मि (फेंक) मी (मर) और दी आत्मने (बिगड़) के पिछले वर्ण आ होजाते हैं और ली (पा) का पिछला इच्छानुसार आ होता है जैसे मातास्मि मास्यामि इत्यादि दाताहे इत्यादि लेतास्मि वा लातास्मि इत्यादि लेष्यामि वा लास्यामि इत्यादि (३७३ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

६ ठी शाखा

जो मूल ऋ रखते हैं जैसे सृप् (रींग) मृश् (पकड़) स्पृश् (छू) कृष् (खैंच) सो बहुधा अपने स्वर को गुण चाहते हैं परन्तु इच्छानुसार उनको र से पलटसकते हैं जैसे सर्पास्मि वा स्रप्तास्मि इत्यादि स्रप्स्यामि वा सर्प्स्यामि इत्यादि

७ वीं शाखा

इस सूत्र के अनुसार भ्रज्ज् (तल) से भ्रष्टास्मि वा भर्ष्टास्मि इत्यादि भ्रक्ष्यामि वा भर्क्ष्यामि इत्यादि

८ वीं शाखा

जब इ बढ़ता है तब ऐसा नहीं होसकता जैसे तृप् (तृप्त हो) से तर्प्तास्मि वा त्रप्तास्मि परन्तु केवल तर्पितास्मि होता है ऐसेही दृप् (अभिमानी हो) से

९ वीं शाखा

सृज् (छोड़ उत्पन्न कर) और दृश् (देख) का ऋ अवश्य र होजाता है जैसे स्रष्टास्मि स्रक्ष्यामि इत्यादि द्रष्टास्मि द्रक्ष्यामि इत्यादि

१० वीं शाखा

मृज् (मांज मल) अपने स्वर को गुण के पलटे वृद्धि चाहता है जैसे मार्जितास्मि वा मार्ष्टास्मि

११ वीं शाखा

मस्ज् (डूब) और नश् (मर) में जब इ छूटजाता है तब एक अनुनासिक बढ़जाता है जैसे मंक्तास्मि मंक्ष्यामि इत्यादि नंष्टास्मि नंक्ष्यामि इत्यादि परन्तु जब

नहीं छूटता तब नशितास्मि इत्यादि नशिष्यामि इत्यादि होते हैं

१२ वीं शाखा

कम् आत्म० गुप् धुप् विछ् पण् पन् ऋत् जो ३८५ वें सूत्र की ६ ठी शाखा में बताये हैं अपने वर्तनीसम्बन्धी मुख्य स्वरूप भविष्यतों में इच्छानुसार रखसकते हैं जैसे कमिताहे वा कामयिताहे गोप्तास्मि वा गोपितास्मि वा गोपायितास्मि विच्छितास्मि वा विच्छायितास्मि अर्तिताहे वा ऋतीयिताहे इत्यादि

१३ वीं शाखा

गुह् (छिपा) का उ जब इ बढ़ताहै तब दीर्घ होजाताहै (३१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो)

१४ वीं शाखा

अस् (हो) ब्रू और चक्ष् (बोल) अपने भविष्यत नहीं रखते और भू वच् और ख्या के यथाक्रम उनके पलटे लेते हैं अद् [खा] इच्छानुसार घस् का भविष्यत लेसकताहै और अज् (हांक) वी का जैसे अजितास्मि वा वेतास्मि इत्यादि (३८४ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

१५ वीं शाखा

जो सूत्र २९६ वें सूत्र से ३०६ ठे सूत्र तक बताएहैं सो यथार्थ में दोनों भविष्यतों से अवश्य लगते हैं जैसे नह् (बांध) से नत्स्यामि इत्यादि (३०६ ठे सूत्र की २ री शाखा देखो)

वर्णन

देखो ऊपरवाले सूत्र बहुधा अनियतभूत आशीर्वादवाचक (आत्म०) और आशंसार्थ और दोनों भविष्यतों से भी लगते हैं

पिछले पांच रूपों में और इच्छार्थक में इ के बढ़ने और छूटने के सूत्र

३११ वां सूत्र

ये सूत्र अनियतमूल के दूसरे रूप से जो २३५ वें सूत्र में बताया है और आशीर्वादवाचक के परस्मै० से जो २४२ वें सूत्र में बताया है नहीं लगते क्योंकि उन में इ कभी नहीं आसकता

१ ली शाखा

इ का बढ़ना वा आना आगम कहलाताहै और इट् भी कहाजाताहै सो संस्कृत व्याकरण में सामान्य रूपों के अन्तों के पहले बहुतही अवश्यक और कठिन आगम है इस बढ़नेवाले इ का स्पष्ट प्रयोजन यिह है कि यिह गुण वा वृद्धि नहीं चाहता परन्तु कभी२ दीर्घ होके ई होजाताहै और वर्तनीसम्बन्धी स्वर का स्थान लेताहै और व्यञ्जनों की मिलावट को रोकताहै इससे स्पष्ट है कि जो मूल अन्त में स्वर रखते हैं सो शुद्धता के साथ बढ़ाहुआ इ नहीं चाहते परन्तु ऐसे मूलों में बहुधा बुह बढ़ताहै और जो वुह व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में सदा बढ़े तो क्रियाओं के पिछले पांच रूप बनाने में कुछ कठिनता न रहे

परन्तु भाग्य की न्यूनता यिह है कि अनुमान से व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले एकसौ १०० मूल में इसका बढ़ना वर्जित है और मूलसम्बन्धी पिछले व्यञ्जन का अन्तों के पहले त् और स् के साथ मिलना जो सूत्र २९६ वें सूत्र से ३०६ ठे सूत्र तक अभी बताए हैं उनका ज्ञान चाहताहै

अब पहले वे मूल बताते हैं जो अन्त में स्वर रखते हैं दूसरे वे जो अन्त में व्यञ्जन रखते हैं जिनमें इ बढ़ता है उनको व कहते हैं और जिनमें छूटजाताहै उनको छ और जिनमें इच्छानुसार बढ़ता है वा छूटजाताहै उनको छु परन्तु इन मूलों पर चाहे अन्त में स्वर रखते हों चाहे व्यञ्जन ध्यान रखना अवश्य है जिन में इ छूटजाता है इसलिये जो वाक्य छु के तले आवेंगे उनके आदि में आगे लेखा करेंगे

वर्णन

मूलों के आगे आनेवाले सूचीपत्र में अ० ए० व० कसीर दो अर्द्धचन्द्र के बीच में अर्थात् कोष्ठ में आवेगा और मूल बहुधा अपने२ पिछले स्वर और व्यञ्जन के क्रम से आवेंगे

टीका

जो प्रथम भविष्यत में ड छूटजाताहै तो बहुधा अनियतभूत के पहले रूप में और आशीर्वादवाचक के आत्म० में और आशंसार्थ भाववाचक कर्मणिवाच्यम् लघुभक्रिया अवर्तनीयभूतगुणक्रिया तव्य के साथ बनीहुई भविष्यतगुणक्रिया और तृ के साथ बनेहुए कर्तृवाचक नाम में भी छूटजाताहै और सदा नहीं तो बहुधा मूलके इच्छार्थक रूप की बनावट इय् के पलटे स् से निश्चित होती है इसलिये पढ़नेवाला प्रथम भविष्यत को सदा अपना पथदर्शक समझे जैसे जो वुह मूल क्षिप् (फेंक) का प्रथम भविष्यत क्षेप्तास्मि देखेगा तो जानेगा कि इ छूटगया है इसलिए वुह समझेगा कि इस कारण से द्वितीय भाविष्यत क्षेप्स्यामि होताहै और अनियतभूत अक्षैप्तम् आशीर्वादवाचक आत्म० क्षिप्ताय आशंसार्थ अक्षेप्स्यम् भाववाचक क्षेप्तुम् कर्मणिवाच्यभूतगुणक्रिया क्षिप्त अवर्तनीयभूतगुणक्रिया क्षिप्त्वा भविष्यतगुणक्रिया क्षेप्तव्य कर्तृवाचकनाम क्षेप्तृ और इच्छार्थक चिक्षिप्सामि और जो वुह मूल याच् (मांग) का प्रथम भविष्यत याचिता देखेगा वो समझेगा कि इस में इ पड़गयाहै और इसलिये इस के पिछले रूप यथाक्रम ऐसे होंगे याचिष्यामि अयाचिषम् याचिषीय अयाचिष्यम् याचितुम् याचित याचित्वा याचितव्य याचितृ यियाचिषामि

क

स्वर अन्त में रखनेवाले मूल उनको छोड़के

जो ३९१वे सूत्र में बताएहैं इ का बढ़ना चाहते हैं

३९२ वां सूत्र

इ और ई अन्त में रखनेवाले ५ मूल अर्थात् श्वि (आश्रयले श्वयिता श्वयिष्यति) श्वि (फूल सूज) डी (उड़) शी (लेट) स्मि (मुस्करा) केवल इच्छार्थक में)

१ ली शाखा

उ अन्त में रखनेवाले ६ मूल अर्थात् क्षु (छींक) क्ष्णु (पैना) नु (सराह) युु (जोड़) रु (शब्दकर) स्नु (टपक) (यिह पिछला इ का बढ़ना केवल परस्मै० में चाहता है) आत्म० में आताहै सब छोड़ाकनाहै)

वर्णन

नू (सराह) और स्नु (गिरा) अनियतमूल परस्मै० में

२ री शाखा

सृ और धू को जिनका इ इच्छानुसार छूटजाता है और इच्छार्थक को छोड़के (३९५ वां सूत्र और ३९५ वें सूत्र को १ ली शाखा देखो) सब ऊ अन्त में रख-नेवाले मूल जैसे भू (हो) भविता भविष्यति)

३ री शाखा

सब हृस्व ऋ अन्त में रखनेवाले द्वितीय भविष्यत और आशीर्वाद इत्यादि में परन्तु प्रथम भविष्यत में नहीं जैसे कृ (कर) करिष्यति (परन्तु कर्ता में नहीं)

४ थी शाखा

हृस्व ऋ अन्त में रखनेवाले दो मूल अर्थात् ऋ (स्वीकार कर) और जागृ (जाग) भी प्रथम भविष्यत में जैसे (वरिता वरिष्यति जागरिता इत्यादि)

५ वीं शाखा

दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले सब मूल जैसे तृ (पारहो) (तरिता तरिष्यति)

३९३ वां सूत्र

देखो द और सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले इच्छानुसार इस इ का दीर्घ हो ना चाहते हैं परन्तु अनियतभूत परस्मै० और आशीर्वादवाचक आत्म० में नहीं जैसे (वरिता वा वरीता वरिष्यति वा वरीष्यति) तरिता वा तरीता इत्यादि) (६२७ वें सूत्र की टीका देखो) ×

इ

स्वर अन्त में रखनेवाले मूल जिनमें इ छूटजाताहै

३९४ वां सूत्र

– सब आ अन्त में रखनेवाले मूल जैसे दा (दे) दाता दास्यति

१ ली शाखा

– अनुमान से सब इ और ई अन्त में रखनेवाले मूल जैसे जि (जीत) नी (मार्ग दिखा) (जेता जेष्यति) इत्यादि

२ री शाखा

– अनुमान से सब हूस्व उ अन्त में रखनेवाले मूल जैसे श्रु (सुन) श्रोता श्रो ष्यति)

३ री शाखा

– दीर्घ ऊ अन्त में रखनेवाले बहुधा केवल इच्छार्थक में

४ थी शाखा

– द को छोड़के सब हूस्व ऋ अन्त में रखनेवाले केवल प्रथम भविष्यत में जैसे कृ (कर) (कर्ता परन्तु करिष्यति नहीं) ३९२ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

५ वीं शाखा

– ए ऐ वा ओ अन्त में रखनेवाले सब मूल (३९० वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो)

दरिद्रा (दरिद्री हो) इच्छानुसार इच्छार्थक में (दिदरिद्रास् वा

३९७ वां सूत्र

सब दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले इच्छानुसार इच्छार्थक में जैसे तॄ
ति वा तितीर्षति

३९८ वां सूत्र

श्रि, यु, भृ वृ, इच्छानुसार इच्छार्थक में (३९२ वां सूत्र देखो)

ब

व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूल जिनमें इ

३९९ वां सूत्र

यिह एक सामान्य सूत्र है ख् ग् घ् ज् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् फ् ब् भ्
न्त में रखनेवाले सब मूल जैसे लिख् से लेखिता लेखिष्यति इत्यादि वल्
से वलिमता वलिगष्यति

१ ली शाखा

ग्रह् (ले) आशीर्वादवाचक परस्मै० को छोड़के सब पिछले पांच
स बढ़ेहुए इ का दीर्घ होना चाहता है जैसे (ग्रहीता ग्रहीष्यति) [९
त्र देखो) और इच्छार्थक में इस इ का छूटना चाहताहै

छ

व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूल जिनमें इ छूट

वर्णन

– देखो जो सूत्र २९६ वें सूत्र से ३०६ ठे सूत्र तक बनाए हैं सो सब
ओं में लगाने पड़तेहैं जब किसी मूल के पीछे...

दिखाताहै कि यिह मूल जिस गण का युह अंक है केवल उस गण में इ का छूट जा चाहता है और जब कोई अंक दो अर्द्धचन्द्र के बीच में अर्थात् कोष्ठ में लिखाजाताहै तब वुह सूत्र बताता है जिसके अनुसार वुह मूल वर्तनी कियाजाता है

४०० वां सूत्र

– क् अन्त में रखनेवाला १ अर्थात् शक् ५ वां गण (शक्तिवान हो) शक्ता शक्ष्यति) ६७९ वां सूत्र)

४०१ला सूत्र

– च् अन्त में रखनेवाले ६ अर्थात् पच् (पका) पक्ता पक्ष्यति) वच् (बोल) (६५० वां सूत्र) रिच् ७ वां गण (रीताकर) रेक्ता रेक्ष्यति) विच् ७ वां गण ३ रा म० (अलगा) सिच् (छिड़क) मुच् (खोल) ६२८ वां सूत्र)

४०२ रा सूत्र

– छ् अन्त में रखनेवाला १ अर्थात् प्रछ् * (पूछ) (प्रष्टा प्रक्ष्यति) ६३१ वां सूत्र)

टीका

* प्रछ् इच्छार्थक में इ का बढ़ना चाहता है

४०३ रा सूत्र

– ज् अन्त में रखनेवाले १५ अर्थात् त्यज् (छोड़) ५९६ वां सूत्र) भज् (आदर कर) यज् (पक्षकर) ५९७ वां सूत्र) भञ्ज् † ६ ठा गण (नष्ट) ६१२ वां सूत्र) मज्ज् (डूब) ६११ वां सूत्र) भञ्ज् (तोड़) ६६९ वां सूत्र) रञ्ज् (रंग लग) सञ्ज् (चिपक) ५९० वें सूत्र की १ ली शाखा) सञ्ज् (मिल) निज् (स्वच्छकर) नेक्ता नेक्ष्यति) विज् † ३ रा गण (कांप) वेक्ता इत्यादि) भुज् ६ ठा गण (झुका) ७ वां गण (भोग) ६६८ वें सूत्र की १ ली शाखा) युज् (जोड़) ६३० वां सूत्र) रुज् (तोड़) रोक्ता इत्यादि)

पनमूत परस्मै० में (ये पिछले दोनों सम्पूर्ण आत्म० में इ का बढ़ना चाहते हैं)

टीका

† बुध् जब १ ले ग० में आता है तब इ का बढ़ना चाहता है

४०७ वां सूत्र

न् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् मन् ४ था ग० आत्म० (सोच) ६१७ वां सूत्र) हन् (मार) ६५४ वां सूत्र) परन्तु यदि पिछला द्वितीय भविष्यत और आशंसार्थ में इ का बढ़ना चाहता है

४०८ वां सूत्र

प् अन्त में रखनेवाले ११ अर्थात् तप् (जल) तप्ता तप्स्यति) वप् (बो) शप् (कोस्) स्वप् (सो) ३५५ वां सूत्र) आप् (पा) ६८१ वां सूत्र) क्षिप् (फेंक) ६३५ वां सूत्र) तिप् आत्म० (सबके से खेंच) लिप् (लीप) छुप् (छू) छोप्ता छोप्स्यति) लुप् ६ ठा ग० (तोड़) (लोप्ता लोप्स्यति) सृप् (रेंग) ३९० वें सूत्र की ६ ठी शाखा)

४०९ वां सूत्र

म् अन्त में रखनेवाले ३ अर्थात् यम् (शारीरिकभाव से लेट) यन्ता यंस्यति) रम् आत्म० (चाह) आ उपसर्ग के साथ) (आरम्भ कर) (६०१ ले सूत्र की १ ली शाखा) लभ् आत्म० (पा) ६०१ ला सूत्र)

४१० वां सूत्र

म् अन्त में रखनेवाले ५ अर्थात् गम् (जा) ६०२ रा सूत्र) परन्तु द्वितीयभविष्यत और आशंसार्थ में यदि इ चाहता है नम् (झुक) नन्ता नंस्यति) यम् (रोक) रम् आत्म० (खेल) क्रम् (चल) आत्म० में (क्रन्ता क्रंस्यते)

४११ वां सूत्र

श् अन्त में रखनेवाले १० अर्थात् दंश् (डस) (दंष्टा दंक्ष्यति) दिश् ६ ठा ग० (बता) ५८३ वां सूत्र) विश् (प्रवेश कर) वेष्टा वेक्ष्यति) रिश् [सता] लिश्

श् (छोटा हो) क्रुश् (पुकार) क्रोष्टा क्रोक्ष्यति] कृश् ६ ठा ग० (समा] दंश् १ ला ग० (देख) ३१० वें सूत्र की ९ वीं शाखा और ६०२ था सूत्र) द्रष्टा द्रक्ष्यति मृश् (छू) (३१० वें सूत्र की ६ ठी शाखा) स्पृश् ६ ठा ग० (छू) ३१० वें सूत्र की ६ ठी शाखा और ६३६ वां सूत्र) स्प्रष्टा स्प्रक्ष्यति

४१२ वां सूत्र

प् अन्त में रखनेवाले ११ अर्थात् क्षिप् (चमक) क्षेप्ता क्षेप्स्यति) क्षिप् (फेंक) ६५७ वां सूत्र) पिप् ७ वां ग० (पास) विप् (छा समा) शिप् ७ वां ग० (पहचान) ६७२ वां सूत्र) श्लिप् ४ था ग० (मिल) ३०१ ला और ३०२ रा सूत्र) तुप् ४ था ग० (तुष्ट हो) तोप्ता तोक्ष्यति) दुप् ४ था ग० (कुपित हो) पुप् ४ था ग० (पल) ꠰ पोप्ता पोक्ष्यति) शुप् ४ था ग० (सूख) शोप्ता शोक्ष्यति) कृप् (खेंच) ३१० वें सूत्र की ६ ठी शाखा और ६०६ ठा सूत्र]

टीका

꠰ जब पुप् ९ वें गण में आता है तब इ चाहताहै जैसे (पोषितुम् पोषिष्यति)

४१३ वां सूत्र

स् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् घस् (खा) घस्ता घत्स्यति) वस् १ ला ग० (रह) [६०७ वां सूत्र] *

टीका

* परन्तु वस् कर्मणिवाच्यभूतगुणक्रिया और अवर्तनीयगुणक्रिया उषित और उषित्वा में (६०७ वां सूत्र) और २ रे गण के आत्म० में आके पहन के अर्थ में जैसे (वसितुम् वसिष्यते) इ चाहता है

४१४ वां सूत्र

— ह् अन्त में रखनेवाले ८ अर्थात् दह् (जला) ६१० वां सूत्र) नह् (बांध) ६२४ वां सूत्र) वह् (लेजा) ६११ वां सूत्र) दिह् (मल) ६५१ वां सूत्र) मिह् (मूत) [मेढा] ३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा] मेक्ष्यति) लिह् २ रा ग० (

पाठ) ६६१ वां सूत्र) दुह् २ रा ग० (दोह) ६६० वां सूत्र) * रुह् (चढ़) रोढा गेष्यति.

टीका

* दुह् १ ला ग० दुख देने के अर्थमें इ चाहताहै जैसे (दोहिता इत्यादि)

ड़

व्यंजन अन्त में रखनेवाले मूल जिन में इच्छानुसार इ बढ़ता है वा छूटता है सब पिछले ५ रूपों में और इच्छार्थक में अथवा केवल इनके कई रूपों में वर्णन

देखो जब काल वा रूप बनाए नहीं जाते तब अनियतभूत के दूसरे रूप को और आशीर्वादवाचक के परस्मै० को छोड़के जो इ का पड़ना कभी नहीं चाहते सब काल वा रूपों में इच्छानुसारता पाईजातीहै

२१५ वां सूत्र

च् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् तञ्च् वा तञ्ज् ७ वां ग० (सुकड़) व्रश्च् (काट) ६१० वां सूत्र)

१ ली शाखा

ज् अन्त में रखनेवाले ३ अर्थात् अञ्ज् ७ वां ग० (प्रगट करः) ६६८ वां सूत्र) परन्तु इच्छार्थक में अवश्य इ पड़ता है) मृज् (मांज) ६९० वें सूत्र की १० वीं शाखा और ६५१ वां सूत्र) भ्रज् (नष्ट) केवल इच्छार्थक में इच्छानुसार और दूसरे रूपों में अवश्य इ को छोड़ताहै)

२ री शाखा

त् अन्त में रखनेवाले ४ अर्थात् पत् (गिर) केवल इच्छार्थक में इच्छानुसार और भविष्यतों में और आशंसार्थ में अवश्य इ चाहता है और अनियतभूत में छोड़ता है) कृत् ६ ठा ग० (काट) (इच्छानुसार द्वितीय भविष्यत और आशंसार्थ और इच्छार्थक में और अवश्य प्रथम भविष्यत और अनियतभूत में इ चाहता है) चृत् [मार] [इच्छानुसार द्वितीय भविष्यत और आशंसार्थ और इच्छार्थक में और अवश्य प्रथम भविष्यत और अनियतभूत में इ चाहता है] नृत् (नाच) [इच्छानुसार द्वितीय भविष्यत और इच्छार्थक में और अवश्य प्रथम भविष्यत और अनियतभूत में इ चाहता है]

३ री शाखा

द् अन्त में रखनेवाले ४ अर्थात् स्यन्द् (बह) (इच्छानुसार द्वितीय भविष्यत और आशंसार्थ परस्मै० और इच्छार्थक परस्मै० को जिनमें अवश्य इ छूटता है छोड़के सब रूपों में) छिद् (भीग) छृद् (चमक) और तृद् [सता] [ये पिछले दो प्रथम भविष्यत को जिस में अवश्य इ बढ़ताहै छोड़के सब रूपों में इच्छानुसार इ का बढ़ना और छूटना चाहते हैं]

४ थी शाखा

ध् अन्त में रखनेवाले ३ अर्थात् रध् (मर) सिध् १ ला ग० (बच) ऋध् [वृद्धि पा] [यिह पिछला इच्छानुसार केवल इच्छार्थक में और अवश्य दूसरे रूपों में इ का बढ़ना चाहता है (६८० वां सूत्र देखो)

५ वीं शाखा

न् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् तन् [तान] और सन् [आदरदे] (दोनों इच्छानुसार केवल इच्छार्थक में और अवश्य दूसरे रूपों में इ का बढ़ना चाहते हैं। ५८३ वां सूत्र देखो)

६ ठीं शाखा

प् अन्त में रखनेवाले ५ अर्थात् त्रपू (लजा) गुप् १ ला ग० (बचा) तृप् ४ था

ग० (मृगहो) ६१८ वां सूत्र) दृप् ४ था ग० (अभिमानी हो) क्लृप् (शक्तिवान हो) (यिह पिछला जब इ का छूटना चाहताहै तब केवल परस्मै० में चाहता है)

७ वीं शाखा

म् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् लुभ् ४ था ग० (ललचा) (इच्छानुसार प्रथम भविष्यत में और अवश्य दूसरे रूपों + में इ का बढ़ना चाहता है) दम्भ् (धोका दे) (इच्छानुसार केवल इच्छार्थक में जैसे दिदम्भिषति वा धिप्सति वा धीप्सति अवश्य दूसरे रूपों में इ का बढ़ना चाहता है)

टीका

+ परन्तु ४३५ वें सूत्र के दूसरे रूप वाले अनियतभूत को छोड़के

८ वीं शाखा

म् अन्त में रखनेवाला १ अर्थात् क्षम् १ ला ४ था ग० (सह) (क्षमिता वा क्षन्ता क्षमिष्यते वा क्षमिष्यति वा क्षंस्यते वा क्षंस्यति

९ वीं शाखा

सब इव् अन्त में रखनेवाले परन्तु (इच्छानुसार केवल इच्छार्थक में नहीं) जैसे दिव् (खेल) ष्ठिव् (थूक) सिव् (सी)

१० वीं शाखा

प् अन्त में रखनेवाले २ अर्थात् चाय् (आदर कर) प्याय् वा स्फाय् (मोटा हो) परन्तु ये दोनों इच्छार्थक में अवश्य इ का बढ़ना चाहते हैं (३९५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

११ वीं शाखा

श् अन्त में रखनेवाले ३ अर्थात् अश् ५ वां ग० आत्म० (छा रखा) । परन्तु अवश्य इच्छार्थक में इ का बढ़ना चाहता है (६४१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) नश् ४ था ग० [मर] (३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा और १२० वां सूत्र देखो) क्लिश् ९ वां ग० (दुख दे) (६९७ वां सूत्र)

टीका

अश् ९ वां ग० (खा) इ का बढ़ना चाहता है

१२ वीं शाखा

पू अन्त में रखनेवाले ७ अर्थात् अक्ष् (छा, समा) तक्ष् (काटके बना) (तक्षिता वा तष्टा तक्षिष्यति वा तक्ष्यति इत्यादि) त्वक्ष् (उत्पन्न कर) कुष् नि सोथ (खेंच) नहीं तो अवश्य इ का बढ़ना चाहता है) इष् ६ ठा ग० (चाह ६३७ वां सूत्र) रिष् (सना) रुष् १ ला ग० (सता) ये पिछले ३ इच्छानुसार प्रथम भविष्यत में परन्तु अवश्य दूसरे रूपों में इ का बढ़ना चाहते हैं

१३ वीं शाखा

ह् अन्त में रखनेवाले १२ अर्थात् सह् आत्म० (उठा) (इच्छानुसार केवल प्रथम भविष्यत में और अवश्य दूसरे रूपों में इ का बढ़ना चाहता है ६११ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ग्लह् (जूआ खेल) (ग्लहिता वा ग्लाढा इत्यादि) गाह् (घुस) गाह् (नाप) (माहिता वा माढा इत्यादि) खिह् (खेदकर) (खेहिता वा खेग्धा वा खेढा इत्यादि) स्नुह् (स्नेहकर वमनकर) मुह् (घबरा) ६१९ वां सूत्र) गुह् (छिपा) गूहिता वा गोढा गूहिष्यति वा घोक्ष्यति) १०३ वें सूत्र की १ ली शाखा और ३१० वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) मुह् (हट सता) ६०३ वां सूत्र) तृह् ६, ठा ७ वां ग० वा तृंह् ६ ठा ग० (मार) ६७४ वां सूत्र) वृह् वा वृह् (उठा) स्तृह् वा स्तृंह् ६ ठा ग० (मार)

अनियतभूत वा तृतीयभूत

यह मिश्रित और बहुरूपी रूप संस्कृत की सब क्रियाओं में बड़ाई बढ़ाई और कठिन है परन्तु इतना अच्छा है कि संस्कृत की अच्छी भाषा में दूसरे भूत कालों से थोड़ा आता है कोई रूप ऐसे कई रूपों का समूह नहीं है जो सब आपस में थोड़ी वा बहुत सदृशता न रखते हों और अपूर्णभूत के साथ कुछ परस्पर समानता न दिखाते हों

४३१ वां सूत्र देखो) तीसरे १० वें गणवाली और प्रेरणार्थक क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं

पहला रूप

४१८ वां सूत्र

जो अन्त २४६ वें सूत्र में बताये हैं सो फिर बतायेजाते हैं

छ वाले अन्त इ रहित

यंत्र

परस्मैपद				आत्मनेपद		
उ०	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि
म०	सीः	स्तम् (तम्)	स्त (तँ)	स्थाः (थाः)	साथाम्	ध्वम् वा ढ्वम्
अ०	सीत्	स्ताम् (ताम्)	सुः	स्त (त)	साताम्	सत

व वाले अन्त इ सहित

परस्मैपद	आत्मनेपद

उ०	इषम्	इष्व	इष्म	इषि	इष्वहि	इष्महि
म०	ईः	इष्टम्	इष्ट	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम् वा इढ्वम्
अ०	ईत्	इष्टाम्	इषुः	इष्ट	इषाताम्	इषत

२१९ वां सूत्र

जानना चाहिये कि छ वाले अन्तों में आगे पीछे आनेवाली अर्द्धचन्द्राकार रेखा यिह दिखाती है कि जो अपूर्णपद अनुनासिक और अर्द्धस्वर को छोड़के अन्त में कोई व्यञ्जन रखता है अथवा अन्त में अ इ उ ऋ जैसा कोई ह्रस्व स्वर रखता है तो पहला स् जिन अन्तों में त् और थ् के साथ मिलता है उनसे वुह छूट जाता है और जानना चाहिये कि जब पीछे आनेवाला त् वा थ् मूर्द्धन्य हो जाता है तब ७० में सूत्र से वुह पहला स् ष् होजाता है कई अवस्थाओं में ध्वम् और इध्वम् के पलटे ढ्वम् और इढ्वम् का आना २४६ वें सूत्र के यंत्र में बताया है

४२० वां सूत्र

पहले १ गण वाली क्रियाओं के लिये जिन में इ छूट जाता है और छ वाले अन्त लगते हैं अपूर्णपद बनाने का सामान्य सूत्र

१ ला वर्णन

आगम अ जैसा अपूर्णभूत में पहले आता है वैसा इस में भी आता है परन्तु वाक्यरचना के ८८१ वें सूत्र में बताया जायगा कि जब अनियतभूत अस्वीकारसूचक अनुमत्यर्थ के सदृश निपात मा वा मास्म के पीछे आता है तब यिह आगम छोड़ दियाजाता है (२४२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२ रा वर्णन

जब कोई मूल आदि में इ उ वा ऋ ह्रस्व वा दीर्घ रखता है तब आगम २५१

वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार पहले आता है

परस्मैपद में जो मूल अन्त में कोई स्वर वा व्यञ्जन रखता है सो सब अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी स्वर को वृद्धि चाहता है

आत्मनेपद में जो मूल अन्त में इ ई उ वा ऊ रखता है सो मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहता है और जो अन्त में ऋ वा कोई व्यञ्जन रखता है सो सब अन्तों के पहले उस स्वर को जैसा है वैसा रखता है पिछले व्यञ्जन छ वाले अन्त के साथ उन सूत्रों के अनुसार लगाये जाते हैं जो २९६ वें सूत्र से ३०६ ठे सूत्र क बताए हैं

१ ली शाखा

जैसे नी (मार्ग दिखा) से दो अपूर्णपद बनते हैं अनै परस्मै० के लिये अं अने आत्म० के लिए जैसे अनै + सम् = ७० वें सूत्र से अनैषम् आत्म० अ + सि = अनेषि अने + स्थाः = अनेष्ठाः इत्यादि

२ री शाखा

कृ ८ वां ग० [कर] से दो अपूर्णपद बनते हैं अकार् परस्मै० के लिए अं अकृ आत्म० के लिए जैसे अकार् + सम् = ७० वें सूत्र से अकार्षम् इत्यादि आ त्म० अकृ + सि = ७० वें सूत्र से अकृषि . अकृ + थाः = ४१९ वें सूत्र से अकृथ अकृ + त = अकृत इत्यादि (६८२ वां सूत्र देखो)

ऐसे ही भृ ३ रा ग० (उठा) से (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो)

३ री शाखा

युज् (जोड़) से दो अपूर्णपद बनते हैं अयौज् परस्मै० के लिए औ अयुज् आत्म० के लिए जैसे परस्मै० अयौज् + सम् = २९६ वें सूत्र अयौक्षम् अयौज् + त्व = अयौक्त्व अयौज् + तम् = ४१९ वें सूत्र से अयौक्त आत्म० अयुज् + सि = २९६ वें सूत्र से अयुक्षि अयुज् + थाः = अयुक्था अयुज् + त = अयुक्त

४ थी शाखा

रुध् ७ वां ग० (रोक) से दो अपूर्णपद बनते हैं अरौध् और अरुध् परस्मै० अरौध् + सम् = २९९ वें सूत्र से अरौत्सम् द्वि० व० अरौध् + स्व = अरौत्स्व अरौध् + स्म = अरौद्धम् आत्म० अरुध् + सि = अरुत्सि अरुध् + थाः = अरुद्धाः इत्यादि

५ वीं शाखा

ऐसे ही पच् [पका] से अपाय् और अपच् अपाच् + सम् = २९६ वें सूत्रसे अपाक्षम् आत्म० अपच् + सि = अपक्षि अपच् + थाः = अपक्थाः इत्यादि

६ ठी शाखा

दह् (जला) से (६१० वां सूत्र देखो) अदाह् और अदह् परस्मै० अदाह् + सम् = १०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा से अधाक्षम् अदाह् + सम् = १०५ वें सूत्र से अदाग्धम् आत्म० अदह् + सि = १०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा से अधक्षि अदह् + थाः = अदग्धाः इत्यादि

२२१ वां सूत्र

२१९ वें सूत्र की २ री शाखा देखने से यिह समझना सरल होगा कि बहुत से इ ई और ह्रस्व उ और ह्रस्व ऋ अन्त में रखनेवाले मूल छ वाले अन्त ग्रहण करते हैं और आ ए ऐ ओ अन्त में रखनेवाले मूलों में से बहुत से आत्म० में ग्रहण करते हैं और आ अन्त में रखनेवाले मूलों में से थोड़े परस्मै० में भी

१ ली शाखा

[illegible] वा स्तृ (फैला) छ वाले या व वाले अन्त लेताहै और आत्म० में [illegible] छ वाले अन्त लेताहै तब ऋ ईर् होजाता है (६३८ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

[illegible] वा इ (स्वीकार कर लिया) का सा उन्हीं अवस्थाओं में [illegible] [illegible] वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

ए ऐ ओ अन्त में रखनेवाले मूलों के ये वर्ण आ होजाते हैं जैसे दूसरे सामान्य रूपों में होजातेहैं जैसे ध्ये (ढांके) से अध्यासिषम् इत्यादि [४३३ वां सूत्र देखो) अध्यासि इत्यादि ऐसेही मि मी दी और इच्छानुसार ली के (३१० वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) जैसे अमासिषम् इत्यादि अमासि इत्यादि

४ थी शाखा

दा (दे) ६६३ वां सूत्र देखो) धा (रख) (६६४ वां सूत्र देखो) स्था (खड़ाहो) ५८७ वां सूत्र देखो) दे [बचा] धे [पी] (जो आत्म० में आवें) दो वा दा (काट) (जो आत्म० में आवे) के पिछले वर्ण आत्म० में इ से पलटजाते हैं जैसे अदिषि अदिथाः (४१९ वां सूत्र देखो) अदित अदिष्वहि म० व० व० अदिढ्म् परस्मै० में ये ४३८ वें सूत्र के अनुगामी होते हैं

५ वीं शाखा

गा जब इ (जा) के पलटे उपसर्ग अधि के साथ (पढ़) के अर्थ में आताहै तब केवल आत्म० में इसका पिछला आ ई होजाता है जैसे अध्यगीषि अध्यगीष्ठाः अध्यगीष्ट इत्यादि

६ ठी शाखा

कु आत्म० (पुकार) गु (मैला कर) और ध्रु (दृढ़ हो) तीनों ६ठे गण के हैं इनके पिछले स्वर पलटते नहीं जैसे अकुषि इत्यादि अकुथाः अकुत इत्यादि अगुषम् इत्यादि ध्रु से अध्रौषम् भी होसकता है और गु से अगुविषम् भी परन्तु पिछ पिछला मूल इस अवस्था में गू समझा जाताहै

४२२ वां सूत्र

जो ह छूटनेवाले मूल ४०० वें सूत्र से ४१२ वें सूत्र तक बनाए हैं सो आगे लिखे जाते हैं ये दोनों परस्मैपद और आत्म० में छ वाले अन्त ग्रहण करते हैं यथ् यज् त्यज् भज् भञ्ज् भ्रस्ज् मज्ज् यज् रञ्ज् सञ्ज् स्वञ्ज् आत्म० मृज् रुज् सृज्

कते हैं और मुख्य सूत्र भी कई मूलों से ३९० वें सूत्र और ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा से १५ वीं शाखा तक बताए हुए भविष्यत बनाने में लगसकते हैं जैसे भ्रम् से २९७ वें सूत्र की २ री शाखा के अनुसार अभ्रासम् (६३० वां सूत्र देखो) भुज् से ३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा के अनुसार अभाक्षम् [६३१ वां सूत्र देखो] नश् आत्म० में अनङ्क्षि वा अनशिषि भज्ज् से ३९० वें सूत्र की ७ वीं शाखा के अनुसार अभ्राक्षम् वा अभार्क्षम् अभ्रक्षि वा अभर्क्षि मृज् से ३९० वें सूत्र की १० वीं शाखा के अनुसार अमार्क्षम् (और अमार्जिषम् भी) नह से ३०६ ठे सूत्र की २ री शाखा के अनुसार अनात्सम्

१ ली शाखा

पद् आत्म० (जा) बुध् आत्म० (जाग) जन् आत्म० (उत्पन्न हो) इनका अ० ए० व० ऐसा बनता है जैसा ये कर्मणिवाच्य क्रियाएं होवें (४७५ वां सूत्र देखो) जैसे अपादि द्वि० व० अ० अपत्साताम् अबोधि (वा इच्छानुसार अबुद्ध) द्वि० व० अ० अभुत्साताम् अजनि वा इच्छानुसार (अजनिष्ट)

२ री शाखा

जो मूल अन्त में न् और म् रखते हैं उनके ये वर्ण स् के पहले अनुस्वार होजाते हैं और स्व के पहले म् न् होजाता है जैसे मन् से अमंसि अमंस्थाः अमंस्त (अथवा जो ८ वें ग० में आता है तो अमनिष्ट अथवा इसी सूत्र की ३ री शाखा से अमत) रम् से अरंसि इत्यादि द्वि० व० म० अरंस्वम्

हन् (बहुधा परस्मै०) का अनुनासिक आत्म० वाले अन्तों के पहले गिरजाता है अहसि अहथाः इत्यादि पहला स् ३११ वें सूत्र के अनुसार गिरजाने से

गम् में ऐसा इच्छानुसार होता है जैसे अगंसि वा अगसि अगंस्थाः वा अगथाः इत्यादि

३ री शाखा

जो ८ वें ग० के मूल अन्त में न् और ण् रखते हैं गुहना से ० वाले अन्त में

भो) हन् (हो) से अवर्त् (अवर्तिषि इत्यादि)

एध् [बढ़] से ऐध् (ऐधिषि इत्यादि) २५१ वें सूत्र की २ री शाखा के अनुसार [६०० वां सूत्र देखो]

२२८ वां सूत्र

जो मूल अन्त में र् और ल् रखते हैं उनका बिचला अ परस्मै० में दीर्घ होजाता है परन्तु आत्म० में नहीं

जैसे चर् (जा) से अचारिषम् ज्वल् (भड़क) से अज्वालिषम् वद् (बोल) और व्रज् (जा) का भी अ परस्मै० में दीर्घ होजाता है जैसे (अवादिषम् परन्तु आत्म० में नहीं होता अवदिषि इत्यादि)

१ ली शाखा

परन्तु जो मूल अन्त में म् य् ह् रखते हैं उनका अ परस्मै० में कभी दीर्घ नहीं होता जैसे स्यम् (शब्द कर) से अस्यमिषम् इन आगे आनेवाले मूलों में भी अ दीर्घ होने से वर्जित है क्षण् कम् रण् श्वस् श्वस् जग् ह्मल् हस् कद् लग् पत् कम् वध् मथ् चद् वध् भ्रम् हस् एक वा दो का अ इच्छानुसार दीर्घ हो सकता है जैसे क्षण् और नद् (शब्द कर) का

२२९ वां सूत्र

देखो बहुत सी संस्कृत क्रियाएं इ या परना पाइती हैं इस से ऐसा होता है कि ११७ वें सूत्र की १ ली और २ री शाखा जितना काम देती हैं उतना काम २३० वां सूत्र नहीं देता विशेषकरके इसलिये कि वे अविकारार्थक इच्छार्थक और सं. बन्धवर्ती के और अमिश्रित क्रियाओं के अनिश्चयभूत में भी लगती हैं

२३० वां सूत्र

जो मुख्य सूत्र दोनों भविष्यत के लिये १९० वें सूत्र की १ ली शाखा से १० वीं शाखा तक बताये हैं सो अनिश्चयभूत के लिये भी काम आते हैं जैसे जो मूल १९० वें सूत्र में और १९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताए हैं कृत् इत्यादि

सो गुण को रोकते हैं और गृ धृ धृ नृ का ऋ बहुधा उर् होजाता है जैसे अकुचिषम् इत्यादि अश्चरिषम् इत्यादि परन्तु गृ गु लिखा जाता है इसलिये अगुपम् इत्यादि होता है (४२१ वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो) और धृ से भी अधारिषम् होता है और नृ से अनारिषम्

१ ली शाखा

ऊर्णु से औणार्विषम् वा औणीर्विषम् वा औणुविषम् इत्यादि और आत्म० में औणविषि वा औणुविषि

२ री शाखा

३९० वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार दीधी वेवी और दरिद्रा के पिछले स्वर गिर जाते हैं जैसे अदीधिषि अदरिद्रिषम् इत्यादि (४३३ वां सूत्र भी देखो)

४३१ वां सूत्र

आत्म० में वृ (स्वीकारकर छिपा) और सब स्तृ जैसे दीर्घ ऋ अन्त में रखनेवाले मूल इच्छानुसार बढ़ेहुए इ का दीर्घ होना चाहते हैं जैसे अवारिषि वा अवरीषि इत्यादि अस्तरिषि वा अस्तरीषि परन्तु केवल परस्मै० में होते हैं अवारिषम् अस्तारिषम्

४३२ वां सूत्र

श्वि (सूज) और जागृ (जाग) वृद्धि के पलटे गुण चाहते हैं जैसे अश्वयिषम् इत्यादि (४१० वें सूत्र की १ ली शाखा भी देखो) अजागरिषम् इत्यादि

१ ली शाखा

ग्रह् ३९९ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार अग्रहीषम् और गुह् ३९० वें सूत्र की १३ वीं शाखा के अनुसार अगूहिषम् यिह पिछला ४३९ वें सूत्र और ४३९ वें सूत्र की २ री शाखा का भी अनुगामी है (६०९ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

हन् (मार) का आनियतभूत वध् से बनता है जैसे अवधिषम् इत्यादि (पर

नु ११२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

४३३ वां सूत्र

आ ए ओ और ऐ अन्त में रखनेवाले बहुत से मूल और म् अन्त में रखनेवाले मूल अर्थात् यम् रम् नम् इ चाहते हैं परन्तु परस्मै० में पिछला ए ओ और ऐ आ होजाने से उस इ के पहले स् बढ़ता है जैसे या [जा] से अयासिषम् इत्यादि (६११ वां सूत्र देखो) शो (पैना) से अशासिषम् इत्यादि यम् (बच) से अयंसिषम् इत्यादि

दरिद्रा (दरिद्री हो) से अदरिद्रिषम् वा अदरिद्रासिषम् इत्यादि

४३४ वां सूत्र

आत्म० में ये मूल इ और स् जो उसके पहले बढ़ताहै नहीं चाहते और ४१८ वें सूत्र के अनुसार आते हैं जैसे मा (नाप) से अमासि इत्यादि (६६४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) व्ये (ढांक) से अव्यासि (३२१ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) रम् (खेल) से अरंसि अरंस्थाः अरंस्त इत्यादि

दूसरा रूप अपूर्णभूत से मिलताहुआ

४३५ वां सूत्र

यंत्र

		परस्मैपद		आत्मनेपद		
उ०	अम्	आव (व)	आम (म)	ए (इ)	आवहि	आमहि
म०	अः (:)	अतम् (तम्)	अत (त)	अथाः	एथाम् (आथाम्)	अध्वम्
अ०	अत् (त्)	अताम् (ताम्)	अन् (उः)	अत	एताम् (आताम्)	अन्त

४१६ वां सूत्र

पिछ रूप जो सदृशता अपूर्णभूत के साथ रखताहै उससे कुछ उपहास नहीं जान पड़ता है इसलिए कि जिन अवस्थाओं में अनिपनभूत के लिए उपवाले अन्त आते हैं उनमें अपूर्णभूत अपने अपूर्णपद की बनावट में कुछ पृथकता रखता है जैसे गम् (जा) से अपूर्णभूत के लिये अगच्छम् होताहै और अनिपनभूत के लिए अगमम् होता है (६०२ रा सूत्र देखो) भिद् (तोड़) से अपूर्णभूत के लिये अभिनदम् होताहै और अनिपतभूत के लिए अभिदम् (५८१ वां सूत्र देखो) ऐसे ही फिर केवल ६ ठा गण मूल और अपूर्णपद में एक रीति की पूरी सदृशता रखता है परन्तु जबतक किसी मुख्य सूत्र से उसके अपूर्णभूत का अपूर्णपद मूल से पृथक नहीं होता तब तक अनिपनभूत का पिछ रूप कभी नहीं लिपाजाता जैसे लिप् (लीप) से अनिपनभूत होताहै अलिपम् और अपूर्णभूत अलिम्पम् (२८१ वां सूत्र देखो)

वर्णन

देखो ए के पलटे इ का और एथाम् और एताम् के पलटे आथाम् और आताम् का आना दूसरे रूप के आत्म० में उन मूलों में होताहै जो ४३९ वें सूत्र में बताए हैं

४३७ वां सूत्र

पहले ९ गणवाले मूलों के लिए अपूर्णपद बनाने की रीति

आगम का अ बढ़ाओ और मूल के पीछे अन्त लगाओ

जैसे अगमम् इत्यादि और अभिदम् इत्यादि में (४३६ वां सूत्र देखो) ऐसेही नश् (मर) से अनशम् और अनेशम् भी (४४१ वां और ४२४ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

परन्तु जो मूल परस्मै० में इस रूप के अनुगामी होते हैं सो बहुत से आत्म० में पहले रूप के अनुगामी होते हैं (४१८ वां सूत्र देखो) जैसे भिद् [तोड़] से अभित्सि इत्यादि आत्म० (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो) ऐसेही छिद् (काट) से (६६७ वां सूत्र देखो) और थोड़े मूल शुद्धता से आत्म० में आते हैं सो इस दू सरे रूप का परस्मै० अनियतभूत रखते हैं जैसे रुच् आत्म० [चमक सुहा] से परस्मै० अरुचम् और आत्म० अरोचिषि

२ री शाखा

एक या दो मूल अन्त में आ इ और ए रखते हैं और एक या दो मूल अन्त में ऋ और ॠ रखते हैं ऊपरवाले अन्तों के पहले उनके आ इ और ए छूट जाते हैं और ऋ और ॠ गुण चाहते हैं जैसे ख्या (बोल) से अख्यम् इत्यादि अख्ये इत्यादि श्वि (सूज) से अश्वम् ह्वे (बुला) से अह्वम् (५९५ वां सूत्र देखो) सृ (जा) से असरम् ऋ (जा) से आरम् जॄ (जीर्ण हो) से अजरम्

३ री शाखा

दृश् (देख) अपने स्वर को गुण चाहता है जैसे अदर्शम् (६०४ वां सूत्र देखो)

४ थी शाखा

पिछले वर्ण के पहले अनुनासिक बहुधा गिर जाते हैं जैसे स्तम्भ् (ठहरा) से अस्तभम् स्यन्द् [झटके से खेंच] से अस्यदम् स्कन्द् (चढ़) से अस्कदम् भ्रंश् (गिर) से अभ्रशम्

५ वीं शाखा

एक रूप अक्षम् वेद में आया है सो घस् (खा) से विचला अ गिर जाने से बना है

४३८ वां सूत्र

कई आ और ए अन्त में रखनेवाले मूल परस्मै० में अपूर्णभूत के अन्त बहुत लेते

हैं और अपने पहले स्वर को गिरा देते हैं जैसा ३१५ वें सूत्र के यंत्र में आगे प
छे आनेवाले दो अर्द्धचन्द्र से बताया है अ० य० व० में अन् के पलटे उः होते है
जैसे दा ३ रा ग० (दे) से अदाम् अदाः अदाव् अदाव इत्यादि अ० ब० व
अदुः (६६१ वां सूत्र देखो) ऐसेही धा ३ रा ग० (रख) से अधाम् इत्यादि
६६४ वां सूत्र देखो] और स्था १ ला ग० [खड़ा हो] से अस्थाम् इत्यादि
५८७ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

ऐसेही भू १ ला ग० (हो) से (उ० पु० य० और अ० ब० व० को छोड़के
जैसे अभूवम् अभूः अभूत् अभूव इत्यादि परन्तु अ० ब० व० होता है अभूवन्
५८५ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

परन्तु जानना चाहिए कि थोड़े या (जा) जैसे आ अन्त में रखनेवाले मूल
४३३ वें सूत्र के अनुगामी होते हैं

३ री शाखा

और थोड़े ए और ओ अन्त में रखनेवाले मूल ४३३ वें सूत्र के अनुगामी हो
ते हैं सो इच्छानुसार ४३८ वें सूत्र के भी अनुगामी होते हैं इस अवस्था में ए औ
र ओ जैसा आगे बताया है आ होजाते हैं जैसे धे १ ला ग० (पी) से अधासि
षम् इत्यादि वा अधाम् इत्यादि और अदधम् भी (४४० वें सूत्र की १ ली शा
खा देखो) सो ४ था ग० (समाप्त हो) से असासिषम् वा असाम् (६१३ वां सू
त्र देखो)

४ थी शाखा

दा, धा, स्था, दे, धे, दो जैसे मूल आत्म० में ४२१ वें सूत्र की ४ थी शाखा
के अनुगामी होते हैं

५ वीं शाखा

इ (जा) का अनियतभूत मूल गा से बनता है जैसे अगाम् अगाः इत्यादि

६३९ वां सूत्र

कई श् ष् ह् अन्त में रखनेवाले मूल जिनका इ उ वा ऋ रखते हैं उनके अनियतभूत ३३५ वें सूत्र वाले दूसरे रूप के अनुसार बनते हैं परन्तु जब कभी अपूर्णभूत और अनियतभूत में कुछ सन्देह उत्पन्न होताहै तब अन्तों के पहले स् बढ़ जाता है और इस सीटीयुक्त वर्ण के पहले मूल का पिछला वर्ण ३०७ वे और ३०६ ठे सूत्र के अनुसार क् होजाताहै

जैसे दिश् (दिखा) से जिसका अपूर्णभूत है अदिशम् अनियतभूत होताहै अदिक्षम् इत्यादि ऐसे ही द्विष् २ रा ग० (द्वेषकर) से ६५७ वें सूत्र के अनुसार अद्विक्षम् इत्यादि दुह् २ रा ग० (दोह) से ३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार अधुक्षम् (६६० वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

इस गणवाले मूल आत्म० के अन्तों में ए के पलटे इ चाहते हैं और एथाम् और एताम् के पलटे आथाम् और आताम् जैसे अदिक्षि अदिक्षथाः अदिक्षत अदिक्षावहि अदिक्षाथाम् इत्यादि अ० व० व० अदिक्षन्त

२ री शाखा

थोड़े ह् अन्त में रखनेवाले मूल अर्थात् लिह् दिह् गुह् दुह् इच्छानुसार आत्मनेपद में म० और अ० ए० व० के और उ० द्वि० व० के और म० व० व० के अन्तों के पहले अ का गिरजाना चाहते हैं जैसे लिह से अलिक्षि अलीढाः अलिक्षत द्वि० व० उ० अलिक्षावहि व० व० म० अलीढ्वम् (६६१ वां सूत्र देखो) और दुह् (दोह) से अधुक्षि अदुग्धाः इत्यादि (६६१ वां ३०५ वां ३०५ वां और ६६० वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

कई प्रमाणों के अनुसार थोड़े मूल अर्थात् तृप् दृप् तृप् आत्म० में बहुधा पद

ले छ वाले रूप के अनुगामी होते हैं सो इच्छानुसार अन्त इ आधाम् आताम् ले के और दूसरे अन्तों के पहले अ और आ गिराके और अन्त के पलटे अत लेके दूसरे रूप के भी अनुगामी होते हैं जैसे अतृपि अतृप्थाः अतृप्त अतृप्वहि इत्यादि

४४० वां सूत्र

प्रेरणार्थक और १० वें गणवाली कियाएं दूसरा रूप चाहती हैं परन्तु उनके अपूर्णपद दुहरावट और आगम् दोनों चाहते हैं जैसे बुध् १ ला ग० (जान) से प्रेरणार्थक अनियत भूत अबूबुधम् इत्यादि यिह ४९२ वें सूत्र में बतायाजायगा

१ ली शाखा

१० वें गणवाली कियाओं के उपरान्त थोड़ी अनियत कियाएं प्रेरणार्थक के लिए अनुमान से दुहरायाहुआ अपूर्णपद लेती हैं (४९२ वां सूत्र देखो)

जैसे श्रि (आश्रयले) से अशिश्रियम् इत्यादि श्वि [सूज] से अशिश्वियम् अश्वम् और अश्वयिशम् भी (४३७ वां सूत्र और ४३७ वें सूत्र की २री शाखा देखो) द्रु १ला ग० (दौड़) से अदुद्रुवम् स्रु (बह) से असुस्रुवम् धे (पी) से अदधम् कम् (प्यार) से अचकमे इत्यादि यिह पिछला जब पहले गण में आताहै तब मुख्य रूप नहीं रखता परन्तु जब १० वें गण में आताहै तब रखता है जैसे वर्त० कामये इत्यादि इसका अनियतभूत अचीकमे होताहै

४४१ वां सूत्र

ये आगे आनेवाले अनियत भूत दुहराएहुए अपूर्णपद का संक्षिप्त रूप लेते हैं वच् २रा ग० (बोल) से अवोचम् जो ६५० वें सूत्र के अनुसार अववचम् के पलटे अवउचम् से बनाहै पत् १ ला ग० (गिर) से अपप्तम् जो अपपतम् से बना है शास् २रा ग० (आज्ञाकर) से अशिषम् जो अशिशासम् से बनाहै परन्तु आत्म० में ४३० वें सूत्र का अनुगामी है (६५८ वां सूत्र देखो) अस् ४था ग० (फेंक) से आस्थम् जो आअसम से ३०४ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार आ-स्मम् के पलटे आस्सम् होके और फिर उलटने से आस्थम् होके बनाहै नश् ४था

संवर्थं सिन्ध्यत् होताहै और आशीर्वादवाचक सिध्यात्

पहले ९ गणवाले मूलों में अपूर्णपद बनाने की रीति

२४३ वां सूत्र

परस्मै० में मुख्य रीति यिह है कि अन्तों के प् के पहले मूल को जैसा है वैसा रखो अथवा वैसी उलटापलटी करो जैसी कर्मणिवाच्य में होती है (४६५ वें सूत्र से ४७२ वें सूत्र तक देखो) अथवा वैसी उलटापलटी करो जैसी ४ थे गणवाले वर्तमानसम्बन्धी सूत्र से होती है और इ कभी मत बढ़ाओ

आत्म० में मुख्य रीति यिह है कि जो मूल अन्त में व्यञ्जन वा स्वर रखते हैं और भविष्यतों में इ का बढ़ना चाहते हैं (३९२ वां और ३९९ वां सूत्र देखो) उनमें इ बढ़ाओ और इसीके पहले मूलसम्बन्धी स्वर को गुण करो और आत्मनेपद में जो थोड़े एक मूल अन्त में स्वर रखते हैं और इ का छूटना चाहते हैं उनके मूलसम्बन्धी स्वर को भी गुण करो परन्तु जो मूल अन्त में कोई व्यञ्जन रखताहै और इ का छूटना चाहता है उसका मूलसम्बन्धी स्वर आत्म० और परस्मैपद में भी बहुधा जैसा है वैसा रहताहै

४४४ वां सूत्र

जैसे भू १ ला ग० (हो) से परस्मै० का अपूर्णपद होताहै भू और आत्म० का भवि (३६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जैसे भू + यासम् = भूयासम् इत्यादि भवि + सीय = भविषीय (७० वां सूत्र देखो)

४४५ वां सूत्र

बहुधा जैसा आगे बनाया है परस्मै० वाले अन्तों के प् के पहले मूल वैसी उलटापलटियां सहताहै जैसी ४७२ वें सूत्र के अनुसार ४ थे ग० के प् के पहले और ४६५ वें सूत्र के अनुसार कर्मणिवाच्य क्रियाओं के प् के पहले होती हैं और यह था कुछ ऐसी उलटापलटियां भी उठाताहै जैसी ३७१ वें इत्यादि सूत्र के अनुसार पूर्णभूत में होती हैं जैसे आगे बनाई जाती हैं

४४६ वां सूत्र

पिछला आ परस्मैपद में ए होजाता है परन्तु आत्म० में जैसा है वैसा रहता जैसा द्वितीय भविष्यत वाले अन्तों के स् के पहले जैसे दा (दे) से देयासम् इत्यादि परस्मैपद परन्तु आत्म० दासीय इत्यादि पा (पी) से पेयासम् इत्यादि

१ ली शाखा

परन्तु ज्या (जीर्ण हो) से जीयासम् इत्यादि और दरिद्रा (दरिद्री हो) का पिछला आ परस्मै० में भी गिर जाताहै जैसे दरिद्र्यासम् दरिद्रिषीय इत्यादि (३९० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

४४७ वां सूत्र

पिछले इ और उ परस्मै० में दीर्घ होजाते हैं जैसे कर्मणिवाच्य के य् के पहले और आत्म० में गुण चाहते हैं जैसे द्वितीय भविष्यत के स् के पहले जैसे चि (जोड़) सेचीयासम् इत्यादि चेषीय इत्यादि और हु (हवन कर) से हूयासम् इत्यादि होषीय इत्यादि

१ ली शाखा

जब इ (जा) किसी उपसर्ग के पीछे आता है तब दीर्घ नहीं होता जैसे इयासम् इत्यादि होताहै नहीं तो ईयासम्

२ री शाखा

दीधी और वेवी ३९० वें सूत्र की १ री शाखा के अनुसार अपने पिछले इ को गिराते हैं दीधिषीय इत्यादि

४४८ वां सूत्र

पिछला ऋ परस्मै० में रि होजाता है परन्तु आत्म० में बना रहताहै जैसे कृ (कर) से क्रियासम् इत्यादि और कृषीय इत्यादि दुहरे व्यञ्जन के पीछे परस्मै० में और बहुतरे ऋ के पहले भी ऋ को गुण होताहै जैसे स्मृ (फैला) से स्मर्यासम्

स्तृषीय इत्यादि वा स्तरिषीय इत्यादि

१ ली शाखा

(जा) और जागृ (जाग) का भी ऋ गुण चाहता है जैसे अर्यासम् जा-
म् इत्यादि

२ री शाखा

(ढांक स्वीकार कर) से व्रियासम् वा वूर्यासम् वृषीय वा वरिषीय वा वूर्षीय

४४९ वां सूत्र

छला ऋ दोनों पद में ईर् होजाता है परन्तु आत्म० में बढ़ेहुए इ के पहले
चाहता है जैसे तॄ १ ला ग० (पार हो) से तीर्यासम् इत्यादि तीर्षीय इत्या-
तरिषीय इत्यादि वा तरीषीय इत्यादि

१ ली शाखा

मूल पॄ १० वां ग० (भर) से पूर्यासम् इत्यादि (४४८ वें सूत्र की १ ली
देखो)

४५० वां सूत्र

अन्त में रखनेवाले मूलों में धे (पी) से धेयासम् इत्यादि सो धा (थाम)
आशीर्वादवाचक भी होता है और दे (बचा) से देयासम्

१ ली शाखा

रन्तु ह्वे (बुला) से हूयासम् इत्यादि और ह्वासीय इत्यादि व्ये (ढांक) से वी-
म् इत्यादि और व्यासीय इत्यादि और वे (बुन) से ऊयासम् इत्यादि और
ीय इत्यादि (३६५ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

४५१ वां सूत्र

पिछले ऐ और ओ बहुधा ३३६ वें सूत्र के अनुसार पिछले आ के सदृश बर्ते
हैं जैसे गै (गा) से गेयासम् इत्यादि सै (बिगाड़) और सो (उजाड़) से
ासम् दो (काट) से जैसे दा (दे) और दे (बचा) से देयासम् परन्तु कमीरे

े आ होजाते हैं जैसे त्रै (रक्षाकर) से त्रासीय इत्यादि दै (पवित्रकर) से द
ध्यै (ध्यानकर) से ध्यायासम् वा ध्येयासम् ग्लै (थक) से ग्लायासम् वा ग्ले

४५२ वां सूत्र

जैसा अभी बताया है जो मूल अन्त में कोई व्यञ्जन रखता है तो पर
प् के पहले जो यथाविधि उलटापलटी होती है उसको छोड़के और कुछ उ
टी नहीं होती और द्वितीय भविष्यत के विरुद्ध जबतक मूल में इ नहीं
तक आत्म० में गुण भी नहीं होता और आत्म० में दूसरी उलटापलटि
ही होती हैं जैसी द्वितीय भविष्यत के अन्तों के स् के पहले होती हैं (
सूत्र की १५ वीं शाखा देखो) जैसे दुह् (दोह) से दुह्यासम् इत्यादि और
य इत्यादि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) द्विष् (द्वेषकर) से द्वि
इत्यादि और द्विक्षीय इत्यादि (३०२ रा सूत्र देखो) और बुध् (जान) से
सम् इत्यादि और बोधिषीय इत्यादि (४४३ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

परन्तु १० वें गणवाले मूल परस्मै० में और आत्म० में गुण चाहते हैं अ
रट परस्मै० में वर्तनीसम्बन्धी अय को नहीं लेते प्रेरणार्थक के तले (४९५
त्र देखो)

४५३ वां सूत्र

४ थे ग० की और कर्मणिवाच्य की विधिपूर्वक उलटापलटियों के अनुस
मूल अन्त में दुहरा व्यञ्जन रखते हैं जिनका पहला वर्ण कोई अनुनासिक
है सो बहुधा उस अनुनासिक को छोड़देते हैं जैसे भञ्ज् ७ वां ग० (तोड़)
ज्यासम् इत्यादि (४६९ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

ऐसे ही फिर ४७२ वें सूत्र के अनुसार ग्रह् (ले) से परस्मै० में गृह्यासम्
दि प्रछ् (पूछ) से पृच्छयासम् इत्यादि भ्रज्ज् (भट) से भृज्ज्यासम् (इ
४१०

सूत्र देखो) मथ् (काट) से मथ्यासम् (६१६ वां सूत्र देखो) व्यध् (चुभ) से विध्यासम् व्यच् (धोका दे) से विच्यासम् शास् (सिखा) से शिष्यासम् इत्यादि ये आत्म० में यथाविधि आते हैं

२ री शाखा

ऐसे ही फिर इ और उ र् और व् के पहले दीर्घ होजाते हैं जैसे कुर् (शब्दकर) से कूर्यासम् और दिव् (खेल) से दीव्यासम् (२६६ वां सूत्र देखो)

२५४ वां सूत्र

वच् (बोल) वद् (कह) वप् (बो) वश् (चाह) वस् (रह) वह् (लेजा) के और स्वप् (सो) परस्मै० में व के पलटे उ चाहते हैं और यज् (यज्ञकर) य के पलटे इ चाहताहै जैसे उच्यासम् सुप्यासम् इज्यासम् इत्यादि (४७१ वां सूत्र देखो) ये आत्म० में यथाविधि आते हैं जैसे वक्षीय वह् से यक्षीय यज् से

१ ली शाखा

जन् खन् और सन् (४७० वें सूत्र के अनुगामी होते हैं) जैसे जन्यासम् वा जायासम् इत्यादि (४२१ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

वर्णन

देखो इन सूत्रों के उपरान्त जो दूसरी मुख्य उलटापलटियां द्वितीय भविष्यत के अन्तों में स् के पहले होती हैं और ३९० यें सूत्र में और ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा से १५ वीं शाखा तक बताई हैं सो आशीर्वादवाचक के आत्म० में भी होती हैं जैसे कु वा कू से (३९० वां सूत्र देखो) कुषीय वा कुविषीय भ्रज् से (३९० वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) भ्रक्षीय वा भर्क्षीय कम् से (३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा देखो) कामयिषीय वा कमिषीय और गुप् से परस्मै० में गुप्यासम् वा गोपाय्यासम् हो सकता है

आशंसार्थ

जो अन्त २४६ वें सूत्र में बताए हैं सो फिर बताए जाते हैं

यंत्र

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
उ०	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि
म०	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
प्र०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त

२५५ वां सूत्र

देखो यिह रूप द्वितीय भविष्यत से वैसाही सम्बन्ध रखता है जैसा अपूर्णभूत वर्तमान से रखता है अपनी बनावट में यिह आधा अपूर्णभूत है और आधा द्वितीय भविष्यत यिह मूल पहले आगम अ लगने में अपूर्णभूत से मिलता है (२५१ वां सूत्र देखो) और अपने अन्तों के पिछले भाग में मूलसम्बन्धी स्वर को गुण चाहने में और जिन मूलों में भविष्यत इ का बढ़ना चाहता है उन में इ का बढ़ना चाहने में और अपूर्णपद की दूसरी उलटापलटियों में द्वितीय भविष्यत से मिलता है

२५६ वां सूत्र

आशीमार्थ द्वितीय भविष्यत से बहुत ही सरलता के साथ (१८८ वें सूत्र से १९० वें सूत्र तक देखो) आगम अ पहले लाने से और अन्त स्यामि को स्यामि और स्यम् को स्यम् में पलटने से बन सकता है जैसे करिष्यामि अकरिष्यम्

२५७ वां सूत्र

जैसे बुध् १ ला ग० (जान) से अबोधिष्यम् इत्यादि दुह् (दोह) से अधोक्ष्यम् इत्यादि (४१४ वां सूत्र और ३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) द्विप् (द्वेप कर) से अद्वेक्ष्यम् इत्यादि (४१२ वां सूत्र देखो) गुह् (छिपा) से अगूहिष्यम् वा अघोक्षम् (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) मज्ज् (डूब) से अमंक्ष्यम् (३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा देखो)

१ ली शाखा

जो मूल आदि में स्वर रखते हैं उन के पहले आगम उन सूत्रों के अनुसार आता है जो २५१ वें सूत्र में वताए हैं जैसे ऊर्णु (ढांक) से और्णुविष्यम् वा और्णविष्यम् (३९० वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

२ री शाखा

इ (जा) उपसर्ग अधि के साथ (पढ़) का आशंसार्थ इच्छानुसार मूल गा से बनता है जैसे अध्यैष्ये वा अध्यगीष्ये (४२१ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो)

भाववाचक

४५८ वां सूत्र

भाववाचक का अन्त तुम् है यिह क्रियासम्बन्धी संज्ञा होके आता है और २ री वा ४ थी विभक्ति का अर्थ देता है

वर्णन

प्रत्यय तुम् प्रत्यय तु की दूसरी विभक्ति जानपड़ताहै (८२ वें सूत्र का ८ वां प्रत्यय देखो) इसकी दूसरी विभक्तियां भाववाचक के सदृश वेद में आती हैं

४५९ वां सूत्र

१० गण की क्रियाओं में इसका अपूर्णपद बनाने की रीति

भाववाचक का अपूर्णपद ऐसा होताहै जैसा प्रथम भविष्यत का और जहां प्र-
म भविष्यत में इ बढ़ताहै वहां इस में भी बढ़ताहै जैसे बुध् १ ला ग० (जान)
बोधितुम् क्षिप् ६ ठा ग० (फेंक) से क्षेप्तुम् वरन जो सूत्र उस भविष्यत के अ-
ां के त् के पहले मूल की उलटापलटी के लिये काम आते हैं सो ही सब भा-
ाचक के त् की उलटापलटी के लिये काम आते हैं इसलिये प्रथम भविष्यत के
० ए० व० के पिछले आ को उम् करने से भाववाचक बनजाता है
जैसे-शक्ता शक्तुम् प्रष्टा प्रष्टुम् सोढा सोढुम् कथयिता कथयितुम् ऐसेही दुह् से
धुम् दुह् से द्रोढुम् वा द्रोग्धुम् वा द्रोहितुम् कुच् से कुचितुम् (३८८ वें सूत्र से
५ वें सूत्र तक देखो)

१ ली शाखा

वेद में भाववाचक प्रत्यय तवे, तवै, तोस् (तोः) स्यै, से, असे, अध्यै, अम्, ए
अम् (अः) जो यथार्थ में क्रियासम्बन्धी संज्ञाओं की विभक्तियां हैं (८६७
सूत्र की १ ली और २ री शाखा देखो) लगने से भी बनाए जाते हैं

निसृत क्रियाएं

४६० वां सूत्र

अनिसृत क्रियाओं के दस गण में क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद की बनावट बताके
व चार प्रकार की निसृत क्रियाओं की अर्थात् कर्मणिवाच्य वा कर्मप्रधान प्रे-
ार्थक इच्छार्थक और अधिकतार्थक की बनावट बताते हैं

कर्मणिवाच्य

४६१ वां सूत्र

दसों गण से प्रत्येक गण का प्रत्येक मूल कर्मणिवाच्य का रूप लेता है और
४ गण वाली क्रियाओं के आत्म० में वर्तनी किया जाता है यथकना केवल
स्वरा लगने में है सो कर्मणिवाच्य में बढ़ाएहुए य पर लगता है और ४ थे गण

वाली अनिमृत क्रियाओं के आत्म० में मूलसम्बन्धी शब्दभाग पर

१ ली शाखा

अभी बताचुके हैं कि कर्मणिवाच्य को मूल से एक पृथक् निमृत समझते हैं जो एक अचल सूत्र से बनाया जाता है और कर्तरिवाच्य क्रिया की वर्तनीसम्बन्धी बनावट से कुछ प्रयोजन नहीं रखता जैसे मूल भिद् ७ वां ग० (बांट) से भिनत्ति वा भिन्त्ते (वुह बांटता है) द्विष् २ रा ग० (द्वेष करो) से द्वेष्टि वा द्विष्टे (वुह द्वेष करता है) परन्तु इन दोनों का कर्मणिवाच्य एक अचल सूत्र के अनुसार कर्तरिवाच्य के वर्तनीसम्बन्धी रूप पर ध्यान किये बिना केवल य बढ़ाने से बनाया जाता है जैसे भिद्यते (वुह बांटा जाता है) द्विष्यते (वुह द्वेष कियाजाता है) (२४३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२ री शाखा

यथार्थ में कर्मणिवाच्य एक मूल है जो ४ थे ग० के सूत्र के अनुसार केवल आत्म० में वर्तनी कियाजाताहै और ऐसा कहना कि प्रत्येक मूल कर्मणिवाच्य का रूप लेसकता है यथार्थ में ऐसा कहना है कि १ ले २ रे ३ रे ५ वें ६ ठे ७ वें ८ वें ९ वें और १० वें गण के सब मूल जब कर्मणिवाच्य का अर्थ देते हैं तब ४ थे ग० के होजाते हैं इसलिए जो मूल पहले से ४ थे ग० का है बहुधा उसका कर्मणिवाच्यवाला और आत्म० वाला रूप एकसा होताहै पृथकता केवल झटके में पाईजाती है

३ री शाखा

ऐसा भी सन्देह होसकताहै कि कर्मणिवाच्य का कभी२ अकर्मक का अर्थ देना और परस्मै० वाली वर्तनी में आना आद्य कारण है जिससे अनिमृत क्रियाओं का ४ था ग० कर्मणिवाच्य से अलग है यथार्थ में कर्मणिवाच्य के परस्मै० वाले अन्त देने के दृष्टान्त पाएजाते हैं और कोई२ कर्मणिवाच्य क्रियाएं ऐसी जैसी जायते (वुह जनाजाता है) जन् से पूर्यते (वुह भराजाताहै) पृ से तप्यते [वुह तपाया

गई] तप् से ४ थे ‡ गण की आत्म० वाली क्रियाएं समझी जाती हैं और बहुत से मूल ४ थे ग० में ऐसे हैं जैसे अकर्मक जो दूसरे १ गण में सकर्मक होके आते हैं जैसे युज् (जोड़) जब सकर्मक के अर्थ में आताहै तब ७ वें ग० में अथवा प्रेरणार्थक में वर्तनी कियाजाताहै और जब अकर्मक के अर्थ में आता है तब ४ थे गण में वर्तनी कियाजाताहै ऐसे ही पुष् (पाल) क्षुभ् (हिला) क्लिश् (सता) सिध् (पूर्णकर) ‡

[illegible] टीका [illegible]

‡ कर्मणिवाच्य बहुधा पौराणिक काव्य में परस्मै० वाले अन्त लेताहै जैसे छिद्येत् (वुह काटाजावे) पलटे छिद्येत के मोक्ष्यसि (तू छुड़ायाजायगा) पलटे मोक्ष्यसे के अदृश्यत् (वुह देखागया)

२ री टीका

‡ पद् (जा) बुध् (जान) जैसी क्रियाओं के जो ४ थे गण की आत्म० वाली क्रियाएं कही जाती हैं, अनियतभूत को जो रूप दियेजाते हैं सो केवल कर्मणिवाच्य के होते हैं किसी व्याकरणी ने अपादि और अबोधि रूप लिखे हैं [४७५ वां सूत्र देखो]

४ थी शाखा

कर्मणिवाच्य क्रियाएं ३-तीन प्रकार की कहीजाती हैं

पहले प्रकार की कर्मन कही जाती है जैसे तुद से तुद्यते (वुह पीटाजाता है) यहां पिह क्रिया ऐसा अर्थ देती है कि जो पीटाजाताहै सो दूसरे से पीटाजाताहै जैसे ओदनः पच्यते मया (चावल पकायाजाताहै मुझ से)

दूसरे प्रकार की भाव अर्थात् पुरुष रहित कर्मणिवाच्य कही जाती हैं सो बहुधा अकर्मक क्रिया से बनाई जाती हैं और केवल अ० ए० व० में आती हैं जैसे गम्यते (वुह जाता है) नृत्यते (वुह नाचताहै) पच्यते (वुह पकता है) यहां यिह क्रिया कोई करनेवाला वा सहनेवाला नहीं बताती केवल एक अवस्था दिखा-

...तीसरे प्रकार की कर्म-कर्तृ कहलाती हैं अर्थात् कर्ता और कर्म दोनों एक होते हैं जैसे ओदनः पच्यते (चावल पकता है) संजायते (वुह जन्मता है) इत्यादि इन पिछले दृष्टान्तों में जो कोई स्वर चिन्हसम्बन्धी य् के पहले पासही आता है तो झटका मूलसम्बन्धी शब्दभाग पर रहताहै जैसे ४ थे गण में ये किसी २ अवस्था में कर्तरिवाच्य के आत्म० का रूप भी लेते हैं और य् को छोड़देते हैं जैसे भूष्यते (वुह सजाजाता है) के पलटे भूषते (वुह सजताहै आप को) कहना शुद्ध है

वर्णन

देखो पाणिनि की मति के अनुसार कर्मणिवाच्य क्रिया एक आत्म० वाली क्रिया है विकरण यक् के साथ पहले चार रूपों में और कर्मन् कर्मणिवाच्य का केवल एक विचार दिखाता है ऐसी अवस्था में कर्म कर्मणिवाच्य के अन्त से जानपड़ता है जैसे घर बनायाजाता है मुझ से यहां कर्ता मुझ से का कर्म अर्थात् घर कर्मणिवाच्य के अन्तों से जान पड़ता है परन्तु कर्ता नहीं आता जैसे केवल इतना कहें कि घर बनता है तो यिह भाव है कर्मन् नहीं है

४६२ वां सूत्र

कर्मणिवाच्य क्रियाएं विधिपूर्वक आत्म० वाले अन्त लेती हैं जो २४६ वें सूत्र में बताए हैं और वे प्रतिनिधि लेती हैं जो ४ थे गण में आते हैं

अनियतभूत में ४१८ वें सूत्र वाले पहले रूप के जो मूल इ का बढ़ना चाहते हैं तो व वाले अन्त लेते हैं और जो इ का छूटना चाहते हैं तो छ वाले अन्त लेते हैं परन्तु वे दोनों रूपों के अ० ए० व० में अन्त स्त और इष्ट के पलटे अन्त इ चाहते हैं (४७५ वां सूत्र देखो)

मुख्य रूप

४६३ वां सूत्र

पहले ९ गणों के मूलों के आत्मनेपद वाले मुख्य चार रूपों में अपूर्णपद बनाने की रीति

मूल के पीछे य * बढ़ाओ जो पहले म् और व् के पहले दीर्घ होके या होजाताहै मूलसम्बन्धी स्वर गुण नहीं चाहता और बहुधा जैसा है वैसा रहताहै (२४१ वें सूत्र में ४ थे गण का सूत्र और २७२ वां सूत्र देखो)

टीका

* पिह य या (जा) से निकलाहुआ जानपड़ताहै जैसे प्रेरणार्थक का अय इ (जा) से

४६४ वां सूत्र

जैसे भू १ ला गण (हो) से अपूर्णपद भूय जैसे वर्तमान भूय + इ = भूये भूय + से = भूयसे इत्यादि अपूर्णभूत अभूय + इ = अभूये इत्यादि शक्तयर्थ भूय + ईय = भूयेय इत्यादि अनुमत्यर्थ भूय + ऐ = भूयै इत्यादि तुद् ६ ठा ग० (मार) से तुद्य जैसे वर्तमान तुद्य + इ = तुद्ये इत्यादि

४६५ वां सूत्र

परन्तु पिह मूल बहुधा वैसी उलटापलटियां उठाताहै जैसी ४ थे गण के मूल और आशीर्वादवाचक के परस्मै० उठाते हैं (२७५ वां और ४४५ वां सूत्र देखो) परन्तु पिछला आ ए नहीं होता जैसा आशीर्वादवाचक में

आ अन्त में रखनेवाले ६ और ए ऐ और ओ अन्त में रखनेवाले एक या दो मूल अपने पिछले स्वर को ई से पलटतेहैं जैसे दा (दे) दे (पचा) और दो (काट) में वर्तमान दीये दीयसे दीयते इत्यादि ऐसे ही धा (रख) (अ० ए० व० धीयते) स्था (खड़ा हो) मा (नाप) पा (पी) और हा (छोड़) धे (पी) (अ० ए० व० धीयते इत्यादि) गै (गा) (गीयते) सो (उजाड़) (सीयते)

१ ला वर्णन

देखो दा २ रा ग० (बांध) से दायते होताहै इसलिए कि यिह पु वाला नहीं है और पा० ६. ४. ६६ का अनुगामी नहीं है

२ रा वर्णन

देखो हा (जा) (ओहाङ्) से हायते होताहै परन्तु हा (छोड़) (ओहाक्) से हीयते होताहै

१ ली शाखा

दूसरे आ अन्त में रखनेवाले मूल कुछ उलटापलटी नहीं चाहते और बहुत से दूसरे ऐ और ओ अन्त में रखनेवाले मूल अपने पिछले स्वर को आ करदेते हैं जैसे ख्या (बोल) से अ० ए० व० ख्यायते ज्ञा (जान) से ज्ञायते पा (बचा) से पायते ध्यै (ध्यानकर) से ध्यायते शो (पैना) से शायते

२ री शाखा

दरिद्रा दीधी और वेवी ३९० वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार अपने पिछले स्वर को गिरादेते हैं जैसे दरिद्र्यते दीध्यते इत्यादि और ज्या (जीर्णहो) से ३० जीयते (४४६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

३ री शाखा

ह्वे (बुला) वे (बुन) व्ये (ढांक) के अपूर्णपद होते हैं हूय ऊय और वीय जैसे अ० ए० व० हूयते (४५० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

४६६ वां सूत्र

पिछला इ वा उ दीर्घ होजाताहै और विचला इ वा उ भी व् वा र् के पहले जैसे जि हु दिव् कुर् से जीय हूय दीव्य कूर्य (४४७ वां सूत्र और ४५३ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

१ ली शाखा

परन्तु श्रि (सुज) से अ० ए० व० होताहै श्रुयते और शी (लेट) से शय्यते

२६७ वां सूत्र

पिछला ऋ रि होजाता है परन्तु जो दुहरे व्यञ्जन के पीछे आता है तो गुण चाहता है जैसे कृ से अ० क्रियते हृ से ह्रियते परन्तु स्मृ से स्मर्यते (११८ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

मूल ऋ गुण चाहता है जैसे अ० ए० व० अर्यते और जागृ का ऋ भी (११८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२६८ वां सूत्र

पिछला ॠ ईर् होजाता है जैसे कॄ (बखेर) से अ० कीर्यते परन्तु पॄ (भर) से पूर्यते (११९ वां सूत्र और ११९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२६९ वां सूत्र

जो मूल अन्त में कोई दुहरे व्यञ्जन रखते हैं और उन में पहला कोई अनुनासिक तो वुह अनुनासिक छूट जाता है जैसे बन्ध् स्तम्भ् सञ्ज् से अपूर्णपद बध्य इत्यादि होते हैं जैसे बध्ये इत्यादि

१ ली शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा में बताए हैं सो अपनी मुख्यता कर्मणिवाच्य में भी रखते हैं जैसे कम्यते वा काम्यते गुप्यते वा गोपाय्यते विच्छ्यते वा विच्छाय्यते ऋत्यते वा ऋतीयते

२७० वां सूत्र

जन् (उत्पन्न कर) खन् (खोद) तन् (फैला) सन् (दे) इच्छानुसार अपना पिछला अनुनासिक छोड़ते हैं और उसके पहले अ को दीर्घ करते हैं जैसे जायते वा जन्यते इत्यादि

२७१ वां सूत्र

वच् (बोल) वद् (कह) वप् (बो) वश् (चाह) वस् (रह) वह् (ले जा) स्वप् (सो) यज् (यज्ञ कर) अपने अर्द्धस्वर व और य को उनके अनुरूप स्वरों से पलटते हैं तब इनके अपूर्णपद यथाक्रम होते हैं उच्य उद्य उप्य उश्य उष्य उह्य सुप्य इज्य जैसे उच्यते इत्यादि

वर्णन

यिह उलटापलटी अर्द्धस्वर की अनुरूप स्वर के साथ व्याकरण में सम्प्रसारण कही जाती है

२७२ वां सूत्र

ऐसेही ग्रह् (ले) प्रछ् (पूछ) भ्रज्ज् (तल) व्यच् (छल) व्यध् (चुभ) व्रश्च् (काट) के अपूर्णपद होते हैं गृह्य पृच्छ्य भृज्ज्य विच्य विध्य वृश्च्य जैसे गृह्यते इत्यादि

१ ली शाखा

ऊह् (कारण बता) उपसर्गों के पीछे अपने स्वर को ह्रस्व करता है जैसे उह्यते नहीं तो ऊह्यते

२ री शाखा

अज् का कर्मणिवाच्य वी से बनता है वस् का उद् से अस् का भू से ब्रू का वच् से और चक्ष् का ख्या से

३ री शाखा

शास् (आज्ञा कर) का कर्मणिवाच्य अपूर्णपद शिष्य होता है

सामान्य रूप कर्मणिवाच्य का पूर्णभूत

२७३ वां सूत्र

इस रूप का अपूर्णपद कर्मणिवाच्य में वैसा ही है जैसा दसों गणों की सब अनियत क्रियाओं में होता है इसलिए अपूर्णपद ३६४ वें सूत्र से ३८४ वें सूत्र त-

क के अनुसार बनाहुआ कर्मणिवाच्य के पूर्णभूत के लिये पूरा काम देसकता है परन्तु केवल आत्म० की वर्तनी में नहीं जैसे बुबुधे पेचे इत्यादि

१ ली शाखा

जब बढ़ाहुआ पूर्णभूत आता है (३८५ वां सूत्र देखो) तब सहायक क्रिया अस् भू और कृ उस के साथ आत्मनेपद में होते हैं (३८५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

कर्मणिवाच्य का प्रथम और द्वितीय भविष्यत

४७४ वां सूत्र

इन के और शेष रूपों के अपूर्णपदों में बहुधा आत्मनेपद वाली अनिमूत क्रियाओं के इन्हीं रूपों के अपूर्णपदों से कुछ पृथकता नहीं पाई जाती जब तक मूल अन्त में कोई स्वर नहीं रखता उस अवस्था में अनिमूत क्रियाओं में वर्जित है तो भी कर्मणिवाच्य में जो मूल का पिछला स्वर वृद्धि किया जाता है तो इ बढ़ सकता है जैसे चि ५ वां म० (चुन) से अनिमूत क्रियाओं में प्रथम और द्वितीय भविष्यत का अपूर्णपद चे है जैसे चेताहे इत्यादि चेष्ये इत्यादि परन्तु कर्मणिवाच्य में इन्हीं रूपों का अपूर्णपद चायि होता है जैसे चायिताहे इत्यादि चायिष्ये इत्यादि ऐसे ही हु और कृ से अनिमूत में हो और कर् हैं परन्तु कर्मणिवाच्य में हावि और कारि होते हैं जैसे हाविताहे कारिताहे

१ ली शाखा

ऐसेही जब मूल अन्त में दीर्घ आ या आ से बदलनेवाले ए ऐ ओ रखता है तब इ बढ़ताहै परन्तु जब वृद्धि के बदले जो असम्भव है पिछले आ और बढ़ेहुए इ के बीच में य् आवे जैसे दा (दे) से अनिमूत क्रिया में भविष्यत का अपूर्णपद दा है जैसे दाताहे इत्यादि और ह्वे (बुला) से ह्वा है परन्तु कर्मणिवाच्य में इन दोनों के अपूर्णपद दायि और ह्वायि होते हैं जैसे दायिताहे इत्यादि और ह्वायिताहे इत्यादि परन्तु इन सब अवस्थाओं में कर्मणिवाच्य के अपूर्णपद के लिये अनिमूत

क्रिया का अपूर्णपद लेसकते हैं इसलिये कर्मणिवाच्य प्रथम भविष्यत के लिये घे-ताहे और चायिताहे दोनों होसकते हैं ऐसेही दूसरों में

२ री शाखा

जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं तो कर्मणिवाच्य में दोनों भविष्यतों का अपूर्णपद वैसाही होता है जैसा अनिसृत क्रियाओं में इन्हीं रूपों का और कभी आत्मनेपद की होती है परन्तु दृश् (देख) से कर्मणिवाच्य में होसकता है दर्शिताहे दर्शिष्ये वा द्रष्टाहे द्रक्ष्ये और हन् (मार) से घानिताहे घानिष्ये वा हन्ताहे हनिष्ये और ग्रह् (ले) से ग्राहिताहे ग्राहिष्ये वा ग्रहीताहे ग्रहीष्ये

३ री शाखा

१० वें गण वाली और प्रेरणार्थक क्रियाओं में ये रूप और इनके पीछे आनेवाले रूप अनिसृत क्रियाओं के आत्मनेपद वाले रूपों से ऐसी ही पृथकता रखसकते हैं (४९६ वां सूत्र देखो)

कर्मणिवाच्य का अनियतभूत

४७५ वां सूत्र

यिह रूप भी जब मूल अन्त में कोई स्वर रखता है तब अनिसृत क्रिया के रूप से पृथकता रखता है क्योंकि अनिसृत क्रिया में इ का बढ़ना वर्जित है परन्तु इस अवस्था में जो मूल का पिछला स्वर वृद्धि चाहता है तो इ बढ़सकताहै जैसे चि से अनिसृत क्रिया के आत्म० वाले अनियतभूत का अपूर्णपद अचे है जैसे अचेषि इत्यादि (४२० वां सूत्र देखो) परन्तु कर्मणिवाच्य के अनियतभूत का अपूर्णपद अचायि होताहै जैसे अचायिषि इत्यादि (४२७ वां सूत्र देखो) ऐसे ही हु और कृ से अनिसृत क्रिया के आत्म० वाले अनियतभूत के अपूर्णपद अहो और अकृ हैं जैसे अहोषि अकृषि (४२० वां सूत्र देखो) परन्तु कर्मणिवाच्य अनियतभूत के अहावि और अकारि होते हैं जैसे अहाविषि अकारिषि (४२७ वां सूत्र देखो) फिर अनिसृत क्रिया के आत्म० वाले अपूर्णपद अदग हैं जैसे अदिषि इत्यादिता

भी जो मूल अन्त में दीर्घ आ या आ से पलटनेवाले ए ऐ ओ रखते हैं उनमें जो पिछले आ और बढ़ेहुए इ के बीच में य् आताहै तो इ बदलसक्ता है जैसे दा (दे) दे [बचा] दै (पवित्र कर) दो (काट) से अपूर्णपद होते हैं अदायि जैसे अदायि इत्यादि परन्तु इन सब अवस्थाओं में अनिमूत क्रिया का अपूर्णपद कर्मवाच्य के अपूर्णपद के पलटे ले सकते हैं इसलिए चि से कर्मणिवाच्य अचायिषि या अचेषि दोनों होसक्ते हैं परन्तु अ० ए० व० में नहीं इसमें अन्त इष और स्त छूटजाने से अपूर्णपद वृद्धि और बढ़ेहुए इ से चुनके अकेला रहजाते हैं जैसे अचायि (वुह जोड़ागया) अहावि (वुह हवनकियागया) अकारि (वुह कियागया) अदायि (वुह दियागया बचाया वा पवित्र किया वा काटागया)

१ ली शाखा

कमी २ आत्म० वाले अनिपतमूत का विधिपूर्वक रूप सब में आता है (२६१ वें सूत्र का २ रा प्रकार देखो) ऐसा तब होताहै जब कर्मणिवाच्य कर्म-कर्तृ के अर्थ में आताहै अपने यथार्थ अर्थ में नहीं आता जैसे रुधा (बोल) से कर्मणिवाच्य अनिपतभूत अ० ए० व० अरुधायि होताहै परन्तु कर्म-कर्तृ कर्मणिवाच्य के अर्थ में अरुध होताहै श्रि (आश्रयले) से उ० ए० व० कर्मणिवाच्य अनिपतमूत अश्रयिषि होताहै परन्तु कर्म-कर्तृ अशिश्रिये होताहै और कम् (प्यारकर) से अ० ए० व० कर्मणिवाच्य अनिपतभूत अकमि वा अकामि होताहै परन्तु कर्म-कर्तृ अचकमे होताहै

२ री शाखा

जो मूल अन्त में कोई व्यञ्जन रखता है उनसे कर्मणिवाच्य अनिपतभूत का अपूर्णपद सदा वैसाही होताहै जैसा अनिमूत आत्म० का परन्तु अ० ए० व० में नहीं क्योंकि इसमें २५९ वें सूत्रवाले पहले रूप के अन्त इष और स्त के पलटे इ आने से बहुधा विचला अ-जो पहले अपने स्थान से दीर्घ नहीं होता तो दीर्घ होजाताहै और प्रत्येक दूसरा विचला हस्व स्वर गुण चाहता है इसलिए तड् (पीटना) से

उ० म० और अ० ए० व० होते हैं अतानिषि अतनिष्टाः अतानिषि (फै से अक्षिप्सि अक्षिप्थाः अक्षेपि विद् (जानें) से अवेदिषि अवेदिष्ठाः अवेदि त्यादि

२ री शाखा

जो विचला स्वर अपने स्वभाव वा स्थान से दीर्घ होवाहै सो पलटा नहीं ता (२८ वां सूत्र देखो) और एक वा दो व्यंजन्त में हृस्व स्वर भी पलटा नहीं ता जैसे अशमि पलटे अशामि के

३ री शाखा

परन्तु विचले अ का दीर्घ होना सदा नहीं होती और अ० ए० व० में दूसरे निषेध आते हैं जैसे आगे

अम् अन्त में रखनेवाले बहुत करके सब मूल अ० ए० व० में उस स्वर का दीर्घ होना नहीं चाहते जैसे क्रम् (चल) से अक्रमि क्षम् (सह) से अक्षमि शम् (शान्त हो) से अशमि परन्तु जब देखने का अर्थ देता है तब अशामि

४ थी शाखा

ऐसे ही वध् से अवधि जन् से अजनि पहले के पलटे इच्छानुसार हन् से अ-घानि भी होता है

५ वीं शाखा

मृज् और गुह् अपने स्वरों का दीर्घ होना चाहते हैं जैसे अमार्जि अगूहि

६ ठी शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा में बताए हैं सो दो रूप रखते हैं जैसे अकमि वा अकामि अगोपि वा अगोपायि अविच्छि वा अविच्छायि इत्यादि

७ वीं शाखा

रध् (मर) जभ् (जमाही ले) रभ् (चाह) अनुनासिक चाहते हैं जैसे अरन्धि अजम्भि अरम्भि ऐसे ही लभ् (पा) जब किसी उपसर्ग के साथ आता है जैसे

संस्कृत में कर्तरिवाच्य भाववाचक से कर्मणिवाच्य भाववाचक पृथकता नहीं रखता परन्तु प्रत्यय तुम् जब कई क्रियाओं के साथ और विशेषकरके शक् (शक्तिवान हो) के कर्मणिवाच्य के साथ आता है तब कर्मणिवाच्य का अर्थ देता है यह कर्मणिवाच्य के अर्थ के लिये आरब्ध निरूपित युक्त इत्यादि गुणक्रियाओं के साथ भी आसकताहै (वाक्यरचना में ८६९ वां सूत्र देखो)

१० वें गण वाले मूलों से कर्मणिवाच्य

४७८ वां सूत्र

१० वें गण वाले मूलों से कर्मणिवाच्य बनाने में पहले चार रूपों से वर्तनीसम्बन्धी अय छूटजाता है तो भी प्रत्यय य के पहले मूल की दूसरी वर्तनीसम्बन्धी उलटापलटियां होती हैं जैसे चुर् १० वां ग० (चुरा) से अपूर्णपद होता है चोर्य जैसे चोर्यते पूर्णभूत में अय बनारहता है (४७३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और दूसरे सामान्य रूपों में और विशेषकरके अनियतभूत में अय को इच्छानुसार छोड़ने वा बढ़ाने से अपूर्णपद अनिभूत आत्मनेपद के अपूर्णपद से पृथकता रखता है (कर्मणिवाच्य प्रेरणार्थक के विषय में ४९६ वां सूत्र देखो)

प्रेरणार्थक क्रियाएं

४७९ वां सूत्र

१०-दसों गण से प्रत्येक गण का प्रत्येक मूल प्रेरणार्थक रूप लेसकता है सो १० वें गण की क्रिया के सदृश वर्तनी कियाजाता है और केवल अनिभूत क्रिया को प्रेरणार्थक का अर्थ नहीं देता वरन अकर्मक क्रिया को सकर्मक क्रिया का अर्थ भी देता है (२८९ वां सूत्र देखो)

जैसे १ ले गण के मूल बुध् (जान) से बोधति (वुह जानता है) अनिभूत क्रिया है सो बोधयति (वुह जताताहै) प्रेरणार्थक होजाती है और ४ थे ग० के मूल क्षुभ् से क्षुभ्यति (वुह हिलता है) अकर्मक क्रिया है सो क्षोभयति (वुह हिलाता

है) सकर्मक होजाती है

१ ली शाखा.

पिह रूप कर्मी२ दूसरे अर्थ भी देता है

जैसे हारयति (गुह हारताहै) नाशयति (वुह नष्ट होताहै) अभिषेचयति (वुह अभिषिक्त होताहै) क्षमयति (वुह क्षमा मांगता है) अभिषेचय आत्मानम् (आपको अभिषिक्त कर)

वर्णन

देखो पिह कहना कि प्रत्येक मूल प्रेरणार्थक रूप ले सकताहै यथार्थ में यिह कहना है कि पहले ९ गण के मूल जब प्रेरणार्थक के अर्थ में आते हैं तब १० वें गण के होते हैं और जो मूल आदि में १० वें गण का होताहै उसको प्रेरणार्थक के लिए पृथक रूप लेना अवश्य नहीं है क्योंकि ऐसी अवस्था में अनिमृत और प्रेरणार्थक एकही से होते हैं (२८९ वां सूत्र देखो) ऐसा जानपड़ताहै कि कभी२ प्रेरणार्थक को प्रेरणार्थक के अर्थ के पलटे सकर्मक के अर्थ में लाते रहे हैं यिही कारण है जिससे अनिमृत क्रियाओं का १० वां गण बनाहै यथार्थ में जो मूल के साथ अय का पढ़ना सब अवस्थाओं में प्रेरणार्थक क्रिया का चिन्ह समझाजा वे तो बर्नी का आशय बहुत सरल होजावे विशेष करके इसलिए कि अय दूसरे वर्गीसम्बन्धी विकरण के सदृश (२५० वें सूत्र की २ री शाखा देखो) पृथक वर्नी का चिन्ह नहीं है क्योंकि वुह पहले चार रूपों ही में नहीं बनारहता दूसरे व हुत से रूपों में भी बनारहता है जैसे इच्छार्थक का चिन्ह इष बनारहता है

४८० वां सूत्र

प्रेरणार्थक क्रिया में वेही अन्त आते हैं जो २९६ वें सूत्र के पत्र में बताए हैं और पहले चार रूपों में वैसेही प्रतिनिधि आते हैं जो १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण में आते हैं

मुख्य रूप

४८१ वां सूत्र

दसों गणवाले मूलों के मुख्य चार रूप में अपूर्णपद बनाने की सामान्य रीति जो मूल अन्त में स्वर रखता है तो उस स्वर को वृद्धि करो और जो व्यञ्जन रखता है तो सब अन्तों के पहले मूलसम्बन्धी स्वर को गुण करो और इस वृद्धि किए हुए अथवा गुण किए हुए मूल के पीछे अय जोड़ो जो पहले म् और व् के पहले अया होजाता है परन्तु अकेले म् के पहले नहीं

टीका

* अय मूल इ (जा) से निकलसक्ता है जैसे कर्मणिवाच्य वाला य मूल या से निकला हुआ समझाजाता है (४६३ वें सूत्र की टीका * देखो)

४८२ वां सूत्र

जैसे नी (मार्ग दिखा) से अपूर्णपद ३७ वें सूत्र के अनुसार नायय होता है जैसे वर्तमान नायया + मि = नाययामि नायय + सि = नाययसि इत्यादि अपूर्णभूत अनायय + म् = अनाययम् इत्यादि शक्त्यर्थ नायय + इयम् = नाययेयम् इत्यादि अनुमत्यर्थ नायय + आनि = नाययानि इत्यादि आत्म० वर्त० नायय + इ = नायये इत्यादि ([illegible] युक्त रूप नाययामि देखने में आया है) ऐसे ही [illegible] ययामि इत्यादि भू (हो) से भावय जैसे भावयामि इत्यादि कृ (कर) और कॄ (बखेर) से कारय जैसे कारयामि इत्यादि

परन्तु बुध् (जान) से गुणकिया हुआ अपूर्णपद बोधय होता है जैसे बोधयामि और सृप् १ ला ग० (रींग) से गुणकिया हुआ अपूर्णपद सर्पय जैसे सर्पयामि

वर्णन

देखो कृप् (प्रसिद्धकर) और १० वें गण की दूसरी क्रियाएँ वे उदाहरण सर्गी हैं जो २८५ वें सूत्र से २८९ वें सूत्र तक बनाई हैं

४८३ वां सूत्र

जो मूल अन्त में आ अथवा आ से पलटनेवाले ए ऐ ओ रखते हैं सो वृद्धि नहीं चाहते परन्तु बहुधा मूल और प्रत्यय अय के बीच में प् का बढ़ना चाहते हैं जैसे दा (दे) दे (प्यार कर) और दो (काट) से दापयामि इत्यादि धे (पी) से धापयामि इत्यादि गै (गा) से गापयामि इत्यादि (४८४ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

ऐसेही आ अन्त में रखनेवाले दूसरे मूल भी प् का बढ़ना चाहते हैं परन्तु पा १ ला ग० (पी) जो य् का बढ़ना चाहता है जैसे पाययामि इत्यादि और पा २ रा ग० (बचा) जो ल् का बढ़ना चाहताहै जैसे पालयामि इत्यादि और वा २ रा ग० (हिल) जो ज् का बढ़ना चाहता है जैसे वाजयामि इत्यादि प् का बढ़ना नहीं चाहते

२ री शाखा

ऐसेही ऐ अन्त में रखनेवाले दूसरे मूल प् का बढ़ना चाहते हैं परन्तु ए और ओ अन्त में रखनेवाले बहुत से मूल य का बढ़ना चाहते हैं जैसे ह्वे (बुला) से ह्वाययामि इत्यादि ऐसेही वे (बुन) व्ये (पहन) शो (पैना) से शाययामि इत्यादि ऐसेही छो (काट) सो (बिगाड़) से

४८४ वां सूत्र

ज्ञा (जान) श्रा वा श्रै (सिजा) स्ना (नहा) और ग्लै (अटमा) इच्छानुसार आ को ह्रस्व करते हैं और पिछले दो केवल तब जब पहले कोई उपसर्ग नहीं रखते जैसे ज्ञापयामि इत्यादि वा ज्ञपयामि इत्यादि ग्लापयामि इत्यादि वा ग्लपयामि इत्यादि (परन्तु परि के साथ केवल परिग्लपयामि) से (बिगड़) से केवल सपयामि

४८५ वां सूत्र

थोड़े इ ई ऋ अन्त में रखनेवाले मूल भी पिछले स्वर को आ से पलटके प् का

दीधी वेवी और दरिद्रा (३९० वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) अ
सर गिरादेते हैं जैसे दीधयामि वेवयामि दरिद्रयामि इत्यादि

२ री शाखा

जागृ (जाग) स्मृ (इच्छाकर के अर्थ में) जृ ४ था ग० (जीर्ण हो
र के अर्थ में) नृ (मार्ग दिखा) गुण चाहते हैं जैसे जागरयामि परन्तु
से दारयामि होताहै

३ री शाखा

मृ (निमल) से मारयामि वा मालयामि

४८० वां सूत्र

जो मूल अन्त में अकेला व्यञ्जन रखते हैं और बिचला स्वर अ र
बहुधा उस अ का दीर्घ होना चाहते हैं जैसे पच् १ ला ग० (पका)
यामि इत्यादि परन्तु बहुत से निषेध भी आते हैं जैसे ज्वर् (पीड़ित हो
श्रोम हो इत्यादि) सो उस स्वर का दीर्घ होना नहीं चाहते और जाग्
इत्यादि थोड़े अ का दीर्घ होना इच्छानुसार चाहते हैं

१ ली शाखा

म अन्त में रखनेवाले मूल बहुधा अ का दीर्घ होना नहीं चाहते हैं
१ ला ग० (जा) से गमयामि इत्यादि क्लम् (थक) से क्लमयामि
परन्तु थोड़े इच्छानुसार ऐसा करते हैं जैसे नम् (झुक) इत्यादि और
हा अ का दीर्घ होना चाहतेहैं जैसे कम् (प्यार कर) से कामयामि

२ री शाखा

मूल रध् जभ् रभ् और लभ् (३७५ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो)
सिक का बढ़ना चाहते हैं जैसे रन्धयामि इत्यादि

४८१ वां सूत्र

पै इसे ... ...

कर) कोपयामि दुप् (बिगड़) दूपयामि हन् (मार) घातयामि शद् (गिर मर) शातयामि स्फुर् (कांप) स्फारयामि वा स्फोरयामि स्फाय् (बढ़) स्फावयामि क्ष्माय् (थरथरा पृथ्वी सा) क्ष्मापयामि इत्यादि मृज् (मल) मार्जयामि (३९० वें सूत्र की १० वीं शाखा देखो) गुह् (छिपा) गूहयामि (३९० वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो)

१ ली शाखा

मूल गुप् विछ् धुप् पण् पन् ऋत् जो ३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा में बताए हैं दो रूप रखते हैं जैसे गोपयामि वा गोपाययामि इत्यादि (३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा देखो)

२ री शाखा

सिध् (पूर्ण हो) का प्रेरणार्थक साधयामि वा धर्मसम्बन्धी कामों में सेधयामि होता है भ्रज्ज् (तल) का भ्रज्जयामि वा भर्ज्जयामि परन्तु यिह पिछला रूप भृज् से होसकता है

३ री शाखा

हेड् (पहन) से हिडयामि रञ्ज् से (आखेट कर) के अर्थ में रजयामि

वर्णन

१० वें गण वाली क्रियाओं के प्रेरणार्थक वैसे ही होते हैं जैसे अनिसृत क्रियाओं के होतेहैं (२८९ वां सूत्र देखो) प्रेरणार्थक क्रियाओं के प्रेरणार्थक भी वैसे ही होते हैं जैसे प्रेरणार्थक क्रियाओं से होते हैं

सामान्य रूप

४८९ वां सूत्र

मुख्य रूपों का अपूर्णपद बनाने में मूल की जो उलटापलटियां होती हैं सोही सामान्य रूपों में होतीहैं बरन अनियतभूत को और परस्मैपद वाले आशीर्वाद्वा·

चक को छोड़के अय इन सब रूपों में बनारहता है परन्तु अय का पिछला अ बढ़ेहुए इ के पहले जो दूसरे सब सामान्य रूपों में निरन्तर आता है गिरजाता है

प्रेरणार्थक का पूर्णभूत

४९० वां सूत्र

पिछ रूप बढ़ेहुए रूप का होता है जैसा ३८५ वें सूत्र में बताया है अर्थात् प्रेरणार्थक के अपूर्णपद में आम् बढ़ाके तीन सहायक किया अस् (हो) भू (हो) कृ (कर) में से किसी के पूर्णभूत के पीछे लाने से बनता है जैसे बुध् (जान) से प्रेरणार्थक पूर्णभूत होता है बोधयाञ्चकार वा बोधयामास वा बोधयाम्बभूव शम् से प्रेरणार्थक पूर्णभूत अ० ब० व० शमयाम्बभूवुः (उन्हों ने शान्त किया रघुवंश ५, ७, ४५)

प्रेरणार्थक के प्रथम और द्वितीय भविष्यत

४९१ वां सूत्र

इन रूपों में बढ़ाहुआ इ निरन्तर अपूर्णपद के (जैसा मुख्य रूपों में बनता है) और यथाविधि अन्तों के बीच में आता है जैसे बुध् से बोधयितास्मि इत्यादि बोधयिष्यामि इत्यादि

प्रेरणार्थक और १० वें गणवाली क्रियाओं का अनियतभूत

४९२ वां सूत्र

अन्त वेही आते हैं जो ४१५ वें सूत्र के दूसरे रूप में आते हैं इस रूप का अपूर्णपद बनाने में प्रत्यय अय् छूटजाता है परन्तु दूसरी उलटापलटी जैसी यू वा य् की बढ़ावट मुख्य रूपों में होतीहै वैसी होती है अपूर्णपद इस उलटापलटी का दुहरायाहुआ रूप होता है और दुहरावट के पहले आगम अ आता है.

जैसे बुध् [जान] और जि (जीत) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद बोधय् और जापय् लेने और अय् छोड़ने से बोध् और जाप् रहजाते हैं और इन से अनियतभूत के अपूर्णपद अबूबुध् और अजीजप् बनते हैं जैसे अबूबुधम् इत्यादि अबूबुधे इत्यादि अजीजपम् इत्यादि अजीजपे इत्यादि

४९३ वां सूत्र

इस दुहरावट की रीति यिह है कि मूल का पहला व्यञ्जन अपने स्वर समेत दुहरायाजाताहै और दुहरायाहुआ व्यञ्जन उन सूत्रों का अनुगामी होता है जो २५२ वें सूत्र में बताए हैं परन्तु स्वर की दुहरावट एक मुख्य दुहरावट है

प्रेरणार्थक के अनियतभूत में पहले व्यञ्जन के स्वर की दुहरावट

१ ली शाखा

प्रेरणार्थक अपूर्णपद अय् छूटजाने पर बहुधा अन्त में आय् आव् आर् वा अ आ ए ओ वा अर् पहले रखनेवाला कोई व्यञ्जन रखते हैं ओ को छोड़के इन सबके पलटे यथाविधि दुहरायाहुआ स्वर इ आताहै परन्तु ओ के पलटे और कभी२ आव् के पलटे उ दुहरायाजाताहै रीति यिह है कि दुहरायाहुआ अर्थात् अपूर्णपदसम्बन्धी शब्दभाग अपने स्वभाव वा स्थान से दीर्घ होताहै और बहुधा दुहरायाहुआ स्वर इ या उ दीर्घ होजाताहै और उसके पलटे प्रेरणार्थक अपूर्णपद का दीर्घ स्वर ह्रस्व होजाता है और जो वृद्ध गुण होताहै तो अपने अनुरूप ह्रस्व स्वर से पलटजाताहै जैसे नी से अय् छूटजाने पर प्रेरणार्थक अपूर्णपद नाय् से अनियतभूत का अपूर्णपद अनीनय् होताहै (अनीनयम् इत्यादि) भू से प्रेरणार्थक अपूर्णपद भाव् होताहै उससे अनियतभूत का अपूर्णपद अबीभव् (अबीभवम् इत्यादि) कृ से प्रेरणार्थक अपूर्णपद कार् होताहै उससे अनियतभूत का अपूर्णपद अचीकर् गम् से प्रेरणार्थक अपूर्णपद गम् उससे अनियतभूत का अपूर्णपद अजी

सथ् पच् से पाच् उससे अपीपच् पा से पाल् उससे अपीपल् विद् से वेद् उससे अवीविद् परन्तु बुध् से बोध् उससे अबूबुध् और सु से साव् उससे असूषव्

२री शाखा

कर्मी २ दुहराया हुआ स्वर दो व्यञ्जन के पहले अपने स्थान से केवल दीर्घ रहता है और मूलसम्बन्धी स्वर तब भी ह्रस्व होजाता है जैसे श्रु से श्राव् उससे अशिश्रव् वा अशुश्रव् द्रु से द्राव् उससे अदुद्रव् वा अदिद्रव् भ्राज् से अबिभ्रज् वा अबभ्राज्

३री शाखा

कर्मी २ दुहराया हुआ स्वर ह्रस्व बनारहता है और प्रेरणार्थक अपूर्णपद का स्वर अपने स्वभाव वा स्थान से दीर्घ रहता है सो पलटा नहीं जाता जैसे जीव् से प्रेरणार्थक अपूर्णपद जीव् उससे अनियतभूत अपूर्णपद अजिजीव् और अजीजिव् भी चिन्त् से अचिचिन्त् कल्प् से अचिकल्प् ऐसी अवस्थाओं में अ या आ के पलटे बहुधा अ दुहराया जाता है जैसे लक्ष् से अललक्ष् याच् से अययाच् वृत् से वर्त् उससे अववर्त् इत्यादि

४थी शाखा

देखो जो अपूर्णपद मूलसम्बन्धी स्वर ऋ ॠ या ऌ के पलटे यथाक्रम अर् आर् ईर् वा अल् रखता है तो ये नहीं पलटेजाते अथवा अर् आर् ईर् ऋ से पलट जाते हैं और अल् ऌ से पलटजाता है जैसे वृत् से वर्त् उससे अवीवृत् और अववर्त् कॄत् से कीर्त् उससे अचिकीर्त् वा अचीकृत् इत्यादि

५वीं शाखा

ये आगे दूसरे दृष्टान्त हैं इनमें थोड़े सूत्रविरुद्ध हैं पा (पी) से प्रेरणार्थक पाय् उससे अपीप्यम् इत्यादि स्था (खड़ा हो) से प्रेरणार्थक स्थाप् उससे अतिष्ठिपम् इत्यादि घ्रा (सूंघ) से प्रेरणार्थक घ्राप् उससे अजिघ्रिपम् इत्यादि वा अजिघ्रपम् इत्यादि मधि साथ रखनेवाले इ (जा) से प्रेरणार्थक अध्याप् उससे अध्यजीगपम् इत्या-

दि चेष् (श्रमकर) से प्रेरणार्थक चेष् उससे अचचेष्टम् वा अचिचेष्टम् ह्वे (बुला) से प्रेरणार्थक ह्वाय् उससे अजुहावम् वा अजूहवम् त्वर् (शीघ्रताकर) से प्रेरणार्थक त्वर् उससे अतत्वरम् स्तृ वा स्तॄ (फैला) से प्रेरणार्थक स्तार् उससे अतस्तरम् वा अतिस्तरम् दॄ (फाड़) से प्रेरणार्थक दार् उससे अददरम् द्युत् (चमक) से प्रेरणार्थक द्योत् उससे अदिद्युतम् श्वि (सूज) से प्रेरणार्थक श्वाय् उससे अशुशवम् वा अशिश्वयम् स्मृ (स्मर्ण कर) से प्रेरणार्थक स्मार् उससे असस्मरम् स्वप् (सो) से प्रेरणार्थक स्वाप् उससे असूषुपम् कथ् १० वां ग० (कह) से प्रेरणार्थक कथ् अचकथम् वा अचीकथम् गण् १० वां ग० (गिन) से प्रेरणार्थक गण् अजगणम् वा अजीगणम् प्रथ् (फैल) से प्रेरणार्थक प्रथ् उससे अपप्रथम्

प्रेरणार्थक अनियतभूत में पहले स्वर की दुहरावट

४९४ वां सूत्र

जो मूल आदि में स्वर रखतेहैं और अन्त में अकेले व्यञ्जन उन के प्रेरणार्थक अनियतभूत अय छूटजाने पर मूल की एक मुख्य दुहरावट से बनाएजाते हैं इस रीति से कि जैसे ३६४ वें सूत्र की १ ली शाखा वाले पूर्णभूत में पहला स्वर दुहरायाजाता है वैसे केवल पहला स्वर ही नहीं दुहराया जाता वरन पिछला व्यञ्जन भी दुहराया जाता है यथार्थ में पूरा मूल दुगना होजाता है उस मूल के अनुसार जो आदि में कोई व्यञ्जन रखताहै और अन्त में कोई स्वर सो व्यञ्जन२५२ वें सूत्र वाले सूत्रों के अनुसार दुहरायाजाता है परन्तु दूसरा स्वर बहुधा इ होता है सो अ को अवल करने का फल जानपड़ता है वुह इ उस अपूर्णपदसम्बन्धी स्वर का स्थान लेता है जो नय दुहराएहुए शब्दभाग का पहला वर्ण होजाता है और २५१ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार आगम वाले अ से मिलजाता है जैसे ऊह् (अनुमान कर) से प्रेरणार्थक अनियतभूत का अपूर्णपद ऊजिह् होता है और अ पहले पढ़ने से औजिह् होजाता है जैसे औजिहम् (मैंने अनुमान करा या) ऐसेही आप् ५ वां ग० (प्राप्त कर) से आपिपम् (मैंने प्राप्त कराया) ईड् १

...ग० (प्रशन्सा कर) से ऐडिडम् (मैंने प्रशन्सा कराई)

१ ली शाखा

जो मूल अन्त में कोई मिलाहुआ व्यञ्जन रखताहै जिसका पहला वर्ण कोई अनुनासिक वा र् होताहै तो वुह अनुनासिक वा र् उस पिछले वर्ण से छूटजाताहै परन्तु उस दुहराएहुए वर्ण से नहीं छूटता जैसे अर्ह् (योग्य हो) से आर्जिहम् (मैंने योग्य किया अर्थात् मैंने आदर किया) ऐसेही ऋध् (वृद्धि कर) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद अर्ध् से आर्दिधम् (मैंने वृद्धि कराई) और उन्द् (भिगो) से औन्दिदम् (मैंने भिगवाया)

२ री शाखा

परन्तु जब मिश्रित का पहला अंग कोई दूसरा वर्ण होता है तब उस मिश्रित के पहले अंग का अनुरूप व्यञ्जन २५२ वें सूत्र की ३ री शाखा के अनुसार दुहरायाजाता है जैसे ईक्ष् (देख) से ऐचिक्षम् (मैंने दिखाया) अभ्र् (चल) से आबिभ्रम् (मैंने चलाया)

३ री शाखा

जो मूल अकेला स्वर रखते हैं उन के प्रेरणार्थक अनियतभूत अप छूटजाने पर जो प्रेरणार्थक अपूर्णपद बनता है उससे बनाएजाते हैं जैसे ऋ (जा) का प्रेरणार्थक अपूर्णपद है अर्प् (सौंप) उससे प्रेरणार्थक अनियतभूत आर्पिपम् [मैंने सौंपवाया]

४ थी शाखा

ऊर्णु (ढांक) से प्रेरणार्थक अनियतभूत और्णुनुवम् अन्ध् १० वां ग० (अन्धा हो) से आन्दधम् और ऊन् १० वां ग० (घटा) से औननम्

५ वीं शाखा

जो व्यञ्जन पहले स्वर के पीछे आता है और अपने पीछे कोई दूसरा स्वर रखता है तो दुहरावट में वुह स्वर आता है जैसे अवधीर् १० वां ग० (अनिच्छा कर) से अनियतभूत आववधीरम्

प्रेरणार्थक के आशीर्वादवाचक और आशंसार्थ

४९५ वां सूत्र

प्रेरणार्थक आशीर्वादवाचक आत्मनेपद का और प्रेरणार्थक आशंसार्थ दोनों पद का अपूर्णपद सामान्य रूपों के प्रेरणार्थक अपूर्णपद से कुछ भेदकता नहीं रखता परन्तु अय का पिछला अ बढ़ेहुए इ के पहले जो सदा बढ़ता है गिरजाता है परस्मै पद वाले आशीर्वादवाचक में अय और इ दोनों छोड़दियेजाते हैं परन्तु मूल की दूसरी उलटापलटी होती है जैसे बुध् (जान) से प्रेरणार्थक आशीर्वादवाचक बोध्यासम् इत्यादि बोधयिषीय इत्यादि प्रेरणार्थक आशंसार्थ अबोधयिष्यम् इत्यादि अबोधयिष्ये इत्यादि

प्रेरणार्थक भाववाचक

१ ली शाखा

प्रेरणार्थक भाववाचक अ० ए० व० प्रथम भविष्यत से बहुत सरलता के साथ बनसकताहै जैसे ४५९ वें सूत्र में बतायाहै जैसे बुध् (जान) से बोधयिता (वुह जनावेगा) बोधयितुम् (जनाना)

प्रेरणार्थक कर्मणिवाच्य

४९६ वां सूत्र

प्रेरणार्थक अपूर्णपद से कर्मणिवाच्य प्रेरणार्थक बनाने में प्रेरणार्थकसम्बन्धी प्रत्यय अय छूटजाताहै परन्तु कर्मणिवाच्यसम्बन्धी प्रत्यय य के पहले दूसरी प्रेरणार्थकसम्बन्धी उलटापलटियां होती हैं

जैसे पत् (गिर्) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद पातय से कर्मणिवाच्य पात्य उ० ए० व० पात्ये (मैं गिरायाजाता हूं) अ० ए० व० पात्यते (वुह गिरायाजाता है) ऐसेही स्था (खड़ा हो) से स्थापयति (वुह खड़ा करताहै) स्थाप्यते (वुह खड़ा

कियाजाता है) ज्ञा (जान) से ज्ञपयति (वुह जनाता है) और ज्ञप्यते (वुह जनायाजाताहै)

१ ली शाखा

सामान्य रूपों में पूर्णभूत को छोड़के सब रूपों का अपूर्णपद आत्म० के रूप से वर्तनीसम्बन्धी अय के छूटजाने से प्रथकता रखसकता है परन्तु पूर्णभूत में आम् और सहायक क्रिया रखनेवाले विधिपूर्वक रूप का आत्म० (३९० वां और ३८५ वां सूत्र देखो) कर्मणिवाच्य के पलटे आताहै अनियतभूत में विधिपूर्वक इहरायाहुआ रूप (३९२ वां सूत्र देखो) अपना स्थान आत्म० वाले रूप को देताहै सो पहले ९ गण की उन क्रियाओं में आवाहै जिन में इ घटता है जैसे भू (हो) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद भावय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत भावयाञ्चक्रे वा भावयामासे वा भावयाम्बभूवे प्रथम भविष्यत भावयिताहे वा भाविताहे द्वितीय भविष्यत भावयिष्ये वा भाविष्ये अनियतभूत अभावयिषि वा अभाविषि अ० ए० व० अभावि आशीर्वादवाचक भावयिषीय वा भाविषीय आशंसार्थ अभावयिष्ये वा अभाविष्ये

२ री शाखा

ऐसे ही बुध् (जान) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद बोधय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत बोधयाञ्चक्रे (मैं जताया गयाहूं) इत्यादि प्रथम भविष्यत बोधयिताहे वा बोधिताहे (मैं जतायाजाऊंगा) इत्यादि द्वितीय भविष्यत बोधयिष्ये वा बोधिष्ये इत्यादि अनियतभूत अबोधयिषि वा अबोधिषि (मैं जतायागया) म० अबोधयिष्ठाः वा अबोधिष्ठाः अ० अबोधि इत्यादि

३ री शाखा

ऐसे ही शम् (ठहर) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद शमय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत शमयाञ्चक्रे वा शमयामासे इत्यादि (मैं ठहरायागया हूं) इत्यादि प्रथम भविष्यत शमयिताहे वा शमिताहे द्वितीय भविष्यत शमयिष्ये वा शमिष्ये अनियतभूत अ-

प्रेरणार्थक के आशीर्वादवाचक और आशंसार्थ

४९५ वां सूत्र

प्रेरणार्थक आशीर्वादवाचक आत्मनेपद का और प्रेरणार्थक आशंसार्थ दोनों पद का अपूर्णपद सामान्य रूपों के प्रेरणार्थक अपूर्णपद से कुछ भिन्नता नहीं रखता परन्तु अय का पिछला अ बढ़ेहुए इ के पहले जो सदा बढ़ना है गिरजाता है परस्मै पद वाले आशीर्वादवाचक में अय और इ दोनों छोड़दियेजाते हैं परन्तु मूल की दूसरी उलटापलटी होती है जैसे बुध् (जान) से प्रेरणार्थक आशीर्वादवाचक बोध्यासम् इत्यादि बोधयिषीय इत्यादि प्रेरणार्थक आशंसार्थ अबोधयिष्यम् इत्यादि अबोधयिष्ये इत्यादि

प्रेरणार्थक भाववाचक

१ ली शाखा

प्रेरणार्थक भाववाचक अ० ए० व० प्रथम भविष्यत से बहुत सरलता के साथ बनसकताहै जैसे ४५९ वें सूत्र में बतायाहै जैसे बुध् (जान) से बोधयिता (वुह जतावेगा) बोधयितुम् (जताना)

प्रेरणार्थक कर्मणिवाच्य

४९६ वां सूत्र

प्रेरणार्थक अपूर्णपद से कर्मणिवाच्य प्रेरणार्थक बनाने में प्रेरणार्थकसम्बन्धी प्रत्यय अय छूटजाताहै परन्तु कर्मणिवाच्यसम्बन्धी प्रत्यय य के पहले दूसरी प्रेरणार्थकसम्बन्धी उलटापलटियां होती हैं

जैसे पत् (गिर्) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद पातय से कर्मणिवाच्य पात्य उ० ए० व० पात्ये (मैं गिरायाजाता हूं) अ० ए० व० पात्यते (वुह गिरायाजाता है) ऐसेही स्था (खड़ा हो) से स्थापयति (वुह खड़ा करताहै) स्थाप्यते (वुह खड़ा·

कियाजाता है) ज्ञा (जान) से ज्ञपयति (वुह जनाता है) और ज्ञप्यते (वुह ज नायाजाताहै)

१ ली शाखा

सामान्य रूपों में पूर्णभूत को छोड़के सब रूपों का अपूर्णपद आत्म० के रूप में वर्तनीसम्बन्धी अय के छूटजाने से पृथकता रखसकता है परन्तु पूर्णभूत में आम् और सहायक क्रिया रखनेवाले विधिपूर्वक रूप का आत्म० (४९० वां और ३८५ वां सूत्र देखो) कर्मणिवाच्य के पलटे आताहै अनियतभूत में विधिपूर्वक ठहरायाहुआ रूप (४९९ वां सूत्र देखो) अपना स्थान आत्म० वाले रूप को देताहै सो पहले ९ गण की उन क्रियाओं में आताहै जिन में इ पड़ता है जैसे भू (हो) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद भावय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत भावयाञ्चके वा भावयामासे वा भावयाम्बभूवे प्रथम भविष्यत भावयिताहे वा भाविताहे द्वितीय भविष्यत भावयिष्ये वा भाविष्ये अनियतभूत अभावयिषि वा अभाविषि अ० ए० पु० अभावि आशीर्वादवाचक भावयिषीय वा भाविषीय आशंसार्थ अभावयिष्ये वा अभाविष्ये

२ री शाखा

ऐसे ही बुध् (जान) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद बोधय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत बोधयाञ्चके (मैं जनाया गयाहूं) इत्यादि प्रथम भविष्यत बोधयिताहे वा बोधिताहे (मैं जनायाजाऊंगा) इत्यादि द्वितीय भविष्यत बोधयिष्ये वा बोधिष्ये इत्यादि अनियतभूत अबोधयिषि वा अबोधिषि (मैं जनायागया) म० अबोधयिष्ठाः वा अबोधिष्ठाः अ० अबोधि इत्यादि

३ री शाखा

ऐसे ही शम् (ठहर) से प्रेरणार्थक अपूर्णपद शमय कर्मणिवाच्य पूर्णभूत शमयाञ्चके वा शमयामासे इत्यादि (मैं ठहरायागया हूं) इत्यादि प्रथम भविष्यत शमयिताहे वा शमिताहे द्वितीय भविष्यत शमयिष्ये वा शमिष्ये अनियतभूत अ-

शमयिपि वा अशमिपि अ० ए० व० अशमि आशीर्वादवाचक शमयिषीय इत्यादि और मूलसम्बन्धी अ इच्छानुसार दीर्घ होसकताहै जैसे प्रथम भविष्यत शमयिताहे वा शामयिताहे इत्यादि

४ थी शाखा

ऐसे ही अक्षापि वा अक्षापि अ० ए० व० अनियतभूत क्षै के प्रेरणार्थक से.

वर्णन

देखो रञ्ज् कन्द् कन्द् और थोड़े दूसरे दुहरा व्यञ्जन अन्त में रखने वाले मूल बिचले अ को इच्छानुसार दीर्घ करते हैं जैसे अनियतभूत अ० ए० व० अराञ्जि वा अराञ्जि

प्रेरणार्थक के इच्छार्थक

४९७ वां सूत्र

जब प्रेरणार्थक और १० वें गण वाली क्रियाएं इच्छार्थक का रूप लेती हैं (२९८ वां सूत्र देखो) तब अय् रखती हैं और सब इष लगने से बनती हैं जैसे पातयामि (मैं गिराता हूं) से पिपातयिषामि (मैं गिरायाचाहता हूं) स्वापयामि (मैं सुलाता हूं) से सुष्वापयिषामि (मैं सुलायाचाहता हूं) चुर् १० वां ग० (चुरा) से चुचोरयिषामि (मैं चुरायाचाहता हूं)

१ ली शाखा

अधी (ऊपर जा पढ़) के प्रेरणार्थक का इच्छार्थक अपूर्णपद अध्यापिपयिष वा अधिजिगापयिष होता है हु (बुला) के प्रेरणार्थक का जुहावयिष माना है। क्ष्म से बनाहो ज्ञा (जान) के प्रेरणार्थक का ज्ञीप्स अथवा यथाविधि जिज्ञापयिष वा जिज्ञपयिष श्रि (सुन) के प्रेरणार्थक का शुश्रावयिष अथवा यथाविधि शिश्रावयिष

इच्छार्थक क्रियाएं

४९८ वां सूत्र

दसों गण का प्रत्येक मूल इच्छार्थक रूप लेसकता है

१ ली शाखा

मूल का यिह रूप अच्छी भाषा में क्रिया की रीति से बहुत नहीं आता है तो भी इच्छार्थक अपूर्णपद से निकलीहुई संज्ञाएं और गुणाक्रियाएं बहुत आती हैं (८० वें सूत्र का १ ला और ८२ वें सूत्र का ७ वां प्रत्यय देखो) वरन कई अनिसृत मूल ऐसे हैं जो इच्छार्थक का रूप लेते हैं और इच्छार्थक का अर्थ नहीं देते ये अनिसृत क्रियाओं के समान हैं और उन्हीं में गिने जाते हैं जो अच्छी संस्कृत भाषा में आसकते हैं जैसे गुप् से जुगुप्स् (दोष लगा) कित् से चिकित्स् (उपाय कर) तिज् से तितिक्ष् (उठा) मन् से मीमांस् (विचार कर) बाधृ वा वधृ से बिभत्स् (अनिच्छा कर)

४९९ वां सूत्र

इच्छार्थक वे अन्त लेते हैं जो २४६ वें सूत्र में बताए हैं उन प्रविनिधियों के साथ जो १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण में आते हैं और इन की वर्तनी परस्मैपद में वा आत्मनेपद में बहुधा अनिसृत क्रिया की वर्तनी से ठहराई जाती है जैसे बुध् १ ला ग० (जान) अनिसृत क्रिया में दोनों वर्तनी लेने से इच्छार्थक में दोनों लेसकताहै जैसे बुबोधिषामि इत्यादि वा बुबोधिषे इत्यादि (मैं जाना चाहता हूं) और लभ् (पा) अनिसृत क्रिया में केवल आत्मनेपदवाली वर्तनी लेने से इच्छार्थक में केवल आत्मनेपदवाली वर्तनी लेताहै जैसे लिप्से (मैं पाया चाहताहूं) इत्यादि.

चार मुख्य रूपों में इसका अपूर्णपद बनाने की रीति

५०० वां सूत्र

मूल के पहले स्वर और व्यञ्जन को दुहराओ और जो अनिसृत क्रिया में इ व इ गा हो (३९२ वें सूत्र से ४१५ वें सूत्र तक देखो) तो बहुधा (सदा नहीं) ऐसे

दुहराएहुए मूल के पीछे इप् पढ़ाओ और थोड़े मूलों के पीछे ईप् पढ़ाओ (३१३ वां सूत्र देखो) और जो अनिमूल क्रिया में इ छूट जाता हो तो केवल स् पढ़ाओ जो ७० वें सूत्र से (परन्तु उसकी ६ठी शाखा देखो) ष् होजाता है ऐसा करने के पीछे अ मिलाओ जैसा १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण में मिलाते हो और उस सूत्र के अनुसार जो उन गणों में लगता है पहला स् या ष् रखनेवाले अन्तों के पहले यिह अ आ होजाता है परन्तु अकेले स् के पहले नहीं

१ ली शाखा

जैसे क्षिप् (फेंक) से अपूर्णपद चिक्षिप्स जैसे चिक्षिप्सा + मि = चिक्षिप्सामि इत्यादि (मैं फेंकाचाहता हूं) परन्तु विद् (जान) में इ बढ़ने से विविदिष से विविदिषा + मि = विविदिषामि इत्यादि आत्मनेपद में इनका अपूर्णपद विविल्स होताहै

२ री शाखा

परन्तु जो थोड़े मूल दूसरे रूपों में इस बढ़ेहुए इ का छूटना चाहते हैं सो इच्छार्थक में उसका बढ़ना चाहते हैं और इसके प्रतिकूल भी और थोड़े मूल इच्छा के अनुगामी होते हैं जैसे वृत् (हो) से विवर्तिषे इत्यादि वा विवृत्सामि इत्यादि (३१२ वें सूत्र से ४१५ वें सूत्रतक सूचीपत्र देखो)

३ री शाखा

व्यञ्जन की दुहरावट २५२ वें सूत्र में जो सूत्र बताए हैं उनके अनुसार होताहै और जो स्वर पहले व्यञ्जन से लगताहै उसकी दुहरावट ४१३ वें सूत्रवाले प्रेरणार्थक अनिपतमूलों के अनुमान से होती है अर्थात् अ आ इ ई ऋ ॠ ऌ ए वा ऐ के पलटे इ दुहरायाजाताहै और उ ऊ वा ओ के पलटे उ दुहरायाजाताहै और जो अव् वा आव् ज् या ओष्ठस्थानी वा अर्द्धस्वर को छोड़के कोई व्यञ्जन पहले रखताहै उसके अ के पलटे भी उ दुहरायाजाताहै जैसे पच् (पका) से २९६ वें सूत्र के अनुसार इच्छार्थक अपूर्णपद पिपक्ष होताहै याच् (मांग) से यियाचिष जीव् (जी)

से जिर्जाविष दृश् (देख) से दिदृक्ष सेव् (सेवा कर) से सिसेविष गै (गा) से जिगास ज्ञा (जान) से जिज्ञास परन्तु युज् (मिला) से युयुक्ष पू (पवित्र कर) से पुपूष बुध् ४ था ग० (जान) से बुभुत्स (२९९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) नु (सराह) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद नावय से नुनावयिष पू (पवित्रकर) के प्रेरणार्थक अपूर्णपद पावय से पिपावयिष

४ थी शाखा

और जो मूल आदि में कोई स्वर रखता है तो भी दुहरावट ४९४ वें सूत्रवाले दूसरे रूप के अनुसार होती है जैसे अश् से अशिश् और इष बढ़ने से अशिशिष ऐसे ही अर्ह् से अर्जिहिष ऊह् से ऊजिहिष ईक्ष् से ईचिक्षिष उन्द् से उन्दिदिष (२१२ वां सूत्र देखो)

वर्णन

दुहरावट में अ के पलटे हलका होने से इ लियाजाताहै (२५२ वें सूत्र की ४ थी शाखा का वर्णन देखो) यिह अ को अबल करने का फलजानपड़ता है

५ वीं शाखा

जो इच्छार्थक अपूर्णपद च्यु (गिर) द्रु (दौड़) प्रु (जा) प्लु (फांद) श्रु (सुन) स्रु (सरके से खैंच) और स्रु (वह) के प्रेरणार्थक से बनाएजाते हैं उन में अ वा आ के पलटे उ वा इ आते हैं जैसे च्यु का प्रेरणार्थक चिच्यावयिष वा चुच्यावयिष

६ ठी शाखा

देखो जब घटाहुआ स् ७० वें सूत्र से ष् होजाता है तब मूल का पहला स् दुहराहुए शब्दभाग के स्वर का प्रभाव नहीं उठाता जैसे सिच् से सिसिक्ष होताहै न सिषिक्ष सेव् से सिसेविष परन्तु स्तु को छोड़के जिससे तुष्टूष होताहै और प्रेरणार्थक के इच्छार्थक को छोड़के जैसे सिध् के प्रेरणार्थक से सिषेधयिष

५०१ ला सूत्र

जैसे तृ (पार हो) से तितरिष वा तितरीष और तितीर्ष भी (५०२ रा सूत्र
[illegible]ो)

१ ली शाखा

[illegible]वान पहले और विचले इ उ ऋ जो अकेले व्यञ्जन के पहले आते हैं तो वह
गुण चाहते हैं परन्तु सदा नहीं
जैसे उख् (जा) से ओचिखिष इष् (चाह) से एषिषिष दिव् (खेल) से दि[illegible]
[illegible]विष नृत् (नाच) से निनर्तिष परन्तु विद् (जान) से विविदिष

२ री शाखा

परन्तु विचले इ और उ को गुण करना बहुधा इच्छानुसार है जैसे मुद् (प्रस-
[illegible] हो) से मुमोदिष वा मुमुदिष क्लिद् (भीग) से चिक्लिदिष वा चिक्लेदिष परन्तु
[illegible] मूल अन्त में इष् रखते हैं जैसे सिष् सो मुख्य हैं (५०२ रे सूत्र की २री
[illegible]खा देखो)

३ री शाखा

इ (जा) और उ (शब्द कर) कोई व्यञ्जन नहीं रखते इसलिए इच्छार्थक का
[illegible]न्द्रसम्बन्धी वर्ण इ के साथ दुहरायाजाता है जैसे ईषिष सो उपसर्ग अधि और
[illegible]ति के साथ आता है ऐसेही ऊषिष

५०२ रा सूत्र

जब किसी मूल का इ छूटजाता है और उसका इच्छार्थक स के साथ बन[illegible]
[illegible]व स जो स्वर अन्त में रखनेवाले मूलों के पीछे आता है तो पिछला इ वा उ
[illegible] होजाता है और ए ऐ वा ओ आ होजाता है ऋ वा ॠ ईर् होजाता है [illegible]
[illegible]ा किसी ओष्ठस्थानी के पीछे ऊर् होजाता है
जैसे चि से चिचीष श्रु से शुश्रूष कृ से चिकीर्ष गै से जिगास तृ से तिर्ती[illegible]

से पुपूर्ष भृ से बुभूर्ष मृ से मुमूर्ष

१ ली शाखा

जब एक व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों के पीछे आताहै तब मूलसम्बन्धी स्वर बहुधा बदला नहीं जाता परन्तु पिछला व्यञ्जन २९६ वें मूल में जो सूत्र बताए हैं उनके अनुसार पहले सीटीयुक्त से मिलजाताहै

जैसे युध् से युयुत्स (२९९ वां सूत्र देखो) दह् से दिधक्ष (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) दुह् से दुधुक्ष भुज् से बुभुक्ष

२ री शाखा

पिछला दीर्घ ऋ ईर् होजाता है और पिछला इव् यू होजाता है वा गुण चाहता है जैसे कृत् से चिकीर्तिषिष सिव् से सुस्यूष वा सिसेविष

३ री शाखा

जो पिछले पांच रूप ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा से १५ वीं शाखा तक बताए हैं उनके अपूर्णपद बनाने के लिए जो मुख्य सूत्र आते हैं उन में से बहुत से इच्छार्थक से भी लगते हैं इसलिए जो मूल ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताए हैं सो बहुधा गुण नहीं चाहते हैं जैसे चुकुचिष इत्यादि

४ थी शाखा

ऐसे ही भ्रज्ज् से बिभ्रक्ष वा बिभर्क्ष वा बिभ्रज्जिष वा बिभर्जिष (३९० वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) मज्ज् और नश् से मिमंक्ष और निनंक्ष (३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा देखो) नह् से निनत्स (३९० वें सूत्र की १५ वीं शाखा देखो) दरिद्रा से दिदरिद्रिष (३९० वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) परन्तु दिदरिद्रास भी होता है कम् से चिकमिष वा चिकामयिष गुप् से जुगोपिष वा जुगोपायिष वा जुगुप्स (३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा देखो)

५०३ रा सूत्र

ये आगे वर्णमाला के अनुसार दूसरे इच्छार्थक अपूर्णपदों का सूचीपत्र है इनमें

थोड़े सूत्रविरुद्ध हैं अट् (घूम) से अटिटिष अट्ट् (लांघ) से अट्टिटिष ऋ (जा) से अरिरिष आप् (पा) से ईप्स ऋध् (वृद्धि पा) से ईर्त्स वा यथाविधि अर्दिधिष ईर्ष्य् (ईर्षा कर) से ईर्ष्यिषिष वा ईर्ष्यियिष ऊर्णु (ढांक) से ऊर्णुनूष वा ऊर्णुनविष वा ऊर्णुनुविष (३९० वें सूत्र की २ री शाखा देखो) चि (जोड़) से चिकीष वा यथाविधि चिचीष् गम् (जा) से जिगांस वा यथाविधि जिगमिष गॄ (निगल) से जिगलिष वा यथाविधि जिगरिष (३७४ वें सूत्र की १७ वीं शाखा देखो) जि (जीत) से जिगीष घस् (खा) से जो अद् का इच्छार्थक होके आता है जिघत्स हन् (मार) से जिघांस हि (भेज) से जिघीष ग्रह् (ले) से जिघृक्ष ह्वे (बुला) से जुहूष तन् (खेंच) से तितांस वा यथाविधि तितनिष तृह् (मार) से तितृक्ष दा (दे) दे (प्यारकर) और दो (काट) से दित्स दृ (सन्मानकर) से दिदरिष दॄ (फाड़) से दिदरिष वा दिदरीष वा दिदीर्ष द्युत् (चमक) से दिद्युतिष वा दिद्योतिष धृ (थांभ) से दिधरिष दिव् (खेल) से दुद्यूष वा यथाविधि दिदेविष धा (रख) और धे (पी) से धित्स दम्भ् (धोका दे) से धिप्स वा धीप्स वा दिदम्भिष पत् (गिर) और प (जा) से पित्स वा पिपतिष पू (पवित्रकर) से पिपविष वा पुपूष प्रछ् (पूछ) से पृच्छिष भृ (उठा) से बिभरिष वा बुभूर्ष मा (नाप) मि (फेंक) मी (मर) और मे (पलट) से मित्स मृज् (मल) से मिमार्जिष वा मिमृक्ष मुच् से मोक्ष (मोक्ष के इच्छाकराने के अर्थ में मोक्ष नहीं तो मुमुक्ष) यु (जोड़) से यियविष वा युयूष राध् (पूराकर) से रित्स रभ् (ले) से रिप्स लभ् (पा) से लिप्स वृ (स्वीकार कर) से विवरिष वा विवरीष वा वुवूर्ष व्रश्च् (काट) से विव्रक्ष शक् (शक्तिमान हो) से शिक्ष श्रि (उपायकर) से शिश्रयिष वा शिश्रीष सन् (पा दे) से सिषास वा सिसनिष स्मि (मुसकरा) से सिस्मयिष स्वृ (शब्दकर) से सिस्वरिष वा सुस्वूर्ष स्वप् (सो) से सुषुप्स

इच्छार्थक के सामान्य रूप

५०४ था सूत्र

पूर्णभूत बढ़ेहुए रूप का होता है जैसा ३८५ वें सूत्र में बताया है अर्थात् जो इच्छार्थक अपूर्णपद ऊपर बनाना बताया है उस में स इष या ईष (५०० वां सूत्र देखो) के साथ आम् बढ़ाके सहायक क्रिया कृ अस् या भू के पूर्णभूत के पहले (३८५ वां सूत्र देखो) बढ़ायाजाता है जैसे पच् (पका) के अपूर्णपद पिपक्ष से पूर्णभूत होता है पिपक्षाञ्चकार (मैंने पकाया या पकाना चाहा) बुध् (जान) के अपूर्णपद बुबोधिष से बुबोधिषाञ्चकार बुबोधिषामास बुबोधिषाम्बभूव (मैंने जाना या जानना चाहा)

१ ली शाखा

सब शेष रूपों में प्रधान सूत्र यह है कि इच्छार्थक अपूर्णपद चाहे स बढ़ने से बने चाहे इष बढ़ने से बने उसके पीछे इ बढ़ने से बनता है परन्तु आशीर्वादवाचक परस्मैपद में नहीं जैसे पच् से प्रथम भविष्यत पिपक्षितास्मि इत्यादि द्वितीय भविष्यत पिपक्षिष्यामि इत्यादि अनियतभूत अपिपक्षिषम् इत्यादि (४१८ वें सूत्र का ४ वाक्य १ ला रूप देखो) आशीर्वादवाचक परस्मैपद पिपक्ष्यासम् इत्यादि आत्मनेपद पिपक्षिषीय इत्यादि आशंसार्थ अपिपक्षिष्यम् इत्यादि ऐसेही विद् (जान) से इष के साथ विविदिष् जैसे प्रथम भविष्यत विविदिषितास्मि द्वितीय भविष्यत विविदिषिष्यामि अनियतभूत अविविदिषिषम् इत्यादि ऐसेही बुबोधिष से प्रथम भविष्यत बुबोधिषितास्मि इत्यादि द्वितीय भविष्यत बुबोधिषिष्यामि अनियतभूत अबुबोधिषिषम् इत्यादि

२ री शाखा

भाववाचक यथाविधि प्रथम भविष्यत से बनता है जैसे बुबोधिषिता (वह जाना या जानना चाहेगा) से बुबोधिषितुम् (जाना या जानना चाहना)

इच्छार्थक का कर्मणिवाच्य

५०५ वां सूत्र

इच्छार्थक इच्छार्थक अपूर्णपद में पिछला अ छोड़ने पर य बढ़ने से कर्मणिवाच्य का रूप लेसकता है जैसे बुबोधिषसे बुबोधिष्ये (मैं जाना वा जानना चाहा जाता हूं) इत्यादि सामान्य रूप इच्छार्थक के कर्तरिवाच्य आत्मनेपद के रूप से पृथक नहीं होते परन्तु अनिश्चतभूत के अ० ए० प्र० में होते हैं जो अबुबोधिषिष्ट के पलटे अबुबोधिषि होता है

इच्छार्थक का प्रेरणार्थक

५०६ ठा सूत्र

इच्छार्थक प्रेरणार्थक का रूप लेसकता है जैसे दिव् (खेल) के इच्छार्थक दुद्यूषा (मैं खेला चाहता हूं) से प्रेरणार्थक दुद्यूषयामि (मैं खिलाया चाहता हूं) इत्या

अधिकतार्थक क्रियाएं

५०७ वां सूत्र

बहुत से मूल अधिकतार्थक का रूप लेसकते हैं परन्तु बहु शब्दमागवाले औ १० वें गण वाले और कई स्वर आदि में रखनेवाले मूल नहीं लेते

वर्णन

परन्तु ऊर्णु (ढांक) दो रूप रखता है ऊर्णोनूय और ऊर्णोनु थोड़े आदि मे रखनेवाले भी अधिकतार्थक का आत्मनेपद वाला रूप लेते हैं (५११ वें सू १ ली और २ री शाखा के और ६८१ वें सूत्र की १ ली शाखा के दृष्टान्त दे

१ ली शाखा.

अधिकतार्थक रूप इच्छार्थक रूप से भी अच्छी भाषा में थोड़ा आता है न्तु वर्तमान गुणक्रियाओं में और संज्ञाओं में बहुत आता है (८० वें सूत्र ६ ठा प्रत्यय देखो) यिद मूलसम्बन्धी अर्थ में दुहरावट वा अधिकता दिखाता

जैसे दीप् (चमक) मे अधिकतार्थक अपूर्णपद देदीप्य होता है वर्तमान अ० पु० ब० देदीप्यते (बहुत चमकाकरताहै वा बहुत चमकता है) और वर्तमान गुणक्रिया देदीप्यमान (चमकाकरताहुआ वा बहुत चमकताहुआ) ऐसेही शुभ् (सुहा) से शोशुभ्य और शोशुभ्यमान रुद् (रो) से रोरुद्य और रोरुद्यमान

५०८ वां सूत्र

अधिकतार्थक दो प्रकार के होते हैं पहला दुहरायाहुआ आत्मनेपद य पीछे ब ढ़ने से बनता है और अकर्मक और कर्मणिवाच्य क्रियाओं के सदृश ४ थे गण की वर्तनी का अनुगामी होता है और सदा नहीं तो बहुधा अकर्मक अर्थ में आताहै दूसरा दुहरायाहुआ परस्मैपद ३ रे गण की वर्तनी का अनुगामी है सो संस्कृत की अच्छी भाषा में पहले अधिकतार्थक से थोड़ा आता है और इसलिये पिछला स- मझाजाता है

१ ली शाखा

पहले रूप वाले अधिकतार्थक के लिये आत्मनेपद वाले अन्त जो २४६ वें सू- त्र में बताए हैं उन विधिपूर्वक प्रतिनिधियों के साथ आते हैं जो ४ थे गण वाली क्रियाओं के लिये आते हैं और २ रे रूप वाले अधिकतार्थक के लिये विधिपूर्वक परस्मैपद वाले अन्त आते हैं जो २४६ वें सूत्र के यंत्र में बताए हैं

आत्मनेपद वाले अधिकतार्थक जो दुहराने और य बढ़ाने से बनते हैं

५०९ वां सूत्र

मुख्य चार रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

कर्मणिवाच्य अपूर्णपद के पहले व्यञ्जन और स्वर को जो सूत्र २५१ वें मूल में व्यञ्जनों को दुहराने के लिये बताए हैं उनके अनुसार दुहराओ और दुहरा- हुए स्वर को चाहे दीर्घ हो चाहे ह्रस्व जो गुण करने के योग्य हो तो गुण करो

जैसे दा (दे) के कर्मणिवाच्य अपूर्णपद दीय से अधिकतार्थक अपूर्णपद देदीय होता है वर्त० उ० देदीये इ = देदीये म० देदीय से = देदीयसे इत्यादि हा (छोड़) के कर्म० अपू० प० हीय से अधि० अपू० प० जेहीय वर्त० उ० जेहीये इत्यादि स्तृ (फैला) के कर्म० अपू० प० स्तीर्य से तेस्तीर्य (और तास्तर्य भी) पू (पवित्र कर) के कर्म० अपू० प० पूय से अधि० अपू० प० पोपूय विद् (जान) के कर्म० अपू० प० विद्य से अधि० अपू० प० वेविद्य बुध् (जान) के कर्म० अपू० प० बुध्य से अधि० अपू० प० बोबुध्य वर्त० उ० बोबुध्ये मो० बोबुध्यसे इत्यादि

इन मुख्य चार रूपों की वर्तनी ठीक कर्मणिवाच्य के मुख्य चार रूपों की वर्तनी के अनुसार है

५१० वां सूत्र

स्वर की दुहरावट में जो कर्मणिवाच्य अपूर्णपद का बिचला वर्ण अ होता है तो आ होजाता है जैसे पच्य से पापच्य स्मर्य से सास्मर्य

१ ली शाखा

जो उसका बिचला आ ए वा ओ होता है तो पूरी दुहराया जाता है जैसे याच्य से यायाच्य सेव्य से सेषेव्य लोच्य से लोलोच्य

२री शाखा

जो बिचला ऋ होता है तो दुहरावट में अरी * होजाता है जैसे दृश्य से दरीदृश्य स्पृश्य से परीस्पृश्य इत्यादि भ्रम् से बरीभ्रम्य भ्रज् से बरीभृज्ज्य ऐसेही कृप् में ऋ के पलटे अली आता है जैसे चलीकृप्य

टीका

* इस से यिह बात पाईजाती है कि ऋ का गुण आदि में अरि था (३९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

५११ वां सूत्र

ध्मीये इत्यादि गृ (निगल.) से जेगिल्य

आत्मनेपदवाले अधिकतार्थक के सामान्य रूप

५१३ वां सूत्र

इन रूपों में अधिकतार्थक कर्मणिवाच्य के अनुगामी होते हैं और प्रत्यय य का छूटना चाहते हैं परन्तु पूर्णभूत का अपूर्णपद पीछे आम् बढ़ने से बनता है जैसा सब बहुत शब्दभागवाले रूपों में बनता है (३८५ वां सूत्र देखो) और दूसरे सब रूपों में बढ़ाहुआ इ आता है इसलिए जिन अवस्थाओं में य् † के पहले पासही कोई स्वर आताहै उन में जो य् नरखाजावे वो स्वरों का मिलजाना प्राप्त होताहै जैसे देदीप्य से पूर्णभूत उ० ए० व० देदीपाञ्चक्रे इत्यादि में य छूटजाताहै परन्तु देदीय से देदीयाञ्चक्रे इत्यादि में य बनारहताहै ऐसे ही दूसरे रूपों में जैसे प्रथम भविष्यत देदीपिताहे देदीयिताहे इत्यादि द्वितीय भविष्यत देदीपिष्ये देदीयिष्ये इत्यादि अनियतभूत अदेदीपिषि अदेदीयिषि इत्यादि आशीर्वादवाचक देदीपिषीय देदीयिषीय इत्यादि आशंसार्थ अदेदीपिष्ये अदेदीयिष्ये इत्यादि अनियतभूत के अ० ए०-व० में इ विधिपूर्वक अन्तों के पलटे नहीं आता जैसा कर्मणिवाच्य में नहीं आता

टीका

† कर्मणिवाच्य में स्वरों की यिह मिलावट नहीं करते इसलिए कि पिछला स्वर वृद्धि पाने से पलटजाता है जैसे चि का चाय् हु का हाय् कृ का कार् और पिछले आ का आय् होजाता है जैसा दा का दाय् (४७४ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

भाववाचक यथाविधि (४५९ वां सूत्र देखो) देदीपितुम् इत्यादि होते हैं

परस्मैपदवाले अधिकतार्थक

५१४ वां सूत्र

चार मुख्य रूपों में अपूर्णपद बनाने की यिह रीति है

इसका अपूर्णपद वैसी ही दुहरावट से बनता है जैसी दुहरावट से अंत
वाले अधिकतार्थक का बनता है परन्तु कर्मणिवाच्य से नहीं बनता है
बनता है जैसे पच् से पापच् विद् से वेविद् दृश् से दरीदृश् कृ से चरीकृ

१ ली शाखा

परन्तु परस्मैपद वाले अधिकतार्थक में ऋ दुहरायाजाने से अरि और अर
अरी होसकता है इसलिए दृश् से दरीदृश् दरिदृश् वा दर्दृश् होते हैं और
चरीकृ वा चरिकृ वा चर्कृ (पा० ७, ४, ९२)

ऐसेही क्लृप् से चलीक्लृप् वा चलिक्लृप् वा चल्क्लृप्

२ री शाखा

फिर अन्त में दीर्घ ॠ रखनेवाले मूलों में ॠ के पलटे आ दुहरायाजात
और यिह आ जब ॠ दूर होजाता है तब भी बनारहता है जैसे कॄ (बखेर
उ० चाकर्मि ब० व० अ० चाकिरति ऐसेही तॄ (पार हो) से तातर्मि और
तिरति

३ री शाखा

परस्मैपद के मुख्य रूपों में ये अधिकतार्थक ३ रे गण की वर्तनी के अनुग
होते हैं और २ रे और ३ रे गण के लिये (३०१ वां और ३३१ वां सूत्र देख
जो सूत्र बनाए हैं उन के अनुसार मूलसम्बन्धी स्वर को २४६ वें सूत्र वाले पंच
ए रखनेवाले अन्तों के पहले गुण होता है इसलिये विद् से दो अपूर्णपद होंगे
वेविद् और वेविद् जैसे वर्तमान वेवेद्मि वेवेत्सि वेवेत्ति द्वि० व० वेविद्व इत्यादि
अपूर्णभूत अवेवेदम् अवेवेत् अवेवेत् अवेविद्व इत्यादि अ० पु० ब० व० अवेविदु
सम्भाव्य वेविद्याम् इत्यादि अनुज्ञार्थ वेवेदानि वेविद्धि वेवेत्तु वेवेदाव वेविद्ध
इत्यादि

४ थी शाखा

फिर जो मिलावट के सूत्र २९६ वें सूत्र से ३०६ ठे सूत्र तक बना हैं उनके अनुसार अपूर्णपद प्रथक्‌ता रखता है जैसे बुध् से वर्तमान बोबोधिम बोभोत्सि बोबोद्धि बोबुध्वः इत्यादि (२९८ वां सूत्र देखो) ऐसही वह् से अ० ए० व० वावोढि (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) दुह् से दोदोग्धि (३०५ वां सूत्र देखो) नह् से नानद्धि (३०५ वें सूत्र की टीका देखो) द्रुह् से दोद्रोढि वा दोद्रोग्धि और स्निह् से सेष्णोढि वा सेष्णोग्धि (३०५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

५ वीं शाखा

२ रे गण के अधिक अनुमान पर (३१३ वां और ३१४ वां सूत्र देखो) दीर्घ ई बहुधा प् वाले व्यञ्जनादि अन्तों के पहले इच्छानुसार बढ़ता है जैसे वर्तमान वेवेदीमि वेवेदीपि वेवेदीति द्वि० व० वेविद्वः इत्यादि अपूर्णभूत अवेवेदम् अवेवेदीः अवेवेदीत् अवेविद्व इत्यादि अनुमत्यर्थ वेवेदानि वेविद्धि वेवेदीतु

५१५ वां सूत्र

जो मूल अन्त में कोई स्वर रखता है तो इ और ई की य् और इय् के साथ और उ और ऊ की उव् के साथ और ऋ की र् के साथ यथाक्रम विधिपूर्वक उलटापलटी होती है (३१२ वां सूत्र देखो) जैसे मूल भी भू कृ से वर्तमान उ० पु० व० वेभेमि बोभोमि चर्करमि अ० व० व० वेभ्यति बोभुवति चर्कति

१ ली शाखा

देखो बहुत सी सूत्रविरुद्ध बनावटें आत्मनेपद के अधिकतार्थकों में बताई हैं सो परस्मैपद के अधिकतार्थकों में भी आती हैं जैसे पद् से (५१२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) परस्मैपद में पनीपद्मि पनीपत्सि पनीपत्ति इत्यादि होते हैं और ऐसही दूसरे मूलों से जो ५१२ वें सूत्र की २ री शाखा में बताए हैं

२ री शाखा

हन् (मार) गॄ (निगल) ५१२ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) और थोड़े दूसरे एक प्रथक परस्मैपद वाला रूप रखते हैं जैसे जङ्घन्मि जागर्मि पिढ पिठला

वैसा ही है जैसा आस् का वर्तमान होता है

परस्मैपदवाले अधिकतार्थकों के सामान्य रूप

५१६ वां सूत्र

पूर्णभूत बहुत शब्दभागवाले मूलों के लिए जो विधिपूर्वक सूत्र ३८५ वें सूत्र में बनायाहै उसका अनुगामी होता है और सहायक क्रिया के साथ प्रत्यय आम् बढ़ने से बनता है जैसे बुध् (जान) से बोबुधामास बोबुधाम्बभूव बोबुधाञ्चकार विद् (जान) से वेविदामास आम् के पहले पिछले स्वर को और कभी पिछले वर्ण के पहले स्वर को गुण होताहै जैसे भू से बोभू बोभवामास ऐसे ही दृत् से वावर्तामास आशीर्वादवाचक को छोड़के दूसरे रूपों में इ सदा बढ़ताहै और इस बढ़े हुए इ के पहले कोई१ भूत भविष्यत इत्यादि में मूलसम्बन्धी स्वर को विधिपूर्वक गुण नहीं चाहते हैं जैसे बुध् से बोबुधितास्मि भी (डर) से बेभ्यितास्मि इत्यादि (३७४ वां सूत्र देखो) द्वितीय भविष्यत बोबुधिष्यामि बेभिष्यामि इत्यादि अनियतभूत अबोबुधिषम् अबेभायिषम् इत्यादि आशीर्वादवाचक बोबुध्यासम् बेभीयासम् इत्यादि आशंसार्थ अबोबुधिष्यम् अबेभियिष्यम् इत्यादि परन्तु मूलसम्बन्धी शब्दभाग को गुण न करना भ्रम रहित नहीं है जैसे भू (हो) से अच्छे व्याकरणियों की मति के अनुसार बोभविताम्मि इत्यादि होते हैं

१ ली शाखा

भावदर्शक प्रथम भविष्यत से यथाविधि बनता है (५११ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

अधिकतार्थकों के कर्मणिवाच्य प्रेरणार्थक इच्छार्थक और इच्छार्थक प्रेरणार्थक रूप

५१७ वां सूत्र

अधिकतार्थक ये सब रूप लेसकते हैं जब मूल अन्त में कोई व्यञ्जन रखताहै तब कर्मणिवाच्य वैसाही होताहै जैसा आत्म० वाला अधिकतार्थक जो दुहराने और प्रत्यय य बढ़ने से बनता है जैसे अधिकतार्थक अपूर्णपद तोतुद (पीटाकर) से तोतुद्ये (मैं पीटाजायाकरताहूं) परन्तु लू (काट) के अधिकतार्थक अपूर्णपद लोलूय से लोलूय्ये इत्यादि फिर तोतुद से तोतुदयामि (मैं पिटवायाकरता हूं) तोतुदिषामि (मैं पीटाचाहाकरता हूं) तोतुदयिषामि (मैं पिटवायाचाहाकरता हूं)

५ वीं शाखा

आत्म०वाले अधिकतार्थक का य जो पहले कोई व्यञ्जन आताहै तो छोड़दियाजाताहै परन्तु जो उसके पहले कोई स्वर आताहै तो नहीं छोड़ाजाता है जैसे लू (काट) के अधिकतार्थक अपूर्णपद लोलूय से लोलूयिषामि (मैं काटा चाहा करता हूं) (२५२ वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो)

संज्ञासम्बन्धी वा नामवाचक क्रियाएं अर्थात् वे क्रियाएं जो नाम से बनाईजाती हैं

५१८ वां सूत्र

ये क्रियाएं नामों के अपूर्णपद में नियत प्रत्ययों के बढ़ाने से बनती हैं ये बहुत नहीं आतीं परन्तु मनकल्पित रीति से इन की बनावट का कुछ अन्त नहीं है इन के प्रकार इनके अर्थ के अनुसार होते हैं पहले प्रकार की सकर्मक संज्ञासम्बन्धी कहलाती हैं सो जिस नाम से बनाईजाती हैं उसके अर्थ को करने बनाने रखने वा काम में लाने का अर्थ देती हैं दूसरे प्रकार की अकर्मक संज्ञासम्बन्धी कहीजाती हैं सो जिस नाम से बनाईजाती हैं उसके अर्थ को चलने वा होने वा बनने का अर्थ देती हैं तीसरे प्रकार की इच्छार्थक संज्ञासम्बन्धी कहलाती हैं सो जिस नाम से बनाईजाती हैं उसके अर्थ को चाहने का अर्थ देती हैं परन्तु जिन प्रत्ययों के साथ ये बनाई जाती हैं उनके अनुसार इनको पांच प्रकार की कहना सरल जान पड़ताहै जैसे आगे

५१९वां सूत्र

पहले प्रकार की वे हैं जो नामसम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे उसके पिछले स्वर को जो गुण करने के योग्य होता है तो गुण करके अ बढ़ाने से बनाईजाती हैं और फिर अ म् वा ब् पहले रखनेवाले शब्दभाग के पहले आ होजाता है और जो मूल अन्त में अ रखता है तो उसका फिर अ प्रत्यय अ का स्थान लेता है और पिछला आ उस प्रत्यय के साथ मिलजाता है

वर्णन

दसों संज्ञासम्बन्धी क्रियाओं के लिये अन्त वेही आते हैं जो दोनों परस्मैपद और आत्मनेपद के लिये २४६ वें सूत्र वाले यंत्र में बताए हैं और जो प्रतिनिधि १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण में आते हैं सो इन में भी आते हैं

१ ली शाखा

जैसे कृष्ण से वर्तमान उ० कृष्णामि (मैं कृष्ण के अनुसार चलता हूं) म० कृष्णासि अ० कृष्णाति इत्यादि ऐसेही कवि (कविता बनानेवाला) से वर्तमान उ० कवयामि (मैं कवि के अनुसार चलता हूं) म० कवयासि इत्यादि पितृ (पिता) से वर्तमान उ० पितरामि (मैं पिता के अनुसार चलता हूं) म० पितरासि अ० पितराति आत्मनेपद वर्तमान उ० पितरे इत्यादि माला (हार) से वर्तमान उ० मालामि म० मालासि अ० मालाति अपूर्णभूत उ० अमालाम् म० अमालाः इत्यादि गनपर्थ मालेयम् इत्यादि स्व (आप) से वर्तमान अ० स्वति (वुह अपने अनुसार चलता है) कभी २ पिछले इ वा उ को गुण नहीं होता जैसे कवि से वर्तमान कव्यामि कव्यासि इत्यादि (पा० ७. ४.३९.)

अनुनासिक अन्त में रखनेवाले शब्द अनुनासिकों को पता गवते हैं और उनके पहले स्वरों को दीर्घ करते हैं जैसे राजानति (वुह राजा के अनुसार चलता है) पथीनति (वुह मार्ग बनता है) इदामति (वुह फिर बनता है)

५२० वां सूत्र

दूसरे प्रकार की वे हैं जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे य बढ़ाने से बनाई जाती हैं

१ ली शाखा

जो शब्द अन्त में कोई व्यञ्जन रखता है उसके पीछे य बढ़ता है और कुछ उलटापलटी नहीं होती जैसे वाच् (बोली) से वाच्यति (वुह बोली चाहता है दिव् (स्वर्ग) से दिव्यति (वुह स्वर्ग चाहता है) (वा किसीरे की मति के अनुसार दीव्यति) तपस् (तप) से तपस्यति (वुह तप करता है) नमस् (नमस्कार) से नमस्यति (वुह नमस्कार करता है) पिछला न् गिरजाता है और तब दूसरा सूत्र लगता है जैसे राजन् (राजा) से वर्तमान उ० राजीयामि शत्यर्थ राजीयेयम् धनिन् (धनवान) से धनीयामि इत्यादि

२ री शाखा

पिछला अ वा आ बहुधा ई होजाता है पिछला इ वा उ दीर्घ होजाता है पिछला ऋ री से पलटजाता है और ओ अव् से और औ आव् से जैसे

पुत्र (बेटा) से वर्तमान उ० पुत्रीयामि (मैं बेटा चाहता हूं) म० पुत्रीयसि इत्यादि पति (पति) से वर्तमान उ० पतीयामि (मैं पति चाहती हूं) इत्यादि ऐसेही मातृ (मा) से मात्रीयामि इत्यादि

३ री शाखा

संज्ञासम्बन्धी क्रिया का यिह रूप सदा इच्छार्थक का अर्थ नहीं देता ये आगे आनेवाले उसके दूसरे अर्थों के दृष्टान्त हैं इनमें से कई दूसरे प्रकार के हैं प्रासादीयति (वुह आप को राजमन्दिर में समझताहै) कवीयति (वुह कवि बनताहै) कण्डूयति वा कण्डूयते (वुह खुजाता है) मन्तूयति वा मन्तूयते (वुह पाप करता है वा क्रोध करता है) मित्रीयते (वुह मित्र बनता है) पुत्रीयति छात्रम् (वुह शिष्य को पुत्र सा चाहताहै) विष्णूयति द्विजम् (वुह द्विज को विष्णु समझता है) निरस्यति (वुह मिटता है) गव्यति (वुह गाय ढूंढताहै) गो (गाय) से

४ थी शाखा

किसी के अनुसार चलने बनाने वा करने के अर्थ में पिछला अ बहुधा दीर्घ होजाता है पिछला आ बनारहता है और पिछला न् स् वा त् गिरजाताहै जैसे पण्डित (पढ़ा लिखा मनुष्य) से वर्त० उ० पण्डिताये (मैं पण्डित बनताहूं) म० पण्डितायसे अ० पण्डितायते इत्यादि द्रुम [पेड़] से वर्त० उ० द्रुमाये इत्यादि शब्द (बोल) से वर्त० उ० शब्दाये (मैं शब्द करता हूं) राजन् (राजा) से वर्त० उ० राजाये इत्यादि उन्मनस् (उदास) से वर्त० उ० उन्मनाये इत्यादि बृहत् (बड़ा) से वर्त० उ० बृहाये इत्यादि

५ वीं शाखा

ये संज्ञासम्बन्धी क्रियाएं कभी २ सकर्मक के अर्थ में आती हैं विशेषकरके जब रंग का अर्थ रखनेवाले नामों से बनती हैं जैसे कृष्ण (काला) से कृष्णायते वा कृष्णायति (वुह काला करताहै) और कभी २ परस्मैपद में अकर्मक के अर्थ में आती हैं जैसे जिह्म (टेढ़ा) से जिह्मायति (वुह टेढ़ा होताहै) दास (चेला) से दासायति (वुह चेला बनता है)

५२१ वां सूत्र

तीसरे प्रकार की वे हैं जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे अय बढ़ाने से बना ई जाती हैं

यिह रूप वैसा ही है जैसा प्रेरणार्थक और दसवें गणवाली क्रियाओं का होताहै और कभी२ उसके साथ ऐसा मिलताहै कि पहचाना नहीं जाता बहुधा उन के अनुसार कर्तरिवाच्य का अर्थ देता है अय के पहले पिछला स्वर गिरजाताहै और जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद एक से अधिक शब्दभाग रखता है और अन्त में कोई व्यञ्जन तो वुह व्यञ्जन और उसका पहला स्वर दोनों गिरादिये जाते हैं

१ ली शाखा

जैसे वस्त्र (कपड़ा) से वर्त० उ० वस्त्रयामि (मैं कपड़ा पहनताहूं) म० वस्त्रयसि

की माति के अनुसार पिचला शब्दभाग दुहराया जासकताहै जैसे पुतिविषिप

गुणक्रियाएं

परस्मैपदवाली वर्तमान गुणक्रियाओं की बनावट

५२४ वां सूत्र

वर्तमान गुणक्रियाएं केवल वे गुणक्रियाएं हैं जिन की बनावट क्रिया के वर्तनीसम्बन्धी गण से सम्बन्ध रखती है परस्मैपद में उनका अपूर्णपद बहुत सरलता के साथ परस्मैपदवाले वर्त० के अ० ब० व० का पिछला इ गिराने से और कई अवस्थाओं में अनुनासिक छोड़ने से बनता है (१४१ वें सूत्र की १ ली शाखा और ८४ वें सूत्र का १ ला प्रत्यय देखो)

जैसे १ ले गणवाले पच् (पका) के वर्त अ० ब० व० पचन्ति (वे पकाते हैं) से पचत् (पकाताहुआ) २ रे गणवाले हन् (मार) के वर्त० अ० ब० व० घ्नन्ति (वे मारते हैं) से घ्नत् (मारताहुआ) २ रे गणवाले अस् (हो) के वर्त० अ० ब० व० सन्ति (वे होते हैं) से सत् (होताहुआ) २ रे गण वाले इ (जा) के वर्त० अ० ब० व० यन्ति (वे जाते हैं) से यत् (जाताहुआ) २ रे गणवाले या (जा) के वर्त० अ० ब० व० यान्ति (वे जाते हैं) से यात् (जाताहुआ) ३ रे गणवाले हु (हवनकर) के वर्त० अ० ब० व० जुह्वति (वे हवन करते हैं) से जुह्वत् (हवन करता हुआ) ४ थे गणवाले नृत्यन्ति (वे नाचते हैं) से नृत्यत् (नाचताहुआ) ५ वें गणवाले चिन्वन्ति (वे चुनते हैं) से चिन्वत् (चुनता हुआ) ५ वें गणवाले आप्नुवन्ति (वे पाते हैं) से आप्नुवत् (पाताहुआ) ६ ठे गणवाले तुदन्ति (वे मारते हैं) से तुदत् (मारता हुआ) ७ वें गणवाले रुन्धन्ति (वे रोकते हैं) से रुन्धत् (रोकताहुआ) ८ वें गणवाले कुर्वन्ति (वे करते हैं) से कुर्वत् (करताहुआ) ९ वें गणवाले पुनन्ति (वे पवित्र करते हैं) से पुनत् (पवित्र करताहुआ)

५२५ वां सूत्र

निमृत और संज्ञासम्बन्धी क्रियाओं में भी यिही सूत्र काम आता है जैसे प्रे-
णार्थक बोधयन्ति (वे जताते हैं) से (४७१ वां सूत्र देखो) बोधयत् (जताता
हुआ) इच्छार्थक बुबोधिषन्ति से (४९९ वां सूत्र देखो) बुबोधिषत् (जताया
चाहताहुआ) दित्सन्ति से (५०३ रा सूत्र देखो) दित्सत् (दियाचाहताहुआ)
अधिकतार्थक चेक्षिपति [बुहु फेंका करता है या बहुत फेंकता है] से चेक्षिपत् [
फेंकाकरताहुआ या बहुत फेंकताहुआ] संज्ञासम्बन्धी कृष्णन्ति (वे कृष्ण के अनु-
सार चलते हैं) से कृष्णत् (कृष्ण के अनुसार चलताहुआ) तपस्यन्ति [वे तप क-
रते हैं] से तपस्यत् (तप करताहुआ)

१ ली शाखा

२६१ वें सूत्र की ३ री शाखा में जो बात बताई है उस के अनुसार थोड़े द-
शन्तों में कर्मणिवाच्यक्रिया परस्मैपद वाली वर्तनी ग्रहण करती है और बहुतसी
चौथे गण वाली अकर्मक क्रियाएं (झटका छोड़के) कर्मणिवाच्य के इस रूप के
समान समझी जाती हैं इस से यिह बात निश्चय होती है कि परस्मैपद वाली व-
र्तमान गुणक्रिया कर्म२ कर्मणिवाच्य के अपूर्णपद दृश्य से दृश्यत् (देखा जाता
हुआ) और चि के कर्मणिवाच्य अपूर्णपद चीय से चीयत् (चुनाजाताहुआ)
होसकती है

२ री शाखा

परस्मैपद वाली वर्तमान गुणक्रियाओं की वर्तनी १४१ वें सूत्र में बताई है इस
गुणक्रिया की पहली पांच अथवा सबल वर्तनियां (१३५ वें सूत्र की १ ली शाखा
देखो) वर्तनीसम्बन्धी ९नों गणों में अनुनासिक बनारखती हैं यिह दिखाने के लिए
कि तीसरे गण वाली और थोड़ी दूसरी क्रियाओं को छोड़के (१४१ वें सूत्र की
१ ली शाखा देखो) उन सब गणों में अपूर्णपद अन्त में अन्त् और अत् भी र-
खता है परस्मैपद वाला अधिकतार्थक भी तीसरे गण के लिये जो वर्तनीसम्बन्धी
नियम बनाया है उस के अनुसार अनुनासिक छोड़देता है

आत्मनेपद वाली वर्तमान गुणक्रियाओं के अपूर्णपद की बनावट

(५२६ वां सूत्र)

न्ते के पलटे जो १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण वाली और निमित्त क्रियाओं के आत्मनेपदवाले वर्तमान अ० व प० का अन्त है (५२७ वां और ५२ वां आगे आनेवाले सूत्र देखो) मान लाने से और अते के पलटे जो दूसरे गण की क्रियाओं के आत्मनेपद वाले वर्तमान अ० व ब० का अन्त है (२३६ वां सूत्र देखो) आन लाने से अपूर्णपद बनताहै जैसे

पचन्ते (पच् १ला ग०) से पचमान (पकाताहुआ) तिष्ठन्ते (स्था १ ला ग०) से तिष्ठमान (खड़ाहोताहुआ) नृत्यन्ते (नृत् ४ था ग०) से नृत्यमान लिम्पन्ते (लिप् ६ ठा ग०) से लिम्पमान

१ ली शाखा

परन्तु ब्रुवते (ब्रू २ रा ग०) से ब्रुवाण (५८ वां सूत्र देखो) निघ्नते (हन् नि के साथ २ रा ग०) से निघ्नान दधते (धा ३ रा ग०) से दधान चिन्वते (चि ५वां ग०) से चिन्वान युञ्जते (युज् ७वां ग०) से युञ्जान कुर्वते (कृ ८वां ग०) से कुर्वाण पुनते (पु ९वां ग०) से पुनान आस् (२ रा ग०) (बैठ) से आसान के पलटे आसीन और शी (२ रा ग०) से अ० व० ब० शेरते होता है (३१५ वां सूत्र देखो) परन्तु वर्तमान गुणक्रिया शयान होती है

वर्णन

देखो आत्मनेपद वाली वर्तमान गुणक्रिया के लिये ठीक प्रत्यय मान आताहै सो म् छूटजाने से आन रहगयाहोगा (५८ वां सूत्र देखो)

५२७वां सूत्र

दसों गण वाली और प्रेरणार्थक क्रियाएं मान चाहती हैं जैसे बोधयन्ते से

बोधयमान परन्तु कभी २ आन भी आता है जैसे दर्शयन्ते से दर्शयान वेदयन्ते से वेदयान चिन्तयन्ते से चिन्तयान पूजयन्ते से पूजयान।

५२८ वां सूत्र

कर्मणिवाच्य इच्छार्थक अधिकतार्थक इत्यादि क्रियाएं आत्मनेपद के लिये मान चाहती हैं जैसे क्रियन्ते (वे कियेजाते हैं) से क्रियमाण (कियाजाताहुआ) ५८ वां सूत्र देखो) दीयन्ते (वे दियेजाते हैं) से दीयमान (दियाजाताहुआ) इच्छार्थक दित्सन्ते (वे दियाचाहते हैं) से दित्समान (दियाचाहताहुआ) जिघांसन्ते (वे माराचाहते हैं) से जिघांसमान (माराचाहताहुआ) अधिकतार्थक बोबुध्यन्ते (वे जाना करते हैं) से बोबुध्यमान (जानाकरताहुआ)

५२९ वां सूत्र

आत्मनेपदवाली वर्तमान गुणक्रियाओं की वर्तनी विशेषणों की वर्तनी के अनुसार है (१८७ वां सूत्र देखो) जैसे १ वि० ए०व० पु० स्त्री० न० पचमानः पचमाना पचमानम्

भूतगुणक्रियाएं

कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रियाओं के अपूर्णपदों की बनावट

५३० वां सूत्र

यिह गुणक्रिया सब गुणक्रियाओं से बहुत आती है और बहुत काम की है बहुधा इसका अपूर्णपद स्वर अन्त में रखनेवाले मूलों में और बहुत से व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूलों में त बढ़ने से बनता है जैसे या (जा) से यात (गयाहुआ) जि (जीत) से जित (जीताहुआ) नी (मार्ग दिखा) से नीत (मार्ग दिखायाहुआ) क्षिप् (फेंक) से क्षिप्त (फेंकाहुआ) कृ (कर) से कृत (कियाहुआ) (८० वें सूत्र का १७ वां प्रत्यय देखो)

परन्तु जो मूल अन्त में ऋ रखता है उस में ण से पलटनेवाला न बढ़ने से (५८ वां सूत्र देखो) जैसे कृ (बखेर) से कीर्ण (बखेराहुआ) [५३१ वां सूत्र देखो]

५३१ वां सूत्र

थोड़े आ ई और ऊ अन्त में रखनेवाले और थोड़े दो व्यञ्जन के पीछे ऐ अन्त में रखनेवाले और द् र् ज् अन्त में रखनेवाले मूलों में से थोड़े और ग् अन्त में रखनेवाला एक (लग्) और एक वा दो च् वा छ् अन्त में रखनेवाले मूल भी [५४१ वां और ५४४ वां सूत्र देखो] त के पलटे न लेते हैं [८० वें सूत्र का २४ वां प्रत्यय और ५१२ वां ५३६ वां ५४० वां इत्यादि सूत्र देखो)

५३२ वां सूत्र

जो मूल अन्त में स्वर रखते हैं सो भविष्यतों में अधिक इ चाहते हैं [३९१ वां ३९५ वां इत्यादि सूत्र देखो] तो भी इस गुणक्रिया में वे इ नहीं चाहते परन्तु मूल में त वा न का बढ़ना चाहते हैं जैसे पा (बचा) से पात (बचायाहुआ) श्रि (आश्रय ले) से श्रित श्रु (सुन) से श्रुत भू (हो) से भूत कृ [कर] से कृत घ्रा [सूंघ] से घ्राण [५८ वां सूत्र देखो] डी (उड़) से डीन दी [बिगड़] से दीन मी [मर] से मीन ली [मिल] से लीन ह्री (लजा) से ह्रीण लू (काट) से लून दु (दुख पा) से दून श्वि [सूज] से शून

१ ली शाखा

परन्तु जब वे इ रखते हैं तब पिछले स्वर को गुण होता है जैसा भविष्यत में जैसे शी (लेट) से शयित पू (पवित्र कर) से पवित और पूत भी और जागृ (जाग) से जागरित

५३३ वां सूत्र

कई अवस्थाओं में मूल का पिछला स्वर पलटजाता है जैसे आ अन्त में रखने वाले कुछ मूल त के पहले आ का इ होना चाहते हैं जैसे स्था (खड़ा हो) से स्थि

त मा (नाप) से मित दरिद्रा (दरिद्री हो) से दरिद्रित

१ ली शाखा

धा (रख) से. हित और दा (दे) से दत्त

वर्णन

देखो जब दत्त के पहले उपसर्ग आते हैं तब पहला द छूट जासकताहै जैसे आत्त पलटे आदत्त (लियाहुआ) के प्रत्त पलटे प्रदत्त (दियाहुआ) के व्यात्त पलटे व्यादत्त (फैलाया हुआ) के नीत्त पलटे निदत्त (देदियाहुआ) के परीत्त पलटे परिदत्त (सौंपाहुआ) के सूत्त पलटे सुदत्त (अच्छा दियाहुआ) के इ और उ दीर्घ होजाते हैं

२ री शाखा

पा (पी) से पीत परन्तु हा (छोड़) से हीन और ज्या (जीर्ण हो) से जीन हा (जा) से हान

३ री शाखा

पीछे आ अन्त में रखनेवाले मूल न और त दोनों चाहते हैं जैसे मा (मूंप) माण और मात वा (बह) से उपसर्ग निर् के साथ निर्वाण और निर्वात श्रा वा (पका) से श्राण वा श्रित

५३४ वां सूत्र

ऋ अन्त में रखनेवाले मूल न के पहले जो ५८ वें सूत्र से ण होजाता है ऋ का ईर् मे पलटना चाहते हैं जैसे तॄ (पार हो) से तीर्ण परन्तु जब कोई ओष्ठ्यध्वनि ही पहले आताहै तब ऋ ऊर् होजाता है जैसे पॄ वा पूर् से पूर्न वा पूर्ण (भरा हुआ)

५३५ वां सूत्र

पै (पूस) से पीन हृ (बुला) से हूत वे (बुन) से उत व्ये (ढांक) से वीत (महाकर) से मित

५३६ वां सूत्र

ऐ अन्त में रखनेवाले मूल म या न के पहले बहुधा ऐ का आ होना चाहते हैं जैसे म्लै (कुम्हला) से म्लान ध्यै (ध्यान कर) से ध्यान (और वेद में धीत) दै (पवित्र कर) से दान धै (छूना) से त्राण या त्रात स्त्यै (मोटा हो) से स्त्यान इत्यादि

१ ली शाखा

परन्तु गै (गा) से गीत मै (बिगाड़) से मीत क्षै (बिगाड़) से क्षाम (५४८ वां सूत्र देखो) श्यै (जम) से शीत या शीन या श्यान स्त्यै (जोड़) से स्त्यान प के साथ (स्तीत या स्तीम)

५३७ वां सूत्र

चार या पांच मूल अन्त में ओ रखते हैं तो (बिगाड़) से सित और सि (बां-ध) से भी सित शो (पैना) से शित या शात दो (बांध) से दित छो (काट) से छात या छित ज्यो (सिखा) से जीन

५३८ वां सूत्र

जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं और पिछले पांच रूपों में इ का बढ़ना चाहते हैं [३९९ वां सूत्र देखो] तो बहुधा उसका बढ़ना कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया में भी चाहते हैं परन्तु सदा नहीं (५४२ वां सूत्र देखो) और जब इ बढ़ता है तब बहुधा त आताहै न नहीं आताहै जैसे पत् [गिर] से पतित (गिरा हुआ)

१ ली शाखा

जब इ उ या ऋ किसी मूल के पिछले व्यञ्जन के पहले आताहै तब कभी र गुण चाहताहै विशेषकरके तब जब यिह गुणक्रिया पुरुष के लिए नहीं आती जैसे स्विद् [प्रसेवदे] से स्वेदित या स्विन्न क्ष्विद् [चिकना] से क्ष्वेदित या क्ष्विण्ण द्युत् (च-मक) से द्योतित या द्युतित मृष् (सह) से मर्षित मृष् (छिड़क) से मृष्ट [वाक्य रचना में ८९५ वां सूत्र देखो]

२ री शाखा

ग्रह् (ले) इ का दीर्घ होना चाहताहै जैसे गृहीत (३९९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

५३९ वां सूत्र

जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं और पिछले पांच रूपों में इस इ का छूटना चाहते हैं (४०० वें सूत्र से ४१५ वें सूत्र तक देखो) सो बहुधा कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया में उस इ को छोड़देते हैं वे त के साथ संन्धि के सूत्रों से मिलाएजाते हैं जो ३९६ वें इत्यादि सूत्रों में बताए हैं इसलिए जो उलटापलटी पिछला व्यञ्जन प्रथम भविष्यत के अन्त ता के पहले सहता है (४०० वें सूत्र से ४१५ वें सूत्र तक देखो) सोही उलटापलटी वुह इस गुणक्रिया के त के पहले सहता है ऐसी किसी अवस्थाओं में जो ता का पिछला आ ह्रस्व होजाता है और मूलसम्बन्धी स्वर कुछ उलटापलटी नहीं उठाता तो इस गुणक्रिया का रूप प्रथम भविष्यत ए० व० वाले अ० के रूप के सदृश होताहै जैसे ४०० वें सूत्र से ४१५ वें सूत्र तक जो मूल बताएहैं उन में से थोड़े आगे लिखके दिखाते हैं शक् (शक्ता) शक्त सिच् (सेक्ता) सिक्त मुच् (मोक्ता) मुक्त त्यज् त्यक्त युज् युक्त सृज् सृष्ट मृज् औ मृग् मृष्ट सिध् सिद्ध बुध् बुद्ध युध् युद्ध क्षिप् क्षिप्त लुप् लुप्त सृप् सृप्त क्लृप् क्लृप्त लभ् लब्ध लुभ् लुब्ध विश् विष्ट दृश् दृष्ट कुश् क्रुष्ट द्विष् द्विष्ट वुष् दुष्ट रुष् रुष्ट दुह् दुग्ध सह् सोढ (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) नह् नद्ध (३१४ वां देखो) गाह् गाढ (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) लिह् लीढ दिह् दिग्ध स्निह् स्निग्ध रुह् रूढ मुह् मूढ वा मुग्ध (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) द्रुह् द्रुग्ध गुह् गूढ (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो)

५४० वां सूत्र

इनसे द् अन्त में रखनेवाले मूल इ का बढ़ना नहीं चाहते (४०५ वां सूत्र देखो) सो न के पलटे न लेते हैं और ४७ वें सूत्र के अनुसार न से मिलते हैं जैसे

पद् (जा) से पन्न विद् (जान) से विन्न और वित्त भी नुद् (पेल) से नुन्न और नुत्त भी भिद् (तोड़) से भिन्न सद् (बैठ डूब) ने सन्न नि के साथ निषण्ण (७० वां और ५८ वां सूत्र देखो) क्षुद् (कूट) से क्षुण्ण छृद् (खेल वमनकर) से छृण्ण अद् (खा) से अन्न (जो जग्ध इसके पलटे न आवे) ह्लाद् (प्रसन्न कर) से ह्लन्न

५४१ वां सूत्र

जो मूल अन्त में ष् वा ज् रखते हैं सो त के पहले इस वर्ग का क् से पलटना चाहते हैं (५३९ वें सूत्र के दृष्टान्त देखो) ऐसे ही जो मूल न चाहते हैं सो न के पहले च् और ज् का ग् से पलटना चाहते हैं जैसे नज् (लजा) से नग्न (लजाया हुआ] विज् (कांप) से विग्न रुज् [तोड़] से रुग्ण स्फुर्ज् (गरज) से स्फूर्ण अञ्च् (चल) से किसी २ अर्थ में अक्न ऐसे ही मज्ज् (डूब) से एक ज् छूटजाने पर मग्न लज्ज् (लजा) से लग्न और लज्जित भी लग् (लग) से लग्न परन्तु स्फुर्छ् (भूल) से स्फूर्ण ह्वृछ् (टेढ़ा हो) से ह्वूर्ण

५४२ वां सूत्र

जो मूल अवश्य वा इच्छानुसार प्रथम वा द्वितीय भविष्यत में इ का बढ़नाचाहते हैं सो इस गुणक्रिया में नहीं चाहते जैसे धृष् (ढियाव कर) से धृष्ट (पा० ७,२ २४) के अनुसार अर्द् (चल) से अर्ण्ण उपसर्ग सम् नि और वि के साथ और दूसरी प्रत्येक अवस्था में अर्दित होता है ऐसा कि आ पहले आने पर आर्दित हो जाता है-आर्त (दुख दियाहुआ) को कोई कहते हैं कि ऋत है मूल ऋ से उपसर्ग आ पहले आने से बना है और कोई कहते हैं कि मूल अर्द् से सूत्रविरुद्ध बना है और अर्त्त को कोई कहते हैं कि ऋत् से बना है दृह् (दृढ़कर) से दृढ बृह् (सराह) से दृढ मद् (मतवाला हो) से मत्त दीप् [चमक] से दीप्त नश् (मर) से नष्ट मुर्छ् (मूर्छित हो) से मूर्त्त और मूर्छित म्लेछ् (बनैलेपन से बोल) से म्लिष्ट और म्लेच्छित नृत् (नाच) से नृत्त यत् (श्रमकर) से यत्त

५४३ वां सूत्र

जो कर्मणिवाच्य अपूर्णपद बनाने में (४७१ वां सूत्र देखो) व् वा य् किसी का उ वा इ से पलटता है तो कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया में भी पलटता है जैसे वच् (कह) से उक्त वद् (बोल) से उदित वश् (चाह) से उशित वस् (रह) से उषित वप् (बो) से उप्त वह् (लेजा) से ऊढ (प्र के साथ प्रौढ) ३८ वें सूत्र (१४ वीं शाखा देखो) स्वप् (सो) से सुप्त यज् (पूज) से इष्ट

वर्णन

देखो अर्द्धस्वर का अपने अनुरूप स्वर के साथ पलटना सम्प्रसारण कहलाता (पा० १, १,४५)

१ ली शाखा

थोड़े मूलों का व् अपने पहले वा पीछे आनेवाले स्वर से पलटके ऊ होजाताहै ज्वर् (तपना) से जूर्ण त्वर् (शीघ्राकर) से तूर्ण स्रिव् (सूख) से स्रूत अ (बचा) से ऊत मव् (बांध) से मूत

२ री शाखा

थोड़े मूलों का पिछला व् ऊ होजाता है जैसे दिव् (खेल) से द्यूत और द्यून (पिछला केवल जुआ खेलने के अर्थ में आता है) सिव् (सी) से स्यूत स्निव् वा (थूक) से ष्ठ्यूत ष्ठिव् वा ष्ठीव् (थूक) से ष्ठ्यूत

५४४ वां सूत्र

थोड़ी दूसरी उलटापलटियां कर्मणिवाच्य अपूर्णपद बनाने में होती हैं (४७२ सूत्र देखो) सो इस त के पहले भी होती हैं जैसे शास् (आज्ञा कर) से शिष्ट (चुभ) से विद्ध व्यच् (छल) से विचित भ्रज्ज् (तल) से भृष्ट प्रच्छ् (पूछ पृष्ट मश्च् (काट) से वृक्ण (५८ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

जब कोई मूल अन्त में मिश्रित व्यञ्जन रखता है जिस का पहला कोई अनुना-

सिक होता है तो अनुनासिक त के पहले बहुधा छोड़ दियाजाता है जैसे बन्ध् (बांध) से बद्ध भ्रंश् (गिर) से भ्रष्ट ध्वंस् (गिर) से ध्वस्त अञ्च् (चल) और अञ्ज् (मल) से अक्त सञ्ज् (चिपक) से सक्त रञ्ज् (रंग) से रक्त इन्ध् (जला) से इद्ध उन्द् (भिगो) से उन्न वा उत्त स्यन्द् (बह) से स्यन्न स्कन्द् [चढ़] से स्कन्न स्कम्भ् (ठहरा) से स्कब्ध स्तम्भ् (ठहरा) से स्तब्ध दम्भ् (छल) से दब्ध भञ्ज् (तोड़) से भग्न दंश् [काट] से दष्ट तञ्च् [सुकड़] से तक्त

२ री शाखा

परन्तु जो इ बढ़ताहै तो नहीं जैसे खण्ड् (तोड़) से खण्डित क्रन्द् से क्रन्दित परन्तु मन्थ् [बिलो] से मथित और ग्रन्थ् [बांध] से ग्रथित होते हैं

५४५ वां सूत्र

बहुत से मूल अन्त में म् न् वा ण् रखते हैं सो त के पहले जो इ नहीं बढ़ता है तो छूटजाते हैं जैसे गम् [जा] से गत यम् [बचा रोक] से यत रम् (खेल) से रत तन् (खैंच) से तत हन् (मार) से हत नम् (झुक) से नत मन् (सोच) से मत क्षण् (सता) से क्षत परन्तु अन् (स्वास ले) और अम् (जा) से होते हैं आन्त और अम् से अमित भी होता है और स्वन् (शब्द कर) से स्वनित और उपसर्ग के साथ स्वान्त

१ ली शाखा

जन् (उत्पन्न हो) से जात खन् (खोद) से (खात) सन् (दे) से सात बिचला अ दीर्घ होजाता है

५४६ वां सूत्र

चौथे गणवाले मूलों में से जो मूल अन्त में म् रखते हैं और वर्तमानसम्बन्धी प्रत्यय य के पहले बिचले अ का दीर्घ होना चाहते हैं सो इस त के पहले भी उसका दीर्घ होना और म् का न् होना चाहते हैं जैसा भविष्यतों में जैसे कम् (चल) से क्रान्त भ्रम् (घूम) से भ्रान्त शम् (ठहर) से शान्त दम् (हिला पाल) से दान्त

और दमित भी क्षम् (क्षमाकर) से क्षान्त क्लम् (उदास हो) से क्लान्त

१ ली शाखा

ऐसे ही वम् (वमनकर) से वान्त कम् (प्यार कर) से कान्त चम् (खा) से चान्त

५४७ वां सूत्र

स्फाय् (सूज) से स्फीत होता है क्ष्माय् (हिला) से क्ष्मात पूय् (बुस) से पूत ऊय् (बुन) से ऊत प्याय् (मोटा हो) से पीन (आ और प्र के साथ प्यान) कृ य (सड़) से कृत

१ ली शाखा

गुर वा गूर् (उद्यम कर) से गूर्ण तुर्व् (मार) से त्वर् (शीघ्रताकर) के सदृश तूर्ण मुर्व् (बांध) से मूर्ण धाव् (धो) से धौत

२ री शाखा

फल् (खुल) से फुल्ल (पा० ८. २, ५५) और घस् (खा) से जग्ध (जैसा न सू से)

वर्णन

देखो ऊपरवाले दृष्टान्तों से जानपड़ता है कि कभी २ कई भूत कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया का एकसा रूप रखते हैं वे आगे आनेवाले भी ध्यान में रखने चाहिये पूय् (बुस) और पू (पवित्र कर) से पूत मा (नाप) और मे (बदलाकर) से मि- त मृज् (पोंछ) मृश् (छू) और मृष् (छिड़क) से मृष्ट मृष् (सहा) से मर्षित (पा० १, २, २० के अनुसार) शंस् (पढ़) और शस् (मार) से शस्त शास् (आ ज्ञाकर) और शिष् (पहचान) से शिष्ट सो (बिगाड़) और सि (बांध) से सित और युज् (योग) से युक्त परन्तु युज् (झुक) से युक्त होता है

५४८ वां सूत्र

इन आगे आनेवालों को व्याकरणी गुणक्रिया समझते हैं परन्तु शुद्धता से विशे

पण हैं पच् (पका) से पक्व शुष् (सूख) से शुष्क क्षीव् (पिया जा) से क्षीव कृश् (दुबला हो) से कृश क्षे (बिगाड़) से क्षाम

५२९ वां सूत्र

प्रेरणार्थक की कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया बनाने में प्रेरणार्थकसम्बन्धी प्रत्यय अय दूर होजाताहै परन्तु अधिक आनेवाला इ सदा आता है जैसे कृ (कर) के प्रेरणार्थक कारय से कारित (करायाहुआ) स्था (खड़ा हो) के प्रेरणार्थक स्थापय से स्थापित (खड़ाकियाहुआ) आप्याय (प्यै आ के साथ) से आप्यायित (बढ़ायाहुआ)

५५० वां सूत्र

इच्छार्थक वा अधिकतार्थक अपूर्णपद के साथ पिछ्ल त लगाने में अपूर्णपद का पिछला अ छूटजाने से अधिक इ आताहै और जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं उन में पिछला य गिरजाता है जैसे पिपास (पिया चाह) से पिपासित चिकीर्ष (कियाचाह) से चिकीर्षित ईप्स (पायाचाह) से ईप्सित इत्यादि लोलूय (काटा कर) से लोलूयित बेभिद्य (तोड़ाकर) से बेभिदित

५५१ वां सूत्र

संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों के साथ पिछला अ गिरजाने से इ समेत त बढ़ताहै जैसे शिथिल (खोल) से शिथिलित जिह्म (टेढ़ा) से जिह्मित (टेढ़ाकियाहुआ) इनको सकर्मक संज्ञासम्बन्धी क्रिया शिथिलयति जिह्मयति की (५२१ वां सूत्र देखो) कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया समझना चाहिए ऐसेही नमस्य (नमस्कार कर) से नमस्यित वा नमसित

वर्णन

देखो जैसे कभी२ त के पलटे न आताहै वैसेही किसी२ संज्ञा में इत के पलटे इन आताहै जैसे मल (मैल) से मलिन (मैला वा मैलाकियाहुआ) शृङ्ग (सींग) से शृङ्गिण (सींगकियाहुआ वा सींगवाला) ५८ वां सूत्र और ८० वें सूत्र का ११

वां प्रत्यय देखो)

५५२ वां सूत्र

कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की वर्तनी १८७ वें सूत्र में बताएहुए विशेषणों की वर्तनी के अनुसार होती है कृत १ वि० ए० व० पु० स्त्री० न० कृतः कृता कृतम्

कर्तरिवाच्य भूतगुणक्रियाएं

ये दो जाति की हैं १ ली वे हैं जो कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया से बनाईजाती हैं २ री वे हैं जो दुहराएहुए पूर्णभूत से सम्बन्ध रखती हैं १ ली बहुधा कर्तरिवाच्य पूर्णभूत के बदले आती हैं (८९७ वां सूत्र देखो)

५५३ वां सूत्र

१ ली जाति वाली

इन गुणक्रियाओं का अपूर्णपद कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया के अपूर्णपद में वत् बढ़ाने से बनता है जैसे

कृत (कियाहुआ) से कृतवत् (कियेहुए वाला या वुह जिसने किया है) दग्ध (जलायाहुआ) से दग्धवत् (जलाएहुएवाला या वुह जिसने जलाया है) उक्त (कहाहुआ) से उक्तवत् (कहेहुएवाला या वुह जिसने कहा है) भिन्न (तोड़ाहुआ) से भिन्नवत् (तोड़ेहुएवाला या वुह जिसने तोड़ा है) स्थापित (खड़ा कियाहुआ) से स्थापितवत् (खड़ा किएहुएवाला या वुह जिसने खड़ा किया है) इत्यादि

१ ली शाखा

इन गुणक्रियाओं की वर्तनी के लिये (१४० वें सूत्र की १ ली २ री और ३ री शाखा देखो)

५५४ वां सूत्र

२ री जाति वाली

इन गुणक्रियाओं में वस् वा इवस् बहुधा दुहराएहुए पूर्णभूत से लगता है जो द्विवचन और बहुवचन से बनताहै वस् तब लगता है जब अपूर्णपद द्विवचन और बहुवचन में (जैसा वह अन्त लगाये जाने से पहले अपने अपटटेहुए रूप में आन पड़ता है) एक से अधिक शब्दभाग रखता है जैसे कृ (कर) से चकृ इससे चकृवस् चिचि से (३७४ वां सूत्र देखो) चिचिवस् नृत् से (३६४ वां सूत्र और ४५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ननृत्वस् सस्मर् से (३७४ वें सूत्र की ११वीं शाखा देखो) सस्मर्वस्

१ ली शाखा

और इवस् तब लगताहै जब अपूर्णपद द्विवचन और बहुवचन में केवल एक शब्दभाग रखता है जैसे तेन् से (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) तेनिवस् घस् से (३७७ वां सूत्र देखो) जक्षिवस्

वर्णन

कई मूल इस पूर्णभूत गुणक्रिया का रूप वस् और इवस् के साथ इच्छानुसार लेते हैं चाहे अपूर्णपद द्विवचन और बहुवचन में एक शब्दभाग रखता हो चाहे द (पा० ७, २,६८) जैसे गम् से (३७६ वां सूत्र देखो) जग्मिवस् वा जगन्वस् हन् से जघ्निवस् वा जघन्वस् विद् ६ ठा ग० (ढूंड-जान) से विविद्वस् वा विविदिवस् विश् से विविश्वस् वा विविशिवस् दृश् से ददृश्वस् वा ददृशिवस्

२ री शाखा

जब वस् पीछे लगता है तब जो मूल अन्त में इ ई उ ऊ वा ऋ रखते हैं और ये स्वर द्विवचन और बहुवचन के अन्तों के पहले य् व् र् इय् उव् वा ऊव् से पलटते हैं तब मूल का पिछला वर्ण अवश्य अपनी आद्य अवस्था में आजाता है जैसे श्रि ३७४ वें सूत्र की ५ वीं शाखा से शिश्रिय् होके शिश्रिवस् होता है की से चिकिय् होके चिकीवस् होता है धू ३७४ वें सूत्र की ७ वीं शाखा से दुधुव् होके दुधूवस् होता है भू ३७४ वें सूत्र की ९ वीं शाखा से बभूव् होके बभूवस् होता है वर्तनी

में अन्य पुरुष बहुवचन अपने अन्त उम् के साथ अवल विभक्तियों में अपूर्णपद का रूप होता है (१३५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) और स्त्रीलिङ्ग में, पिछटा स् ७० वें सूत्र से ष् होजाता है जैसे अ० ब० व० जग्मुस् (जग्मुः) ३ वि० जग्मुषा अ० ब० ब० तेनुस् (तेनुः) ३ वि० तेनुषा इत्यादि (१६८ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

जो मूल बढ़ेहुए पूर्णभूत का रूप लेते हैं (३८५ वां सूत्र देखो) सो इस रूप की गुणक्रिया कृ भू और अस् की पूर्णभूत गुणक्रिया आम् के साथ बढ़ाने से बनाते हैं जैसे चुर् १० वां गण से चोरयाम्बभूवः चोरयाञ्चकृः चोरयामासिवः

४ थी शाखा

दुहराएहुए पूर्णभूत की आत्मनेपदवाली गुणक्रिया है सो बहुत सरलता से अ० ब० ब० के अन्त इरे को आन के साथ पलटने से बनसकती है जैसे विविदान चिच्यान जग्मान (५२६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

५ वीं शाखा

इन गुणक्रियाओं के परस्मैपद की वर्तनी १६८ वें सूत्र में बताई है और आत्मनेपद की वर्तनी शुभ जैसे विशेषणों की वर्तनी के अनुसार है (१८७ वां सूत्र देखो)

अवर्तनीयभूतगुणक्रियाएं

५५५ वां सूत्र

इनको असमापिका गुणक्रिया भी कहसक्ते हैं इसलिए कि क्रिया के अर्थ को असमाप्त रखती हैं ये दो प्रकार की हैं पहले प्रकार की वे हैं जो अमिश्रित मूलों के पीछे त्वा बढ़ने से बनती हैं जैसे भू (हो) से भूत्वा(होके)(८० वें सूत्र का ७१ वां सत्पद देखो) दूसरे प्रकार की वे हैं जो उपसर्गों अथवा क्रिया विशेषणसम्बन्धी उपसर्गों से मिश्रित मूलों के पीछे य बढ़ने से बनती हैं जैसे अनुसृ (पूजा) से अनुसृप (पूजके) सन्नीभू (उपस्थित हो) से सन्नीभूय (उपस्थित होके) इनका अ

र्थ दूसरी क्रिया पीछे आने से पूरा समझने में आता है जैसे तत् कृत्वा आगमिष्यामि (उसको करके आऊंगा) (वाक्यरचना में ८९८ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

इस गुणक्रिया के प्रत्यय त्वा को कोई २ कहते हैं कि प्रत्यय त्व की ३ री विभक्ति का एकवचन है (८० वें सूत्र का २१ वां प्रत्यय देखो) यथार्थ में अवर्तनीय गुणक्रिया ३ री विभक्ति का स्वभाव रखती है (वाक्यरचना में ९०१ ला सूत्र देखो)

वर्णन

वेद में कभी त्वा के पलटे त्वाय त्वानम् त्वीनम् त्वी भी आते हैं

अवर्तनीय गुणक्रियाएं जो अमिश्रित मूलों के पीछे त्वा बढ़ने से बनती हैं

५५६ वां सूत्र

जब मूल अकेला और अमिश्रित होता है तब यिह गुणक्रिया उसके पीछे त्वा बढ़ने से बनाई जाती है

यिह त्वा ५३१ वें सूत्र में बताईहुई कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया के त से बहुत सा मिलता है ऐसा कि जो सूत्र मूल के पीछे त बढ़ाने के लिये बनाए हैं सो ही त्वा बढ़ाने के लिये आते हैं और इसलिये जैसी बनावट उसकी है वैसी ही इसकी है

जैसे क्षिप् (फेंक) से क्षिप्त (फेंकाहुआ) क्षिप्त्वा (फेंकके) कृ (कर) से कृत (कियाहुआ) कृत्वा (करके) स्था (खड़ा हो) से स्थित स्थित्वा दृश् (देख) से दृष्ट दृष्ट्वा दा (दे) से दत्त दत्त्वा पा (पी) से पीत पीत्वा क्रम् से क्रान्त क्रान्त्वा ग्रह् से गृहीत गृहीत्वा वस् से उषित उषित्वा वच् से उक्त उक्त्वा बुध् से बुद्ध बुद्ध्वा वह् से ऊढ ऊढ्वा धा से हित हित्वा घस् (खा) से जग्ध जग्ध्वा गम् से (५४५

वां सूत्र देखो) गत गत्वा

१ ली शाखा

जब इ बढ़ता है तब बहुधा पिछले इ ई उ ऊ को गुण होता है और पिछले ऋ और बिचले ऋ को भी और बिचले इ और उ को इच्छानुसार गुण होताहै परन्तु इनको छोड़के जो २८ वें सूत्र से वर्जित हैं

जैसे शी से शयित्वा पू से पवित्वा और पूत्वा जॄ से जरित्वा वा जरीत्वा लिख् से लिखित्वा वा लेखित्वा द्युत् से द्युतित्वा वा द्योतित्वा मृष् से मृषित्वा वा मर्षित्वा

२ री शाखा

परन्तु दिव् से देवित्वा और द्यूत्वा सिव् से सेवित्वा और स्यूत्वा ऐसे ही ष्ठिव् इत्यादि से जागृ से जागरित्वा (५३२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) पहला इ वा उ अकेले व्यञ्जन के पहले अवश्य गुण चाहता है जैसे इष् से एषित्वा

३ री शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताए हैं सो गुण नहीं चाहते जैसे विज् से केवल विजित्वा

४ थी शाखा

जब कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया के दो रूप होते हैं तब अवर्तनीय भूतगुणक्रिया का केवल एक रूप होताहै जैसे नृत् से कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया नृत्त और नर्तित परन्तु अवर्तनीय भूतगुणक्रिया केवल नर्तित्वा लज्ज् से लग्न और लज्जित लज्जित्वा इनके प्रतिकूल वस् से (५१३ वां सूत्र देखो) केवल उषित परन्तु उषित्वा और उष्ट्वा सह् से सोढ सहित्वा और सोढ्वा मृज् से मृष्ट मार्जित्वा और मृष्ट्वा ऐसे ही कोई अनुनासिक अन्त में रखने वाले मूल इच्छानुसार इ का बढ़ना चाहते हैं जैसे तन् से तत्वा या तनित्वा क्षण् से क्षत्वा या क्षणित्वा क्रम् से क्रान्त्वा या क्रमित्वा कम् से कान्त्वा या कन्त्वा या कमित्वा खन् से खात्वा या खनित्वा

५ वीं शाखा

जो पिछले वर्ण का पहला अनुनासिक त के पहले छूटजाताहै (५३३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) सो त्वा के पहले रञ्ज् सञ्ज् स्वञ्ज् तञ्च् वा तञ्च् और अञ्ज् में इच्छानुसार छूटता है जैसे रञ्ज् से रक्त परन्तु रंक्त्वा वा रक्त्वा अञ्ज् से अञ्जित्वा अंक्त्वा वा अक्त्वा

६ ठी शाखा

मज्ज् और नश् इच्छानुसार अनुनासिक चाहते हैं जैसे मंक्त्वा वा मक्त्वा नंष्ट्वा वा नंष्ट्वा (३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा देखो)

७ वीं शाखा

थोड़े मूल अनुनासिक अवश्य रखते हैं जैसे स्कन्द् से स्कन्त्वा और स्यन्द् स्यन्त्वा वा स्यन्दित्वा

५५७ वां सूत्र

कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया में और अवर्तनीय भूतगुणक्रिया में अवश्य प्रथम केवल उन मूलों में पाईजाती है जो ५३१ वें सूत्र की १ ली शाखा में बताएहैं र त के पलटे न लेते हैं और जबतक इ नहीं बढ़ता तबतक ऋ का ईर् और ऊर् जाना (५३४ वां सूत्र देखो) बनारहता है परन्तु त्वा का कभी न्वा नहीं होता से जॄ से कर्म० भू० गु० जीर्ण अवर्त० भू० गु० जरित्वा वा जरीत्वा तॄ से तीर्ण तीर् पॄ से पूर्ण पूर्त्वा छिद् से छिन्न छित्वा भञ्ज् से भग्न भंक्त्वा वा भक्त्वा (५५६ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) रुज् से रुग्ण रुक्त्वा हा से हीन हित्वा (छोड़के) सो त्वा (रखके) के सदृश है जो धा से बनाहै

५५८ वां सूत्र

देखो जो दसवें गणवाली और प्रेरणार्थक क्रियाएं कर्म० भू० गु० के इत के पहले अय् को छोड़ती हैं सो इत्वा के पहले अय् रखती हैं जैसे प्रेरणार्थक अ० प० स्थापय से कर्म० भू० गु० स्थापित (खड़ाकियाहुआ) अवर्त० भू० गु० स्थापयित्वा

(वश करके) चिन्त् १० वां ग० (सोच) से चिन्तित (सोचाहुआ) चिन्तयित्वा (सोचके)

१ ली शाखा

सब निमून क्रियाएं इ चाहती हैं और अपनी अवर्तनीयभूतगुणक्रियाएं अनुमान से प्रेरणार्थक के सदृश बनाती हैं जैसे बुध् के इच्छार्थक से बुबोधिषित्वा और अधिकार्थक से बोबुधित्वा आत्म०वाले आधिक्यार्थक लोलूय से लोलूयित्वा होताहै और देदीप्य से देदीपित्वा (इस पिछले में य व्यञ्जन के पीछे आता है)

२ री शाखा

त्वा से बनेहुए एक दो दृष्टान्त मिश्रित मूलों के हैं जैसे ध्यै से अनुध्यात्वा (रामायण १, २, २०) ऐसेही अवमुक्ता (रामायण १. ७४. २३) विशेषकरके प्रेरणार्थकों में जैसे निवर्तयित्वा

३ री शाखा

जब अस्वीकारवाचक अ पहले आता है तब सदा त्वा आता है जैसे अकृत्वा (नहीं करके) अदत्त्वा (नहीं देके)

अवर्तनीय गुणक्रियाएं जो मिश्रित मूलों में य बढ़ने से बनाईजाती हैं

५५९ वां सूत्र

जब कोई मूल अस्वीकारवाचक अ को (५५८ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) छोड़के किसी अव्यय वा उपसर्ग के साथ मिश्रित होता है तब अवर्तनीयगुणक्रिया य बढ़ने से बनाईजाती है और जो सूत्र उससे लगते हैं सो अनुमान से वे ही हैं जो य के लिये आते हैं ४ थे गण में मुख्य रूपों के लिए (२७२ वां सूत्र देखो) कर्मणिवाच्य के लिये (४६१ वां सूत्र देखो) और आशीर्वादवाचक के लिये [४४३ वां सूत्र देखो]

५६० वां सूत्र

परन्तु जो मूल अन्त में कोई ह्रस्व स्वर रखते हैं सो उसको दीर्घ करने के पलटे तू का बीच में आना चाहते हैं जैसे आश्रि (आश्रय ले) से जो श्रि और आ से बना है आश्रित्य (आश्रय लेके) निश्रि से जो श्रि और निस् से बना है निश्रित्य उत्कृ से उत्कृत्य संस्कृ से जो सम् और कृ से बना है संस्कृत्य निःसृ से निःसृत्य मूलसम्बन्धी स्वर का मिलके दीर्घ होना इस सूत्र से नहीं रुकसकना जैसे अतीं से जो अति और इ से बना है अतीत्य

१ ली शाखा

जागृ (जाग) अपने पिछले स्वर को गुण चाहता है जैसे उज्जागर्य में क्षि(बिगाड़)अपने पिछले स्वर का दीर्घ होना चाहता है जैसे प्रक्षीय और उपक्षी

५६१ वां सूत्र

जो मूल अन्त में दीर्घ आ ई ऊ रखते हैं सो कुछ उलटापलटी नहीं चाह जैसे विहा से विहाय उपक्री से उपक्रीय विधू से विधूय

१ ली शाखा

जो मूल अन्त में दीर्घ ॠ रखते हैं सो उसका ईर् होना चाहते हैं और अं स्थानियों के पीछे ऊर् होना जैसे अवकृ से अवकीर्य (बखेरके) आपृ जो और पृ (भर) से बना है आपूर्य (५३४ वां सूत्र देखो)

५६२ वां सूत्र

पिछले मिश्रित स्वर आ होजाते हैं जैसे परिव्ये से परिव्याय (और परिवीय अभिध्यै से अभिध्याय अवसो से अवसाय

१ ली शाखा

परन्तु ह्वे से जब आ के साथ आता है तब आहूय सो से जब व्यव के सा आता है तब पौराणिकग्रन्थ में व्यवस्य

२ री शाखा

मि (फेंक) मी (मार) मा (नाप) और मे (सट्टाकर) से ० माय ऐसे ही दी (बिगड़) से ०दाय परन्तु ली (चिपक) से०लाय वा ०लीय दोनों होते हैं (३९० वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) श्वि और शी कर्म० के लिए जो सूत्र है उसके अनुगामी हैं जैसे (०शुय०शय्य) अधिशुय और अधिशय्य (लेटके) किरात् १, ३८)

टीका

० यिह चिन्ह यिह दिखाता है कि इस गुणक्रिया के पहले कोई उपसर्ग वा अव्यय आना चाहिए

५६३ वां सूत्र

पिछले वर्ण का पहला अनुनासिक बहुधा छोड़ दियाजाता है जैसे कर्म० में [२६१ वां सूत्र देखो] जैसे समासञ्ज् से समासज्य प्रमन्थ् से प्रमथ्य [मथके अर्थात् दबाके]

१ ली शाखा

पोरे मूल इस अनुनासिक को बना रखते हैं जैसे आशङ्क् से अशङ्क्य और आलिंग् से आलिङ्ग्य

२ री शाखा

लभ् (पा) उपसर्ग आ और उप के पीछे एक अनुनासिक चाहसकताहै जैसे आलम्भ्य इत्यादि नहीं तो आलभ्य होताहै

५६४ वां सूत्र

जो मूल अन्त में व्यञ्जन रखते हैं तो कुछ उलटापलटी नहीं होती जैसे निक्षिप् से निक्षिप्य प्राप् (आप और प्र के साथ) से प्राप्य वीक्ष् (ईक्ष् वि के साथ) से वीक्ष्य

१ ली शाखा

जो मूल अन्त में र् वा व् रखते हैं और उनके पहले इ वा उ भी इन स्वरों की दीर्घता चाहते हैं जैसे प्रतिदीव्य दिव् से विस्फूर्य स्फुर् से

२ री शाखा

चार मूल अन्त में अम् रखते हैं मम् नम् यम् रम् जो इच्छानुसार अनुनासिक को छोड़देते हैं और पिछले अ और य के बीच में त् चाहते हैं जैसे निर्गम् से नि. गत्य या निर्गम्य हन् मन् तन् वन् क्षण् क्षिण् ऋण् घृण् घण् तृण् सदा अनुनासिक छोड़देते हैं जैसे निहन् से निहत्य

३ री शाखा

खन् जन् और सन् इच्छानुसार इस न् को छोड़ते हैं परन्तु न् बीच में टेने के प लटे पिछले अ को दीर्घ करते हैं जैसे कर्म० में (२५८ वां सूत्र देखो) जैसे उत्ख से उत्खाय या उत्खन्य

५६५ वां सूत्र

जो उलटापलटियां कर्म० के य के पहले कई मूलों में होती हैं (४७१ वां और ४७२ वां सूत्र देखो) सो इस य के पहले भी होतीहैं जैसे निवप् से न्युप्य विवस् से व्युष्य प्रवस् से प्रोष्य अनुवद् से अनूद्य विग्रह से विगृह्य आप्रछ् से आपृच्छ्य आव्यध् से आविध्य और ऐसाही दूसरे मूलों में होताहै जो ४७१ वें और ४७२ वें सूत्र में बताए हैं

१ ली शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा में बताएहैं सो दो रूप रखते हैं जैसे गु- प् से ०गोपाय्य और ०गुप्य इत्यादि

२ री शाखा

एक-दो दृष्टान्त ऐसे हैं जिनमें अमिश्रित मूल य लेताहै जैसे अर्च्य (पूज के) मनु० १.४, ७, १४५ महाभारत ३, ८०१७) उष्य (रहके) नल ५. ४१) (ग्रह्) से गृह्य (लेके) अस्त्रशिक्षा ११)

५६६ वां सूत्र

१० वें गण की प्रेरणार्थक और तीसरे गण की संज्ञासम्बंधी क्रियाओं के

(५२१ वां सूत्र देखो) अपूर्णपद के पीछे य बढ़ाने से अय बहुधा छोड़दियाजाता है जैसे प्रबोधय से प्रबोध्य प्रसारय से प्रसार्य सन्दर्शय से सन्दर्श्य विचारय से विचार्य

१ ली शाखा

परन्तु जब मूल अन्त में अकेला व्यञ्जन रखता है और बीच में हृस्व अ तब धुइ बनारहताहै जैसे विगणय्य (गिनके) गण और वि से आकलय्य (सोचके) कल् और आ से सङ्कथय्य (कहके) कथ् और सम् से और कभी२ दूसरी अवस्थाओं में भी जैसे प्रापय्य (पहुंचाके) रघुवंश १४. ४५)

२ री शाखा

अधिकतार्थक अपू॰ प॰ का पिछला अ गिरादियाजाताहै और अधिकतार्थक और संज्ञासम्बन्धी दोनों का पिछला य जो किसी व्यञ्जन के पीछे आताहै तो गिरादियाजाताहै जैसे लोलूय से ॰लोलूय्य बोबुध्य से ॰बोबुध्य और तपस्य से ॰तपस्य

क्रिया विशेषणसम्बन्धी अवर्तनीय गुणक्रिया

५६७ वां सूत्र

एक और अवर्तनीयगुणक्रिया है सो वैसाही अर्थ देती है जैसा त्वा और य वाली गुणक्रियाएं देती हैं परन्तु बहुत थोड़ी आती है और मूल से निकलीहुई उस दूसरी विभक्तिवाली संज्ञा के समान है जो क्रियाविशेषण के सदृश आती है यिह मूल में अम् बढ़ाने से बनाईजाती है इसके पहले मूलसम्बन्धी स्वर को परिवर्तनसम्बन्धी उलटापलटी वैसीही होती है जैसी प्रेरणार्थकसम्बन्धी प्रत्यय अय के (४८१ वां सूत्र देखो) पहले होती है अथवा कर्म॰ वाले अनियतभूत के अ॰ ए॰ व॰ के पहले (१०५ वां सूत्र देखो) जैसे नी (मार्ग दिखा) से नायम् (मार्ग दिखाके) पा [पी] से पायम् (पीके) ह्वे से ह्वायम् पच् से पाचम् क्षिप् से क्षेपम् हन् (मार) से घातम् बहुधा मिश्रित में यिह गुणक्रिया पीछे आतीहै जैसे समूलघातम् (मूल स

मत मारके) (भट्टिकाव्य के २. ११ में यिह श्लोक आयाहै)

श्लोक

लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च॥
कुतूहलाचारुशिलोपवेशं काकुत्स्थ ईषत्स्मयमान आस्त॥

अर्थ

वुह काकुत्स्थ लता को झुकार के फूल तोड़ताथा और नदी में उतर२ के आचमन लेताथा कुतूहल से अच्छी शिला पर बैठ२ के कुछ मुस्कराताथा

शकुन्तलानाटक ५. १३१ में आयाहै बाहूत्क्षेपं क्रंदितुं प्रवृत्ता (हाथ उठार के रोने लगी) दूसरे दृष्टान्त ये हैं नामग्राहम् (नाम लेरके) जीवग्राहम् (जीर लेरके)

१ ली शाखा

ये गुणक्रियाएं बहुधा अर्थ को दुहराती हैं जैसा ऊपर और इस अवस्था में बहुधा वे आप भी दुहराईजाती हैं जैसे दायम् दायम् (देदके देदके)

कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रियाएं

७६८ वां सूत्र

ये अवर्मनीयगुणक्रिया की प्रकृति रखती हैं और क्रियासम्बन्धी विशेषण कहलाती हैं सो तीन प्रकार की हैं पहले प्रकार की ये हैं जो तव्य लगने से बनती हैं (८० वें सूत्र का १८ वां प्रत्यय देखो) दूसरे प्रकार की ये हैं जो अनीय लगने से बनती हैं (८० वें सूत्र का ५ वां प्रत्यय देखो) तीसरे प्रकार की ये हैं जो य लगने से बनती हैं (८० वें सूत्र का २८ वां प्रत्यय देखो) ये प्रत्यय बहुधा योग्यता और कर्मणिवाच्य के कर्तृवाचक का अर्थ रखते हैं जैसे दातव्य (देने के वा दियाजाने के योग्य वा दियाजानेवाला) जनितव्य (जनने के योग्य वा जना जानेवाला)

कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रियाएं जो तव्य लगने से बनती हैं [८० वें सूत्र का १८ वां प्रत्यय देखो]

हुआ परन्तु गुण चाहता है जो होसकता है

जैसे चि (चुन) से चयनीय (चुनने के योग्य वा चुनाजानेवाला) श्रू से श्र-वनीय कृ से करणीय (५८ वां सूत्र देखो) लिख् से लेखनीय शुध् से शोधनीय स्पृश् से स्पर्शनीय कृष् से कर्षणीय चुर् १० वें गण से चोरणीय परन्तु मृज् से मा-र्जनीय गुह् से गूहनीय दीधी से दीध्यनीय कम् से कमनीय और कामनीय गुप् से गोपनीय और गोपायनीय इत्यादि (३९० वें सूत्र की १० वीं १२ वीं और १३ वीं शाखा देखो)

१ ली शाखा

पिछला मिश्रित स्वर आ होजाता है सो अनीय के पहले अ से मिलजाता है जैसे ध्यै से ध्यानीय गै से गानीय

२ री शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र और ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताये हैं सो यथा र्थ में गुण नहीं चाहते जैसे कुच् से कुचनीय गु से गुवनीय इत्यादि

३ री शाखा

निमृत क्रियाओं में प्रेरणार्थक अपूर्णपद से अय छूटजाता है और दूसरी निमृत क्रियाओं के अपूर्णपदों से अ छूटजाता है और जो कोई व्यञ्जन पहले आता है तो य छूटजाता है जैसे

प्रेरणार्थक अपूर्णपद बोधय से बोधनीय इच्छार्थक बुबोधिष से बुबोधिषणीय अ-धिकतार्थक बोभुय और चेक्षिप्य से बोभूयनीय और चेक्षिपणीय और संज्ञासम्ब-न्धी तपस्य से तपस्यनीय वा तपसनीय

कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रियाएं जो य लगने से बनती हैं [८० वें सूत्र का २८ वां प्रत्यय देखो]

५७१ वां सूत्र

इस प्रत्यय के पहले पिछले स्वर की उलटापलटी अवश्य होती है जैसी दूसरे सब यकारादि प्रत्ययों के पहले होती है

१ ली शाखा

जो मूल आ वा आ से पलटने वाले ए ऐ ओ अन्त में रखते हैं उनके ये स्वर ए होजाते हैं (४४६ वां सूत्र देखो) जैसे
मा (नाप) से मेय (नापने के योग्य वा नापाजानेवाला) हा (छोड़) से हेय ध्यै (ध्यान कर) से ध्येय ग्लै (थक) से ग्लेय दा (दे) दे (दया कर) और दो (काट) से देय

२ री शाखा

जो मूल अन्त में इ ई उ ऊ रखते हैं सो इन स्वरों को गुण चाहते हैं जैसे चि से चेय (वेद में उप के साथ चाय्य) परन्तु नी से उद् के साथ उन्नीय परन्तु य के पहले ओ अव् होजाता है और ए कभी२ अय् होजाता है जैसा प्रत्येक स्वर के पहले होता है जैसे भू से भव्य जि (जीत) से जय्य क्री (मोल ले) से क्रय्य क्षि (बिगाड़) से क्षय्य

और य के पहले ओ आव् होजाता है विशेषकरके जब अर्थ पर लटका देना चाहते हैं जैसे श्रु से श्राव्य प्लु से प्लाव्य भू से भाव्य परन्तु पू (हिला) से पव्य

३ री शाखा

जो मूल अन्त में ऋ वा ॠ रखते हैं सो इन को वृद्धि चाहते हैं जैसे
कृ (कर) से कार्य भृ (सहाय कर) से भार्य और भृत्य भी (५०२ वां सूत्र देखो) वृ (स्वीकार कर) से वार्य और वृत्य भी

४ थी शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र की ३ री शाखा में बताए हैं सो अपने पिछले स्वरों को गिरादेते हैं जैसे दीध्य दरिद्र्य

५०२ वां सूत्र

कभी २ जब मूल अन्त में ह्रस्व स्वर रखते हैं तब कुछ उलटापलटी नहीं होती परन्तु त् बीच में आता है जैसा य वाली अवर्तनीय गुणक्रिया के साथ आता है (५६० वां सूत्र देखो) जिससे इस भविष्यत गुणक्रिया का अपूर्णपद बहुधा अवर्तनीयगुणक्रिया के अपूर्णपद से पहचाना नहीं जाता जैसे जि (जीत) से जित्य और जेय (जीतने योग्य) स्तु (सराह) से स्तुत्य (सराहने योग्य) कृ (कर) से कृत्य और कार्य (करने योग्य) इ (जा) से इत्य (जाने योग्य) आदृ (आदर कर) से आदृत्य (आदर करने योग्य)

५७३ वां सूत्र

जो मूल अन्त में कोई इकहरा व्यञ्जन रखता है और बिचला अ तो पिछ अ वृद्धि चाहसकता है जैसे मद् (छे) से माद्य त्रप् (लजा) से त्राप्य कम् (प्यार कर) से काम्य परन्तु सदा नहीं जैसे शक् से शक्य सह् से सह्य वध् से वध्य यत् से यत्य और जो पिछला कोई ओष्ठस्थानी होता है तो भी नहीं परन्तु त्रप् रप् लप् को छोड़के जैसे गम् से गम्य शप् से शप्य लभ् से लभ्य और लम्भ्य मद् (मत्त हो) से उपसर्गों के पीछे माद्य नहीं तो मद्य ऐसेही गद् और चर् से और भज् (सेवा कर) से भज्य और भाग्य (५७४ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

जो बिचला इ या उ होताहै तो बहुधा गुण चाहता है जैसे भुज् से भोग्य छिद् से छेद्य परन्तु जुप् से जुप्य और कभी २ इच्छानुसार गुह् से गुह्य और गोह्य और दुह् से दुह्य या दोह्य

२ री शाखा

जो बिचला ऋ होताहै तो कुछ उलटापलटी नहीं होती जैसे स्पृश् से स्पृश्य दृश् से दृश्य मृज् से मृज्य (अव और सम् के पीछे सर्वथ) मृज् से मृज्य (और मार्ग्य) परन्तु वृध् से वृध्य वा वर्ध्य

३ री शाखा

जो मूल ३९० वें सूत्र और ३९० वें सूत्र की १ ली शाखा में बताए हैं सो गुण नहीं चाहते जैसे कुच्य इत्यादि

५७४ वां सूत्र

जब कर्म० भू० गु० में इ नहीं आता तब कभी२ पिछला च् क् होजाताहै और पिछला ज् ग् जैसे पच् से पाक्य और पाच्य युज् से योग्य वा युग्य जब पिछला बनारहता है जैसे पाच्य में तब अधिक योग्यता पाईजाती है परन्तु दो रूप भिन्नकर अर्थ देते हैं जैसे भुज् से भोज्य (खाने योग्य) परन्तु भोग्य (भोगने योग्य) का अर्थ देता है वच् से वाच्य (कहने योग्य) परन्तु वाक्य (वह जो यथार्थ में कहने योग्य है)

१ ली शाखा

त्यज् से त्याज्य उपसर्ग नि और प्र के साथ आयाकरताहै नहीं तो त्याग्य ऐसे ही युज् से योज्य नि और प्र के साथ आताहै और यज् से यज्य वा याज्य इन्हीं उपसर्गों के साथ आताहै

२ री शाखा

और भी सूत्रविरुद्ध उलटापलटियां होती हैं उनमें थोड़ी वैसी हैं जैसी कर्म० के य के पहले होती हैं जैसे ग्रह् से गृह्य और ग्राह्य (४७१ वां सूत्र देखो) वद् से उद्य (४७१ वां सूत्र देखो और वद्य भी) यज् से इज्य (४७१ वां सूत्र देखो) शास् से शिष्य (४७२ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) खन् (खोद) से खेय शंस् (सराह) से शस्य वा शंस्य भ्रज्ज् (भुन) से भर्ज्य वा भ्रज्ज्य हन् से वध्य वा घात्य

३ री शाखा

जो गुपादि मूल ३९० वें सूत्र की १२ वीं शाखा में बताए हैं सो दो रूप रखतेहैं गोप्य और गोपाय्य

५७५ वां सूत्र

इन गुणक्रियाओं में से बहुतसी संज्ञा होके आती हैं जैसे वाक्य न० (बोली) भोज्य न० (भोजन) भोग्या स्त्री० (वेश्या वा छिनाल) इज्या स्त्री० (यज्ञ) लेप न० (खाई) भार्या स्त्री० (स्त्री) भृ (पालना) से इत्यादि

५७६ वां सूत्र

प्रत्यय य इच्छार्थक अधिकतार्थक और संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों से लगसकता है जैसा अभीप से (५७० वां सूत्र देखो) जैसे बुबोधिष्य बोभूय्य चेक्षिप्य तपस्य ऐसेही मुसल (मूसल) से मुसल्य (छड़ने योग्य)

(१ ली शाखा)

जो गुण होसकता है तो मूल को गुण होने पर अ बढ़ने से और उपसर्ग सु दुस् ईषत् के साथ आने से कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया का अर्थ देता है जैसे सुकर (सरलतासे करने योग्य) दुष्कर (कठिनता से करने योग्य) दुस्तर (कठिनता से पार होने योग्य) ८० वें सूत्र का १ ला प्रत्यय देखो)

२ री शाखा

फिर प्रत्यय एलिम थोड़े मूलों के पीछे लगके वैसा ही प्रभाव रखता है जैसा कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रिया के प्रत्यय रखते हैं जैसे पचेलिम (पकाने योग्य वा पकायाजानेवाला) भिदेलिम (तोड़ने योग्य वा तोड़ाजानेवाला)

५७७ वां सूत्र

कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रियाओं की बसनी उन विशेषणों के अनुसार कीजाती है जो १८७ वें सूत्र में बताये हैं जैसे कर्तव्य (करने योग्य वा कियाजाने वाला) १ वि० ए० व० पु० स्त्री० न० कर्तव्यः कर्तव्या कर्तव्यम् ऐसे ही करणीयः करणीया करणीयम् और कार्यः कार्या कार्यम्

द्वितीय भविष्यतवाली गुणक्रियाओं के अपूर्णपद की बनावट

५७८ वां सूत्र

ये गुणक्रियाएं बहुत नहीं आतीं ये दो प्रकार की हैं परस्मैपदवाली और आत्मनेपदवाली परस्मैपदवाली वर्तमान गुणक्रिया के सदृश अन्यपुरुष बहुवचन का अन्त अन्ति को अत् के साथ पलटने से बनाई जाती है और आत्म० वाली अन्त अन्ते को अमान के साथ पलटने से बनाईजाती है जैसे करिष्यन्ति वा करिष्यन्ते [वे करेंगे] से करिष्यन् और करिष्यमाण (५८ वां सूत्र देखो) (करने योग्य वा करनेवाला) कर्मणिवाच्य द्वितीयभविष्यत वक्ष्यन्ते (वे कहे जाएंगे) से वक्ष्यमाण (कहे जाने योग्य वा कहाजानेवाला) ८४ वें सूत्र का १ ला प्रत्यय और ८० वें सूत्र का २७ वां प्रत्यय देखो)

१ ली शाखा

ये गुणक्रियाएं अपनी वर्तनी (१४१ वां सूत्र देखो) और अपनी बनावट में वर्तमान गुणक्रियाओं से मिलती हैं (५२४ वां और ५२६ वां सूत्र देखो)

गुणक्रियासम्बन्धी कर्तृवाचक नाम

५७९ वां सूत्र

८० वें ८३ वें ८४ वें ८५ वें और ८७ वें सूत्र में ये गुणक्रियासम्बन्धी कर्तृवाचक नाम बताने में आचुके हैं परन्तु ये गुणक्रियाओं की प्रकृति रखते हैं और उनके अनुसार आते हैं (वाक्यरचना में ९०९ वें सूत्र से ९११ वें सूत्र तक देखो) इसलिए इनका विस्तार पूर्वक वर्णन यहां कियाजाता है ये तीन प्रकार के हैं १ ले प्रकार के वे हैं जो मूल से बनते हैं २ रे प्रकार के वे हैं जो उस अपूर्णपद से बनते हैं जिस से प्रथम भविष्यत बनता है ३ रे प्रकार के वे हैं जो मूल में ऐसी उथलपुथली करने से बनते हैं जैसी प्रेरणार्थक अपूर्णपद में होती है

५८० वां सूत्र

१ले प्रकारवाले का अपूर्णपद ऐसा होता है जैसा मूल होता है अर्थात् मिश्रितों के अन्त में यद्रूपा अपलटाहुआ मूल लगने से बनता है जैसा कर्तृवाचक नाम

में लगता है और जो मूल के अन्त में ह्रस्व स्वर होता है तो त् बढ़ता है (८१ वें सूत्र के ६ ठे प्रत्यय वाले और ८७ वें सूत्र वाले दृष्टान्त देखो)

१ ली शाखा

एक दूसरा सामान्य कर्तृवाचक नाम मूल के पीछे अ बढ़ने से बनता है (जैसा २५७ वें सूत्र वाले वर्तनीसम्बन्धी गणों के पहले अर्थ में) इस अ के पहले पिछले स्वर को गुण और कभी वृद्धि होते हैं जैसे जि (जीत) से जय (जीतताहुआ वा जीतनेवाला) बिचले स्वर बहुधा पलटे नहीं जाते जैसे वद् (बोल) से वद (बोलता हुआ वा बोलनेवाला) तुद् (सता) से तुद (सताताहुआ वा सताने वाला) ८० वें सूत्र का ५ वा प्रत्यय देखो)

२ री शाखा

पिछला आ अम् वा अन् गिरादियाजाता है जैसे दा (दे) से द (देताहुआ वा देनेवाला) गम् (जा) से ग (जाताहुआ वा जानेवाला) जन् (उत्पन्न हो) से ज (उत्पन्न होताहुआ वा उत्पन्न होनेवाला) इनकी वर्तनी उन विशेषणों कीसी होती है जो १८७ वें सूत्र में बताए हैं

५८१ वां सूत्र

दूसरे प्रकारवाले कर्तृवाचक नाम का अपूर्णपद (८३ वां सूत्र देखो) सदा अनिमृत क्रियाओं के प्रथम भविष्यत के अ० ए० व० से लियाजाताहै और पिछले आ के पलटे ऋ बढ़ायाजाताहै इसलिए इसका कर्ता वैसाही होताहै जैसा उस रूप का अ० ए० व० (३८६ वां सूत्र देखो)

जैसे भोक्ता (वह खाएगा) भोक्तृ (खानेवाला) योद्धा (वह लड़ेगा) योद्धृ (लड़नेवाला) याचिता (वह पूछेगा) याचितृ (पूछनेवाला) सोढा (वह सहेगा) सोढृ (सहनेवाला) इत्यादि ये १२७ वें सूत्र के अनुसार वर्तनी किएजाते हैं

५८२ वां सूत्र

तीसरे प्रकारवाले कर्तृवाचक नाम का अपूर्णपद तीन रीति से बनाया जाताहै

१ ली शाखा

पहली रीति यिह है कि मूल में इन् बढ़ताहै (८५वें सूत्र का २ रा प्रत्यय देखो) इस प्रत्यय के पहले वैसी उलटापलटी होती है जैसी प्रेरणार्थक प्रत्यय अय के पहले होती है (४८१ वां ४८२ वां और ४८३ वां सूत्र देखो) जैसे कृ से कारिन् (करनेवाला) हन् से (४८८ वां सूत्र देखो) घातिन् (मारने वाला) शी से शायिन् (सोने वाला) जो मूल अन्त में आ रखते हैं उनके पीछे य् बढ़ताहै (४८३ वां सूत्र देखो) जैसे पा से पायिन् (पीनेवाला) दा से दायिन् (देनेवाला) इनकी वर्तनी १५९वें सूत्र के अनुसार होती है

२ री शाखा

दूसरी रीति यिह है कि मूल में (८० वें सूत्र का २ रा प्रत्यय देखो) अक लगाहै इस प्रत्यय के पहले वैसी उलटापलटी होती है जैसी प्रेरणार्थक के अय के पहले होती है (४८१ वां ४८२ वां और ४८३ वां सूत्र देखो) जैसे कृ से कारक (करनेवाला वा करताहुआ) नी से नायक (मार्ग दिखानेवाला वा मार्गदिखाताहुआ) ग्रह् से ग्राहक सिध् से साधक हन् से घातक दृश् से दर्शक कम् से कामक नन्द् से नन्दक स्था से स्थापक

३ री शाखा

तीसरी रीति यिह है कि थोड़े अन्त में व्यञ्जन रखनेवाले मूलों में (८० वें सूत्र का ३ रा प्रत्यय देखो) अन बढ़ताहै और वैसी उलटापलटी होती है जैसी प्रेरणार्थक अपूर्णपद बनाने में होती है जैसे नन्द् से नन्दन (प्रसन्न होताहुआ) दृप् से दर्पण (सताताहुआ) शुध् से शोधन (सुधारताहुआ)

इन पिछले दो की वर्तनी उन विशेषणों की सी होती है जो १८७ वें सूत्र में पाए हैं

वर्तनी की हुई क्रियाओं के दृष्टान्त

५८३ वां सूत्र

(इन आगे आनेवाले यंत्रों में दसों गण वाले मूलों अर्थात् बुध् १ ला ग० (जान) नृत् ४ था ग० (नाच) दिश् ६ ठा ग० (बता) युज् १० वां ग० (मिला) विद् २रा ग० (जान) भृ ३रा ग० (उठा) भिद् ७ वां ग० (तोड़) चि ५ वां ग० (चुन्) तन् ८ वां ग० (फैला) पू ९वां ग० (पवित्र कर) अर्थात् १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण वाले २ रे ३ रे और ७ वें गण वाले और ५ वें ८ वें और ९ वें गण वाले २५७ वें सूत्र से २५९ वें सूत्र तक बताएहुए तीनों जथों के अनिमृत रूपों की वर्तनी का सार दिखायाजाता है फिर इन दस मूलों के कर्मणिवाच्य रूप औ उन के पीछे प्रेरणार्थक इच्छार्थक आधिकतार्थक के वर्तमानकाल और इन सब के गुणक्रियाओं के रूप दिखाएजाते हैं

टीका

अपूर्णपद को अन्तों के साथ मिलाना चाहिये जैसे उ० ए० व० वर्त० परस्मै० बोधा + मि = बोधामि म० ए० व० बोध + सि = बोधसि अ० ए० व० बोध × ति = बोधति उ० द्वि० बोधा + वः = बोधावः इत्यादि आत्म० बोध + इ = बोधे, बोध + से = बोधसे इत्यादि

जहां १ ले ४ थे ६ ठे और १० वें गण के अन्त दूसरे गणों के अन्तों से पृथक हैं वहां ऊपरवाली पंक्ति में रखे हैं चिनु और तनु के उ को इच्छानुसार गिराने के लिये (३३९ वां सूत्र देखो)

अपूर्णभूत वा प्रथमभूत

गण	मूल	परस्मैपद एकवचन			द्विवचन			बहुवचन			आत्मनेपद एकवचन			द्विवचन			बहुवचन		
१	बुध्	अबोध	अबोध	अबोध	अबोधा	अबोध	अबोध	अबोधा	अबोध	अबोध	अबोध	अबोध	अबोध	अबोधा	अबोध	अबोध	अबोधा	अबोध	अबोध
४	नृत्	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्या	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्या	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्या	अनृत्य	अनृत्य	अनृत्या	अनृत्य	अनृत्य
६	दिश्	आदिश	आदिश	आदिश	आदिशा	आदिश	आदिश	आदिशा	आदिश	आदिश	आदिश	आदिश	आदिश	आदिशा	आदिश	आदिश	आदिशा	आदिश	आदिश
१०	युज्	अयोजय	अयोजय	अयोजय	अयोजया	अयोजय	अयोजय	अयोजया	अयोजय	अयोजय	अयोजय	अयोजय	अयोजय	अयोजया	अयोजय	अयोजय	अयोजया	अयोजय	अयोजय
२	विद्	अवेद्	अवेत्	अवेत्	आविद्	आवित्	आवित्	आविद्	आवित्	आविद्	आविद्	आवित्	आवित्	आविद्	आविद्	आविद्	आविद्	आविद्	आविद्

६ मृ ७ भि ट्	अबि नट् अभि नट्	अबि नट् अभि नत्	अबि नट् अभि नत्	अबि मृ अभि न्द्	अबि मृ अभि न्त्	अबि मृ अभि न्त्	अबि मृ अभि न्द्	अबि मृ अभि न्त्	अबि मट् अभि न्द्	अबि भ्र् अभि न्द्	अबि मृ अभि न्त्	अबि मृ अभि न्त्	अबि मृ अभि न्द्	अबि भ्र् अभि न्द्	अबि भ्र् अभि न्द्	अबि मृ अभि न्द्	अबि मृ अभि न्द्	अबि भ्र अभि न्द्
५ चि ८ तन् ९ पू	अचि नव् अत नव् अपु ना	अचि नो अन नो अपु ना	अचि नो अत नो अपु ना	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि न्व् अत न्व् अपु न्	अचि न्व् अत न्व् अपु न्	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि न्व् अत न्व् अपु न्	अचि न्व् अत न्व् अपु न्	अचि नु अत नु अपु नी	अचि नु अत नु अपु नी	अचि न्व् अत न्व् अपु न्
१.१ १.१० २,३ २,५ ८,९	न् : न् अम			व तम् ताम्			न् म त अन् +उः			इ थाः त			इथाम् इताम् वाहि आथाम् आताम्			न्त महि ध्वम् अत		

टीका

म० और अ० ए० व० परस्मैपद में दूसरे जथेवाले मूल २१४ वें सूत्र के अनुसार अन्तों को छोड़देते हैं जैसे म० और अ० ए० व० अवेन् अबिभर् अभिनत् आत्मनेपद में १ ले जथेवाले मूलों के अपूर्णपदों का पिछला अ अन्त के पहले इ से मिलके ३२ वें सूत्र से ए होजाता है अचिनु और अतनु के उ को इच्छानुसार छोड़ने के लिए (३२१ वां सूत्र देखो)

शक्यर्थ

गण	मूल	परस्मैपद एकवचन			परस्मैपद द्विवचन			परस्मैपद बहुवचन			आत्मनेपद एकवचन			आत्मनेपद द्विवचन			आत्मनेपद बहुवचन		
१ ४ ६ १०	बुध् नृत् दिश् युज्	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य	बोध नृत्य दिश योज य
२ ३ ७	विद् भृ भिद्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभृ भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्	विद् बिभ्र् भिन्द्
५ ८ ९	चि तन् पू	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिनु तनु पुनी	चिन्व् तनु पुन्	चिन्व् तनु पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्	चिन्व् तन्व् पुन्
१,४,६,१०		इयम्	इः	इत्	इव	इतम्	इताम्	इम	इत	इयुः	ईय	ईथाः	ईत	ईवहि	ईयाथाम्	ईयाताम्	ईमहि	ईध्वम्	ईरन्
२,३,७,५,८,९		याम्	याः	यात्	याव	यातम्	याताम्	याम	यात	युः									

टीका

देखो पहले जथवाले गणों के अपूर्णपद अन्त में अ रखते हैं और अन्त आदि में इ रखते हैं ये दोनों स्वर

प्रथम भविष्यत

गण	मूल	अपूर्णपद		परस्मैपद के अन्त	आत्म॰ के अन्त
१	बुध्	बोधि +	एकवचन	तास्मि	ताहे
४	नृत्	नर्ति		तासि	तासे
६	दिश्	द्रष् +		ता	ता
१०	युज्	योजयि			
२	छिद्	छेदि	द्विवचन	तास्वः	तास्वहे
३	भृ	भर्		तास्थः	तासाथे
७	भिद्	भेत्		तारौ	तारौ
५	चि	चे	बहुवचन	तास्मः	तास्महे
८	तन्	तनि		तास्थ	ताध्वे
९	पू	पवि		तारः	तारः

+ आत्मनेपद में २०६ के सूत्र के अनुसार बुध् से बो- द्धाहे इत्यादि भी होते हैं दृश् के पीछे अन्तों का त ३०० वें सूत्र के अनुसार ट होजाता है

द्वितीयभविष्यत

गण	मूल	अपूर्णपद		परस्मै॰ के अन्त	आत्म॰ के अन्त
१	बुध्	बोधि +	एकवचन	ष्यामि	ष्ये
४	नृत्	नर्ति		ष्यसि	ष्यसे
६	दिश्	देक्		ष्यति	ष्यते
१०	युज्	योजयि			
२	छिद्	छेदि	द्विवचन	ष्यावः	ष्यावहे
३	भृ	भरि		ष्यथः	ष्येथे
७	भिद्	भेत् +		ष्यतः	ष्येते
५	चि	चे	बहुवचन	ष्यामः	ष्यामहे
८	तन्	तनि		ष्यथ	ष्यध्वे
९	पू	पवि		ष्यन्ति	ष्यन्ते

+ आत्मनेपद में २०६ के सूत्र के अनुसार बुध् से भोत्स्ये इत्यादि भी होते हैं और भेत् के पीछे स्यामि इत्यादि अन्त आते हैं

अनियतभूत वा तृतीयभूत

पहला रूप

गण	मूल	अपूर्णपद	परस्मैपद के अन्त	आत्मनेपद के अन्त
			एकवचन	एकवचन
१	बुध्	अबोधि ‡	षम्	षि
४	नृत्	अनर्ति ‡	षीः वा ‡ ईः	ष्ठाः वा थाः
			षीत् वा ‡ ईत्	ष्ट वा त
			द्विवचन	द्विवचन
२	विद्	अवेदि ‡	ष्व	ष्वहि
३	गृ	{प॰ अगार् {आ॰ अगृ +	ष्टम्	षाथाम्
			ष्टाम्	षाताम्
५	चि	{प॰ अचै {आ॰ अचे +	बहुवचन	बहुवचन
			ष्म	ष्महि
८	तन्	{प॰ अतानि‡ {आ॰ अतानि	ष्ट	ढ्वम् वा+ड्वम्
			षुः	षत
९	पू	{प॰ अपावि ‡ {आ॰ अपवि+		

गृ में प्रागृणा अगृत भिद् ७वां गण आत्म॰ में इसी रूप का अनुगामी है जैसे अभित्सि अभित्थाः अभित्त इत्यादि (४११वां सूत्र देखो) तन् से अतथाः अतत और अतनिष्ठाः इत्यादि (२२४वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

दूसरा रूप

गण	मूल	अपूर्णपद	परस्मै॰ के अन्त	आत्म॰ के अन्त
			एकवचन	एकवचन
६	दिप्	अदिस्	अम्	इ वा + ए
१०	युज्	अयुयुज्+	अः	अथाः
७	भिद्	अभिद्	अत्	अत
परस्मैपद में इस रूप का अनुगामी है परन्तु आत्मनेपद में नहीं (पहले रूप के तले टीका देखो)			द्विवचन	द्विवचन
			आव	आवहि
			अतम्	आथाम् वा +एथाम्
			अताम्	आताम् वा+ एताम्
			बहुवचन	बहुवचन
			आम	आमहि
			अत	अध्वम्
			अन्	अन्त

			ब० व०				ब० व०				ब० व०				ब० व०
५	चि	चीय चीया+	महे+	५	चि	अचीय अचीया+	महि+	५	चि	चीय	इमहि	५	चि	चीय	आमहे
८	तन्	तन्य तन्या+	ध्वे	८	तन्	अतन्य अतन्या+	ध्वम्	८	तन्	तन्य	इध्वम्	८	तन्	तन्य	ध्वम्
९	पू	पूय पूया+	न्ते	९	पू	अपूय अपूया+	न्त	९	पू	पूय	ईरन्	९	पू	पूय	न्ताम्

कर्म० पूर्णभूत				कर्म० प्रथम भविष्यत				कर्म० द्वितीय भविष्यत			
गण	मूल	अपूर्णपद	अन्त	गण	मूल	अपूर्णपद	अन्त	गण	मूल	अपूर्णपद	अन्त
			ए० व०				ए० व०				ए० व०
१	बुध्	बुबुध्	ए	१	बुध्	बोधि	ताहे	१	बुध्	बोधि	ष्ये
४	नृत्	ननृत्	+ इषे	४	नृत्	नर्ति	तासे	४	नृत्	नर्ति	ष्यसे
६	दिश्	दिदिश्	ए	६	दिश्	देष् (३००वां सूत्र)	ता	६	दिश्	देक् (३०२रा सूत्र)	ष्यते
१०	युज्	योजयामास्		१०	युज्	योजयि वा योजि		१०	युज्	योजयि वा योजि	
			द्वि० व०				द्वि० व०				द्वि० व०
२	विद्	विविद्	+ इवहे	२	विद्	वेदि	तास्वहे	२	विद्	वेदि	ष्यावहे
३	भृ	बभ्र * बभृ+	आथे	३	भृ	भारि वा भर्	तासाथे	३	भृ	भारि वा भरि	ष्येथे
७	भिद्	बिभिद्	आते	७	भिद्	भेत्	तारौ	७	भिद्	भेत्	ष्येते
			ब० व०				ब० व०				ब० व०
५	चि	चिच्य्	+ इमहे	५	चि	चायि वा चे	तास्महे	५	चि	चायि वा चे	ष्यामहे
८	तन्	तेन्	+ इध्वे (२७२वें सू० की १ली शा०)	८	तन्	तानि	ताध्वे	८	तन्	तानि	ष्यध्वे
९	पू	पुपुव्	इरे	९	पू	पावि वा पावि	तारः	९	पू	पावि-वा-पावि	ष्यन्ते

१	बुध्	बोधत्	बोधमान	बुध्यमान	बुद्ध	बुद्धवत्	बुबुध्वस्	बुबुधान	बुद्ध्वा	बोद्धव्य	बोधनीय	बोध्य	बोधिष्यत्	बोधिष्यमाण
४	नृत्	नृत्यत्	नृत्यमान	नृत्यमान	नृत्त वा नर्तित	नृत्तवत् वा नर्तितवत्	ननृत्वस्	ननृतान	नर्तित्वा	नर्तितव्य	नर्तनीय	नृत्य	नर्तिष्यत्	नर्तिष्यमाण
६	दिश्	दिशत्	दिशमान	दिश्यमान	दिष्ट	दिष्टवत्	दिदिश्वस्	दिदिशान	दिष्ट्वा	देष्टव्य	देशनीय	देश्य	देक्ष्यत्	देक्ष्यमाण
१०	युज्	योजयत्	योजयान	योज्यमान	योजित	योजितवत्	योजयां †	योजयां †	योजयित्वा	योजयितव्य	योजनीय	योज्य	योजयिष्यत्	योजयिष्यमाण
२	विद्	विदत्	विदान	विद्यमान	विदित	विदितवत्	विविद्वस्	विविदान	विदित्वा	वेदितव्य	वेदनीय	वेद्य	वेदिष्यत्	वेदिष्यमाण
३	भृ	बिभ्रत्	बिभ्राण	भ्रियमाण	भृत	भृतवत्	बभृवस्	बभ्राण	भृत्वा	भर्तव्य	भरणीय	भार्य	भरिष्यत्	भरिष्यमाण
७	भिद्	भिन्दत्	भिन्दान	भिद्यमान	भिन्न	भिन्नवत्	बिभिद्वस्	बिभिदान	भित्वा	भेत्तव्य	भेदनीय	भेद्य	भेत्स्यत्	भेत्स्यमान
५	चि	चिन्वत्	चिन्वान	चीयमान	चित	चितवत्	चिचिवस्	चिच्यान	चित्वा	चेतव्य	चयनीय	चेय	चेष्यत्	चेष्यमाण
८	तन्	तन्वत्	तन्वान	तन्यमान	तत	ततवत्	तेनिवस्	तेनान	तनित्वा	तनितव्य	तननीय	तान्य	तनिष्यत्	तनिष्यमाण
९	पू	पुनत्	पुनान	पूयमान	पूत	पूतवत्	पुपुवस्	पुपुवान	पूत्वा	पवितव्य	पवनीय	पाव्य	पविष्यत्	पविष्यमाण

टीका

† परस्मैपद पूर्णभूत गुणक्रिया के लिये योजयों के साथ चक्‍वस् बढ़ताहै और आत्मनेपद वाली पूर्णभूत गुणक्रिया के लिए चकाण बढ़ताहै

असू [हो] की वर्तनी

परस्मैपद (३२७ वां सूत्र देखो)

५८४वां सूत्र

यिह मूल २ रे गण का है परन्तु दो कारण से इस की वर्तनी यहां कीजाती है पहला यिह कि कभी२ सहायक क्रिया होके आता है दूसरा यिह कि इसकी वर्तनी संज्ञासदृश क्रिया भू (हो) के साथ (५८५ वां सूत्र देखो) सीखनी उचित है क्योंकि जिन रूपों में असू नहीं आता उन में बहुत से भू के रूप आते हैं और दो दूसरे मूल हैं सो भी (हो) के अर्थ में संज्ञासदृश क्रियाओं की रीति से आते हैं उन में पहला स्था १ ला गण (खड़ा हो) है (२६९ वां और ५८७ वां सूत्र देखो) दूसरा आस् २रा गण (बैठ) है (३१७वें सूत्र की १ली शाखा देखो) यथार्थ में मूल अस् जिसकी वर्तनी आगे कीजातीहै आस् का संक्षिप्त रूप जानपड़ताहै

वर्तमान [मैं हूं]				शक्त्यर्थ [मैं होऊं]		
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	अस्मि	स्वः	स्मः	स्याम्	स्याव	स्याम
मध्यम	असि	स्थः	स्थ	स्याः	स्यातम्	स्यात
अन्य	अस्ति	स्तः	सन्ति	स्यात्	स्याताम्	स्युः

अपूर्णभूत (मैं था वा हुआ)			अनुमत्यर्थ [मैं होऊं]		
आसम्	आस्व	आस्म	असानि	असाव	असाम

पहला जथा पहला गण

२६१वें सूत्र में बताईहुई पहले गण की अनिसृत क्रियाओं के दृष्टान्त

५८५ वां सूत्र

मूल भू (हो) भाववाचक भवितुम् [होना]

परस्मैपद वर्तमानकाल [मैंहूं वा होताहूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	भवामि	भवावः	भवामः
म०	भवसि	भवथः	भवथ
अ०	भवति	भवतः	भवन्ति

अपूर्णभूत [मैंथा वा हुआ वा होताथा]

उ०	अभवम्	अभवाव	अभवाम
म०	अभवः	अभवतम्	अभवत
अ०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्

शक्त्यर्थ [मैं होऊं]

उ०	भवेयम्	भवेव	भवेम
म०	भवेः	भवेतम्	भवेत
अ०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः

अनुमत्यर्थ [मैं होऊं]

उ०	भवानि	भवाव	भवाम

म०	भव	भवतम्	भवत
अ०	भवतु	भवताम्	भवन्तु

पूर्णभूत [मैं हुआ वा हुआ हूं]

उ०	बभूव	बभूविव	बभूविम
म०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
अ०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः

प्रथम भविष्यत [मैं होऊंगा]

उ०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः
म०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
अ०	भविता	भवितारौ	भवितारः

द्वितीय भविष्यत [मैं होऊंगा]

उ०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः
म०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
अ०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति

अनियतभूत [मैं था वा मैं हुआ वा मैं हुआ था]

उ०	अभूवम्	अभूव	अभूम
म०	अभूः	अभूतम्	अभूत
अ०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्

आशीर्वादवाचक [मैं होऊं]

उ०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

म०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
अ०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः

आशंसार्थ (जो मैं होऊंगा वा होऊं) इत्यादि

उ०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम
म०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
अ०	अभविष्यन्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्

५८६ वां सूत्र

आत्मनेपद वर्तमानकाल [मैं हूं वा होताहूं]

उ०	भवे	भवावहे	भवामहे
म०	भवसे	भवेथे	भवध्वे
अ०	भवते	भवेते	भवन्ते

अपूर्णभूत [मैं था इत्यादि]

उ०	अभवे	अभवावहि	अभवामहि
म०	अभवथाः	अभवेथाम्	अभवध्वम्
अ०	अभवत	अभवेताम्	अभवन्त

शक्त्यर्थ [मैं होऊं इत्यादि]

उ०	भवेय	भवेवहि	भवेमहि
म०	भवेथाः	भवेयाथाम्	भवेध्वम्
अ०	भवेत	भवेयाताम्	भवेरन्

अनुमत्यर्थ [मैं होऊं]

उ०	भवै	भवावहै	भवामहै

म०	भवस्व	भवेथाम्	भवध्वम्
अ०	भवताम्	भवेताम्	भवन्ताम्

पूर्णभूत (मैं हुआ वा हुआ हूं)

उ०	बभूवे	बभूविवहे	बभूविमहे
म०	बभूविषे	बभूवाथे	बभूविढ्वे वा बभूविध्वे
अ०	बभूवे	बभूवाते	बभूविरे

प्रथम भविष्यत [मैं होऊंगा]

उ०	भविताहे	भवितास्वहे	भवितास्महे
म०	भवितासे	भवितासाथे	भविताध्वे
अ०	भविता	भवितारौ	भवितारः

द्वितीय भविष्यत [मैं होऊंगा]

उ०	भविष्ये	भविष्यावहे	भविष्यामहे
म०	भविष्यसे	भविष्येथे	भविष्यध्वे
अ०	भविष्यते	भविष्येते	भविष्यन्ते

अनियतभूत [मैं था वा हुआ वा हुआ था]

उ०	अभविषि	अभविष्वहि	अभविष्महि
म०	अभविष्ठाः	अभविषाथाम्	अभविढ्वम् वा अभविध्वम्
अ०	अभविष्ट	अभविषाताम्	अभविषत

आशीर्वादवाचक (मैं होऊं)

स्था (मुख्य अपूर्णपद तिष्ठ (२६१ वाँ सूत्र और २६९ वें सूत्र की ? ठी शाखा देखो) भाववाचक स्थातुम् (खड़ा होना) परस्मैपद और आत्मनेपद वर्तमान तिष्ठामि तिष्ठसि तिष्ठति । तिष्ठावः तिष्ठथः तिष्ठतः । तिष्ठामः तिष्ठथ तिष्ठन्ति ॥ आत्मनेपद तिष्ठे तिष्ठसे तिष्ठते । तिष्ठावहे तिष्ठेथे तिष्ठेते । तिष्ठामहे तिष्ठध्वे तिष्ठन्ते ॥ अपूर्णभूत अतिष्ठम् अतिष्ठ इत्यादि आत्मनेपद अतिष्ठे इत्यादि शक्यर्थ तिष्ठेयम् तिष्ठेः तिष्ठेत् । तिष्ठेव इत्यादि आत्मनेपद तिष्ठेय तिष्ठेथाः तिष्ठेत । तिष्ठेवहि तिष्ठेयाथाम् इत्यादि अनुमत्यर्थ तिष्ठानि तिष्ठ तिष्ठतु । तिष्ठाव इत्यादि आत्मनेपद तिष्ठै तिष्ठस्व तिष्ठताम् । तिष्ठावहै—इत्यादि पूर्णभूत तस्थौ (३७३ वाँ सूत्र देखो) तस्थिथ वा तस्थाथ तस्थौ । तस्थिव तस्थथुः तस्थतुः । तस्थिम तस्थ तस्थुः ॥ आत्मनेपद तस्थे तस्थिषे तस्थे । तस्थिवहे तस्थाथे तस्थाते ॥ तस्थिमहे तस्थिध्वे तस्थिरे ॥ प्रथमभविष्यत स्थातास्मि स्थातासि इत्यादि आत्मनेपद स्थाताहे स्थातासे इत्यादि द्वितीयभविष्यत स्थास्यामि स्थास्यसि स्थास्यति इत्यादि आत्मनेपद स्थास्ये स्थास्यसे स्थास्यते इत्यादि अनियतभूत (४३८ वाँ सूत्र देखो) अस्थाम् अस्थाः अस्थात् । अस्थाव अस्थातम् अस्थाताम् । अस्थाम अस्थात अस्थुः ॥ आत्मनेपद (४३८ वें सूत्र की और ४२१ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) अस्थिषि अस्थिथाः अस्थित । अस्थिष्वहि अस्थिषाथाम् अस्थिषाताम् । अस्थिष्महि अस्थिढ्वम् अस्थिषत ॥ आशीर्वादवाचक स्थेयासम् स्थेयाः इत्यादि आत्मनेपद स्थासीय स्थासीष्ठाः इत्यादि आशंसार्थ अस्थास्यम् अस्थास्यः इत्यादि आत्मनेपद अस्थास्ये अस्थास्यथाः इत्यादि कर्मणिवाच्य वर्तमान स्थीये (४६५ वाँ सूत्र देखो) अनियतभूत अ० ए० व० अस्थायि ॥ प्रेरणार्थक वर्तमान स्थापयामि स्थापये । अनियतभूत अतिष्ठिपम् अतिष्ठिपे ॥ इच्छार्थक तिष्ठासामि इत्यादि अधिकतार्थक तेष्ठीमि वा तास्थेमि वा तास्थामि॥ वर्तमानगुणक्रिया तिष्ठत् । ५४१ वें सूत्र का १ ला वर्णन देखो । कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया स्थित । अवर्तमान भूतगुणक्रिया स्थित्वा ०स्थाय ०स्थाय । कर्मणिवाच्य भविष्यत गुणक्रिया स्थातव्य स्थानीय स्थेय ॥

देखो)॥

टीका

१ जि बहुधा आत्मनेपद में नहीं आता परन्तु जब उपसर्ग वि और परा पहले आते हैं तब आता है (७८६ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

नी जि के सदृश वर्तनी कियाजाताहै भाव० नेतुम् (मार्ग दिखाना) परन्तु प्रे० नाययामि होताहै प्रे० अनि० अनीनयम् ॥ इच्छा० निनीषामि ॥ (पौराणिक काव्य में कभी २ पूर्णभूत निनाय के पलटे नयामास होता है और द्वि० भवि० नेष्यामि के पलटे विशेषकरके अब आ पहले आता है नायिष्यामि होता है)

५११वां सूत्र

मूल स्मि (मु० अपूर्णपद स्मय) भाव० स्मेतुम् (मुस्कराना) आ० वर्त० स्मये स्मयसे इत्यादि ॥ अपू० भूत अस्मये अस्मयथाः इत्यादि ॥ श० स्मयेय स्मयेथाः इत्यादि ॥ अनु० स्मये स्मयस्व इत्यादि ॥ पूर्ण भू० (३७४ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) सिष्मिये सिष्मियिषे सिष्मिये । सिष्मियिवहे सिष्मियाथे सिष्मियाते । सिष्मियिमहे सिष्मियिध्वे वा सिष्मियिढ्वे सिष्मियिरे ॥ प० भवि० स्मेताहे स्मेतासे इत्यादि ॥ द्वि० भवि० स्मेष्ये स्मेष्यसे इत्यादि ॥ अनि० अस्मेषि अस्मेष्ठाः अस्मेष्ट । अस्मेष्वहि अस्मेषाथाम् अस्मेषाताम् । अस्मेष्महि अस्मेढ्वम् अस्मेषत ॥ आशी० स्मेषीय इत्यादि ॥ आशं० अस्मेष्ये इत्यादि ॥ कर्म० वर्त० स्मीये ॥ अनि० अ० ३० अस्मायि ॥ प्रे० वर्त० स्माययामि वा स्मापयामि ॥ अनि० असिष्मयम् वा असिष्मपम् ॥ इच्छा० सिस्मयिषे ॥ अधि० सेष्मीये सेष्मेमि वा सेष्मयीमि ॥ कर्तृ० भू० गु० स्मयमान ॥ कर्म० भू० गु० स्मित ॥ अव्य० भू० गु० स्मित्वा विस्मित्य ॥ कर्म० भवि० गु० स्मेतव्य स्मयनीय स्मेय ॥

टीका

१ जब उपसर्ग वि लगता है तब पूर्णभूत ५०२ सूत्र में विरुद्ध विकल्प होता है

जह्रे जह्रिषे जह्रे । जह्रिवहे जिह्राथे जह्राते । जह्रिमहे जह्रिध्वे वा जह्रिढ्वे जह्रिरे ॥ प० भवि० हर्तास्मि ॥ आत्म० हर्ताहे हर्तासे इत्यादि ॥ द्वि० भवि० हरिष्यामि ॥ आत्म० हरिष्ये हरिष्यसे इत्यादि ॥ अनि० भू० अहार्षम् अहार्षीः अहार्षीत् ॥ अहार्ष्व अहार्ष्टम् अहार्ष्टाम् । अहार्ष्म अहार्ष्ट अहार्षुः ॥ आत्म० अहृषि अहृथाः अहृत । अहृष्वहि अहृषाथाम् अहृषाताम् । अहृष्महि अहृढ्वम् अहृषत ॥ आशी० ह्रियासम् ॥ आत्म० हृषीय हृषीष्ठाः इत्यादि ॥ आशं० अहरिष्यम् ॥ आत्म० अहरिष्ये अहरिष्यथाः इत्यादि ॥ कर्म० वर्त० ह्रियै । अनि० भू० अ० ए० व० अहारि ॥ प्रे० वर्त० हारयामि हारये ॥ अनि० भू० अजीहरम् ॥ इच्छा० जिहीर्षा-मि जिहीर्षे ॥ अधि० जेह्रिये जर्हरीमि वा जरीहरीमि वा जरिहरीमि वा जरीहर्मि वा जरिहर्मि वा जर्हर्मि ॥ वर्त० गु० हरत् कर्म० ह्रियमाण ॥ कर्म० भू० गु० हृत अवर्त० भू० गु० हृत्वा ०हृत्य ॥ कर्म० भवि० गु० हर्तव्य हरणीय हार्य

५३४वां सूत्र

मूल स्मृ (मु० अपू० प० स्मर) भाव० स्मर्तुम् (स्मरण करना ॥ पर्स्मै० और आत्म० वर्त० स्मरामि ॥ आत्म० स्मरे ॥ अपू० भू० अस्मरम् अस्मरः इत्यादि ॥ आत्म० अस्मरे ॥ श० स्मरेयम् ॥ आत्म० स्मरेय इत्यादि ॥ आज्ञा० स्मराणि (५८ वां सूत्र देखो) ॥ आत्म० स्मरै स्मरस्व इत्यादि ॥ पू० भू० सस्मार सस्मर (१७० वें सूत्र की १ली शाखा देखो) सस्मार । सस्मरिव सस्मरथुः सस्मरतुः । सस्मरिम सस्मर सस्मरुः ॥ आत्म० सस्मरे सस्मरिषे सस्मरे । सस्मरिवहे सस्मराथे सस्मराते । सस्मरिमहे सस्मरिध्वे वा सस्मरिढ्वे सस्मरिरे ॥ प० भवि० स्मर्तास्मि ॥ आत्म० स्मर्ताहे ॥ द्वि० भ० स्मरिष्यामि ॥ आत्म० स्मरिष्ये ॥ अनि० भू० अस्मार्षम् इत्यादि ॥ (ह्र को ५९३ वें सूत्र में देखो) ॥ आत्म० अस्मृषि अस्मृथाः (ह्र को ५९३ वें सूत्र में देखो) आशी० स्मर्यासम् ॥ आत्म० स्मृषीय वा स्मरिषीय ॥ आशं० अस्मरिष्यम ॥ आत्म० अस्मरिष्ये ॥ कर्म० वर्त० स्मर्ये । अनि० भू० अ० ए० व० अस्मारि ॥ प्रे० वर्त० स्मारयामि स्मारये ॥ अनि० भू० असस्मरम् ॥ इ-

गै (मू॰ अपू॰ प॰ गाय २६८ वां सूत्र देखो) भाव॰ गातुम् (गाना) छै के अनुसार अपने पिछले मिश्रित स्वर का स्थान् या म् आदि में रखने वाले अन्तों के पहले आ से पलटना चाहता है वर्त॰ गायामि ॥ अपू॰ भू॰ अगायम् इत्यादि ॥ श॰ गायेयम् ॥ अनु॰ गायानि ॥ पू॰ भू॰ (३७३ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) जगौ जगिथ वा जगाथ जगौ । जगिव जगथुः जगतुः । जगिम जग जगुः ॥ प्र॰ भवि॰ गातास्मि ॥ द्वि॰ भवि॰ गास्यामि ॥ अनि॰ भू॰ (४३३ वां सूत्र देखो) अगासिषम् अगासीः अगासीत् । अगासिष्व अगासिष्टम् अगासिष्टाम् । अगासिष्म अगासिष्ट अगासिषुः ॥ आशी॰ गेयासम् (४५१ वां सूत्र देखो) ॥ आशं॰ अगास्यम् ॥ कर्म॰ गीयते (२६५ वां सूत्र देखो) ॥ अनि॰ भू॰ अ॰ ए॰ व॰ अगायि ॥ प्रे॰ वर्त॰ गापयामि (४८३ वां सूत्र देखो) अनि॰ भू॰ अजीगपम् ॥ इच्छा॰ जिगासामि ॥ अधि॰ जेगीये जागेमि वा जागामि ॥ वर्त॰ गु॰ गायत् ॥ कर्म॰ गु॰ गीयमान ॥ कर्म॰ भू॰ गु॰ गीत ॥ अर्त॰ भू॰ गु॰ गीत्वा ॰गाय ॥ कर्म॰ भवि॰ गु॰ गातव्य गानीय गेय ॥

२ री शाखा

ग्लै (थक) ध्यै (ध्यान कर) म्लै (कुम्हला) इत्यादि ऐ अन्त में रखनेवाले सब मूल गै के सदृश बर्ती किये जाते हैं (२६८ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

मूल पच् (मू॰ अपू॰ प॰ पच) भाव॰ पक्तुम् (पकाना) परस्मै॰ और आत्म॰ पचामि ॥ आत्म॰ पचे ॥ अपू॰ भू॰ अपचम् अपचः इत्यादि ॥ आत्म॰ अपचे ॥ श॰ पचेयम् पचेः इत्यादि ॥ आत्म॰ पचेय ॥ अनु॰ पचानि पच इत्यादि ॥ आत्म॰ पचै ॥ पू॰ भू॰ पपाच वा पपच पपक्थ वा पेचिथ (३७० वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) पपाच । पेचिव पेचथुः पेचतुः । पेचिम पेच पेचुः ॥ आत्म॰ पेचे पेचिषे पेचे । पेचिवहे पेचाथे पेचाते । पेचिमहे पेचिध्वे पेचिरे ॥ प्र॰ भवि॰ पक्तास्मि ॥ आत्म॰ पक्ताहे ॥ द्वि॰ भवि॰ पक्ष्यामि ॥ आत्म॰ पक्ष्ये ॥ अनि॰ भू॰ (४२० वें

सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) अपाक्षम् अपाक्षीः अपाक्षीत् । अपाक्ष्व अपाक्तम् अपाक्ताम् । अपाक्ष्म अपाक्त अपाक्षुः ॥ आत्म० अपक्षि अपक्थाः अपक्त । अपक्ष्वहि अपक्षाथाम् अपक्षाताम् । अपक्ष्महि अपग्ध्वम् अपक्षत ॥ आशी० पच्यासम् ॥ आत्म० पक्षीय ॥ आशं० अपक्ष्यम् आत्म० अपक्ष्ये ॥ कर्म० वर्त० पच्ये अपू० भू० अपच्ये ॥ अनि० भू० अ० ए० पु० अपाचि ॥ प्रे० वर्त० पचयामि पाचये ॥ अनि० भू० अपीपचम् ॥ इच्छा० पिपक्षामि पिपक्षे ॥ अधि पापच्ये पापचिम वा पापच्मि ॥ वर्त० गु० पचत् । आत्म० गु० पचमान । कर्म गु० पच्यमान ॥ कर्म० भू० गु० पक्व (५४८ वां सूत्र देखो) ॥ अवत० भू० गु० पक्त्वा ०पच्य ॥ कर्म० भवि० गु० पक्तव्य पचनीय पाच्य वा पाक्य (५७४वां सूत्र देखो)

४ थी शाखा

मूल याच् (मु० अपू० प० याच) भाव० याचितुम् (मांगना) परस्मै० और आत्म० वर्त० याचामि ॥ आत्म० याचे ॥ अपू० भू० अयाचम् अयाचः इत्यादि ॥ आत्म० अयाचे ॥ श० याचेयम् याचेः इत्यादि ॥ आत्म० याचेय ॥ अनु० याचानि याच इत्यादि ॥ आत्म० याचै ॥ पूर्ण भूत ययाच ययाचिथ ययाच । ययाचिव ययाचथुः ययाचतुः । ययाचिम ययाच ययाचुः ॥ आत्म० ययाचे ययाचिषे ययाचे । ययाचिवहे ययाचाथे ययाचाते । ययाचिमहे ययाचिध्वे ययाचिरे ॥ प्र० भवि० याचितास्मि ॥ आत्म० याचिताहे ॥ द्वि० भवि० याचिष्यामि ॥ आत्म० याचिष्ये ॥ अनि० भू० (४२७ वां सूत्र देखो) अयाचिषम् अयाचीः अयाचीत् । अयाचिष्व अयाचिष्टम् अयाचिष्टाम् । अयाचिष्म अयाचिष्ट अयाचिषुः ॥ आत्म० अयाचिषि अयाचिष्ठाः अयाचिष्ट । अयाचिष्वहि अयाचिषाथाम् अयाचिषाताम् । अयाचिष्महि अयाचिध्वम् अयाचिषत ॥ आशी० याच्यासम् ॥ आत्म० याचिषीय ॥ आशं० अयाचिष्यम् ॥ कर्म० वर्त० याच्ये ॥ प्रे० वर्त० याचयामि ॥ अनि० भू० अययाचम् ॥ इच्छा० यियाचिषामि

पिपाचिथ ॥ अधि॰ पापाच्ये पापाचिम (अ॰ ए॰ व॰ पापाक्ति) ॥ वर्त॰ गु॰ पाचत् । आत्मने पाचमान ॥ कर्म॰ भू॰ गु॰ पाचित ॥ अव्य॰ भू॰ गु॰ पाचित्वा ॥ कर्म॰ भवि॰ गु॰ पाचितव्य पाचनीय पाच्य ॥

५ वीं शाखा ।

मूल शुच् (भू॰ अपूर्णपद शोच) भाव॰ शोचितुम् (शोचकरना) परस्मैपद (आत्मनपद में थोड़ा आता है) वर्तमा॰ शोचामि ॥ अपूर्णभूत अशोचम् अशोचः इत्यादि ॥ श॰ शोचेयम् शोचेः इत्यादि ॥ अनु॰ शोचानि शोच. इत्यादि ॥ पू॰ भू॰ शुशोच शुशोचिथ शुशोच । शुशुचिव शुशुचथुः शुशुचतुः । शुशुचिम शुशुच शुशुचुः ॥ प॰ भवि॰ शोचितास्मि ॥ द्वि॰ भवि॰ शोचिष्यामि ॥ अनि॰ भू॰ (४२५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) अशोचिषम् अशोचीः अशोचीत् । अशोचिष्व अशोचिष्टम् अशोचिष्टाम् । अशोचिष्म अशोचिष्ट अशोचिषुः ॥ आशी॰ शुच्यासम् ॥ आशं॰ अशोचिष्यत् ॥ कर्म॰ वर्त॰ शुच्ये ॥ अनि॰ भू॰ अ॰ ए॰ व॰ अशोचि ॥ प्रे॰ वर्त॰ शोचयामि ॥ अनि॰ भू॰ अशूशुचम् ॥ इच्छा॰ शुशुचिषामि वा शुशोचिषामि ॥ अधि॰ शोशुच्ये शोशोच्मि (अ॰ ए॰ व॰ शोशोक्ति) ॥ वर्त॰ गु॰ शोचत् । कर्म॰ गु॰ शुच्यमान ॥ कर्म॰ भू॰ गु॰ शुचित और शोचित ॥ अव्य॰ भू॰ गु॰ शुचित्वा वा शोचित्वा॰ शुच्य ॥ कर्म॰ भवि॰ गु॰ शोचितव्य शोचनीय शोच्य

५९६ वां सूत्र

मूल त्यज् भाव॰ त्यक्तुम् (छोड़ना) परस्मै॰ वर्त॰ त्यजामि ॥ अपूर्णभूत अत्यजम् अत्यजः इत्यादि ॥ श॰ त्यजेयम् ॥ अनु॰ त्यजानि त्यज इत्यादि ॥ पूर्णभूत तत्याज तत्यजिथ वा तत्यक्थ (३७५ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) तत्याज । तत्यजिव तत्यजथुः तत्यजतुः । तत्यजिम तत्यज तत्यजुः ॥ प॰ भवि॰ त्यक्तास्मि ॥ द्वि॰ भवि॰ त्यक्ष्यामि ॥ अनि॰ भू॰ (४२२ वां और ३९६ वां सूत्र देखो) अत्याक्षम् अत्याक्षीः अत्याक्षीत् । अत्याक्ष्व अत्याक्तम् अत्याक्ताम् । अत्याक्ष्म अ-

प.

स्याक अत्याक्षुः ॥ आशी० त्यज्यासम् ॥ आशी० अत्यक्ष्यम् इत्यादि ॥ कर्म० वर्तमान त्यज्ये ॥ अनि० भू० अ० ए० प्र० अत्याजि ॥ प्रे० वर्त० त्याजयामि ॥ अनि० भू० अतित्यजम् ॥ इच्छा० तित्यक्षामि ॥ अधि० तात्यज्ये तात्यज्मि वा तात्यजीमि ॥ वर्त० गु० त्यजत् ॥ कर्म० भू० गु० त्यक्त ॥ अवर्त० भू० गु० त्यक्त्वा ०त्यज्य ॥ कर्म० भवि० गु० त्यक्तव्य त्यजनीय त्याज्य (५७१ वां सूत्र देखो)

५९७ वां सूत्र

मूल यज् । भाव० यष्टुम् (पूजना) परस्मै और आत्मने० वर्त० यजामि ॥ आत्मने यजे ॥ अपूर्णभूत अयजम् अयजः इत्यादि ॥ आत्मने अयजे ॥ श० यजेयम् ॥ आत्मने यजेय ॥ अनु० यजानि यज इत्यादि ॥ आत्मने यजै ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) इयाज इयजिथ वा इयष्ठ (२९० वां सूत्र देखो) इयाज ॥ ईजिव ईजथुः ईजतुः ॥ ईजिम ईज ईजुः ॥ आत्मने ईजे ईजिषे ईजे । ईजिवहे ईजाथे ईजाते । ईजिमहे ईजिध्वे ईजिरे ॥ प० भवि० यष्टास्मि (२९७ वां सूत्र देखो) ॥ आत्मने यष्टाहे ॥ द्वि० भवि० यक्ष्यामि (२९७ वां सूत्र देखो) ॥ आत्मने यक्ष्ये ॥ अनि० भू० (४२२ वां सूत्र देखो) अयाक्षम् अयाक्षीः अयाक्षीत् ॥ अयाक्ष्व अयाष्टम् अयाष्टाम् ॥ अयाक्ष्म अयाष्ट अयाक्षुः ॥ आत्मने अयक्षि अयष्ठाः अयष्ट । अयक्ष्वहि अयक्षाथाम् अयक्षाताम् । अयक्ष्महि अयड्ढ्वम् अयक्षत ॥ आशी० इज्यासम् ॥ आत्मने यक्षीय ॥ आशी० अयक्ष्यम् ॥ आत्मने अयक्ष्ये ॥ कर्म० वर्त० इज्ये (४७१ वां सूत्र देखो) ॥ अपूर्ण० भूत ऐज्ये (२६३ वें सूत्र की ८ वीं शाखा देखो) ॥ अनि० भू० अ० ए० प्र० अयाजि ॥ प्रे० वर्त० याजयामि याजये ॥ अनि० भू० अयीयजम् ॥ इच्छा० यियक्षामि यियक्षे ॥ अधि० यायज्ये यायज्मि वा यायजीमि ॥ वर्त० गु० यजत् ॥ आत्मने यजमान ॥ कर्म० वर्त० गु० इज्यमान ॥ कर्म० भू० गु० इष्ट ॥ अवर्त० भू० गु० इष्ट्वा ०इज्य ॥ कर्म० भवि० गु० यष्टव्य यजनीय याज्य वा यज्य

१ ली शाखा

मूल एध् भाववाचक एधितुम् (बढ़ना) ॥ आत्मनेपद वर्त० एधे एधसे इत्यादि ॥ अपूर्णभूत ऐधे (२५१ वां सूत्र देखो) ऐधथाः इत्यादि ॥ शक्त्यर्थ एधेय ॥ अनुमत्यर्थ एधै एधस्व इत्यादि ॥ पूर्णभूत (३८५ वां सूत्र देखो) एधाञ्चक्रे एधाञ्चकृषे एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृवहे एधाञ्चक्राथे एधाञ्चक्राते । एधाञ्चकृमहे एधाञ्चकृढ्वे एधाञ्चक्रिरे ॥ प्रथम भविष्यत एधिताहे ॥ द्वितीय भविष्यत एधिष्ये ॥ अनियतभूत ऐधिषि (४२० वें सूत्र की २ री शाखा और २५१ वां सूत्र देखो) ऐधिष्ठाः ऐधिष्ट ॥ ऐधिष्वहि ऐधिषाथाम् ऐधिषाताम् । ऐधिष्महि ऐधिढ्वम् ऐधिषत ॥ आशीर्वादवाचक एधिषीय ॥ आशंसार्थ ऐधिष्ये (२५१ वां सूत्र देखो) कर्म० एध्ये ॥ अनियतभूत प्र० पु० ए० ऐधि ॥ प्रे० वर्त० एधयामि ॥ अनियतभूत ऐदिधम् (४९२ वां सूत्र देखो) ॥ इच्छार्थक एदिधिषे (५००वें सूत्र की २ री शाखा देखो) ॥ वर्त० गु० एधमान ॥ कर्म० भू० गु० एधित ॥ अवर्त० भू० गु० एधित्वा एध्य ॥ कर्म० भवि० गु० एधितव्य, एधनीय एध्य

३ री शाखा,

मूल तप् भाववाचक तप्तुम् (तपना) परस्मैपद और आत्मनेपद वर्तमान तपामि ॥ आत्मनेपद तपे ॥ अपूर्णभूत अतपम् ॥ आत्मनेपद अतपे ॥ शक्त्यर्थ तपेयम् ॥ आत्मनेपद तपेय ॥ अनुमत्यर्थ तपानि तप इत्यादि ॥ आत्मनेपद तपै ॥ पूर्णभूत ततप वा ततप ततप्थ वा तेपिथ ततापा । तेपिव तेपथुः तेपतु । तेपिम तेप तेपु ॥ आत्मनेपद तेपे तेपिषे तेपे । तेपिवहे तेपाथे तेपाते । तेपिमहे तेपिध्वे तेपिरे ॥ प्रथमभविष्यत तप्तास्मि इत्यादि ॥ आत्मनेपद तप्ताहे इत्यादि ॥ द्वितीय भविष्यत तप्स्यामि (और तपिष्यामि भी) ॥ आत्मनेपद तप्स्ये ॥ अनियतभूत अताप्सम् अताप्सीः अताप्सीत् । अताप्स्व अताप्तम् अताप्ताम् । अताप्स्म अताप्त अताप्सुः ॥ आत्मनेपद अतप्सि अतप्थाः अतप्त । अतप्स्वहि अतप्साथाम् अतप्साताम् । अतप्स्महि अतब्ध्वम् अतप्सत ॥ आशीर्वादवाचक तप्यासम् ॥ आत्मनेपद तप्सीय आशंसार्थ अतप्स्यम् ॥ आत्मनेपद अतप्स्ये ॥ कर्म० वर्त० तप्ये ॥ अपूर्णभूत

नम् उपसर्ग आ के साथ रभ् के सदृश बर्तती क्रियाजाल है जैसे आरब्धुम् (आरम्भ करना) [illegible] ॥ [illegible] ६०३ वां सूत्र [illegible] ॥ मूल गम् (मुख्य अपूर्णपद गच्छ २७० वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक गन्तुम् (जाना) परस्मैपद वर्तमान गच्छामि गच्छसि गच्छति ॥ गच्छावः गच्छथः गच्छतः । गच्छामः गच्छथ गच्छन्ति ॥ अपूर्णभूत अगच्छम् अगच्छः इत्यादि ॥ शक्त्यर्थ गच्छेयम् गच्छेः इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ गच्छानि गच्छ इत्यादि ॥ पूर्णभूत (३७६ वां सूत्र देखो) जगाम जगमिथ वा जगन्थ जगाम । जग्मिव जग्मथुः जग्मतुः । जग्मिम जग्म जग्मुः ॥ प्रथमभविष्यत् गन्तास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत् गमिष्यामि गमिष्यसि गमिष्यति इत्यादि ॥ अनिश्चितभूत (४३६ वां सूत्र देखो) अगमम् अगमः अगमत् । अगमाव अगमतम् अगमताम् । अगमाम अगमत अगमन् ॥ आशीर्वादवाचक गम्यासम् ॥ आशंसार्थ अगमिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्तमान गम्ये ॥ अनिश्चितभूत अ० ए० व० अगामि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० गमयामि ॥ अनिश्चितभूत अजीगमम् ॥ इच्छार्थक जिगमिषामि ॥ अधिकतार्थक जङ्गम्ये जङ्गन्मि वा जङ्गमीमि (७०९ वां सूत्र देखो) ॥ वर्तमान गु० गच्छन् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० गत ॥ अव्ययीय भू० गु० गत्वा ०गम्य ०गत्य (५५३ वें सूत्र की १ ली शाखा और ५६० वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० गन्तव्य गमनीय गम्य ॥

[illegible]

१ ली शाखा

मूल नम् भाववाचक नन्तुम् (झुकना) परस्मैपद और आत्मनेपद (झुकना वा आपको झुकाना) वर्तमान नमामि ॥ आत्मनेपद नमे ॥ अपूर्णभूत अनमम् ॥ आत्मनेपद अनमे ॥ शक्त्यर्थ नमेयम् ॥ आत्मनेपद नमेय ॥ अनुमत्यर्थ नमानि ॥ आत्मनेपद नमै ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ननाम वा ननम ननन्थ वा नेमिथ ननाम । नेमिव नेमथुः नेमतुः । नेमिम नेम नेमुः ॥ आत्मनेपद नेमे नेमिषे नेमे । नेमिवहे नेमाथे नेमाते । नेमिमहे नेमिध्वे नेमिरे ॥ प्रथम-

११२ प

भविष्यत नन्तास्मि ॥ आत्मनेपद नन्ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत नंस्यामि ॥ आत्मने पद नंस्ये ॥ अनियतभूत अनंसिषम् अनंसीः अनंसीत् । अनंसिष्व अनंसिष्ट अनंसिष्टाम् । अनंसिष्म अनंसिष्ट अनंसिषुः ॥ आत्मनेपद अनंसि अनंस्थाः अनंस्त । अनंस्वहि अनंसाथाम् अनंसाताम् । अनंस्महि अनन्ध्वम् अनंसत । आशीर्वादवाचक नम्यासम् ॥ आत्मनेपद नंसीय ॥ आशंसार्थ अनंस्यम् ॥ आत्मनेपद अनंस्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० नम्ये ॥ अपूर्णभूत अनम्ये ॥ अनियत भूत अ० ए० व० अनामि वा अनामि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० नमयामि वा नामयामि ॥ अनियतभूत अनीनमम् वा अनीनमम् ॥ इच्छार्थक निनंसामि ॥ अधिकतार्थक नंनम्ये नंनमीमि वा नंनन्मि ॥ वर्तमान कृ० नमत् ॥ आत्मनेपद वर्त० गु० नममान ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० गु० नम्यमान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० नत ॥ अवर्तनीयभूत गु० नत्वा ०नम्य वा ०नत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० नन्तव्य नमनीय नाम्य वा नम्य ॥

२ री शाखा

मूल चल् भाववाचक चलितुम् (चलना) ॥ परस्मैपद वर्तमान चलामि ॥ अपूर्णभूत अचलम् ॥ शक्त्यर्थ चलेयम् ॥ अनुमत्यर्थ चलानि चल इत्यादि ॥ पूर्णभूत चचाल वा चचल, चेलिथ चचाल । चेलिव चेलथुः चेलतुः । चेलिम चेल चेलुः ॥ प्रथम भविष्यत चलितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत चलिष्यामि ॥ अनियत भूत अचालिषम् अचालीः अचालीत् । अचालिष्व अचालिष्टम् अचालिष्टाम् । अचालिष्म अचालिष्ट अचालिषुः ॥ आशीर्वादवाचक चल्यासम् ॥ आशंसार्थ अचलिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० चल्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० चलयामि वा चालयामि ॥ इच्छार्थक चिचलिषामि ॥ अधिकतार्थक चाचल्ये चाचलिम ॥ वर्तमान गु० चलत् ॥ कर्मणिवाच्य भूत गु० चलित ॥ अवर्तनीय भूत गु० चलित्वा ०चल्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० चलितव्य चलनीय चाल्य

मूल जीव् जीवितवाचक जीवितुम् (जीना)॥ परस्मैपद वर्त० जीवामि॥ अपूर्णभूत अजीवम्॥ शक्यर्थ जीवेयम्॥ अनुमत्यर्थ जीवानि जीव इत्यादि॥ पूर्णभूत जिजीव जीजिविथ जिजीव। जिजीविव जिजीवथुः जिजीवतु। जिजीविम जिजीव जिजीवुः॥ प्रथम भविष्यत जीवितास्मि॥ द्वितीय भविष्यत जीविष्यामि॥ अनियतभूत अजीविषम् अजीवीः अजीवीत्। अजीविष्व, अजीविष्टम् अजीविष्टाम्। अजीविष्म अजीविष्ट। अजीविषुः॥ आशीर्वादवाचक जीव्यासम्॥ आशंसार्थ अजीविष्यम्॥ कर्मणिवाच्य॥ वर्त० जीव्ये॥ अनियतभूत अ० ए० व० अजीवि॥ प्रेरणार्थक वर्त० जीवयामि॥ अनियतभूत अजिजीवम् वा अजीजिवम्॥ इच्छार्थक जिजीविषामि॥ अधिकतार्थक जेजीव्ये॥ वर्तमान गु० जीवत्॥ कर्मणिवाच्य भूत गु० जीवित॥ अवर्तनीय भूत गु० जीवित्वा ०जीव्य॥ कर्म० भवि० गु० जीवितव्य जीवनीय जीव्य। [illegible]

[illegible] ली शाखा

मूल धाव् शीघ्रवाचक धावितुम् (दौड़ना-धोना)॥ परस्मैपद और आत्मनेपद॥ वर्तमान धावामि॥ आत्मनेपद धावे॥ अपूर्णभूत अधावम्॥ आत्मनेपद अधावे॥ शक्यर्थ धावेयम्॥ आत्मनेपद धावेय॥ अनुमत्यर्थ धावानि॥ आत्मनेपद धावै॥ पूर्णभूत दधाव दधाविथ दधाव। दधाविव दधावथुः दधावतुः। दधाविम दधाव दधावुः॥ प्रथम भविष्यत धावितास्मि॥ आत्मनेपद धाविताहे॥ द्वितीय भविष्यत धाविष्यामि॥ आत्मनेपद धाविष्ये॥ अनियतभूत अधाविषम् अधावीः अधावीत्। अधाविष्व अधाविष्टम् अधाविष्टाम्। अधाविष्म अधाविष्ट अधाविषुः॥ आत्मनेपद अधाविषि अधाविष्ठाः अधाविष्ट। अधाविष्वहि इत्यादि॥ आशीर्वादवाचक धाव्यासम्॥ आत्मनेपद धाविषीय॥ आशंसार्थ अधाविष्यम्॥ आत्मनेपद अधाविष्ये॥ कर्मणिवाच्य वर्त० धाव्ये॥ प्रेरणार्थक वर्त० धावयामि॥ अनियतभूत अदीधवम्॥ इच्छार्थक दिधाविषामि दिधाविषे॥ अधिकतार्थक दाधाव्ये॥ वर्तमान गु० धावत् धावमान॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० धा-

वित धौत (धोयाहुआ)॥ अवर्तनीय (भू० गु०) धावित्वा वा धौत्वा॥ कर्मणि
च्य भवि० गु० धवितव्य धावनीय धाव्य [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ६०४ वां सूत्र [illegible]

मूल दृश् (मुख्य अपूर्णपद पश्य २७० वां सूत्र देखो)॥ भाववाचक द्रष्टुम् (दे
ना) परस्मैपद वर्त० पश्यामि पश्यसि पश्यति ॥ पश्यावः पश्यथः पश्यतः। पश्
पश्यथ पश्यन्ति अपूर्णभूत अपश्यम् अपश्यः अपश्यत्। अपश्याव इत्यादि
शतर्थ्य पश्येयम् पश्येः पश्येत् पश्येव इत्यादि॥ अनुमत्यर्थ पश्यानि
पश्यतु। पश्याव इत्यादि॥ पूर्णभूत ददर्श ददर्शिथ वा दद्रष्ठ (३७० वें सूत्र
६ ठी शाखा देखो) ददर्श ददर्शिव ददर्शथुः ददर्शतुः ददर्शिम ददर्श ददर्शुः
प्रथम भविष्यत द्रष्टास्मि॥ द्वितीय भविष्यत द्रक्ष्यामि॥ अनियतभूत (४३७वें
त्र की ३ री शाखा देखो) अदर्शम् अदर्शः अदर्शत्। अदर्शाव अदर्शतम्
दर्शताम्। अदर्शाम अदर्शत अदर्शन्॥ वा अद्राक्षम् (४२० वां सूत्र और ३
वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो) अद्राक्षीः अद्राक्षीत्। अद्राक्ष्व अद्राष्टम् अ
ष्टाम्। अद्राक्ष्म अद्राष्ट अद्राक्षुः॥ आशीर्वादवाचक दृश्यासम्॥ आशंसार्थ
द्रक्ष्यम्॥ कर्मणिवाच्य वर्त० दृश्ये॥ अनियतभूत अ० ए० व० अदर्शि॥ प्रेरण
र्थक वर्त० दर्शयामि॥ अनियतभूत अदीदृशम् वा अददर्शम् (४९३ रा सूत्र देख
)॥ इच्छार्थक दिदृक्षे॥ अधिकमार्थक दरीदृश्ये दर्दर्शिम॥ वर्तमान गु० पश्यत्
कर्मणिवाच्य भू० गु० दृष्ट॥ अवर्तनीय भू० गु० दृष्ट्वा ०दृश्य॥ कर्मणिवाच्य भ
वि० गु० द्रष्टव्य दर्शनीय दृश्य [illegible]
[illegible] ६०५ वां सूत्र [illegible]

मूल ईक्ष् भाववाचक ईक्षितुम् (देखना)॥ आत्मनेपद वर्त० ईक्षे॥ अपूर्णभू
ऐक्षे (२५१ वां सूत्र देखो)॥ शतर्थ्य ईक्षेय॥ अनुमत्यर्थ ईक्षै॥ पूर्णभूत ई
क्षाञ्चक्रे इत्यादि (३८५वां सूत्र और एधू ६०० वें सूत्र में देखो)॥ प्रथम भविष्य
त ईक्षिताहे॥ द्वितीयभविष्यत ईक्षिष्ये॥ अनियतभूत ऐक्षिषि (२५१वां सूत्र दे

वा अचीकपम् ॥ इच्छार्थक चिकल्पामि चिकल्पे ॥ अधिकतार्थक चरीकल्पे चरी
ल्मि वा चरीकल्पि ॥ वर्तमान गु० कल्पत् ॥ कर्म० भू० गु० कल्प ॥ अवर्तनीय
गु० कल्पा ०कल्प्य ॥ कर्म० भवि० गु० कल्पय्य वा कल्पय्य कल्पणीय कल्प्य.

टीका

+ यिह मूल ६ ठे गण में भी वर्तनी कियाजाताहे जैसे वर्तमान कल्पामि इत्या
॥ शत्त्यर्थ कल्पेयम् इत्यादि ॥

१ ली शाखा

मूल भाष् भाववाचक भाषितुम् (बोलना) ॥ आत्मनेपद वर्त० भाषे ॥ अपू
भूत अभाषे ॥ शत्त्यर्थ भाषेय ॥ अनुमत्यर्थ भाषै ॥ पूर्णभूत बभाषे बभाषिषे ब
षे । बभाषिवहे बभाषाथे बभाषाते । बभाषिमहे बभाषिध्वे बभाषिरे ॥ प्रथम भविष्य
भाषिताहे ॥ द्वितीय भविष्यत भाषिष्ये ॥ अनियतभूत अभाषिषि अभाषिष्ठाः अ
भाषिष्ट । अभाषिष्वहि अभाषिषाथाम् अभाषिषाताम् । अभाषिष्महि अभाषिध्व
अभाषिषत ॥ आशीर्वादवाचक भाषिषीय ॥ आशंसार्थ अभाषिष्ये ॥ कर्मणिप्रयोग
वर्त० भाष्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अभाषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० भाषयामि
अनियतभूत अबभाषम् और अबीभषम् ॥ इच्छार्थक बिभाषिषे ॥ अधिकता
क बाभाष्ये बाभाष्मि (अ० ए० व० बाभाष्टि) ॥ वर्तमान गु० भाषमाण
कर्म० भू० गु० भाषित ॥ अवर्त० भूत गु० भाषित्वा ०भाष्य ॥ कर्म० भवि
गु० भाषितव्य भाषणीय भाष्य

२ री शाखा

मूल रक्ष् भाववाचक रक्षितुम् (रक्षाकरना) ॥ परस्मैपद वर्त० रक्षामि ॥ अ
र्णभूत अरक्षम् ॥ शत्त्यर्थ रक्षेयम् ॥ अनुमत्यर्थ रक्षाणि (५८ वां सूत्र देखो
रक्ष इत्यादि ॥ पूर्णभूत ररक्ष ररक्षिथ ररक्ष । ररक्षिव ररक्षथुः ररक्षतुः । ररक्षिम
क्ष ररक्षुः ॥ प्रथम भविष्यत रक्षितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत रक्षिष्यामि ॥ अनि
यतभूत अरक्षिषम् अरक्षीः अरक्षीत् । अरक्षिष्व अरक्षिष्टम् अरक्षिष्टाम् । अ

क्षिष्म अरक्षिष्ट अरक्षिषुः ॥ आशीर्वादवाचक रक्ष्यासम् ॥ आशंसार्थ अरक्षिष्यम् ॥ कर्म० वर्त० रक्ष्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० रक्षयामि इत्यादि ॥ अनियतभूत अरराक्षम् ॥ इच्छार्थक रिरक्षिषामि इत्यादि ॥ अधिकतार्थक रारक्ष्ये रारक्ष्मि ॥ वर्तमान गु० रक्षत् कर्म० भू० गु० रक्षित ॥ अवर्तनीय भूत गु० रक्षित्वा ०रक्ष्य ॥ कर्म० भवि० गु० रक्षितव्य रक्षणीय रक्ष्य ॥

६०७ वां सूत्र

मूल वस् भाववाचक वस्तुम् (रहना) ॥ परस्मैपद वर्त० वसामि ॥ अपूर्णभूत अवसम् ॥ शक्त्यर्थ वसेयम् ॥ अनुमत्यर्थ वसानि वस इत्यादि ॥ पूर्णभूत उवास (३६८ वां सूत्र देखो) उवसिथ वा उवस्थ उवास । ऊषिव ऊषथुः ऊषतुः । ऊषिम ऊष ऊषुः ॥ प्रथम भविष्यत वस्तास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत वत्स्यामि (३०२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अनियतभूत अवात्सम् (३०४ वें और ४२६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) अवात्सीः अवात्सीत् । अवात्स्व अवात्तम् अवात्ताम् । अवात्स्म अवात्त अवात्सुः ॥ आशीर्वादवाचक उष्यासम् ॥ आशंसार्थ अवत्स्यम् (३०२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० उष्ये (४७१ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अवासि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० वासयामि वासये ॥ अनियतभूत अवीवसम् ॥ इच्छार्थक विवत्सामि (३०२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अधिकतार्थक वावस्ये वावस्मि वा वावसीमि ॥ वर्तमान गु० वसत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० उषित (वि के साथ उष) ॥ अवर्तनीय भू० गु० उषित्वा ०उष्य (५६० वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भावि० गु० वस्तव्य वसनीय वास्य ॥

६०८ वां सूत्र

मूल अर्ह् भाववाचक अर्हितुम् (योग्य होना) ॥ परस्मैपद वर्त० अर्हामि ॥ अपूर्णभूत आर्हम् ॥ शक्त्यर्थ अर्हेयम् ॥ अनुमत्यर्थ अर्हाणि (५८ वां सूत्र देखो) ॥ पूर्णभूत (३६७ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) आनर्ह आनर्हिथ आनर्ह । आ

नार्हिथ आनईथुः आनर्हतुः। आनर्हिम आनर्ह आनर्हुः ॥ प्रथम भवि० आर्हि स्मि ॥ द्वितीय भविष्यत अर्हिष्यामि ॥ अनियतभूत आर्हिषम् आर्हीः आर्ह ॥ आर्हिष्व आर्हिस्म आर्हिषाम् ॥ आर्हिष्म आर्हिष्ट आर्हिषुः ॥ आशीर्वाद वाचक अर्ह्यासम् ॥ आशंसार्थ आर्हिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० अर्ह्ये ॥ अनियत भूत अ०ए०व० आर्हि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० अर्हयामि अर्हये ॥ अनियतभूत आर्जि म् (४९२ वां सूत्र देखो) ॥ इच्छार्थक अर्जिहिषामि इत्यादि (५०० वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) ॥ वर्तमान गु० अर्हत् ॥ कर्मणिवाच्य भू०गु० अर्हित ३ वर्तनीय भू०गु० अर्हित्वा ०अर्ह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि०गु० अर्हितव्य अर्हणी अर्ह्य

६०९ वां सूत्र

मूल गुह (मुख्य अपूर्णपद गूह (३७० वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) ॥ भा ववाचक गूहितुम् वा गोढुम् (छिपाना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० गूहामि ॥ आत्मनेपद गूहे ॥ अपूर्णभूत अगूहम् ॥ आत्मनेपद अगूहे ॥ शक्यर्थ गूहेयम् । आत्मनेपद गूहेय ॥ अनुमत्यर्थ गूहानि ॥ आत्मनेपद गूहै ॥ पूर्णभूत जुगूह (३८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जुगूहिथ वा जुगोढ (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जुगूह । जुगुहिव वा जुगुह्व (३७१ वां सूत्र देखो) जुगुहथुः जुगुहतुः । जुगुहिम वा जुगुह्म जुगुह जुगुहुः ॥ आत्मनेपद जुगुहे जुगुहिषे वा जुघुक्षे इत्यादि ॥ प्रथम भविष्यत (३१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) गूहितास्मि वा गो ढास्मि (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ आत्मनेपद गूहिताहे वा गो ढाहे ॥ द्वितीय भविष्यत गूहिष्यामि वा घोक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद गूहिष्ये वा घोक्ष्ये ॥ अनियतभूत अगूहिषम् अगूहीः अगूहीत् ॥ अगूहिष्व अगूहिष्टम् अगूहिष्टाम् । अ गूहिष्म अगूहिष्ट अगूहिषुः । वा अघुक्षम् (३०३ रे सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) अघुक्षः अघुक्षत् । अघुक्षाव अघुक्षतम् अघुक्षताम् । अघुक्षाम अघुक्षत अघुक्षन् ॥ आत्मनेपद अगूहिषि अगूहिष्ठाः अगूहिष्ट इत्यादि ॥ वा अघुक्षि (३१९ वें सूत्र की २ री शाखा दे

को) अघुक्षथाः वा अगूढाः अघुक्षत वा अगूढ। अघुक्षावहि वा अगुह्वहि अघुक्षामहि अघुक्षाताम्। अघुक्षामहि अघुक्षध्वम् वा अघूढ्वम् अघुक्षन्त ॥ आशीर्वादवाचक गुह्यासम् ॥ आत्मनेपद गूहिषीय वा घुक्षीय (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो)॥ आशंसार्थ अगूहिष्यम् वा अघोक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अगूहिष्ये वा अघोक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० गुह्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अगूहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० गूहयामि ॥ अनियतभूत अजूगुहम् ॥ इच्छार्थक जुघुक्षामि जुघुक्षे ॥ अधिकतार्थक जोगुह्ये जोगोह्मि (अ० ए० व० जोगोढि) वा जोगुहीमि ॥ वर्तमान गु० गूहत् ॥ कर्मणिवाच्य भूत गु० गूढ (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अवर्तनीय भूत गु० गूहित्वा वा गूढ्वा वा गुहित्वा ०गुह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० गूहितव्य वा गोढव्य गूहनीय गुह्य वा गोह्य (५७३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो।)

६१० वां सूत्र

मूल दह् भाववाचक दग्धुम् (जलाना)॥ परस्मैपद वर्त० दहामि ॥ अपूर्णभूत अदहम् ॥ शक्यर्थ दहेयम् इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ दहानि दह इत्यादि ॥ पूर्णभूत ददाह देहिथ (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) वा ददग्ध (३०५ वां सूत्र देखो) ददाह। देहिव देहथुः देहतुः। देहिम देह देहुः ॥ प्रथम भविष्यत दग्धास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत धक्ष्यामि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो)॥ अनियतभूत अधाक्षम् (४२२ वां सूत्र देखो) अधाक्षीः अधाक्षीत्। अधाक्ष्व अदाग्धम् अदाग्धाम्। अधाक्ष्म अदाग्ध अधाक्षुः ॥ आशीर्वादवाचक दह्यासम् ॥ आशंसार्थ अधक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० दह्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अदाहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० दाहयामि दाहये ॥ अनियतभूत अदीदहम् ॥ इच्छार्थक दिधक्षामि (५०२ रे सूत्र की १ ली शाखा देखो) अधिकतार्थक दन्दह्ये दन्दह्मि वा दन्दहीमि (अ० ए० व० दन्दग्धि वा दन्दहीति)॥ वर्तमान गु० दहत् ॥ कर्मणिवाच्य भूत गु० दग्ध ॥ अवर्तनीय भू० गु० दग्ध्वा ०दह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु०

ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत् सहिष्ये ॥ अनियतभूत असहिषि ॥ आशीर्वा
द्विषीय ॥ आशंसार्थ असहिष्ये ॥ पूर्णभूत सेहे (१७५ वें सूत्र की १ ह
वो) सेहिषे इत्यादि ॥ कर्मणिवाच्य भवि० पु० सोढव्य वा सहितव्य
त्र (५७१ वां सूत्र देखो) ॥ इसके दूसरे रूप वह् के आत्मनेपद के सदृ
वर्त० सहे इत्यादि

चौथे गणवाली २७२ वें सूत्र में बताईहुई अ
...त क्रियाओं के दृष्टान्त

६१२ वां सूत्र

मूल मुह् भाववाचक मोहितुम् [दुखितहोना व खपाना]

परस्मैपद वर्तमान [मैं दुखित होताहूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	मुह्यामि	मुह्याव	मुह्याम
मध्यम	मुह्यसि	मुह्यथः	मुह्यथ
अन्य	मुह्यति	मुह्यतः	मुह्यन्ति

अपूर्णभूत [मैं दुखित हुआ वा होताथा]

	अमुह्यम्	अमुह्याव	अमुह्याम
	अमुह्यः	अमुह्यतम्	अमुह्यत
	अमुह्यत्	अमुह्यताम्	अमुह्यन्

शक्त्यर्थ (मैं दुखित होऊं)

	मुह्येयम्	मुह्येव	मुह्येम

आशंसार्थ अभोत्स्ये ॥ दूसरे रूपों के लिए ५८३ वें सूत्र में बुध् देखो

टीका

१ पहले गण में भी बुध् की वर्तनी की जाती है (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो)

६१५ वां सूत्र

मूल व्यध् (मुख्य अपूर्णपद विध्य २७७ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक व्यद्धुम् (चुभना) ॥ परस्मैपद वर्त० विध्यामि ॥ अपूर्णभूत अविध्यम् ॥ शक्यर्थ विध्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ विध्यानि ॥ पूर्णभूत (३८३ वां सूत्र देखो) विव्याध विव्यधिथ वा विव्यद्ध विव्याध । विविधिव विविधथुः विविधतुः । विविधिम विविध विविधुः ॥ प्रथमभविष्यत व्यद्धास्मि (३९८वां सूत्र देखो ॥ द्वितीय भविष्यत व्यत्स्यामि (३१९ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत (४२० वां सूत्र देखो) अव्यात्सम् अव्यात्सीः अव्यात्सीत् । अव्यात्स्व अव्याद्धम् (४१९ वां और ३९८ वां सूत्र देखो) अव्याद्धाम् । अव्यात्स्म अव्याद्ध अव्यात्सुः ॥ आशीर्वादवाचक विध्यासम् ॥ आशंसार्थ अव्यत्स्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० विध्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अव्याधि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० व्याधयामि ॥ अनियतभूत अविव्यधम् ॥ इच्छार्थक विव्यत्सामि ॥ अधिकतार्थक वेविध्ये वाव्यध्मि ॥ वर्तमान गु० विध्यत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० विद्ध ॥ अवर्तनीय भू० गु० विद्ध्वा ०विध्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० व्यद्धव्य व्यधनीय वेध्य वा व्याध्य ॥

६१६ वां सूत्र

मूल सिध् (मुख्य अपूर्णपद सिध्य २७३ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक सेद्धुम (पूरा करना) ॥ परस्मैपद वर्त० सिध्यामि ॥ अपूर्णभूत असिध्यम् ॥ शक्यर्थ सिध्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ सिध्यानि ॥ पूर्णभूत सिषेध सिषेधिथ वा सिषेद्ध सिषेध । सिषिधिव सिषिधथुः सिषिधतुः । सिषिधिम सिषिध सिषिधुः ॥ प्रथम भविष्यत सेद्धास्मि (३९८ वां सूत्र देखो) ॥ द्वितीय भविष्यत सेत्स्यामि (३१९ वां

क्रम के सदृश हैं

६१३ वां सूत्र

मूल सो (मुख्य अपूर्णपद स्य २०६ वें सूत्र की १ छी शाखा देखो) ॥ भाववाचक सातुम् (समास करना) उपसर्ग वि और अव के साथ (ठहरना श्रमकरना) ॥ परस्मैपद वर्त० स्यामि ॥ अपूर्णभूत अस्यम् ॥ शत्त्यर्थ स्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ स्यानि ॥ पूर्णभूत (३७३ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) ससौ ससिय वा ससाथ ससौ । ससिव ससथुः ससतुः । ससिम सस ससुः ॥ प्रथम भविष्यत सातास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत सास्यामि ॥ अनियतभूत (४३८ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) असाम् असाः असात् । असाव असातम् असाताम् । असाम असात असुः ॥ वा असासिषम् (४३३ वां सूत्र देखो) असासीः असासीत् । असासिष्व असासिष्टम् असासिष्टाम् । असासिष्म असासिष्ट असासिषुः ॥ आशीर्वादवाचक सेयासम् ॥ आशंसार्थ असास्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० सीये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० असायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० साययामि ॥ अनियतभूत असीषयम् ॥ इच्छार्थक सिषासामि ॥ अधिकतार्थक सेषीये सासेमि सासामि ॥ वर्तमान गु० स्यत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० सित ॥ अवतर्नीय भूत गु० सित्वा ०साय ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० सातव्य सानीय सेय

६१४ वां सूत्र

मूल बुध् (मुख्य अपूर्णपद बुध्य) ॥ भाववाचक बोद्धुम् (जानना) ॥ आत्मनेपद वर्त० बुध्ये ॥ अपूर्णभूत अबुध्ये ॥ शत्त्यर्थ बुध्येय ॥ अनुमत्यर्थ बुध्यै ॥ पूर्णभूत बुबुधे (५८३ वें सूत्र का यंत्र देखो) ॥ प्रथमभविष्यत बोद्धाहे ॥ द्वितीयभविष्यत भोत्स्ये (२९९ वें सूत्र की १ छी शाखा देखो) ॥ अनियतभूत (४२० वां सूत्र और २९९ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) अभुत्सि अबुद्धाः अबुद्ध वा अबोधि (४२४ वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो) ॥ अभुत्स्वहि अभुत्साथाम् अभुत्साताम् । अभुत्स्महि अभुद्ध्वम् (२९९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) अभुत्सत ॥ आशीर्वादवाचक भुत्सीय ॥

इत्यादि (२२४ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

१ ली शाखा

जन् भाववाचक जनितुम् (उत्पन्न होना) ॥ वर्तमान जाये ॥ अपूर्णभूत अज इत्यादि ॥ शक्त्यर्थ जायेय ॥ अनुमत्यर्थ जायै ॥ परन्तु ये ३ रे गण वाले जन् कर्मणिवाच्य से निकले हुए समझे जासकते हैं (६६७ वां सूत्र देखो)

॥ ६१९ वां सूत्र

मूल तृप् + (मुख्य अपूर्णपद तृप्य) ॥ भाववाचक तर्पुम् वा त्रप्तुम् वा तर्पितुम् (तृप्त होना) ॥ परस्मैपद वर्त० तृप्यामि ॥ अपूर्णभूत अतृप्यम् ॥ शक्त्यर्थ तृप्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ तृप्याणि ॥ पूर्णभूत ततर्प ततर्पिथ वा ततर्थ वा तत्रप्थ ततर्प । ततृपिव वा ततृप्व ततृपथुः ततृपतुः । ततृपिम वा ततृप्म ततृप ततृपुः ॥ प्रथमभविष्यत् (३९० वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो) तर्प्तास्मि वा त्रप्तास्मि वा तर्पितास्मि (३९० वें सूत्र की ८ वीं शाखा देखो) ॥ द्वितीयभविष्यत् तर्प्स्यामि वा त्रप्स्यामि वा तर्पिष्यामि इत्यादि ॥ अनियतभूत (४२० वां सूत्र देखो) अतार्प्सम् अतार्प्सीः अतार्प्सीत् । अतार्प्स्व अतार्प्तम् अतार्प्ताम् । अतार्प्स्म अतार्प्त अतार्प्सुः वा अत्राप्सम् अत्राप्सीः अत्राप्सीत् इत्यादि । वा अतर्पिषम् अतर्पीः अतर्पीत् इत्यादि । वा अतृपम् अतृपः अतृपत् । अतृपाव अतृपतम् अतृपताम् । अतृपाम अतृपत अतृपन् ॥ आशीर्वादवाचक तृप्यासम् ॥ आशंसार्थ अतर्प्स्यम् वा अत्रप्स्यम् वा अतर्पिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० तृप्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० प० अतर्पि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० तर्पयामि ॥ अनियतभूत अतीतृपम् वा अततर्पम् इच्छार्थक तितृप्सामि वा तित्रप्सामि वा तितर्पिषामि ॥ अधिकार्थक तरीतृप्ये तरीतर्प्मि वा तरीत्रप्मि ॥ वर्तमान गु० तृप्यत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० तृप्त ॥ कर्तरि भू० गु० तृप्तवत् ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० तर्पितव्य तर्पणीय तृप्य

टीका

+ पांचवें गण के परस्मैपद में भी आता है जैसे तृप्नोमि इत्यादि

६१९ वां सूत्र

मूल शम् (मुख्य अपूर्णपद शाम्य, २७५वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक शमि (शान्त होना) ॥ परस्मैपद वर्त० शाम्यामि ॥ अपूर्णभूत अशाम्यम् ॥ शक्त्यर्थ शाम्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ शाम्यानि ॥ पूर्णभूत शशाम (३६८ वां सूत्र देखो) शेमिथ (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) शशाम । शेमिव शेमथुः शेमतुः शेमिम शेम शेमुः ॥ प्रथमभविष्यत शमितास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत शमिष्यामि अनियतभूत अशमम् अशमः अशमत् । अशमाव अशमतम् अशमताम् । अशाम अशमत अशमन् । वा अशमिषम् अशमीः अशमीत् । अशमिष्व इत्यादि आशीर्वादवाचक शम्यासम् ॥ आशंसार्थ अशमिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० शम्ये ॥ अनियतभूत अ० पु० ए० अशमि वा अशामि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० शमयामि । अनियतभूत अशीशमम् ॥ इच्छार्थक शिशमिषामि ॥ अधिकतार्थक शंशम्ये ॥ शंशन्मि (प्र० पु० ए० शंशन्ति) ॥ वर्तमान गु० शाम्यत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० शान्त ॥ अव्ययीभूत भू० गु० शान्त्वा वा शमित्वा ०शम्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० शमितव्य शमनीय शम्य

६२० वां सूत्र

मूल नश् (मुख्य अपूर्णपद नश्य) ॥ भाववाचक नशितुम् वा नंष्टुम् (विनाश होना) ॥ परस्मैपद वर्त० नश्यामि ॥ अपूर्णभूत अनश्यम् ॥ शक्त्यर्थ नश्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ नश्यानि ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ननाश वा ननश नेशिथ वा ननंष्ठ (३७५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ननाश । नेशिव वा नेश्व नेशथुः नेशतुः । नेशिम वा नेश्म नेश नेशुः ॥ प्रथम भविष्यत नशितास्मि वा नंष्टास्मि (३९० वें सूत्र की ११ वीं शाखा देखो) ॥ द्वितीय भविष्यत नशिष्यामि वा नंक्ष्यामि ॥ अनियतभूत (४३७ वां सूत्र देखो) अनशम् अनशः अनशत् । अनशाव अनशतम् अनशताम् । अनशाम अनशत अनशन् । वा अनेशम् इत्यादि (४३० वां और ४४१ वां सूत्र देखो) ॥ आशीर्वादवाचक नश्यासम् ॥ आशंसार्थ

अनीशिष्यम् इत्यादि वा अनंक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ नश्ये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ अनाशि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ नाशयामि ॥ अनियतभूत अनीनशम् ॥ इच्छार्थक निनशिषामि निनंक्षामि ॥ अधिकतार्थक नानश्ये नानश्मि (अ॰ ए॰व॰ नानष्टि वा नानंष्टि) ॥ वर्तमान गु॰ नश्यन् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ नष्ट ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ नष्ट्वा वा नंष्ट्वा ॰नश्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ नशितव्य नशनीय नाश्य

६२१ वां सूत्र

मूल पुष् * (मुख्य अपूर्णपद पुष्य) ॥ भाववाचक पोष्टुम् (पलना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ पुष्यामि ॥ अपूर्णभूत अपुष्यम् ॥ शक्त्यर्थ पुष्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ पुष्याणि ॥ पूर्णभूत पुपोष पुपोषिथ पुपोष। पुपुषिव पुपुषथु पुपुषतुः। पुपुषिम पुपुष पुपुषुः ॥ प्रथम भविष्यत् पोष्टास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत् पोक्ष्यामि ॥ अनियतभूत (११६ वां सूत्र देखो) अपुषम् अपुषः अपुषत्। अपुषाव अपुषतम् अपुषताम्। अपुषाम अपुषत अपुषन् ॥ आशीर्वादवाचक पुष्यासम् ॥ आशंसार्थ अपोक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ पुष्ये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ अपोषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ पोषयामि ॥ अनियतभूत अपूपुषम् ॥ इच्छार्थक पुपोषिषामि वा पुपुषिषामि वा पुपुक्षामि ॥ अधिकतार्थक पोपुष्ये पोपोष्मि ॥ वर्त॰ गु॰ पुष्यन् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ पुष्ट ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ पुष्ट्वा ॰पुष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ पोष्टव्य पोषणीय पोष्य

टीका

* यिह मूल ९ वें गण में भी वर्तनी कियाजाता है (६९८वां सूत्र देखो)

६२२ वां सूत्र

मूल अस् (मुख्य अपूर्णपद अस्य) ॥ भाववाचक असितुम् (फेंकना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ अस्यामि इत्यादि ॥ अपूर्णभूत आस्यम् ॥ शक्त्यर्थ अस्येयम् ॥ अनुमत्यर्थ अस्यानि ॥ पूर्णभूत आस आसिथ आस। आसिव आसथु आसतु। आसि.

म आस आसुः ॥ प्रथम भविष्यत असितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत असिष्य ॥ अनियतभूत (४४१ वां सूत्र देखो) आस्थम् आस्थः आस्थत् । आस्‍ आस्थतम् आस्थताम् । आस्थाम आस्थत आस्थन् ॥ आशीर्वादवाचक असम् ॥ आशंसार्थ आसिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० अस्ये ॥ अनियतभूत ए० व० आसि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० आसयामि ॥ अनियतभूत आसिसम् ॥ इच्छार्थक आसिसिषामि ॥ वर्तमान गु० अस्यन् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० अस्‍ अवर्तनीय भू० गु० असित्वा वा अस्त्वा ०अस्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० असितव्य असनीय आस्य ॥ [illegible]

[illegible] ६२३वां सूत्र [illegible]

मूल द्रुह् (मुख्य अपूर्णपद द्रुह्य)॥ भाववाचक द्रोग्धुम् वा द्रोहितुम् (द्वेष करना) ॥ परस्मैपद वर्त० द्रुह्यामि ॥ अपूर्णभूत अद्रुह्यम् ॥ शक्त्यर्थ द्रुह्येयम् ॥ अनुमति द्रुह्याणि ॥ पूर्णभूत दुद्रोह दुद्रोहिथ वा दुद्रोग्ध वा दुद्रोढ दुद्रोह । दुद्रुहिव दुद्रुह दुद्रुहतुः ॥ दुद्रुहिम दुद्रुह दुद्रुहुः ॥ प्रथम भविष्यत (४१५ वें सूत्र की १३ वीं शाखा देखो) द्रोग्धास्मि वा द्रोढास्मि वा द्रोहितास्मि इत्यादि ॥ द्वितीय भविष्यत ध्रोक्ष्यामि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) वा द्रोहिष्यामि ॥ अनियतभूत अद्रुहम् अद्रुहः अद्रुहत् । अद्रुहाव अद्रुहतम् अद्रुहताम् । अद्रुहाम अद्रुहत अद्रुहन् ॥ आशीर्वादवाचक द्रुह्यासम् इत्यादि ॥ आशंसार्थ अध्रोक्ष्यम् (३०६ सूत्र की १ ली शाखा देखो) वा अद्रोहिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० द्रुह्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अद्रोहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० द्रोहयामि ॥ अनियतभूत अदुद्रुहम् ॥ इच्छार्थक दुद्रोहिषामि वा दुद्रुहिषामि वा दुधुक्षामि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) अधिकतार्थक दोद्रुह्ये दोद्रोह्मि (अ० ए० व० दोद्रोग्धि वा दोद्रोढि (५१२ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) ॥ वर्तमान गु० द्रुह्यन् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० द्रुग्ध ॥ अवर्तनीय भू० गु० द्रुग्ध्वा वा द्रुहित्वा वा द्रोहित्वा द्रुह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० द्रोग्धव्य द्रोहणीय द्रोह्य

६२६वां सूत्र

मूल नह् (मुख्य अपूर्णपद नह्य ॥ भाववाचक नद्धुम् (यां
और आत्मनेपद वर्त० नह्यामि ॥ आत्मनेपद नह्ये ॥ अपूर्णभूत
त्मनेपद अनह्ये ॥ शक्त्यर्थ नह्येयम् ॥ आत्मनेपद नह्येय ॥ अनु
आत्मनेपद नह्यै ॥ पूर्णभूत ननाह या ननह नेहिव या ननद्ध नन
नेहतु । नेहिम नेह नेहुः ॥ आत्मनेपद नेहे नेहिषे नेहे । नेहि
नेहिमहे नेहिध्वे या नेहिढ्व नेहिरे ॥ प्रथमभविष्यत नद्धास्मि ॥
॥ द्वितीय भविष्यत (३०६ ठे सूत्र की ७ वी शाखा देखो) नत्स्य
पद नत्स्ये ॥ अनियतभूत (४२६ वां सूत्र देखो) अनात्सम् अ
। अनात्स्व अनाद्धम् अनाद्धाम् । अनात्स्म अनाद्ध अनात्सुः ॥
सि अनद्धाः अनद्ध । अनत्स्वहि अनत्साथाम् अनत्साताम् । अ
अनत्सत ॥ आशीर्वादवाचक नह्यासम ॥ आत्मनेपद नत्सीय ॥
स्यम् ॥ आत्मनेपद अनत्स्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० नह्ये ॥ अनि
यं० अनाहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० नाहयामि ॥ अनियतभूत अनीन
निनत्सामि निनत्से ॥ अधिकतार्थक नानह्ये नानह्मि (अ० ए०
वर्तमान गु० नह्यत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० नद्ध ॥ अवश्यार्थक
०नय ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० नद्धव्य नहनीय नाह्य

२७८वें सूत्र में बताईहुई ८ ठे गणक

अनिसृत क्रियाओं के दृष्टान्त

६२७वां सूत्र

मूल सृज् ॥ भाववाचक सृष्ट्व (उत्पन्न करना छोड़ना) केवल

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	सृजामि	सृजावः	सृजामः
मध्यम	सृजसि	सृजथः	सृजथ
अन्य	सृजति	सृजतः	सृजन्ति

अपूर्णभूत[मैं उत्पन्नकरताथा वा मैंने उत्पन्नकिया

उ०	असृजम्	असृजाव	असृजाम
म०	असृजः	असृजतम्	असृजत
अ०	असृजत्	असृजताम्	असृजन्

शक्त्यर्थ [मैं उत्पन्न करूं]

उ०	सृजेयम्	सृजेव	सृजेम
म०	सृजेः	सृजेतम्	सृजेत
अ०	सृजेत्	सृजेताम्	सृजेयुः

अनुमत्यर्थ (मैं उत्पन्न करूं)

उ०	सृजानि	सृजाव	सृजाम
म०	सृज	सृजतम्	सृजत
अ०	सृजतु	सृजताम्	सृजन्तु

पूर्णभूत (मैंने उत्पन्न किया वा कियाहै)

उ०	ससर्ज	ससृजिव	ससृजिम
म०	ससर्जिथ वा सस्रष्ठ *	ससृजथुः	ससृज
अ०	ससर्ज	ससृजतुः	ससृजुः

टीका

* सस्रष्ठ के लिए [illegible] वें सूत्र की [illegible] ठी शाखा देखो

प्रथम भविष्यत [मैं उत्पन्न करूंगा]

उ०	स्रष्टास्मि (३११वें सूत्र की ९वीं गाथा देखो)	स्रष्टास्वः	स्रष्टास्मः
म०	स्रष्टासि	स्रष्टास्थः	स्रष्टास्थ
अ०	स्रष्टा	स्रष्टारौ	स्रष्टारः

द्वितीय भविष्यत [मैं उत्पन्न करूंगा]

उ०	स्रक्ष्यामि	स्रक्ष्यावः	स्रक्ष्यामः
म०	स्रक्ष्यसि	स्रक्ष्यथः	स्रक्ष्यथ
अ०	स्रक्ष्यति	स्रक्ष्यतः	स्रक्ष्यन्ति

अनियतभूत [मैंने उत्पन्न किया]

उ०	अस्राक्षम्	अस्राक्ष्व	अस्राक्ष्म
म०	अस्राक्षीः	अस्राष्टम्	अस्राष्ट
अ०	अस्राक्षीत्	अस्राष्टाम्	अस्राक्षुः

आशीर्वादवाचक [मैं उत्पन्न करूं]

उ०	सृज्यासम्	सृज्यास्व	सृज्यास्म
म०	सृज्याः	सृज्यास्तम्	सृज्यास्त
अ०	सृज्यात्	सृज्यास्ताम्	सृज्यासुः

आशंसार्थ (मैं उत्पन्न करता इत्यादि)

उ०	अस्रक्ष्यम्	अस्रक्ष्याव	अस्रक्ष्याम
म०	अस्रक्ष्यः	अस्रक्ष्यतम्	अस्रक्ष्यत
अ०	अस्रक्ष्यत्	अस्रक्ष्यताम्	अस्रक्ष्यन्

कर्मणिवाच्य वर्त० सृज्ये ॥ अनियतभूत अ० ए०व० असर्जि ॥ प्रेरणार्थक व- र्त० सर्जयामि ॥ अनियतभूत असससर्जम् वा असीसृजम् ॥ इच्छार्थक सिसृक्षामि सि-

नृक्षे ॥ अधिकतार्थक सरीसृज्ये ॥ वर्तमान गु० सृजत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० स्रष्ट ॥ अवर्तनीय भू० गु० सृष्ट्वा ०सृज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० स्रष्टव्य सर्जनीय सृज्य

६ ठे गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम से

६२६ वां सूत्र

मूल मृ-(मुख्य अपूर्णपद म्रिय २८०वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक मर्तुम् (मरना) मुख्य रूपों में और अनियतभूत और आशीर्वादवाचक में आत्मनेपद दूसरे रूपों में परस्मैपद वर्त० म्रिये ॥ अपूर्णभूत अम्रिये ॥ शक्त्यर्थ म्रियेय ॥ अनुमत्यर्थ म्रियै ॥ पूर्णभूत ममार ममर्थ ममार। मम्रिव मम्रथुः मम्रतुः। मम्रिम मम्र मम्रुः ॥ आत्मनेपद मम्रे मम्रिषे मम्रे। मम्रिवहे मम्राथे मम्राते। मम्रिमहे मम्रिध्वे वा मम्रिढ्वे मम्रिरे ॥ प्रथम भविष्यत मर्तास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत मरिष्यामि ॥ अनियतभूत अमृषि अमृथाः अमृत। अमृष्वहि अमृषाथाम् अमृषाताम्। अमृष्महि अमृढ्वम् अमृषत ॥ आशीर्वादवाचक मृषीय ॥ आशंसार्थ अमरिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० म्रिये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अमारि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० मारयामि ॥ अनियतभूत अमीमरम् ॥ इच्छार्थक मुमूर्षामि (५०२ रा सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक मर्म्रीये मरिम्रीये वा मरीम्रिये वा मर्मर्मि ॥ वर्तमान गु० म्रियमाण ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० मृत ॥ अवर्तनीय भू० गु० मृत्वा ०मृत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० मर्तव्य मरणीय मार्य

६२७ वां सूत्र

मूल कृ (मुख्य अपूर्णपद किर २८०वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक करितुम् वा करीतुम् (बखेरना) ॥ परस्मैपद वर्त० किरामि ॥ अपूर्णभूत अकिरम् ॥ शक्त्यर्थ किरेयम् ॥ अनुमत्यर्थ किराणि ॥ पूर्णभूत (३७४ वें सूत्र की ११ वीं धारा देखो)

चकार चकरिव चकार । चकरिव चकरथुः चकतुः । चकरिम चकर चकरु ॥ प्रथम भविष्यत (१९३ वां सूत्र देखो) करितास्मि वा करीतास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत (१९३ वां सूत्र देखो) करिष्यामि वा करीष्यामि इत्यादि ॥ अनियतभूत अकारिषम् अकारीः अकारीत् । अकारिष्व अकारिष्टम् अकारिष्टाम् । अकारिष्म अकारिष्ट अकारिषुः ॥ आशीर्वादवाचक कीर्यासम् ॥ आशंसार्थ अकरिष्यम् वा अकरीष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० कीर्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अकारि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० कारयामि ॥ अनियतभूत अचीकरम् ॥ इच्छार्थक चिकरिषामि ॥ आधिक्यार्थक चेकीर्ये चाकर्मि ॥ वर्तमान गु० किरत् ॥ कर्म० भू०गु० कीर्ण (५३० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अपरिवर्तनीय भू० गु० कीर्त्वा ०कीर्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु०. करितव्य,वा करीतव्य करणीय कार्य

टीका

* १९३ वें और ५०१ ले सूत्र के आधार से कॄ और गॄ ईश इन में इच्छा के अनुगामी नहीं होसकते

६२८ वां सूत्र

मुच् मुञ्च् (मुञ्च अपूर्णपद मुच २८१ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक मोक्तुम् (छोड़ना खोना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० मुञ्चामि ॥ आत्मनेपद मुञ्चे ॥ अपूर्णभूत अमुञ्चम् ॥ आत्मनेपद अमुञ्चे ॥ शक्यर्थ मुञ्चेयम् ॥ आत्मनेपद मुञ्चेय ॥ अनुमत्यर्थ मुञ्चानि ॥ आत्मनेपद मुञ्चै ॥ पूर्णभूत मुमोच मुमोचिथ मुमोच । मुमुचिव मुमुचथुः मुमुचतुः । मुमुचिम मुमुच मुमुचुः ॥ आत्मनेपद मुमुचे मुमुचिषे मुमुचे । मुमुचिवहे मुमुचाथे मुमुचाते । मुमुचिमहे मुमुचिध्वे मुमुचिरे ॥ प्रथम भविष्यत मोक्तास्मि ॥ आत्मनेपद मोक्ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत मोक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद मोक्ष्ये ॥ अनियतभूत (४३६ वां सूत्र देखो) अमुचम् अमुचः अमुचत् । अमुचाव अमुचतम् अमुचताम् । अमुचाम अमुचत अमुचन् ॥ आत्मनेपद अमुक्षि । अमुक्थाः अमुक्त । अमुक्ष्वहि अमुक्षाथाम् अमुक्षाताम् । अमुक्ष्महि अमुग्ध्वम् अमुक्षत ॥

चन्त वा असिक्षि असिक्थाः असिक्त ॥ असिक्ष्वहि असिक्षाथाम् असिक्षाताम् असिक्ष्महि असिग्ध्वम् असिक्षत ॥ आशीर्वादवाचक सिच्यासम् ॥ आत्मनेपद सिक्षीय ॥ आशंसार्थ असेक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद असेक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० सिच्ये। प्रेरणार्थक वर्त० सेचयामि ॥ अनियतभूत असीषिचम् ॥ इच्छार्थक सिसिक्षामि। सिसिक्षे ॥ अधिकतार्थक सेसिच्ये सेसेच्मि ॥ वर्तमान गु० सिञ्चत् । सिञ्चमान। कर्मणिवाच्य भू० गु० सिक्त ॥ अवर्तनीय भू० गु० सिक्त्वा ०सिच्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० सेक्तव्य सेचनीय सेच्य

६३१ वां सूत्र

मूल प्रछ् (मुख्य अपूर्णपद पृच्छ २८२ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक प्रष्टुम् (पूछना) ॥ परस्मैपद वर्त० पृच्छामि (५१ वां सूत्र देखो) ॥ अपूर्णभूत अपृच्छम् ॥ शक्यर्थ पृच्छेयम् ॥ अनुमत्यर्थ पृच्छानि ॥ पूर्णभूत (३८१ वां सूत्र देखो) पप्रच्छ पप्रच्छिथ वा पप्रष्ठ पप्रच्छ । पप्रच्छिव पप्रच्छथुः पप्रच्छतुः। पप्रच्छिम पप्रच्छ पप्रच्छुः ॥ प्रथम भविष्यत प्रष्टास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत प्रक्ष्यामि ॥ अनियतभूत अप्राक्षम् अप्राक्षीः अप्राक्षीत् । अप्राक्ष्व अप्राष्टम् अप्राष्टाम् । अप्राक्ष्म अप्राष्ट अप्राक्षुः ॥ आशीर्वादवाचक पृच्छ्यासम् ॥ आशंसार्थ अप्रक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० पृच्छ्ये (४७२ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० ए० प्र० अप्रच्छि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० प्रच्छयामि ॥ अनियतभूत अपप्रच्छम् ॥ इच्छार्थक पिपृच्छिषामि ॥ अधिकतार्थक परीपृच्छ्ये पाप्रष्टि ॥ वर्तमान गु० पृच्छत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० पृष्ट ॥ अवर्तनीय भू० गु० पृष्ट्वा ०पृच्छ्य (५६५ वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० प्रष्टव्य प्रच्छनीय प्रच्छ्य

६३२ वां सूत्र

मूल भ्रज्ज् वा भ्रस्ज् (मुख्य अपूर्णपद भृज्ज) ॥ भाववाचक भ्रष्टुम् वा भर्ष्टुम् (तलना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्तमान भृज्जामि ॥ आत्मनेपद भृज्जे ॥ अपूर्णभूत अभृज्जम् ॥ आत्मनेपद अभृज्जे ॥ शक्यर्थ भृज्जेयम् ॥ आत्म०

नेपद भृज्जेय ॥ अनुनत्यर्थ भृज्जानि ॥ आत्मनेपद भृज्जै ॥ पूर्णभूत (३८१ वां सूत्र देखो) बभ्रज्ज बभ्रज्जिथ वा बभ्रष्ठ बभ्रज्ज । बभ्रज्जिव बभ्रज्जथुः बभ्रज्जतुः । बभ्रज्जिम बभ्रज्ज बभ्रज्जुः । वा बभर्ज्ज बभर्ज्जिथ वा बभर्ष्ठ बभर्ज्ज । बभर्ज्जिव इत्यादि ॥ आत्मनेपद बभ्रज्जे बभ्रज्जिषे इत्यादि । वा बभर्ज्जे बभर्ज्जिषे इत्यादि ॥ प्रथमभविष्यत भ्रष्टास्मि वा भर्ष्टास्मि ॥ आत्मनेपद भ्रष्टाहे वा भर्ष्टाहे ॥ द्वितीयभविष्यत भ्रक्ष्यामि वा भर्क्ष्यामि ॥ आत्मनेपद भ्रक्ष्ये वा भर्क्ष्ये ॥ अनियतभूत अभ्राक्षम् अभ्राक्षीः अभ्राक्षीत् । अभ्राक्ष्व अभ्राष्टम् अभ्राष्टाम् । अभ्राक्ष्म अभ्राष्ट अभ्राक्षुः । वा अभार्क्षम् ॥ आत्मनेपद अभ्रक्षि अभ्रष्ठाः अभ्रष्ट । अभ्रक्ष्वहि अभ्रक्षाथाम् अभ्रक्षाताम् । अभ्रक्ष्महि अभ्रड्ढ्वम् अभ्रक्षत । वा अभर्क्षि अभर्ष्ठाः अभर्ष्ट । अभर्क्ष्वहि अभर्क्षाथाम् अभर्क्षाताम् । अभर्क्ष्महि अभर्ड्ढ्वम् अभर्क्षत ॥ आशीर्वादवाचक भृज्ज्यासम् ॥ आत्मनेपद भ्रक्षीय वा भर्क्षीय ॥ आशंसार्थ अभ्रक्ष्यम् वा अभर्क्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अभ्रक्ष्ये वा अभर्क्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० भृज्ज्ये (४७२ वां सूत्र देखो) ॥ प्रेरणार्थक वर्त० भ्रज्जयामि ॥ अनियतभूत अबभ्रज्जम् वा अबभर्ज्जम् ॥ इच्छार्थक बिभ्रक्ष्यामि बिभ्रक्ष्ये वा बिभर्क्ष्यामि बिभर्क्ष्ये बिभ्रज्जिषामि बिभ्रज्जिषे वा बिभर्ज्जिषामि बिभर्ज्जिषे इत्यादि ॥ अधिकतार्थक बरीभृज्ये वाभ्रज्जिम (अ० ए० व० बाभ्रष्टि) ॥ वर्तमान गु० भृज्जत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० भृष्ट ॥ अपतनीय भू० गु० भृष्ट्वा ०भृज्ज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० भ्रष्टव्य वा भर्ष्टव्य भ्रज्जनीय वा भर्ज्जनीय भृज्ज्य वा भर्ज्ज्य

६३१ वां सूत्र

मृट मज्ज् वा मस्ज् (मुख्य अपूर्णपद मज्ज) ॥ भाववाचक मंक्तुम् (डूबना) ॥ परस्मैपद वर्त० मज्जामि ॥ अपूर्णभूत अमज्जम् ॥ शक्यर्थ मज्जेयम् ॥ अनुमत्यर्थ मज्जानि ॥ पूर्णभूत ममज्ज ममज्जिथ वा ममंक्थ ममज्ज । ममज्जिव ममज्जथुः ममज्जतुः । ममज्जिम ममज्ज ममज्जुः ॥ प्रथम भविष्यत मंक्तास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत मंक्ष्यामि ॥ अनियतभूत (४२४ वां सूत्र देखो) अमांक्षम् अमांक्षीः अमां

क्षीत् । अमांक्ष्व अमांक्ताम् अमांक्ताम् । अमांक्ष्म अमांक्त अमांक्षुः ॥ आशीर्वादवाचक मज्ज्यासम् ॥ आशंसार्थ अमंक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० मज्ज्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० मज्जयामि ॥ अनियतभूत अममज्जम् ॥ इच्छार्थक मिमंक्षामि ॥ अधिकतार्थक मामज्ज्ये मामज्मि (अ० ए० व० मामंक्ति) ॥ वर्तमान गु० मज्जन् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० मग्न ॥ अवर्तनीय भू० गु० मंक्त्वा मक्त्वा ‑मज्ज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० मंक्तव्य मज्जनीय मज्ज्य ॥

६३४ वां सूत्र

मूल तुद् भाववाचक तोत्तुम् (सताना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० तुदामि ॥ आत्मनेपद तुदे ॥ अपूर्णभूत अतुदम् ॥ आत्मनेपद अतुदे ॥ शक्यर्थ तुदेयम् ॥ आत्मनेपद तुदेय ॥ अनुमत्यर्थ तुदानि ॥ आत्मनेपद तुदै ॥ पूर्णभूत तुतोद तुतोदिथ तुतोद । तुतुदिव तुतुदथुः तुतुदतुः । तुतुदिम तुतुद तुतुदुः ॥ आत्मनेपद तुतुदे तुतुदिषे तुतुदे । तुतुदिवहे तुतुदाथे तुतुदाते । तुतुदिमहे तुतुदिध्वे तुतुदिरे ॥ प्रथम भविष्यत तोत्तास्मि ॥ आत्मनेपद तोत्ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत तोत्स्यामि ॥ आत्मनेपद तोत्स्ये ॥ अनियतभूत अतौत्सम् अतौत्सीः अतौत्सीत् । अतौत्स्व अतौत्तम् अतौत्ताम् । अतौत्स्म अतौत्त अतौत्सुः ॥ आत्मनेपद अतुत्सि अतुत्थाः अतुत्त । अतुत्स्वहि अतुत्साथाम् अतुत्साताम् । अतुत्स्महि अतुद्ध्वम् अतुत्सत ॥ आशीर्वादवाचक तुद्यासम् ॥ आत्मनेपद तुत्सीय (४५० वां सूत्र देखो) ॥ आशंसार्थ अतोत्स्यम् । आत्मनेपद अतोत्स्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० तुद्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अतोदि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० तोदयामि ॥ अनियतभूत अतूतुदम् ॥ इच्छार्थक तुतुत्सामि तुतुत्से ॥ अधिकतार्थक तोतुद्ये तोतोद्मि (अ० ए० व० तोतोत्ति) ॥ वर्तमान गु० तुदत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० तुन्न ॥ अवर्तनीय भू० गु० तुत्वा ‑तुद्य ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० तोत्तव्य तोदनीय तोद्य ॥

६३५ वां सूत्र

मूल क्षिप् भाववाचक क्षेप्तुम् (फेंकना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त०

क्षिपामि ॥ आत्मनेपद क्षिपे ॥ अपूर्णभूत अक्षिपम् ॥ आत्मनेपद अक्षिपे ॥ श
नार्थ क्षिपेयम् ॥ आत्मनेपद क्षिपेय ॥ अनुमत्यर्थ क्षिपाणि ॥ आत्मनेपद क्षि
॥ पूर्णभूत चिक्षेप चिक्षेपिथ चिक्षेप। चिक्षिपिव चिक्षिपथुः चिक्षिपतुः। चि
क्षिपिम चिक्षिप चिक्षिपुः ॥ आत्मनेपद चिक्षिपे चिक्षिपिषे चिक्षिपे । चिक्षिपि
हे चिक्षिपाथे चिक्षिपाते । चिक्षिपिमहे चिक्षिपिध्वे चिक्षिपिरे ॥ प्रथम भविष्य
क्षेप्तास्मि ॥ आत्मनेपद क्षेप्ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत क्षेप्स्यामि ॥ आत्मनेपद
प्स्ये ॥ अनियतभूत अक्षैप्सम् अक्षैप्सीः अक्षैप्सीत् । अक्षैप्स्व अक्षैप्तम् अक्षै
म् । अक्षैप्स्म अक्षैप्त अक्षैप्सुः ॥ आत्मनेपद अक्षिप्सि अक्षिप्थाः अक्षिप्त
क्षिप्स्वहि अक्षिप्साथाम् अक्षिप्साताम् । अक्षिप्स्महि अक्षिब्ध्वम् अक्षिप्सत
आशीर्वादवाचक क्षिप्यासम् इत्यादि ॥ आत्मनेपद क्षिप्सीय ॥ आशंसार्थ अ
प्स्यम् ॥ आत्मनेपद अक्षेप्स्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० क्षिप्ये ॥ अनियतभूत आ०
०० अक्षेपि ॥ प्रेरणार्थक वर्तमान क्षेपयामि ॥ अनियतभूत अचिक्षिपम ॥ इ-
र्थक चिक्षिप्सामि चिक्षिप्से ॥ अधिकतार्थक चेक्षिप्ये चेक्षेप्मि (७१० वां सू-
और ९३ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) वर्तमान गु० क्षिपत् ॥ कर्मणिवाच्य
गु० क्षिप्त ॥ अवर्तनीय भू० गु० क्षिप्त्वा ०क्षिप्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु०
तव्य क्षेपणीय क्षेप्य

१ ली शाखा

मूल विश् ॥ भाववाचक वेष्टुम् (प्रवेश करना) ॥ परस्मैपद वर्त० विशामि
सि इत्यादि ॥ अपूर्णभूत अविशम् अविशः इत्यादि ॥ शक्यर्थ विशेयम् वि
इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ विशानि विश इत्यादि ॥ पूर्णभूत विवेश विवेशिथ वि-
। विविशिव विविशथुः विविशतुः । विविशिम विविश विविशुः ॥ प्रथम भवि-
त वेष्टास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत वेक्ष्यामि ॥ अनियतभूत अविक्षम् अविक्षः अ
त्। अविक्षाव अविक्षतम् अविक्षताम् ॥ अविक्षाम अविक्षत अविक्षन् ॥
शीर्वादवाचक विश्यासम् ॥ आशंसार्थ अवेक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० विश्ये ॥

षिष्व ऐषिषम् ऐषिषाम । ऐषिष्म ऐषिष्ट ऐषिषुः ॥ आशीर्वादवाचक इष्यासम् ॥ आशंसार्थ ऐषिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० इष्ये ॥ अनियतभूत अ०ए०व० ऐषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० एषयामि ॥ अनियतभूत ऐषिषम् ॥ इच्छार्थक एषिषिषामि ॥ वर्तमान गु० इच्छत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० इष्ट ॥ अवर्तनीय भू० गु० इष्ट्वा वा इषित्वा ०इष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० एष्टव्य वा एषितव्य एषणीय एष्य

२८३ वें सूत्र में बताईहुई दसवें गण वाली अनिसृत क्रियाओं के दृष्टान्त

६३८ वां सूत्र

मूल चुर् ॥ भाववाचक चोरयितुम् (चुराना)

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	वर्तमान [मैं चुराता हूं]					
पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे
म०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
अ०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
	अपूर्णभूत [मैंने चुराया वा मैं चुराताथा]					
उ०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

म०	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अ०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त

शक्त्यर्थ [मैं चुराऊं]

उ०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि
म०	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
अ०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्

अनुमत्यर्थ [मैं चुराऊं]

उ०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै
म०	चोरय	चोरयतम्	चोरयत	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
अ०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्

पूर्णभूत [मैंने चुराया वा चुराया है]

उ०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे
म०	चोरयामासिथ	चोरयामासथुः	चोरयामास	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृढ्वे
अ०	चोरयामास	चोरयामासतुः	चोरयामासुः	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे

प्रथम भविष्यत [मैं चुराऊंगा]

उ०	चोरयितास्मि	चोरयितास्वः	चोरयितास्मः	चोरयिताहे	चोरयितास्वहे	चोरयितास्महे

म०	अचोरयिष्यः	अचोरयिष्यतम्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्याव	अचोरयिष्याम	अचोरयिष्याम
	अचोरयिष्यः	अचोरयिष्यतम्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्यथाः	अचोरयिष्येथाम्	अचोरयिष्यध्वम्
अ०	अचोरयिष्यत्	अचोरयिष्यताम्	अचोरयिष्यन्	अचोरयिष्यत	अचोरयिष्येताम्	अचोरयिष्यन्त

६३९वां सूत्र

कर्मणिवाच्य वर्त० चोर्यं ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अचोरि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० वैसाही है जैसा अनिमूल-क्रिया-होता है ॥ इच्छार्थक चुचोरयिषामि ॥ वर्तमान गु० चोरयत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० चुरित वा चोरित ॥ अवर्तनीय भू० गु० चोरयित्वा ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० चोरयितव्य चोरणीय चोर्य

१०वें गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम के अनुसार

६४०वां सूत्र

मूल पॄ वा पूर् (अपूर्णपद पूरय) ॥ भाववाचक-पूरयितुम् (भरना) * ॥ परस्मैपद वर्त० पूरयामि ॥ अपूर्णभूत अपूरयम् ॥ शक्यर्थ पूरयेयम् ॥ अनुमत्यर्थ पूरयाणि ॥ पूर्णभूत पूरयामास ॥ प्रथम भविष्यत पूरयितास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत पूरयिष्यामि ॥ अनियतभूत अपूपुरम् ॥ आशीर्वादवाचक पूर्यासम् ॥ आशंसार्थ अपूरयिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० पूर्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अपूरि वा अपूरिद ॥ प्रेरणार्थक अनिमूल क्रिया के सदृश ॥ इच्छार्थक पुपूरयिषामि ॥ वर्तमान गु० पूरयत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० पूर्ण वा पूरित वा पूर्त ॥ अवर्तनीय भू० गु० पूरयित्वा वा पूर्त्वा ०पूर्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० पूरयितव्य पूरणीय पूर्य

टीका

* इस मूल का अपूर्णपद पारय होताहै पॄ से और पूरय पूर से परन्तु पारयामि का अर्थ है (मैं पूरा करता हूं) तीसरे गणवाले पॄ का प्रेरणार्थक पारयामि भी

होताहै (मैं सिद्धकरताहूं).

६२१ वां सूत्र

मूल चिन्त् (अपूर्णपद चिन्तय) ॥ भाववाचक चिन्तयितुम् (सोचना) ॥ परस्मैपद वर्त० चिन्तयामि ॥ अपूर्णभूत अचिन्तयम् ॥ शक्त्यर्थ चिन्तयेयम् ॥ अनुमत्यर्थ चिन्तयानि ॥ पूर्णभूत चिन्तयामास ॥ प्रथम भविष्यत चिन्तयितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत चिन्तयिष्यामि ॥ अनियतभूत अचिचिन्तम् ॥ आशीर्वादवाचक चिन्त्यासम् ॥ आशंसार्थ अचिन्तयिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० चिन्त्ये प्रेरणार्थक अनिभूत क्रिया के सदृश ॥ इच्छार्थक चिचिन्तयिषामि ॥ वर्तमान गु० चिन्तयत् ॥ आत्मनेपद चिन्तयान (५२७ वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० चिन्तित ॥ अवर्तनीय भू० गु० चिन्तयित्वा ०चिन्त्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० चिन्तयितव्य चिन्तनीय चिन्त्य

६२२ वां सूत्र

मूल अर्थ् (अपूर्णपद अर्थय) ॥ भाववाचक अर्थयितुम् (उपसर्ग प्र के साथ प्रार्थ् प्रार्थयितुम्) (पूछना) ॥ आत्मनेपद वर्त० अर्थये ॥ अपूर्णभूत आर्थये ॥ शक्त्यर्थ अर्थयेय ॥ अनुमत्यर्थ अर्थयै ॥ पूर्णभूत अर्थयाञ्चक्रे ॥ प्रथम भविष्यत अर्थयिताहे ॥ द्वितीयभविष्यत अर्थयिष्ये ॥ अनियतभूत आर्तिथे आर्तिथथाः इत्यादि ॥ आशीर्वादवाचक अर्थयिषीय ॥ आशंसार्थ आर्थयिष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० अर्थ्ये प्रेरणार्थक अनिभूत क्रिया के अनुसार ॥ इच्छार्थक अर्तिथयिषामि अर्तिथयिषे ॥ वर्तमान गु० अर्थयान (५२७ वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० अर्थित ॥ अवर्तनीय भू० गु० अर्थयित्वा ०अर्थ्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० अर्थयितव्य अर्थनीय अर्थ्य

६२३ वां सूत्र

मूल कथ् (अपूर्णपद कथय) ॥ भाववाचक कथयितुम् (कहना) ॥ परस्मैपद वर्त० कथयामि ॥ अपूर्णभूत अकथयम् ॥ शक्त्यर्थ कथयेयम् ॥ अनुमत्यर्थ कथया

णि ॥ पूर्णभूत कथयामास ॥ प्रथम भविष्यत कथयितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत कथयिष्यामि ॥ अनियतभूत अचकथम् या अचीकथम् ॥ आशीर्वादवाचक कथ्यासम् ॥ आशंसार्थ अकथयिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य कथ्ये इत्यादि प्रेरणार्थक अनिसूत क्रिया के अनुसार ॥ इच्छार्थक चिकथयिषामि ॥ वर्तमान गु० कथयत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० कथित ॥ अवर्तनीय भू० गु० कथयित्वा ॥ कथ्य (५६६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० कथयितव्य कथनीय कथ्य

१ ली शाखा

मूल घुप् (अपूर्णपद घोषय) ॥ भाववाचक घोषयितुम् (पुकारना) ॥ परस्मैपद वर्त० घोषयामि ॥ अपूर्णभूत अघोषयम् ॥ शक्त्यर्थ घोषयेयम् ॥ अनुमत्यर्थ घोषयाणि (५८ वां सूत्र देखो)॥ पूर्णभूत घोषयाञ्चकार ॥ प्रथम भविष्यत घोषयितास्मि ॥ द्वितीय भवि० घोषयिष्यामि ॥ अनियतभूत अजूघुषम् ॥ आशीर्वादवाचक घोष्यासम् ॥ आशंसार्थ अघोषयिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० घोष्ये ॥ अनियतभूत त्र० ए० व० अघोषि प्रेरणार्थक अनिसूत क्रिया के अनुसार ॥ इच्छार्थक जुघोषयिषामि ॥ वर्तमान गु० घोषयत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० घोषित ॥ अवर्तनीय भू गु० घोषयित्वा ०घोष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० घोषयितव्य घोषणीय घोष्य

२ री शाखा

मूल भक्ष (अपूर्णपद भक्षय) ॥ भाववाचक भक्षयितुम् (खाना) ॥ परस्मैपद वर्त० भक्षयामि ॥ अपूर्णभूत अभक्षयम् ॥ शक्त्यर्थ भक्षयेयम् ॥ अनुमत्यर्थ भक्षयाणि ॥ पूर्णभूत भक्षयामास ॥ प्रथम भविष्यत भक्षयितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत भक्षयिष्यामि ॥ अनियतभूत अबभक्षम् ॥ आशीर्वादवाचक भक्ष्यासम् ॥ आशंसार्थ अभक्षयिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० भक्ष्ये ॥ इच्छार्थक बिभक्षयिषामि ॥ वर्तमान गु० भक्षयत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० भक्षित ॥ अवर्तनीय भू० गु०

भक्षयित्वा •भक्ष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ भक्षयितव्य भक्षणीय भक्ष्य

३०७ वें सूत्र में बताई हुई दूसरे भाग वाली अनि सूत क्रियाओं के दृष्टान्त

६४४ वां सूत्र

मूल या ॥ भाववाचक यातुम् (जाना)

केवल परस्मैपद

वर्तमान [मैं जाताहूं]

६४५ वां सूत्र

मूल इ (३१० वां सूत्र देखो)॥ भाववाचक एतुम् (जाना)

अधि और आ इत्यादि के लिये ३११ वां सूत्र देखो

वर्तमान (मैं जाताहूं)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	यामि	यावः	यामः	एमि +	इवः	इमः
मध्यम	यासि	याथः	याथ	एषि	इथः	इथ
अन्य	याति	यातः	यान्ति	एति	इतः	यन्ति (३४वां सूत्र देखो)

अपूर्णभूत [मैं जाताथा वा गया]

टीका

+ यिह मूल पहले गण में भी आताहै तब इसका वर्तमान अयामि अयसि इत्यादि होताहै

अपूर्णभूत [मैं जाताथा वा गया]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	अयाम्	अयाव	अयाम	आयम् (३७ वां सूत्र देखो)	ऐव (२५१ वें सूत्र की १ली शा०)	ऐम
म०	अयाः	अयातम्	अयात	ऐः (३३वां सूत्र देखो)	ऐतम्	ऐत
अ०	अयात्	अयाताम्	अयान् *	ऐत्	ऐताम्	आयन् *

टीका

* अथवा अयुः (३१० वें सूत्र का वर्णन देखो)

* किसी २ व्याकरणी ने अयन् लिखा है (पा० ६,४,८१) लघुकौमुदी १०८

शक्त्यर्थ [मैं जाऊं]

उ०	यायाम्	यायाव	यायाम
म०	यायाः	यायातम्	यायात
अ०	यायात्	यायाताम्	यायुः

शक्त्यर्थ [मैं जाऊं]

उ०	इयाम्	इयाव	इयाम
म०	इयाः	इयातम्	इयात
अ०	इयात्	इयाताम्	इयुः

अनुमत्यर्थ (मैं जाऊं)

उ०	यानि	याव	याम
म०	याहि	यातम्	यात
अ०	यातु	याताम्	यान्तु

पूर्णभूत ययौ (३७३वां सूत्र देखो) ययाथ वा ययिथ ययौ। ययिव ययथुः ययतुः। ययिम यय ययुः॥ प्रथमभविष्यत् याताऽस्मि याता इत्यादि॥ द्वितीय भविष्यत् यास्यामि यास्यसि यास्यति।

अनुमत्यर्थ [मैं जाऊं]

उ०	अयानि	अयाव	अयाम
म०	इहि	इतम्	इत
अ०	एतु	इताम्	यन्तु

पूर्णभूत इयाय (३६७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) इयायिथ या इयेथ इयाय। ईयिव ईयथुः ईयतुः। ईयिम ईय ईयुः॥ प्रथमभविष्यत् एताऽस्मि इत्यादि॥ द्वितीय भविष्यत् एष्यामि इत्यादि॥ आशिष

याव्यावः इत्यादि ॥ अनियतभूत अयासिषम् (३३३वां सूत्र देखो) अयासीः अयासीत्। अयासिष्व अयासिष्टम् अयासिष्टाम्। अयासिष्म अयासिष्ट अयासिषु ॥ आशीर्वादवाचक यायासम् यायाः यायात्। यायास्व इत्यादि ॥ आशंसार्थ अयास्यम् अयास्यः अयास्यत् इत्यादि ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० याये इत्यादि ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अयायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० यापयामि इत्यादि ॥ अनियतभूत अयीयपम् इत्यादि ॥ इच्छार्थक यियासामि ॥ अधिकतार्थक यायाये यायामि वा यायेमि (अ० ए० व० यायाति वा यायेति) ॥ वर्तमान गु० यात् (१ ली वि० यान्) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० यात ॥ अवर्तनीय भू० गु० यात्वा ०याय ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० यातव्य यानीय येय

तभूत (४३८ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) अगाम् अगाः अगात्। अगाव अगातम् अगाताम्। अगाम अगात अगुः ॥ आशीर्वादवाचक इयासम् इत्यादि (४४५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ आशसार्थ ऐष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० ईये ॥ प्रथमभविष्यत एताहे वा आयिताहे (४७४ वां सूत्र देखो) द्वितीयभविष्यत एष्ये वा आयिष्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अगायि वा अगासत वा आयिषत ॥ प्रेरणार्थक वर्त० गमयामि (गम् से ६०२ रा सूत्र देखो) वा आययामि वा आपयामि ॥ अनियतभूत अजीगमम् वा आयियम् वा आपिपम् ॥ (अधि उपसर्ग के साथ अध्यजीगपम् ४९३ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) ॥ इच्छार्थक जिगमिषामि (गम् से ६०२ रा सूत्र देखो) वा ईषिषामि, ईषिषे ॥ वर्तमान गु० यत् (१ ली वि० यन्) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० इत ॥ अवर्तनीय भू० गु० इत्वा ०इत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० एतव्य अयनीय इत्य वा एय

१ ली शाखा

भा (चमक) या के सदृश वर्तनी कियाजासकता है ॥ वर्तमान भामि ॥ पूर्णभूत बभौ ॥ प्रथम भविष्यत भातास्मि ॥ अनियतभूत अभासिषम् इत्यादि

दूसरे गण के अपने पिछले वर्णों के क्रम के अनुसार दूसरे दृष्टान्त

६२६ वां सूत्र

मूल शी (मुख्य अपूर्णपद शे ३१५ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक शयितुम् (लेटना) ॥ आत्मनेपद वर्त० शये शेषे शेते । शेवहे शयाथे शयाते । शेमहे शेध्वे शेरते ॥ अपूर्णभूत अशयि अशेथाः अशेत । अशेवहि अशयाथाम् अशयाताम् । अशेमहि अशेध्वम् अशेरत ॥ शक्त्यर्थ शयीय शयीथाः शयीत । शयीवहि शयीयाथाम् शयीयाताम् । शयीमहि शयीध्वम् शयीरन् ॥ अनुमत्यर्थ शयै शेष्व शेताम् । शयावहै शयाथाम् शयाताम् । शयामहै शेध्वम् शेरताम् ॥ पूर्णभूत शिश्ये शिशियषे शिश्ये । शिश्यिवहे शिश्याथे शिश्याते । शिश्यिमहे शिशियध्वे वा शिशियढ्वे शिश्यिरे ॥ प्रथम भविष्यत शयिताहे ॥ द्वितीय भविष्यत शयिष्ये ॥ अनियतभूत अशयिषि अशयिष्ठाः अशयिष्ट । अशयिष्वहि अशयिषाथाम् अशयिषाताम् । अशयिष्महि अशयिध्वम् वा अशयिढ्वम् अशयिषत ॥ आशीर्वादवाचक शयिषीय ॥ आशंसार्थ अशयिष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० शय्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अशायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० शाययामि ॥ अनियतभूत अशीशयम् ॥ इच्छार्थक शिशयिषे ॥ अधिकतार्थक शाशय्ये शेशेमि वा शेशयीमि ॥ वर्तमान गु० शयान (५२६ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० शयित ॥ अवर्तनीय भू० गु० शयित्वा ०शय्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० शयितव्य शयनीय शेय

६२७ वां सूत्र

मूल स्तु वा स्तु (मुख्य अपूर्णपद स्तु और स्तव् ३१२ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाच-

अस्तुनम् वा अस्तुवीतम् अस्तुताम् वा अस्तुवीताम् । अस्तुम वा अस्तुवीम + अस्तुत वा अस्तुवीत अस्तुवन् ॥ आत्मनेपद अस्तुवि अस्तुथाः वा अस्तुवीथाः अस्तुत वा अस्तुवीत । अस्तुवहि वा अस्तुवीवहि + अस्तुवाथाम् अस्तुवाताम् । अस्तुमहि वा अस्तुवीमहि + अस्तुध्वम् वा अस्तुवीध्वम् + अस्तुवन् ॥ शक्यर्थ स्तुयाम् वा स्तुवीयाम् +॥ आत्मनेपद स्तुवीय ॥ अनुमत्यर्थ स्तुवानि वा स्तवानि स्तुहि वा स्तुवीहि + स्तौतु वा स्तवीतु । स्तवाव स्तुतम् वा स्तुवीतम् स्तुताम् स्तुवीताम् । स्तवाम स्तुत वा स्तुवीत स्तुवन्तु ॥ आत्मनेपद स्तवै स्तुष्व वा स्तुवीष्व + स्तुताम् वा स्तुवीताम् । स्तवावहै स्तुवाथाम् स्तुवाताम् । स्तवामहै स्तुध्वम् वा स्तुवीध्वम् + स्तुवताम् ॥ पूर्णभूत (३६९ वां सूत्र देखो) तुष्टाव तुष्टव तुष्टाव । तुष्टुव तुष्टुवथुः तुष्टुवतुः । तुष्टुम तुष्टुव तुष्टुवुः ॥ आत्मनेपद तुष्टुवे तुष्टुषे तुष्टुवे । तुष्टुवहे तुष्टुवाथे तुष्टुवाते । तुष्टुमहे तुष्टुढ्वे (३७२ वां सूत्र देखो) तुष्टुविरे ॥ प्रथम भविष्यत स्तोतास्मि ॥ आत्मनेपद स्तोताहे ॥ द्वितीय भविष्यत स्तोष्यामि ॥ आत्मनेपद स्तोष्ये ॥ अनियतभूत (४२७ वें सूत्र की १ली शाखा देखो) अस्ताविषम् अस्तावीः अस्तावीत् । अस्ताविष्व अस्ताविष्टम् अस्ताविष्टाम् । अस्ताविष्म अस्ताविष्ट अस्ताविषुः ॥ आत्मनेपद अस्तोषि अस्तोष्ठाः अस्तोष्ट । अस्तोष्वहि अस्तोषाथाम् अस्तोषाताम् । अस्तोष्महि अस्तोढ्वम् अस्तोषत ॥ आशीर्वादवाचक स्तूयासम् ॥ आत्मनेपद स्तोषीय ॥ आशंसार्थ अस्तोष्यम् ॥ आत्मनेपद अस्तोष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० स्तूये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अस्तावि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० स्तावयामि ॥ अनियतभूत अतुष्टवम् ॥ इच्छार्थक तुष्टूषामि तुष्टूषे ॥ अधिकतार्थक तोष्टूये तोष्टोमि ॥ वर्त० गु० स्तुवत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० स्तुत ॥ अपरिमी० भूत गु० स्तुत्वा ०स्तुत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० स्तोतव्य स्तवनीय स्तुत्य वा स्ताव्य वा स्तव्य

टीका

• कोई २ व्याकरणी इन रूपों को स्वीकार नहीं करते

न्तु (ब्रू से लियाहै) ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) उवाच उवचिथ वा उवक्थ उवाच । ऊचिव ऊचथुः ऊचतुः । ऊचिम ऊच ऊचुः ॥ आत्मने॰ ऊचे ऊचिषे ऊचे । ऊचिवहे ऊचाथे ऊचाते । ऊचिमहे ऊचिध्वे ऊचिरे ॥ प्रथमभविष्यत वक्तास्मि ॥ आत्मनेपद वक्ताहे ॥ द्वितीयभविष्यत वक्ष्यामि ॥ आत्मने॰ वक्ष्ये ॥ अनियतभूत (४४१ वां सूत्र देखो) अवोचम् अवोचः अवोचत् । अवोचाव अवोचतम् अवोचताम् । अवोचाम अवोचत अवोचन् ॥ आत्मनेपद अवोचे अवोचथाः अवोचत । अवोचावहि अवोचेथाम् अवोचेताम् । अवोचामहि अवोचध्वम् अवोचन्त ॥ आशीर्वादवाचक उच्यासम् ॥ आत्मनेपद वक्षीय ॥ आशंसार्थ अवक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अवक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ उच्ये (४७१ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ॰ पु॰ ए॰ अवाचि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ वाचयामि ॥ अनियतभूत अवीवचम् ॥ इच्छार्थक विवक्षामि विवक्षे ॥ अधिकतार्थक वावच्ये वावच्मि ॥ वर्तमान गु॰ ब्रुवत् ॥ आत्मनेपद ब्रुवाण (ब्रू से लियाहुआ) (६९९ वां सूत्र देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ उक्त ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ उक्ता ॰उच्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ वक्तव्य वचनीय वाच्य वा वाक्य

टीका

+ किसी २ की मति के अनुसार अपूर्णभूत का अ॰ पु॰ ब॰ भी नहीं आता ।

६५१ वां सूत्र

मृज मृज् (मुख्य अपूर्णपद मार्ज् और मृज् ३२१वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक मार्ष्टुम् वा मार्जितुम् (मलना पोंछना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ मार्ज्मि मार्क्षि (२९६वां सूत्र देखो) मार्ष्टि (२९७ वां सूत्र देखो) मृज्वः मृष्ठः मृष्टः । मृज्मः मृष्ठ मार्जन्ति वा मृजन्ति ॥ अपूर्णभूत अमार्जम् अमार्ट् (२९४ वां सूत्र देखो) अमार्ट् । अमृज्व अमृष्टम् अमृष्टाम् । अमृज्म अमृष्ट अमार्जन् वा अमृजन् ॥ शक्त्यर्थ मृज्याम् मृज्याः इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ मार्जानि मृड्ढि (३०३रा सूत्र देखो) मार्ष्टु । मार्जाव मृष्टम् मृष्टाम् । मार्जाम मृष्ट मार्जन्तु वा मृजन्तु ॥ पूर्णभूत ममार्ज ममार्जिथ वा

दि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ आदयामि ॥ अनियतभूत आदिदम् ॥ इच्छार्थक जिघत्सामि (घस् से लिया है) ॥ वर्तमान गु॰ अदत् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰गु॰ जग्ध ॥ अवर्तनीय भू॰गु॰ जग्ध्वा ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु॰ अत्तव्य अदनीय. आद्य

६५३ वां सूत्र

मूल रुद् (मुख्य अपूर्णपद रोद् रोदि रुदि रुद् ३२३ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक रोदितुम् (रोना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ रोदिमि रोदिषि रोदिति । रुदिवः रुदिथः रुदितः । रुदिमः रुदिथ रुदन्ति ॥ अपूर्णभूत अरोदम् अरोदः वा अरोदीः अरोदत् वा अरोदीत् (पा॰ ७, ३, ९८, ९९) अरुदिव अरुदितम् अरुदिताम् । अरुदिम अरुदित अरुदन् ॥ शक्त्यर्थ रुद्याम् ॥ अनुमत्यर्थ रोदानि रुदिहि रोदितु । रोदाव रुदितम् रुदिताम् । रोदाम रुदित रुदन्तु ॥ पूर्णभूत रुरोद रुरोदिथ रुरोद । रुरुदिव रुरुदथुः रुरुदतुः । रुरुदिम रुरुद रुरुदुः ॥ प्रथम भविष्यत रोदितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत रोदिष्यामि ॥ अनियतभूत अरुदम् अरुदः अरुदत् । अरुदाव अरुदतम् अरुदताम् । अरुदाम अरुदत अरुदन् ॥ वा अरोदिषम् अरोदीः अरोदीत् । अरोदिष्व अरोदिष्टम् अरोदिष्टाम् । अरोदिष्म अरोदिष्ट अरोदिषुः ॥ आशीर्वाचक रुद्यासम् ॥ आशंसार्थ अरोदिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ रुद्ये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ पु॰ अरोदि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ रोदयामि ॥ अनियतभूत अरूरुदम् ॥ इच्छार्थक रुरुदिषामि ॥ अधिकतार्थक रोरुद्ये रोरोद्मि (अ॰ ए॰ पु॰ रोरोत्ति) वा रोरुदीमि ॥ वर्तमान गु॰ रुदत् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ रुदित ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ रुदित्वा ॰रुद्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ रोदितव्य रोदनीय रोद्य

६५४ वां सूत्र

मूल हन् + मुख्य अपूर्णपद हन् ह घ्न और ज (३२३ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक हन्तुम् (मारना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ हन्मि हंसि हन्ति । हन्वः हथः हतः । हन्मः हथ घ्नन्ति ॥ अपूर्णभूत अहनम् अहन् अहन् (२९४ वां सूत्र देखो) । अ-

तु देखो)॥ शतर्थ स्वपन् ॥ अनुमत्यर्थ स्वपानि स्वपिहि स्वपितु। स्वपाव स्वपितम् स्वपिताम्। स्वपाम स्वपित स्वपन्तु ॥ पूर्णभूत (३८२ वां सूत्र देखो) सुष्वाप सुष्वपिथ वा सुष्वप्थ सुष्वाप। सुषुपिव सुषुपथुः सुषुपतु। सुषुपिम सुषुप सुषुपुः ॥ प्रथम भविष्यत स्वप्तास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत स्वप्स्यामि ॥ अनियतभूत अस्वाप्सम् अस्वाप्सीः अस्वाप्सीत्। अस्वाप्स्व अस्वाप्तम् अस्वाप्ताम्। अस्वाप्स्म अस्वाप्त अस्वाप्सुः ॥ आशीर्वादवाचक सुप्यासम् ॥ आशंसार्थ अस्वप्स्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० सुप्ये (४७१ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० पु० ए० अस्वापि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० स्वापयामि ॥ अनियतभूत असूषुपम् इत्यादि ॥ इच्छार्थक सुषुप्सामि ॥ अतिशयार्थक सोषुप्ये, सास्वप्मि वा सास्वपीमि ॥ वर्तमान गु० स्वपत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० सुप्त ॥ अवर्तनीय भू० गु० सुप्त्वा, सुप्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० स्वप्तव्य, स्वपनीय स्वप्य

६५६ वां सूत्र

मूल वश् (मुख्य अपूर्णपद वश् और उश् (३२४ वां सूत्र देखो) ॥ साधनार्थक वशितुम् (चाहना) ॥ परस्मैपद वर्त० वश्मि वक्षि (३०२ रा सूत्र देखो) वष्टि (३०० वां सूत्र देखो) । उश्वः उष्ठः उष्टः । उश्मः उष्ठ उशन्ति ॥ अपूर्णभूत अवशम् अवट् (२९४ वां सूत्र देखो) अवट् । औश्व (२५१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) औष्टम् औष्टाम् । औश्म औष्ट औशन् ॥ शत्त्यर्थ उश्याम् उश्याः इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ वशानि उड्ढि (३०३ रा सूत्र देखो) वष्टु । वशाव उष्टम् उष्टाम् । वशाम उष्ट उशन्तु ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) उवाश उवशिथ उवाश । ऊशिव ऊशथुः ऊशतुः । ऊशिम ऊश ऊशुः ॥ प्रथम भविष्यत वशितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत वशिष्यामि ॥ अनियतभूत अवाशिषम् अवाशीः अवाशीत् इत्यादि) वा अवशिषम् अवशीः अवशीत् इत्यादि (४२७ वां सूत्र देखो) ॥ आशीर्वादवाचक उश्यासम् ॥ आशंसार्थ अवशिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० उश्ये (४७१ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० पु० ए० अवाशि वा अवशि ॥ प्रेरणा-

येतमूत अ० ए० व० अद्वेषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० द्वेषयामि ॥ अनियतमूत अ द्विषम् ॥ इच्छार्थक दिद्विक्षामि दिद्विक्षे ॥ अधिकतार्थक देद्विष्ये देद्विष्मि वा द्विषीमि ॥ वर्त० गु० द्विषत् ॥ कर्मणिवाच्य मू० गु० द्विष्ट ॥ अवर्तनीय मू० द्विष्ट्वा ०द्विष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० द्वेष्टव्य द्वेषणीय द्वेष्य

१. ली शाखा

मूल वस् ॥ भाववाचक वसितुम् (पहनना) ॥ आत्मनेपद वर्त० वसे वस्से ६६२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) वस्ते । वस्वहे वसाथे वसाते । वस्महे वद्ध्वे (३०४ था सूत्र देखो) वसते ॥ अपूर्णभूत अवसि अवस्थाः अवस्त । अवस्वहि अवसाथाम् अवसाताम् । अवस्महि अवद्ध्वम् वा अवध्वम् अवसत ॥ शर्त वसीय॥ अनुमत्यर्थ वसै ॥ पूर्णमूत ववसे ववसिषे इत्यादि ॥ प्रथम भविष्यत वसिताहे ॥ द्वितीय भविष्यत वसिष्ये ॥ अनियतमूत अवसिषि अवसिष्ठाः अवसिष्ट अवसिष्वहि अवसिषाथाम् अवसिषाताम् इत्यादि ॥ आशीर्वादवाचक वसिषीय आशंसार्थ अवसिष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० वस्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० वासयामि वासये ॥ इच्छार्थक विवसिषे ॥ अधिकतार्थक वावस्ये वावस्मि ॥ वर्तमान गु० वसान ॥ कर्मणिवाच्य मू० गु० वसित ॥ अवर्तनीय मू० गु० वसित्वा ०वस्य ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० वसितव्य वसनीय वस्य

६५८वां सूत्र

मूल शास् (तुलय अपूर्णपद शास् और शिष् ३२८वां सूत्र देखो)॥ भाववाचक शासितुम् (दण्ड देना) ॥ परस्मैपद (आ के साथ आशिष देना आत्मनेपद में) वर्त० शास्मि शास्सि शास्ति । शिष्वः शिष्ठः शिष्टः । शिष्मः शिष्ठ शासति (३१० वें सूत्र का वर्णन देखो) ॥ आत्मनेपद शासे शास्से (६६२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) शास्ते । शास्वहे शासाथे शासाते । शास्महे शाद्ध्वे वा शाध्वे (३०४ था सूत्र देखो) शासते ॥ अपूर्णभूत अशासम् अशात् वा अशाः (२९२ वां सूत्र और ३०४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) अशात् (३०४ था सूत्र देखो) अशिष्म

नेपद अदिहि अदिग्धाः अदिग्ध । अदिह्वहि अदिहाथाम् अदिहाताम् । अदिह्म-हि अधिग्ध्वम् अदिहत ॥ शक्यर्थ दिह्याम् दिह्याः इत्यादि ॥ आत्मनेपद दिहीय॥ अनुमत्यर्थ देहानि दिग्धि देग्धु । देहाव दिग्धम् दिग्धाम् । देहाम दिग्ध दिहन्तु आत्मनेपद देहै धिक्ष्व दिग्धाम् । देहावहै दिहाथाम् दिहाताम् । देहामहै धिग्ध्वं दिहताम् ॥ पूर्णभूत दिदेह दिदेहिथ दिदेह । दिदिहिव दिदिहथुः दिदिहतुः । दिदिहिम दिदिह दिदिहुः ॥ आत्मनेपद दिदिहे दिदिहिषे दिदिहे । दिदिहिवहे दिदिहाथे दिदिहाते । दिदिहिमहे दिदिहिध्वे वा दिदिहिढ्वे दिदिहिरे ॥ प्रथम भविष्यत देग्धास्मि ॥ आत्मनेपद देग्धाहे ॥ द्वितीय भविष्यत धेक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद धेक्ष्ये अनियतभूत (४३९ वां सूत्र देखो) अधिक्षम् अधिक्षः अधिक्षत् । अधिक्षाव अधिक्षतम् अधिक्षताम् । अधिक्षाम अधिक्षत अधिक्षन् ॥ आत्मनेपद (४३९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) अधिक्षि अधिक्षथाः वा अदिग्धाः अधिक्षत वा अदिग्ध । अधिक्षावहि वा अदिह्वहि अधिक्षाथाम् अधिक्षाताम् । अधिक्षामहि अधिक्षध्वम् वा अधिग्ध्वम् अधिक्षन्त ॥ आशीर्वादवाचक दिह्यासम् ॥ आत्मनेपद धिक्षीय ॥ आशंसार्थ अधेक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अधेक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० दिह्ये अनियतभूत अ० ए० व० अदेहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० देहयामि ॥ अनियतभूत अदीदिहम् ॥ इच्छार्थक दिधिक्षामि दिधिक्षे ॥ आधिक्यार्थक देदिह्ये देदेह्मि (अ० ए० व० देदेग्धि) ॥ वर्तमान गु० दिहत् ॥ आत्मनेपद दिहान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० दिग्ध ॥ अवर्तनीय भू० गु० दिग्ध्वा -दिह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० देग्धव्य देहनीय देह्य

६६० वां सूत्र

मूल दुह् (मुख्य अपूर्णपद दुह् और दोह्) ॥ भाववाचक दोग्धुम् (दोहना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० दोह्मि धोक्षि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) दोग्धि (३०५ वां सूत्र देखो) ॥ दुह्वः दुग्धः दुग्धः । दुह्मः दुग्ध दुहन्ति ॥ आत्मनेपद दुहे धुक्षे दुग्धे । दुह्वहे दुहाथे दुहाते । दुह्महे धुग्ध्वे (३०६ ठे सूत्र की ४ थी शा

ठा सूत्र देखो) लेढि (३०५वें सूत्र की १ली शाखा देखो) । लिह्व लीढः (३०५वें सूत्र की १ली शाखा देखो) लीढः । लिह्मः लीढ लिहन्ति ॥ आत्मनेपद लिहे लिक्षे लीढे । लिह्वहे लिहाथे लिहाते । लिह्महे लीढ्व लिहते ॥ अपूर्णभूत अलेहम् अलेट् (२९१ वां सूत्र देखो) अलेट् । अलिह्व अलीढम् अलीढाम् । अलिह्म अलीढ अलिहन् ॥ आत्मनेपद अलिहि अलीढाः अलीढ । अलिह्वहि अलिहाथाम् अलिहाताम् । अलिह्महि अलीढ्वम् अलिहत ॥ शक्त्यर्थ लिह्याम् लिह्याः इत्यादि ॥ आत्मनेपद लिहीय ॥ अनुमत्यर्थ लेहानि लीढि (३०६ ठे सूत्र की ३ री शाखा देखो) लेढु । लेहाव लीढम् लीढाम् । लेहाम लीढ लिहन्तु ॥ आत्मनेपद लेहै लिक्ष्व लीढाम् । लेहावहै लिहाथाम् लिहाताम् । लेहामहै लीढ्वम् (३०६ ठे सूत्र की ३ री शाखा देखो) लिहताम् ॥ पूर्णभूत लिलेह लिलेहिथ लिलेह । लिलिहिव लिलिहथुः लिलिहतुः । लिलिहिम लिलिह लिलिहुः ॥ आत्मनेपद लिलिहे लिलिहिषे इत्यादि ॥ प्रथम भविष्यत लेढास्मि ॥ आत्मनेपद लेढाहे ॥ द्वितीय भविष्यत लेक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद लेक्ष्ये ॥ अनियतभूत (४३९ वां सूत्र देखो) अलिक्षम् अलिक्षः अलिक्षत् । अलिक्षाव अलिक्षतम् अलिक्षताम् । अलिक्षाम अलिक्षत अलिक्षन् ॥ आत्मनेपद (४३९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) अलिक्षि अलिक्षथाः वा अलीढाः अलिक्षत वा अलीढ । अलिक्षावहि वा अलिह्वहि अलिक्षाथाम् अलिक्षाताम् । अलिक्षामहि अलिक्षध्वम् वा अलीढ्वम् अलिक्षन्त ॥ आशीर्वादवाचक लिह्यासम् ॥ आत्मनेपद लिक्षीय इत्यादि ॥ आशंसार्थ अलेक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अलेक्ष्ये इत्यादि ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० लिह्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अलेहि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० लेहयामि ॥ अनियतभूत अलीलिहम् ॥ इच्छार्थक लिलिक्षामि लिलिक्षे ॥ अधिकतार्थक लेलिह्ये लेलेह्मि (अ० ए० व० लेलेढि) ॥ वर्तमान गु० लिहन् ॥ आत्मनेपद लिहान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० लीढ ॥ अवश्यंभाव गु० लेढव्य लेहनीय लेह्य

३६१ वें सूत्र में बताई तीसरे गण वाली

अनिसृत क्रियाओं के दृष्टान्त

६६ ५वाँ सूत्र

मूल हु (३३३ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक होतुम् (हवनकरना)

परस्मैपद वर्तमान [मैं हवन करता हूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	जुहोमि	जुहुव वा जुह्व	जुहुमः वा जुह्मः
मध्यम	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
अन्य	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति

अपूर्णभूत [मैं हवन करता था वा मैंने किया]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम
म०	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत
अ०	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः (३३१ में गुण का वर्णन देखो)

शक्त्यर्थ (मैं हवन करूं)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम
म०	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
अ०	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः

अनुमत्यर्थ [मैं हवन करूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम
म०	जुहुधि (३९१ वां सूत्र देखो)	जुहुतम्	जुहुत

आ०	जुहवानि	जुहवाम	जुह्वतु

पूर्णभूत (३७४ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) जुहाव जुहविथ वा जुहोथ जुहाव । जुहुविव जुहुवथुः जुहुवतुः । जुहुविम जुहुव जुहुवुः । वा जुहवाञ्चकार इत्यादि (३८५ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) ॥ प्रथम भविष्यत होतास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत होष्यामि ॥ अनियतभूत अहौषम् अहौषीः अहौषीत् । अहौष्व अहौष्टम् अहौष्टाम् । अहौष्म अहौष्ट अहौषुः ॥ आशीर्वादवाचक हूयासम् ॥ आशंसार्थ अहोष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० हूये ॥ अनियतभूत अ० पु० ए० अहावि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० हावयामि ॥ अनियतभूत अजूहवम् ॥ इच्छार्थक जुहूषामि ॥ अधिकतार्थक जोहूये जोहोमि वा जोहवीमि ॥ वर्त० गु० जुह्वत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० हुत ॥ अव्ययीभूत भू० गु० हुत्वा ०हुत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० होतव्य हवनीय हव्य वा हाव्य

३ रे गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम से

६६३ वां सूत्र

मूल दा (मुख्य अपूर्णपद ददा और दद् ३३५ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक दातुम (देना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० ददामि ददासि ददाति । दद्वः दत्थः दत्तः । दद्मः दत्थ ददति ॥ आत्मनेपद ददे दत्से दत्ते । दद्वहे ददाथे ददाते । दद्महे दद्ध्वे ददते ॥ अपूर्णभूत अददाम् अददाः अददात् । अदद्व अदत्तम् अदत्ताम् । अदद्म अदत्त अददुः (३३१ वें सूत्र का वर्णन देखो) ॥ आत्मनेपद अददि अदत्थाः अदत्त । अदद्वहि अददाथाम् अददाताम् । अदद्महि अदद्ध्वम् अददत ॥ शक्त्यर्थ दद्याम् ॥ आत्मनेपद ददीय ॥ अनुमत्यर्थ ददानि देहि ददातु । ददाव दत्तम् दत्ताम् । ददाम दत्त ददतु ॥ आत्मनेपद ददै दत्स्व दत्ताम् । ददावहै ददाथाम् ददाताम् । ददामहै दद्ध्वम् ददताम् ॥ पूर्णभूत (३७३ वां सूत्र देखो) ददौ ददिथ वा ददाथ ददौ ।

ददिव ददथुः ददतुः । ददिम दद ददुः॥ आत्मनेपद ददे ददिषे ददे। ददिवहे ददाथे ददाते। ददिमहे ददिध्वे ददिरे ॥ प्रथम भविष्यत दातास्मि ॥ आत्मनेपद दाताहे ॥ द्वितीयभविष्यत दास्यामि॥ आत्मनेपद दास्ये॥ अनियतभूत (२३८ वां सूत्र देखो) अदाम् अदाः अदात् । अदाव अदातम् अदाताम् । अदाम अदात अदुः॥ आत्मनेपद (२३८ वें सूत्र की १ली शा० देखो) अदिषि अदिथाः अदित। अदिष्वहि अदिषाथाम् अदिषाताम्। अदिष्महि अदिढ्वम् अदिषत॥ आशीर्वादवाचक देयासम्॥ आत्मनेपद दासीय॥ आशंसार्थ अदास्यम्॥ आत्मनेपद अदास्ये॥ कर्मणिवाच्य वर्त० दीये॥ अनियतभूत अ० ए० व० अदायि (७०० वां सूत्र देखो)॥ प्रेरणार्थक वर्त० दापयामि (४८३वां सूत्र देखो)॥ अनियतभूत अदीदपम्॥ इच्छार्थक (५०३ रा सूत्र देखो) दित्सामि दित्से॥ अधिकतार्थक देदीये दादामि वा दादेमि॥ वर्तमान गु० ददत् (१४१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)॥ आत्मनेपद ददान॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० दत्त॥ अवर्तनीय भू० गु० दत्वा ०दाय॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० दातव्य दानीय देय

६६२वां सूत्र

मूल धा (मुख्य अपूर्णपद दधा दध् ३३६ वां सूत्र देखो)॥ भाववाचक धातुम् (रखना)॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० दधामि दधासि दधाति॥ दध्वः धत्थः (२९९ वें सूत्र की ५ ली शाखा देखो) धत्तः (२९९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)। दध्मः धत्थ दधति॥ आत्मनेपद दधे धत्से धत्ते। दध्वहे दधाथे दधाते। दध्महे धद्ध्वे (२९९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) दधते॥ अपूर्णभूत अदधाम् अदधाः अदधात्। अदध्व अधत्तम् अधत्ताम्। अदध्म अधत्त अदधुः॥ आत्मनेपद अदधि अधत्थाः अधत्त। अदध्वहि अदधाथाम् अदधाताम्। अदध्महि अधद्ध्वम् (२९९ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) अदधत॥ सामर्थ्य दध्याम्॥ आत्मनेपद दधीय॥ अनुमत्यर्थ दधानि धेहि दधातु। दधाव धत्तम् धत्ताम्। दधाम धत्त दधतु॥ आत्मनेपद दधै धत्स्व धत्ताम्। दधावहै दधाथाम् दधाताम्। दधा-

अ०	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु

पूर्णभूत (३७४ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) जुहाव जुहविथ वा जुहोथ जुहाव । जुहुविव जुहुवथुः जुहुवतुः । जुहुविम जुहुव जुहुवुः । वा जुहवाञ्चकार इत्यादि (३८५ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) ॥ प्रथम भविष्यत होतास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत होष्यामि ॥ अनियतभूत अहौषम् अहौषीः अहौषीत् । अहौष्व अहौष्टम् अहौष्टाम् । अहौष्म अहौष्ट अहौषुः ॥ आशीर्वादवाचक हूयासम् ॥ आशंसार्थ अहोष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य व० हूये ॥ अनियतभूत अ० ए० क० अहावि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० हावयामि ॥ अनियतभूत अजूहवम् ॥ इच्छार्थक जुहूषामि ॥ अधिकतार्थक जोहूये जोहोमि वा जोहवीमि ॥ वर्त० गु० जुह्वत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० हुत ॥ अवर्तनीय भू० गु० हुत्वा ०हुत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० होतव्य हवनीय हव्य वा हाव्य

३ रे गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम से

६६१ वां सूत्र

मूल दा (मुख्य अपूर्णपद-ददा और दद् ३३५ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक दातुम (देना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० ददामि ददासि ददाति । दद्वः दत्थः दत्तः । दद्मः दत्थ ददति ॥ आत्मनेपद ददे दत्से दत्ते । दद्वहे ददाथे ददाते । दद्महे दद्ध्वे ददते ॥ अपूर्णभूत अददाम् अददाः अददात् । अदद्व अदत्तम् अदत्ताम् । अदद्म अदत्त अददुः (३३१ वें सूत्र का वर्णन देखो) ॥ आत्मनेपद अददि अदत्थाः अदत्त । अदद्वहि अददाथाम् अददाताम् । अदद्महि अदद्ध्वम् अददत ॥ शक्यर्थ दद्याम् ॥ आत्मनेपद ददीय ॥ अनुमत्यर्थ ददानि देहि ददातु । ददाव दत्तम् दत्ताम् ददाम दत्त ददतु ॥ आत्मनेपद ददै दत्स्व दत्ताम् । ददावहै ददाथाम् ददाताम् । ददामहै दद्ध्वम् ददताम् ॥ पूर्णभूत (३७३ वां सूत्र देखो) ददौ ददिथ वा ददाथ ददौ

मद्दे धद्ध्म् दधताम् ॥ पूर्णभूत (३७१ वां सूत्र देखो) दधौ दधिथ वा दधाथ दधौ । दधिव दधथुः दधतुः । दधिम दध दधुः ॥ आत्मनेपद दधे दधिषे इत्यादि ॥ प्रथम भविष्यत धातास्मि ॥ आत्मनेपद धाताहे इत्यादि ॥ द्वितीय भविष्यत धास्यामि ॥ आत्मनेपद धास्ये ॥ अनियतभूत (४३८ वां सूत्र देखो) अधाम् अधाः अधात् । अधाव अधातम् अधाताम् । अधाम अधात अधुः ॥ आत्मनेपद (४३८ वें सूत्र की ४ थी शाखा देखो) अधिषि अधिथाः अधित । अधिष्वहि अधिषाथाम् अधिषाताम् अधिष्महि अधिद्ध्वम् अधिषत ॥ आशीर्वादवाचक धेयासम् ॥ आत्मनेपद धासीय ॥ आशंसार्थ अधास्यम् ॥ आत्मनेपद अधास्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० धीये ॥ प्रथम भविष्यत धायिताहे वा धाताहे ॥ अनियतभूत ३० पु० अधायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० धापयामि ॥ अनियतभूत अदीधपम् ॥ इच्छार्थक धित्सामि (५०३ रा सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक देधीये दाधामि वा दाधेमि ॥ वर्तमान गु० दधत् (१४१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ आत्मनेपद दधान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० हित ॥ अवर्तनीय भू० गु० हित्वा ०धाय ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० धातव्य धानीय धेय

१ ली शाखा

मूल मा (मुख्य अपूर्णपद मिमी मिम् ३३८ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक मातुम् (नापना) ॥ आत्मनेपद वर्त० मिमे मिमीषे मिमीते । मिमीवहे मिमाथे मिमाते । मिमीमहे मिमीध्वे मिमते ॥ अपूर्णभूत अमिमि अमिमीथाः अमिमीत । अमिमीवहि अमिमाथाम् अमिमाताम् । अमिमीमहि अमिमीध्वम् अमिमत ॥ शक्त्यर्थ मिमीय मिमीथाः मिमीत इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ मिमै मिमीष्व मिमीताम् । मिमावहै मिमाथाम् मिमाताम् । मिमामहै मिमीध्वम् मिमताम् ॥ पूर्णभूत ममे ममिषे ममे । ममिवहे ममाथे ममाते । ममिमहे ममिध्वे ममिरे ॥ प्रथम भविष्यत माताहे ॥ द्वितीय भविष्यत मास्ये ॥ अनियतभूत (४३४ वां सूत्र देखो) अमासि अमास्थाः अमास्त । अमास्वहि अमासाथाम् अमासाताम् । अमास्महि अमाध्वम्

अमासत ॥ आशीर्वादवाचक मासीय ॥ आशंसार्थ अमास्य ॥ कर्मणिवाच्य व॰ मीये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ अमायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ मापयामि ॥ अनियतभूत अमीमपम् ॥ इच्छार्थक मित्सामि मित्से (५०३ वां सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक मेमीये मामामि वा मामेमि ॥ वर्तमान कृ॰ मिमान ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ कृ॰ मित ॥ अवर्तनीय भू॰ कृ॰ मित्वा, -माय ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ कृ॰ मातव्य मानीय मेय ॥

६६५ वां सूत्र

हा । मुख्य अपूर्णपद जहा जही जह् (३३७ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक हातुम् (छोड़ना) ॥ परस्मैपद वर्त॰ जहामि जहासि जहाति । जहीवः (वा जहिवः (पा॰ ६।४।११६)) जहीथः (वा जहिथः) जहीतः (वा जहितः) । जहीमः (वा जहिमः) जहीथ (वा जहिथ) जहति ॥ अपूर्णभूत अजहाम् अजहाः अजहात् । अजहीव (वा अजहिव) अजहीतम् (वा अजहितम्) अजहीताम् (वा अजहिताम्) । अजहीम (वा अजहिम) अजहीत (वा अजहित) अजहुः ॥ शक्त्यर्थ जह्याम् जह्याः इत्यादि ॥ अनुमत्यर्थ जहानि जहीहि (वा जहिहि) वा जहाहि जहातु । जहाव जहीतम् (वा जहितम्) जहीताम् (वा जहिताम्) । जहाम जहीत (वा जहित) जहतु ॥ पूर्णभूत जहौ जहिथ वा जहाथ जहौ । जहिव जहथुः जहतुः । जहिम जह जहुः ॥ प्रथमभविष्यत् हातास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत् हास्यामि ॥ अनियतभूत (४३३ वां सूत्र देखो) अहासिषम् अहासीः अहासीत् । अहासिष्व अहासिष्टम् अहासिष्टाम् । अहासिष्म अहासिष्ट अहासिषुः ॥ आशीर्वादवाचक हेयासम् ॥ आशंसार्थ अहास्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ हीये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ अहायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ हापयामि ॥ अनियतभूत अजीहपम् ॥ इच्छार्थक जिहासामि ॥ अधिकतार्थक जेहीये जाहामि वा जाहेमि ॥ वर्तमान कृ॰ जहत् (१४१ वें सूत्र की [illegible] शाखा देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ कृ॰ हीन ॥ अवर्तनीय भू॰ कृ॰ हित्वा, -हाय ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ कृ॰ हातव्य हानी-

य

निपम् अजानीः अजानीत् । अजानिष्व इत्यादि । वा अजनिषम् इत्यादि । ४१ वें सूत्र में छ वाले अन्त देखो) ॥ आशीर्वादवाचक जन्यासम् वा जायासम् आशंसार्थ अजनिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० जाये (४६१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) वा जन्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अजनि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० जनयामि ॥ अनियतभूत अजीजनम् ॥ इच्छार्थक जिजनिषे ॥ अधिकतार्थक जाजाये वा जञ्जन्ये जञ्जन्मि ॥ वर्तमान गु० जज्ञत् (४१४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु जात जनित ॥ अव्ययीभूत भू० गु० जनित्वा जन्य जाय ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० जनितव्य जननीय जन्य

३४२ वें सूत्र में बताई हुई ७ वें गणवाली अनियत क्रियाओं के दृष्टान्त

६६७ वां सूत्र

मूल छिद् ॥ भाववाचक छेत्तुम् (काटना)

परस्मैपद वर्तमान [मैं काटता हूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः
मध्यम	छिनत्सि	छिन्थः (३४५ वां सूत्र देखो)	छिन्थ (३४५ वां सूत्र देखो)
अन्य	छिनत्ति	छिन्तः (३४५ वां सूत्र)	छिन्दन्ति

अपूर्णभूत [मैं काटता था वा मैंने काटा]

उ०	अच्छिनदम् (५१ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

म०	अच्छिनत् (३९४ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्तम् (३८५ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्त (३८५ वां सूत्र देखो)
अ०	अच्छिनत् (३९४ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्ताम् (३८५ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्दन्

शक्त्यर्थ [मैं काटूं]

उ०	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम
म०	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
अ०	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः

अनुमत्यर्थ (मैं काटूं)

उ०	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम
म०	छिन्द्धि वा छिन्धि (३२५ वां सूत्र देखो)	छिन्तम् (३८५ वां सूत्र देखो)	छिन्त (३८५ वां सूत्र देखो)
अ०	छिनत्तु	छिन्ताम् (३८५ वां सूत्र देखो)	छिन्दन्तु

पूर्णभूत चिच्छेद (५१ वां सूत्र देखो) चिच्छेदिथ चिच्छेद। चिच्छिदिव चिच्छिदथुः चिच्छिदतुः। चिच्छिदिम चिच्छिद चिच्छिदुः॥ प्रथम भविष्यत छेत्तास्मि॥ द्वितीय भविष्यत छेत्स्यामि॥ अनद्यतनभूत अच्छिदम् अच्छिदः अच्छिदत्। अच्छिदाव अच्छिदतम् अच्छिदताम्। अच्छिदाम अच्छिदत अच्छिदन्। वा अच्छैत्सम् अच्छैत्सीः अच्छैत्सीत्। अच्छैत्स्व अच्छैत्तम् अच्छैत्ताम्। अच्छैत्स्म अच्छैत्त अच्छैत्सुः॥ आशीर्वादवाचक छिद्यासम्॥ आगामार्थ अच्छेत्स्यम्

आत्मनेपद वर्तमान (मैं काटता हूं)

उ०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे
म०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे

अ०	छिन्ते (३४५ वां सूत्र देखो)	छिन्दाते	छिन्दते

अपूर्णभूत [मैं काटताथा वा मैं ने काटा]

उ०	अच्छिन्दि (५१ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि
म०	अच्छिन्थाः (३४५ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्
अ०	अच्छिन्त (३४५ वां सूत्र देखो)	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत

शक्त्यर्थ [मैं काटूं]

उ०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि
म०	छिन्दीथाः	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
अ०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्

अनुमत्यर्थ [मैं काटूं]

उ०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै
म०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
अ०	छिन्ताम् (३४५ वां सूत्र देखो)	छिन्दाताम्	छिन्दताम्

पूर्णभूत चिच्छिदे चिच्छिदिषे चिच्छिदे। चिच्छिदिवहे चिच्छिदाथे चिच्छिदाते । चिच्छिदिमहे चिच्छिदिध्वे चिच्छिदिरे ॥ प्रथम भविष्यत छेत्ताहे ॥ द्वितीयभविष्यत छेत्स्ये ॥ अनियतभूत अच्छित्सि अच्छित्थाः अच्छित्त । अच्छित्स्वहि अच्छित्साथाम् अच्छित्साताम् । अच्छित्स्महि अच्छिद्ध्वम् अच्छित्सत ॥ आशीर्वादवाचक छित्सीय ॥ आशंसार्थ अच्छेत्स्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० छिद्ये॥

अनियतभूत अ० ए० व० अच्छेदि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० छेदयामि ॥ अनियतभूत अचिच्छिदम्॥ इच्छार्थक चिच्छित्सामि चिच्छित्से ॥ अधिकतार्थक चेच्छिद्ये चेच्छेद्मि ॥ वर्तमान गु० छिन्दत् ॥ आत्मनेपद छिन्दान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० छिन्न ॥ अवर्तनीय भू० गु० छित्त्वा ०छिद्य ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत गु० छेत्तव्य छेदनीय छेद्य

७वें गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम से

६६८ वां सूत्र

मूल अञ्ज् (मुख्य अपूर्णपद अनज् अञ्ज् । ३२७ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक अंक्तुम् (मलना स्वच्छ करना) ॥ परस्मैपद वर्त० अनज्मि अनक्षि (३१६ वां सूत्र देखो) अनक्ति । अंज्व अंक्थ अंक्त । अंज्म अंक्थ अञ्जन्ति ॥ अपूर्णभूत आनजम् आनक् (३१४ वां सूत्र देखो) आनक् । आंज्व आंक्तम् आंक्ताम् । आंज्म आंक्त आञ्जन् ॥ शक्त्यर्थ अञ्ज्याम् ॥ अनुमत्यर्थ अनजानि अंग्धि अनक्तु । अनजाव अंक्तम् अंक्ताम् । अनजाम अंक्त अञ्जन्तु ॥ पूर्णभूत आनञ्ज आनञ्जिथ वा आनंक्थ आनञ्ज । आनञ्जिव आनञ्जथुः आनञ्जतुः । आनञ्जिम आनञ्ज आनञ्जुः ॥ प्रथम भविष्यत अंक्तास्मि वा अञ्जितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत अंक्ष्यामि वा अञ्जिष्यामि ॥ अनियतभूत आञ्जिषम् आञ्जीः आञ्जीत् । आञ्जिष्व इत्यादि (४१८ वें सूत्र के ३ भाग अंत देखो) ॥ आशीर्वादवाचक अज्यासम् (४५३ वां सूत्र देखो) ॥ आशंसार्थ आंक्ष्यम् वा आञ्जिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० अज्ये (४६१ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० ए० व० आञ्जि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० अञ्जयामि ॥ अनियतभूत आञ्जिजम् ॥ इच्छार्थक अञ्जिजिषामि ॥ वर्तमान गु० अञ्जत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० अक्त ॥ अवर्तनीय भू० गु० अञ्जित्वा वा अंक्त्वा वा अक्त्वा ०अज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० अंक्तव्य वा अञ्जितव्य अञ्जनीय अंज्य वा अंग्य

९ वीं शाखा

मूल भुज् । मुख्य अपूर्णपद भुनज् भुञ्ज (२९९ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक भोक्तुम् (खाना भोगना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० भुनज्मि भुनक्षि भुनक्ति । भुंज्वः भुंक्थः भुंक्तः । भुंज्मः भुंक्थ भुञ्जन्ति ॥ आत्मनेपद भुञ्जे भुंक्षे भुंक्ते । भुञ्ज्वहे भुञ्जाथे भुंजाते । भुंज्महे भुंग्ध्वे भुञ्जते ॥ अपूर्णभूत अभुनजम् अभुनक् (२९४ वां सूत्र देखो) अभुनक् । अभुंज्व अभुंक्तम् अभुंक्ताम् । अभुंज्म अभुंक्त अभुञ्जन् ॥ आत्मनेपद अभुञ्जि अभुंक्थाः अभुंक्त । अभुंज्वहि अभुञ्जाथाम् अभुञ्जाताम् । अभुंज्महि अभुंग्ध्वम् अभुञ्जत ॥ शक्यर्थ भुंज्याम् ॥ आत्मनेपद भुञ्जीय ॥ अनुमत्यर्थ भुनजानि भुंग्धि भुनक्तु । भुनजाव भुंक्तम् भुंक्ताम् । भुनजाम भुंक्त भुञ्जन्तु ॥ आत्मनेपद भुनजै भुंक्ष्व भुंक्ताम् । भुनजावहै भुञ्जाथाम् भुञ्जाताम् । भुनजामहै भुंग्ध्वम् भुञ्जताम् ॥ पूर्णभूत बुभोज बुभोजिथ बुभोज । बुभुजिव बुभुजथुः बुभुजतुः । बुभुजिम बुभुज बुभुजुः ॥ आत्मनेपद बुभुजे बुभुजिषे बुभुजे । बुभुजिवहे बुभुजाथे बुभुजाते । बुभुजिमहे बुभुजिध्वे बुभुजिरे ॥ प्रथम भविष्यत भोक्तास्मि ॥ आत्मनेपद भोक्ताहे ॥ द्वितीय भविष्यत भोक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद भोक्ष्ये ॥ अनियतभूत अभौक्षम् अभौक्षीः अभौक्षीत् । अभौक्ष्व अभौक्तम् अभौक्ताम् । अभौक्ष्म अभौक्त अभौक्षुः ॥ आत्मनेपद अभुक्षि अभुक्थाः अभुक्त । अभुक्ष्वहि अभुक्षाथाम् अभुक्षाताम् । अभुक्ष्महि अभुग्ध्वम् अभुक्षत ॥ आशीर्वादवाचक भुज्यासम् ॥ आत्मनेपद भुक्षीय ॥ आशंसार्थ अभोक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अभोक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० भुज्ये ॥ अनियतभूत अ० पु० ए० व० अभोजि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० भोजयामि भोजये ॥ अनियतभूत अबूभुजम् ॥ इच्छार्थक बुभुक्षामि बुभुक्षे ॥ अधिकतार्थक बोभुज्ये बोभोज्मि ॥ वर्त० गु० भुञ्जत् । आत्मनेपद भुञ्जान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० भुक्त ॥ अवर्तनीय भूत० गु० भुक्त्वा ०भुज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० भोक्तव्य भोजनीय भोज्य वा भोग्य (५७४ वां सूत्र देखो)

६६९ वां सूत्र

मूल भञ्ज् (मुख्य अपूर्णपद भनज् भञ्ज् ३४१ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक भं-क्तुम् (तोड़ना) ॥ परस्मैपद वर्त० भनज्मि भनक्षि भनक्ति । भञ्ज्वः भंक्थः भंक्तः । भञ्ज्मः भंक्थ भञ्जन्ति ॥ अपूर्णभूत अभनजम् अभनक् (२९४ वां सूत्र देखो) अभनक् । अभञ्ज्व अभंक्तम् अभंक्ताम् । अभञ्ज्म अभंक्त अभञ्जन् ॥ शक्त्यर्थ भं-ज्याम् ॥ अनुमत्यर्थ भनजानि भंग्धि भनक्तु । भनजाव भंक्तम् भंक्ताम् । भनजाम भंक्त भञ्जन्तु ॥ पूर्णभूत बभञ्ज बभञ्जिथ वा बभंक्थ बभञ्ज । बभञ्जिव बभञ्जथुः बभञ्जतुः । बभञ्जिम बभञ्ज बभञ्जुः ॥ प्रथम भविष्यत् भंक्तास्मि ॥ द्वितीय भ-विष्यत् भंक्ष्यामि ॥ अनियतभूत अभांक्षम् अभांक्षीः अभांक्षीत् । अभांक्ष्व अभां-क्तम् अभांक्ताम् । अभांक्ष्म अभांक्त अभांक्षुः ॥ आशीर्वाचक भज्यासम् (४५३ वां सूत्र देखो) ॥ आशंसार्थ अभंक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० भज्ये (४६९ वां सूत्र देखो) ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अभाजि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० भञ्ज-यामि ॥ अनियतभूत अबभञ्जम् ॥ इच्छार्थक बिभंक्षामि ॥ अतिक्रमार्थक बंभ-ज्ये बंभज्मि ॥ वर्तमान गु० भञ्जन् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० भग्न ॥ अव्ययीय भू० गु० भंक्त्वा वा भक्त्वा ०भज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० भंक्तव्य भञ्जनीय भंग्य

६५८ वां सूत्र

मूल युज् (मुख्य अपूर्णपद युनज् युञ्ज् ३४६ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक योक्तुम् (जोड़ना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० युनज्मि युनक्षि इत्यादि । भुज् के सदृश (६६८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ आत्मनेपद युञ्जे युंक्षे इत्यादि ॥ अपूर्णभूत अयुनजम् अयुनक् (२९४ वां सूत्र देखो) अयुनक् । अयुं-ज्व इत्यादि ॥ आत्मनेपद अयुञ्जि अयुंक्थाः इत्यादि ॥ शक्त्यर्थ युंज्याम् ॥ आ-त्मनेपद युञ्जीय ॥ अनुमत्यर्थ युनजानि युंग्धि युनक्तु । युनजाव इत्यादि ॥ आ-त्मनेपद युनजै युंक्ष्व युंक्ताम् इत्यादि ॥ पूर्णभूत युयोज युयोजिथ युयोज । युयु-जिव इत्यादि ॥ भुज् के सदृश (६६८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ आत्म-

नेपद युयुजे ॥ प्रथम भविष्यत योक्तास्मि ॥ आत्मनेपद योक्ताहे ॥ द्वितीय भवि-ष्यत योक्ष्यामि ॥ आत्मनेपद योक्ष्ये ॥ अनियतभूत अयुजम् अयुजः अयुनक्, अयुजाव अयुङ्क्तम् अयुङ्क्ताम्। अयुञ्ज्म अयुङ्क्त अयुञ्जन्। वा अयौक्षम् अयौ-क्षीः अयौक्षीत् । अयौक्ष्व इत्यादि ॥ आत्मनेपद अयुक्षि अयुक्थाः अयुक्त । अ-युक्ष्वहि इत्यादि ॥ आशीर्वादवाचक युज्यासम् ॥ आत्मनेपद युक्षीय ॥ आसं-भाव्य अयोक्ष्यम् ॥ आत्मनेपद अयोक्ष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० युज्ये ॥ अनियत भूत अ० ए० प० अयोजि (७०२ रा सूत्र देखो) ॥ प्रेरणार्थक वर्त० योजयामि ॥ अनियतभूत अयूयुजम ॥ इच्छार्थक युयुक्षामि युयुक्षे ॥ अधिकतार्थक यो-युज्ये योयोज्मि ॥ वर्तमान भू० युञ्जत् ॥ आत्मनेपद युञ्जान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० युक्त ॥ अपरिवर्तनीय भू० गु० युक्त्वा ०युज्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० यो-क्तव्य योजनीय योग्य वा योज्य (५७२ वां सूत्र और ५७२ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

६७१वां सूत्र

मूल रुध् (मुख्य अपूर्णपद रुणध् रुन्ध् ३४२ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक रो-द्धुम् (रोकना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० रुणध्मि रुणत्सि रुणद्धि । रु-न्ध्वः रुन्द्धः + रुन्द्धः + । रुन्ध्मः रुन्द्ध + रुन्धन्ति ॥ आत्मनेपद रुन्धे रुन्त्से रुन्द्धे + । रुन्ध्वहे रुन्धाथे रुन्धाते । रुन्ध्महे रुन्द्ध्वे रुन्धते ॥ अपूर्णभूत अरुणधम्, अरुणत् वा अरुणः (२९४ वां सूत्र देखो) अरुणत् (२९४ वां सूत्र देखो) । अरुन्ध्व अरुन्द्ध-म् + अरुन्द्धाम् + । अरुन्ध्म अरुन्द्ध + अरुन्धन् ॥ आत्मनेपद अरुन्धि अरु-न्द्धाः + अरुन्द्ध + । अरुन्ध्वहि अरुन्धाथाम् अरुन्धाताम् । अरुन्ध्महि अरुन्द्ध्वम् अरुन्धत ॥ शक्यर्थ रुन्ध्याम् ॥ आत्मनेपद रुन्धीय ॥ अनुमत्यर्थ रुणधानि रुन्द्धि रुणद्धु । रुणधाव रुन्द्धम् + रुन्द्धाम् + । रुणधाम रुन्द्ध + रुन्धन्तु ॥ आत्मनेपद रु-णधै रुन्त्स्व रुन्द्धाम् + । रुणधावहै रुन्धाथाम् रुन्धाताम् । रुणधामहै रुन्द्ध्वम् रु-न्धताम् ॥ पूर्णभूत रुरोध रुरोधिथ रुरोध । रुरुधिव रुरुधथुः रुरुधतुः । रुरुधिम

रुध्व रुध्व ॥ आत्मनेपद रुरुधे रुरुधिषे रुरुधे । रुरुधिवहे रुरुधाथे रुरुधाते । रुरुधिमहे रुरुधिध्वे रुरुधिरे ॥ प्रथम भविष्यत रोद्धास्मि ॥ आत्मनेपद रोद्धाहे ॥ द्वितीय भविष्यत रोत्स्यामि ॥ आत्मनेपद रोत्स्ये ॥ अनियतभूत अरुधम् अरुधः अरुधत् । अरुधाव अरुधतम् अरुधताम् । अरुधाम अरुधत अरुधन् । वा अरौत्सम् अरौत्सीः अरौत्सीत् । अरौत्स्व अरौद्धम् अरौद्धाम् । अरौत्स्म अरौद्ध अरौत्सुः ॥ आत्मनेपद अरुत्सि अरुद्धाः अरुद्ध । अरुत्स्वहि अरुत्सायाम् अरुत्साताम् । अरुत्स्महि अरुद्ध्वम् अरुत्सत ॥ आशीर्वादवाचक रुध्यासम् ॥ आत्मनेपद रुत्सीय ॥ आसंभार्थ अरोत्स्यम् ॥ आत्मनेपद अरोत्स्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० रुध्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अरोधि ॥ प्रेरणार्थक वर्तमान रोधयामि ॥ अनियतभूत अरुरुधम् ॥ इच्छार्थक रुरुत्सामि रुरुत्से ॥ अधिकतार्थक रोरुध्ये रोरोध्मि ॥ वर्तमान भू० रुन्धत् ॥ आत्मनेपद रुन्धान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० रुद्ध ॥ अवर्तनीय भू० गु० रुद्ध्वा ॰रुध्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० रोद्धव्य रोधनीय रोध्य

टीका

* रुन्द्धः के पलटे रुन्धः आसकताहै ऐसेही रुन्द्ध के पलटे रुन्ध इत्यादि (२१८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

६७८ वां सूत्र

मूल शिष् (मुख्य अपूर्णपद शिनष् शिंष्) ॥ भाववाचक शेष्टुम् (अलगाना) ॥ परस्मैपद वर्त० शिनष्मि शिनक्षि शिनष्टि । शिंष्वः शिंष्ठः शिंष्टः । शिंष्मः शिंष्ठ शिंषन्ति ॥ अपूर्णभूत अशिनषम् अशिनट् (२९४ वां सूत्र देखो) अशिनट् । अशिंष्व अशिंष्टम् अशिंष्टाम् । अशिंष्म अशिंष्ट अशिंषन् ॥ शक्यर्थ शिंष्याम् ॥ अनुमत्यर्थ शिनषाणि शिंड्ढि वा शिण्ढि (३०३ रा और ३२५ वां सूत्र देखो) शिनष्टु । शिनषाव शिंष्टम् शिंष्टाम् । शिनषाम शिंष्ट शिंषन्तु ॥ पूर्णभूत शिशेष शिशेषिथ शिशेष । शिशिषिव शिशिषथुः शिशिषतुः । शिशिषिम शिशिष शिशिषुः ॥ प्रथम भविष्यत शेष्टास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत शेक्ष्यामि ॥ अनियतभूत अशिषम्

अशिषः अशिषत् । अशिषाव अशिषतम् अशिषताम् । अशिषाम अशिषत अशि-
षन् ॥ आशीर्वादवाचक शिष्यासम् ॥ आशंसार्थ अशेक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त०
शिष्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अशेषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० शेषयामि ॥ अनि-
यतभूत अशीशिषत् ॥ इच्छार्थक शिशिक्षामि ॥ अधिकतार्थक शेशिष्ये शेशेष्मि
॥ वर्तमान गु० शिषत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० शिष्ट ॥ अवर्णनीय भू० गु० शि-
ष्ट्वा ०शिष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० शेष्टव्य शेषणीय शेष्य

६७३ वां सूत्र

मूल हिंस् मुख्य अपूर्णपद हिनस् हिंस्) ॥ भाववाचक हिंसितुम् (सताना)॥
परस्मैपद वर्त० हिनस्मि हिनस्सि + हिनस्ति । हिंस्वः हिंस्थः हिंस्तः । हिंस्मः हिं-
स्थ हिंसन्ति ॥ अपूर्णभूत अहिनसम् अहिनत् वा अहिनः (२९४ वां सूत्र और
३०४ थे सूत्र की १ ली शाखा देखो) अहिनत् । अहिंस्व अहिंस्तम् अहिंस्ताम् ।
अहिंस्म अहिंस्त अहिंसन् ॥ शक्त्यर्थ हिंस्याम् ॥ अनुमत्यर्थ हिनसानि हिन्धि वा
हिन्धि (३०४ था सूत्र देखो) हिनस्तु । हिनसाव हिंस्तम् हिंस्ताम् । हिनसाम हिं-
स्त हिंसन्तु ॥ पूर्णभूत जिहिंस जिहिंसिथ जिहिंस । जिहिंसिव जिहिंसथुः जिहिं-
सतुः । जिहिंसिम जिहिंस जिहिंसुः ॥ प्रथम भविष्यत हिंसितास्मि ॥ द्वितीय भ-
विष्यत हिंसिष्यामि ॥ अनियतभूत अहिंसिषम् अहिंसीः अहिंसीत् । अहिंसिष्व
अहिंसिष्टम् अहिंसिष्टाम् । अहिंसिष्म अहिंसिष्ट अहिंसिषुः ॥ आशीर्वादवाचक
हिंस्यासम् ॥ आशंसार्थ अहिंसिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० हिंस्ये ॥ अनियत-
भूत अ० ए० व० अहिंसि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० हिंसयामि ॥ अनियतभूत अजिहिं-
सम् ॥ इच्छार्थक जिहिंसिषामि ॥ अधिकतार्थक जेहिंस्ये जेहिंस्मि ॥ वर्तमान
गु० हिंसत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० हिंसित ॥ अवर्णनीय भू० गु० हिंसित्वा
०हिंस्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० हिंसितव्य हिंसनीय हिंस्य

टीका

+ पिछला स् जब अ वा आ के पीछे आता है तब अन्त सि और से के पहले

अशिषः अशिषत् । अशिषाव अशिषतम् अशिषताम् । अशिषाम अशिषत अशिषन् ॥ आशीर्वादवाचक शिष्यासम् ॥ आशंसार्थ अशेक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० शिष्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अशेषि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० शेषयामि ॥ अनियतभूत अशीशिषम् ॥ इच्छार्थक शिशिक्षामि ॥ अधिकतार्थक शेशिष्ये शेशेष्मि ॥ वर्तमान गु० शिषत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० शिष्ट ॥ अवर्तनीय भू० गु० शिष्ट्वा ०शिष्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० शेष्टव्य शेषणीय शेष्य

६७३ वां सूत्र

मूल हिंस् मुख्य अपूर्णपद हिनस् हिंस्) ॥ भाववाचक हिंसितुम् (सताना)॥ परस्मैपद वर्त० हिनस्मि हिनस्सि + हिनस्ति । हिंस्वः हिंस्थः हिंस्तः । हिंस्मः हिंस्थ हिंसन्ति ॥ अपूर्णभूत अहिनसम् अहिनत् वा अहिनः (२९४ वां सूत्र और ३०४ थे सूत्र की १ ली शाखा देखो) अहिनत् । अहिंस्व अहिंस्तम् अहिंस्ताम् । अहिंस्म अहिंस्त अहिंसन् ॥ शक्त्यर्थ हिंस्याम् ॥ अनुमत्यर्थ हिनसानि हिन्धि वा हिन्धि (३०४ था सूत्र देखो) हिनस्तु । हिनसाव हिंस्तम् हिंस्ताम् । हिनसाम हिंस्त हिंसन्तु ॥ पूर्णभूत जिहिंस जिहिंसिथ जिहिंस । जिहिंसिव जिहिंसथुः जिहिंसतुः । जिहिंसिम जिहिंस जिहिंसुः ॥ प्रथम भविष्यत हिंसितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत हिंसिष्यामि ॥ अनियतभूत अहिंसिषम् अहिंसीः अहिंसीत् । अहिंसिष्व अहिंसिष्टम् अहिंसिष्टाम् । अहिंसिष्म अहिंसिष्ट अहिंसिषुः ॥ आशीर्वादवाचक हिंस्यासम् ॥ आशंसार्थ अहिंसिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० हिंस्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अहिंसि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० हिंसयामि ॥ अनियतभूत अजिहिंसम् ॥ इच्छार्थक जिहिंसिषामि ॥ अधिकतार्थक जेहिंस्ये जेहिंस्मि ॥ वर्तमान गु० हिंसत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० हिंसित ॥ अवर्तनीय भू० गु० हिंसित्वा ०हिंस्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० हिंसितव्य हिंसनीय हिंस्य

टीका

+ पिछला स् जब अ वा आ के पीछे आता है तब अन्त सि और से के पहले

पलट नहीं जाता (६२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) ।

६७४ वां सूत्र

मूल तृह् (मुख्य अपूर्णपद तृणह् तृणेह् तृंह् ३४६ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक तर्हितुम् वा तर्ढुम् (सताना मारना) ॥ परस्मैपद वर्त० तृणेह्मि तृणेक्षि (३०६ ठा सूत्र देखो) तृणेढि (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) । तृंह्वः तृण्ढः तृण्ढः (२१८ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) । तृंह्मः तृण्ढ तृंहन्ति ॥ अपूर्णभूत अतृणहम् अतृणेट् (२९१ वां सूत्र देखो) अतृणेट् । अतृंह्व अतृण्ढम् अतृण्ढाम् । अतृंह्म अतृण्ढ अतृंहन् ॥ शक्त्यर्थ तृंह्याम् ॥ अनुमत्यर्थ तृणहानि तृण्ढि (३०६ ठे सूत्र की १ ली शाखा देखो) तृणेढु । तृणहाव तृण्ढम् तृण्ढाम् । तृणहाम तृण्ढ तृंहन्तु ॥ पूर्णभूत ततर्ह ततर्हिथ वा ततर्ढ ततर्ह । ततृहिव ततृहथुः ततृहतुः । ततृहिम ततृह ततृहुः ॥ प्रथम भविष्यत तर्हितास्मि वा तर्ढास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत तर्हिष्यामि वा तर्क्ष्यामि ॥ अनियतभूत अतर्हिषम् अतर्हीः अतर्हीत् । अतर्हिष्व अतर्हिष्टम् अतर्हिष्टाम् । अतर्हिष्म अतर्हिष्ट अतर्हिषुः । वा अतृक्षम् अतृक्षः अतृक्षत् । अतृक्षाव अतृक्षतम् अतृक्षताम् । अतृक्षाम अतृक्षत अतृक्षन् ॥ आशीर्वादवाचक तृह्यासम् ॥ आशंसार्थ अतर्हिष्यम् वा अतर्क्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० तृह्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० पु० अतर्हि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० तर्हयामि ॥ अनियतभूत अततर्हम् वा अतीतृहम् ॥ इच्छार्थक तितर्हिषामि वा तितृक्षामि ॥ अधिकतार्थक तरीतृह्ये तरीतर्ह्मि (अ० ए० पु० तरीतर्ढि) ॥ वर्तमान कृ० तृंहत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० कृ० (३०५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) तृढ ॥ अव्ययीभूत भू० कृ० तर्हित्वा वा तृढ्वा -तृह्य ॥ कर्मणिवाच्य भविष्यत कृ० तर्हितव्य वा तर्ढव्य तर्हणीय तृह्य

३४९ वें सूत्र में बताई हुई ५ वें गण वाली अनिसृत क्रियाओं के दृष्टान्त

६७५ वां सूत्र

मूल वृ ॥ भाववाचक वरितुम् वा वरीतुम् (ढांकना लपेटना स्वीकार करना

१ली टीका

* स्वीकार करने के अर्थ में यह मूल बहुधा ९ वें गण में आता है जैसे वृणामि वृणासि वृणाति । वृणीमः इत्यादि (६८६ वां सूत्र देखो)

२री टीका

वर्तनीसम्बन्धी नु ५८० वें सूत्र से वृ के पीछे णु होजाता है

परस्मैपद वर्तमान [मैं ढांकता हूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	वृणोमि	वृणुवः वा वृण्वः	वृणुमः वा वृण्मः
म०	वृणोषि	वृणुथः	वृणुथ
अ०	वृणोति	वृणुतः	वृण्वन्ति

अपूर्णभूत (मैं ढांकताथा वा मैं ने ढांका)

उ०	अवृणवम्	अवृणुव वा अवृण्व	अवृणुम वा अवृण्म
म०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
अ०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्

शक्त्यर्थ [मैं ढांकूं]

उ०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम
म०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
अ०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः

अनुमत्यर्थ (मैं ढांकूं)

उ॰	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम
म॰	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
अ॰	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु

पूर्णभूत (३६९ वां सूत्र देखो) ववार ववर्थ (वैदिक) वा ववरिथ (३७०-वां सूत्र देखो) ववार । ववृव ववथुः ववतुः । ववृम वव ववुः वा ववरुः * ॥ प्रथम भविष्यत (३९२ वें सूत्र की २ थी शाखा देखो) वरितास्मि वा वरीतास्मि (३९३ वां सूत्र देखो) ॥ द्वितीय भविष्यत वरिष्यामि या वरीष्यामि (३९३वां सूत्र देखो) ॥ भनियतभूत अवारिषम् अवारीः अवारीत् । अवारिष्व अवारिष्टम् अवारिष्टाम् । अवारिष्म अवारिष्ट अवारिषुः ॥ आशीर्वादवाचक त्रियासम् वा वूर्यासम् (४४८ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) ॥ आशंसार्थ अवरिष्यम् वा अवरीष्यम्

टीका

* वृ कभी २ दीर्घ ॠ से लिखाजाता है तब ३७४वें सूत्र की ११ वीं शाखा लगती है

आत्मनेपद वर्तमान [मैं ढांकता हूं]

उ॰	वृण्वे	वृणुवहे वा वृण्वहे	वृणुमहे वा वृण्महे
म॰	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
अ॰	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते

अपूर्णभूत [मैं ढांकताथा वा मैंने ढांका]

उ॰	अवृण्वि	अवृणुवहि वा अवृण्वहि	अवृणुमहि वा अवृण्महि
म॰	अवृणुथाः	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
अ॰	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत

शक्त्यर्थ (मैं ढांकूं)

उ०	वृणीय	वृणीवहि	वृणीमहि
म०	वृणीथाः	वृणीयाथाम्	वृणीध्वम्
प्र०	वृणीत	वृणीयाताम्	वृणीरन्

अनुमत्यर्थ [मैं ढांकूं]

उ०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै
म०	वृणुष्व	वृणवाथाम्	वृणुध्वम्
प्र०	वृणुताम्	वृणवाताम्	वृणवताम्

पूर्णभूत वव्रे (३६१ वां सूत्र देखो) वा ववरे + वव्रषे ववे वा ववरे । ववृवहे व व्राथे वव्राते । ववृमहे ववृढ्वे वव्रिरे ॥ प्रथम भविष्यत वरिताहे वा वरीताहे ॥ द्वितीय भविष्यत वरिष्ये वा वरीष्ये ॥ अनियतभूत अवरिषि अवरिष्ठाः अवरिष्ट । अवरिष्वहि अवरिषाथाम् अवरिषाताम् । अवरिष्महि अवरिध्वम् वा अवरिढ्वम् अवरिषत वा अवरीषि अवरीष्ठाः इत्यादि । वा अवृषि अवृथाः अवृत । अवृष्वहि अवृषाथाम् अवृषाताम् । अवृष्महि अवृढ्वम् अवृषत । वा अवूर्षि अवूर्ष्ठाः अवूर्ष्ट । अवूर्ष्वहि अवूर्षाथाम् अवूर्षाताम् । अवूर्ष्महि अवूर्ढ्वम् अवूर्षत ॥ आशीर्वादवाचक वरिषीय वा वृषीय । वूर्षीय (२४८ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) ॥ आशंसार्थ अवरिष्ये वा अवरीष्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० व्रियै ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अवारि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० वरयामि वा वरये वा वारयामि वा वारये ॥ अनियतभूत अवीवरम् ॥ इच्छार्थक विवरिषामि वा विवरिषे विवरीषामि वा विवरीषे वुवूर्षामि वा वुवूर्षे (५०३ रा सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक वेव्रीये (५११ वां सूत्र देखो) वा वोवूर्मि वर्वर्मि ॥ वर्तमान गु० वृणवत् ॥ आत्मनेपद वृण्वान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० वृत ॥ अवर्णनीय भू० गु० वृत्वा ०वृत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० वरितव्य

१ यिह मूल १ ले गण में आताहै

६७ : वां सूत्र

मूल धू + (मुख्य अपूर्णपद धूनो धुनु) ॥ भाववाचक धवितुम् वा धोतुम् (हिलाना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० धूनोमि धूनोषि धूनोति । धूनुवः वा धून्वः धूनुथः धुनुतः । धूनुमः वा धून्मः धूनुथ धून्वन्ति ॥ आत्मनेपद धून्वे । धूनुषे धूनुते । धूनुवहे वा धून्वहे धून्वाथे धून्वाते । धूनुमहे वा धून्महे धूनुध्वे धून्वते ॥ अपूर्णभूत अधूनवम् अधूनोः अधूनोत् । अधूनुव वा अधून्व अधूनुतम् अधूनुताम् अधूनुम वा अधून्म अधूनुत अधून्वन् ॥ आत्मनेपद अधून्वि अधूनुथाः अधूनुत अधूनुवहि वा अधून्वहि अधून्वाथाम् अधून्वाताम् । अधूनुमहि अधूनुध्वम् अधून्वत ॥ शक्त्यर्थ धूनुयाम् ॥ आत्मनेपद धून्वीय ॥ अनुमत्यर्थ धूनवानि धूनु धूनोतु । धूनवाव धूनुतम् धूनुताम् । धूनवाम धूनुत धून्वन्तु ॥ आत्मनेपद धूनवै धूनुष्व धूनुताम् । धूनवावहै धून्वाथाम् धून्वाताम् । धूनवामहै धूनुध्वम् धून्वताम् ॥ पूर्णभूत (३७४ वें सूत्र की ७ वीं शाखा देखो) दुधाव दुधविथ वा दुधोथ दुधाव । दुधुविव दुधुवथुः दुधुवतुः । दुधुविम दुधुव दुधुवुः ॥ आत्मनेपद दुधुवे दुधुविषे दुधुवे । दुधुविवहे दुधुवाथे दुधुवाते । दुधुविमहे दुधुविध्वे वा दुधुविढ्वे दुधुविरे ॥ प्रथम भविष्यत धवितास्मि वा धोतास्मि ॥ आत्मनेपद धविताहे वा धोताहे ॥ द्वितीय भविष्यत धविष्यामि वा धोष्यामि ॥ आत्मनेपद धविष्ये वा धोष्ये ॥ अनियतभूत + अधाविषम् अधावीः अधावीत् । अधाविष्व अधाविष्टम् अधाविष्टाम् । अधाविष्म अधाविष्ट अधाविषुः । वा अधौषम् अधौषीः अधौषीत् । अधौष्व अधौष्टम् अधौष्टाम् । अधौष्म अधौष्ट अधौषुः ॥ आत्मनेपद अधविषि अधविष्ठाः अधविष्ट । अधविष्वहि अधविषाथाम् अधविषाताम् । अधविष्महि अधविध्वम् (वा अधविढ्वम्) अधविषत । वा अधोषि अधोष्ठाः अधोष्ट । अधोष्वहि अधोषाथाम् अधोषाताम् । अधोष्महि अधोढ्वम् अधोषत ॥ आशीर्वादवाचक धूयासम् ॥ आत्मनेपद धविषीय वा धोषीय ॥ आशंसार्थ अधविष्यम् वा अधोष्यम् ॥ आत्मनेपद अध·

नाव ऋध्नुतम् ऋध्नुताम् । ऋध्नाम ऋध्नुत ऋध्नुवन्तु ॥ पूर्णभूत आनर्ध आनर्धि-थ आनर्ध । आनृधिव आनृधथुः आनृधतुः । आनृधिम आनृध आनृधुः ॥ प्रथम भविष्यत अर्धितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत अर्धिष्यामि ॥ अनियतभूत आर्धिष आर्धीः आर्धीत् । आर्धिष्व आर्धिष्टम् आर्धिष्टाम् । आर्धिष्म आर्धिष्ट आर्धिषुः वा आर्धम् आर्धः आर्धत् । आर्धाव इत्यादि ॥ आशीर्वादक ऋध्यासम् ॥ आशंसार्थ आर्धिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त॰ ऋध्ये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ आर्धि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ अर्धयामि ॥ अनियतभूत आर्दिधम् ॥ इच्छार्थक अर्दिधिषामि वा ईर्त्सामि (५०३ रा सूत्र देखो) ॥ वर्तमान गु॰ ऋध्नुवत् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ ऋद्ध ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ अर्धित्वा वा ऋद्ध्वा ऋध्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ अर्धितव्य अर्धनीय ऋध्य

६८१वां सूत्र

मूल आप् (मुख्य अपूर्णपद आप्नो आप्नु-आप्नुव्) ॥ भाववाचक आप्तुम् (पा-ना॰) ॥ परस्मैपद वर्त॰ आप्नोमि आप्नोषि आप्नोति । आप्नुवः आप्नुथः आप्नुतः आप्नुमः आप्नुथ आप्नुवन्ति ॥ अपूर्णभूत आप्नवम् आप्नोः आप्नोत् । आप्नुव आप्नुतम् आप्नुताम् । आप्नुम आप्नुत आप्नुवन् ॥ शक्यर्थ आप्नुयाम् ॥ अनुमत्यर्थ आप्नवानि आप्नुहि आप्नोतु । आप्नवाव आप्नुतम् आप्नुताम् । आप्नवाम आप्नुत आप्नुवन्तु ॥ पूर्णभूत आप आपिथ आप । आपिव आपथुः आपतुः । आपिम आप आपुः ॥ प्रथम भविष्यत आप्तास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत आप्स्यामि ॥ अ-नियतभूत आपम् आपः आपत् । आपाव आपतम् आपताम् । आपाम आपत आपन् ॥ आशीर्वादवाचक आप्यासम् ॥ आशंसार्थ आप्स्यम् ॥ कर्मणिवाच्य व-र्तमान आप्ये ॥ अनियतभूत अ॰ ए॰ व॰ आपि ॥ प्रेरणार्थक वर्त॰ आपयामि ॥ अनियतभूत आपिपम् ॥ इच्छार्थक (५०३ रा सूत्र देखो) ईप्सामि ॥ वर्तमा-न गु॰ आप्नुवत् ॥ कर्मणिवाच्य भू॰ गु॰ आप्त ॥ अवर्तनीय भू॰ गु॰ आप्त्वा ॰आप्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि॰ गु॰ आप्तव्य आपनीय आप्य ।

मूल कृ ॥ भाववाचक कर्तुम् (करना (३५५ वां सूत्र देखो)

परस्मैपद वर्तमान [मैं करताहूं]

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तम	करोमि	कुर्वः +	कुर्मः +
मध्यम	करोपि	कुरुथः	कुरुथ
अन्य	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति +

अपूर्णभूत [मैंने किया वा मैं करताथा]

उ०	अकरवम्	अकुर्व (७३ वां सूत्र देखो)	अकुर्म ७३ वां सूत्र देखो
म०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
अ०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्

शक्त्यर्थ [मैं करूं इत्यादि]

उ०	कुर्याम् +	कुर्याव	कुर्याम
म०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
अ०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः

अनुमत्यर्थ [मैं करूं]

उ०	करवाणि	करवाव	करवाम
म०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
अ०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु +

टीका

+ कुर्वः कुर्मः कुर्याम् इत्यादि विधिपूर्वक हैं (७३ वां सूत्र देखो) करोमि के पलटे कुर्मि एक अप्रसिद्ध रूप है सो पौराणिककाव्य में आताहै

पूर्णभूत [मैंने किया वा मैंने किया है]

उ०	चकार (३६ व्यां सूत्र देखो)	चकृव	चकृम
म०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
अ०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः

प्रथमभविष्यत (मैं करूंगा)

उ०	कर्तास्मि	कर्तास्वः	कर्तास्मः
म०	कर्तासि	कर्तास्थः	कर्तास्थ
अ०	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः

द्वितीयभविष्यत [मैं करूंगा]

उ०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः
म०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
अ०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति

अनियतभूत [मैंने किया]

उ०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म
म०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
अ०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः

आशीर्वादवाचक [मैं करूं]

उ०	क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म
म०	क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
अ०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः

आशंसार्थ (मैं करूंगा इत्यादि)

उ०	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम
म०	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
अ०	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

१८१वां सूत्र

आत्मनेपद वर्तमान (मैं करताहूं)

उ०	कुर्वे (७३वां सूत्र देखो)	कुर्वहे	कुर्महे
म०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
अ०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते

अपूर्णभूत [मैं करताथा वा मैंने किया]

उ०	अकुर्वि (७३वांसूत्र देखो	अकुर्वहि	अकुर्महि
म०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
अ०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत

शक्यर्थ (मैं करूं इत्यादि)

उ०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि
म०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
अ०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्

अनुमत्यर्थ [मैं करूं]

उ०	करवै	करवावहै	करवामहै
म०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्

प्र०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्

पूर्णभूत [मैंने किया वा किया है]

उ०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
म०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
अ०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे

प्रथमभविष्यत (मैं करूंगा)

उ०	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे
म०	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
प्र०	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः

द्वितीयभविष्यत [मैं करूंगा]

उ०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे
म०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
प्र०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते

अनियतभूत [मैंने किया]

उ०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
म०	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
प्र०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत

आशीर्वादवाचक [मैं करूं]

उ०	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि

म०	कर्षीष्ठाः	कर्षीषास्थाम्	कर्षीध्वम्
प्र०	कर्षीष्ट	कर्षीषास्ताम्	कर्षीरन्

आशंसार्थ [मैं करूंगा इत्यादि]

उ०	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि
म०	अकरिष्यथाः	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
अ०	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

कर्मणिवाच्य वर्त० क्रिये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अकारि (७०१ वां सूत्र देखो) ॥ प्रेरणार्थक वर्त० कारयामि ॥ अनियतभूत अचीकरम् ॥ इच्छार्थक चिकीर्षामि चिकीर्षे (५०२ वां सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक चेक्रीये चर्कर्मि वा चरिकर्मि वा चरीकर्मि वा चर्करीमि वा चरिकरीमि वा चरीकरीमि (पा० ७, ४, ९२) ॥ वर्तमान गु० कुर्वत् ॥ आत्मनेपद कुर्वाण ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० कृत ॥ अव्ययीभूत भू० गु० कृत्वा ०कृत्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० कर्तव्य करणीय कार्य

६८४ वां सूत्र

इस गण में केवल नौ दूसरे मूल आए हैं उन में बहुत आनेवाले एक तन् (फै. ला) है सो ५८३ वें सूत्र के अनुसार वर्तनी कियाजाता है दूसरे ये हैं क्षण् (जा) क्षण् और क्षिण् (मार डाल) घृण् (चमक) तृण् (चर) मन् आत्मनेपद (सोच) वन् (पूछ) सन् (दे) ये अन्त में अनुनासिक रखते हैं इनकी वर्तनी ५ वें गणवाली क्रियाओं से जो ६७५ वें सूत्र में बताई हैं मिलती हैं जैसे

६८५ वां सूत्र

मूल क्षण् (मुख्य अपूर्णपद क्षणो क्षणु) ॥ भाववाचक क्षणितुम् (मारना सताना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० क्षणोमि क्षणोषि क्षणोति । क्षणुतः इत्यादि ॥ आत्मनेपद क्षणे क्षणुषे इत्यादि ॥ अपूर्णभूत अक्षणवम् अक्षणोः इत्यादि ॥ आत्मनेपद अक्षणिव ॥ शक्यर्थ क्षणुयाम् ॥ आत्मनेपद क्षण्वीय ॥ अनु

म०	पुनासि	पुनीथः	पुनीथ
अ०	पुनाति	पुनीतः	पुनन्ति

अपूर्णभूत [मैं मिलाताथा वा मैंने मिलाया

उ०	अपुनाम्	अपुनीव	अपुनीम
म०	अपुनाः	अपुनीतम्	अपुनीत
अ०	अपुनात्	अपुनीताम्	अपुनन्

शक्त्यर्थ (मैं मिलाऊं इत्यादि)

उ०	पुनीयाम्	पुनीयाव	पुनीयाम
म०	पुनीयाः	पुनीयातम्	पुनीयात
अ०	पुनीयात्	पुनीयाताम्	पुनीयुः

अनुमत्यर्थ [मैं मिलाऊं]

उ०	पुनानि	पुनाव	पुनाम
म०	पुनीहि	पुनीतम्	पुनीत
अ०	पुनातु	पुनीताम्	पुनन्तु

पूर्णभूत पुपाव पुपविथ वा पुपोथ पुपाव । पुपुविव पुपुवथुः पुपुवतुः । पुपुविम पुपुव पुपुवुः ॥ प्रथम भविष्यत पवितास्मि वा पोतास्मि + ॥ द्वितीय भविष्यत पविष्यामि ॥ अनियतभूत अपाविषम् अपावीः अपावीत् । अपाविष्व अपाविष्टम् अपाविष्टाम् । अपाविष्म अपाविष्ट अपाविषुः ॥ आशीर्वादवाचक पूयासम् ॥ आशंसार्थ अपविष्यम् ॥

टीका

+ कोई २ पोतास्मि इत्यादि को केवल एक रूप बताते हैं । (लघु कौमुदी में

१२९ वां सूत्र देखो)

१९८७ वां सूत्र

आत्मनेपद वर्तमान [मैं मिलाता हूं]

उ०	पुने	पुनीवहे	पुनीमहे
म०	पुनीषे	पुनाथे	पुनीध्वे
अ०	पुनीते	पुनाते	पुनते

अपूर्णभूत [मैंने मिलाया वा मैं मिलाता था]

उ०	अपुनि	अपुनीवहि	अपुनीमहि
म०	अपुनीथाः	अपुनाथाम्	अपुनीध्वम्
अ०	अपुनीत	अपुनाताम्	अपुनत

शक्त्यर्थ (मैं मिलाऊं इत्यादि)

उ०	पुनीय	पुनीवहि	पुनीमहि
म०	पुनीथाः	पुनीयाथाम्	पुनीध्वम्
अ०	पुनीत	पुनीयाताम्	पुनीरन्

अनुमत्यर्थ [मैं मिलाऊं]

उ०	पुनै	पुनावहै	पुनामहै
म०	पुनीष्व	पुनाथाम्	पुनीध्वम्
अ०	पुनीताम्	पुनाताम्	पुनताम्

पूर्णभूत पुपुवे पुपुविषे पुपुवे। पुपुविवहे पुपुवाथे पुपुवाते। पुपुविमहे पुपुविध्वे वा पुपुविढ्वे पुपुविरे॥ प्रथम भविष्यत पविताहे॥ द्वितीय भविष्यत पविष्ये॥

म०	पुनासि	पुनीथः	पुनीथ
अ०	पुनाति	पुनीतः	पुनन्ति

अपूर्णभूत [मैं मिलाताथा वा मैंने मिलाया

उ०	अपुनाम्	अपुनीव	अपुनीम
म०	अपुनाः	अपुनीतम्	अपुनीत
अ०	अपुनात्	अपुनीताम्	अपुनन्

शक्त्यर्थ (मैं मिलाऊं इत्यादि)

उ०	पुनीयाम्	पुनीयाव	पुनीयाम
म०	पुनीयाः	पुनीयातम्	पुनीयात
अ०	पुनीयात्	पुनीयाताम्	पुनीयुः

अनुमत्यर्थ [मैं मिलाऊं]

उ०	पुनानि	पुनाव	पुनाम
म०	पुनीहि	पुनीतम्	पुनीत
अ०	पुनातु	पुनीताम्	पुनन्तु

पूर्णभूत पुपाव पुपविथ वा पुपोथ पुपाव। पुपुविव पुपुवथुः पुपुवतुः। पुपुविम पुपुव पुपुवुः॥ प्रथम भविष्यत् पवितास्मि वा पोतास्मि *॥ द्वितीय भविष्यत् पविष्यामि॥ अनियतभूत अपाविषम् अपावीः अपावीत्। अपाविष्व अपाविष्टम् अपाविष्टाम्। अपाविष्म अपाविष्ट अपाविषुः॥ आशीर्वादवाचक पूयासम्॥ आज्ञार्थ अपविष्यम्॥

टीका।

* कोई २ पोतास्मि इत्यादि को केवल एक रूप बताते हैं। लघु कौमुदी में

अनिपतनभूत अपविषि अपविष्ठाः अपविष्ट । अपविष्वहि अपविषाथाम् अपवि-
षाताम् । अपविष्महि अपविढ्वम् वा अपविड्ढ्वम् अपविषत ॥ आशीर्वादक
क्रियापद ॥ आशीरर्थ पविषीष्ट ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० पूये ॥ प्रथम० द्वितीय० पा
पिनाहे ॥ अनिपतनभूत अ० ए० प्र० अपावि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० पावयामि ॥ अ
निपतनभूत—अपीपवम् ॥ इच्छार्थक पुपूषामि वा पिपविषामि ॥ अधिकतावाचक वा
पुनः-पोपोमि—वा पोपवीमि ॥ पर्तमान गु० पुनत् ॥ आत्मनेपद पुनान ॥ कर्मणि
वाच्य—भू० कृ० पूत ॥ अवर्तनीय गु० गु० पूत्वा ०पूय ॥ कर्मणिवाच्य भवि० कृ०
पवितव्य, पवनीय, पाव्य, वा पव्य

९ वें गण के दूसरे दृष्टान्त अपने पिछले वर्णों के क्रम से ।

—६८८वां सूत्र

मूल ज्ञा (मुख्य अपूर्णपद जाना जानी जान् ६६१वां सूत्र देखो) ॥ भाववा-
चक-ज्ञातुम्—(जानना) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० जानामि जानासि जा-
नाति । जानीवः जानीथः जानीतः । जानीमः जानीथ जानन्ति ॥ आत्मनेपद जा-
ने—जानीषे—जानीते । जानीवहे जानाथे जानाते । जानीमहे जानीध्वे जानते ॥
अपूर्णभूत अजानाम् अजानाः अजानात् । अजानीव अजानीतम् अजानीताम् ।
अजानीम अजानीत अजानन् ॥ आत्मनेपद अजानि अजानीथाः अजानीत । अ-
जानीवहि अजानाथाम् अजानाताम् । अजानीमहि अजानीध्वम् अजानत ॥ श-
क्यर्थ जानीयाम् ॥ आत्मनेपद जानीय ॥ अनुमत्यर्थ जानानि जानीहि जानातु
। जानाव जानीतम् जानीताम् । जानाम जानीत जानन्तु ॥ आत्मनेपद जाने जा-
नीष्व जानीताम् । जानावहै जानाथाम् जानाताम् ॥ जानामहै जानीध्वम् जानता-
म् ॥ पूर्णभूत (३७३ वां सूत्र देखो) जज्ञौ जज्ञिथ वा जज्ञाथ जज्ञौ । जज्ञिव ज-
ज्ञथुः जज्ञतुः । जज्ञिम जज्ञ जज्ञुः ॥ आत्मनेपद जज्ञे जज्ञिषे जज्ञे । जज्ञिवहे ज-

ज्ञाये अज्ञाते । जाज्ञिमहे जाज्ञिध्वे जज्ञिरे ॥ प्रथम भविष्यत ज्ञातास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत ज्ञास्यामि ॥ अनियतभूत (२३३ वां सूत्र देखो) अज्ञासिषम् अज्ञासीः अज्ञासीत् । अज्ञासिष्व अज्ञासिष्टम् अज्ञासिष्टाम् । अज्ञासिष्म अज्ञासिष्ट अज्ञासिषुः ॥ आत्मनेपद अज्ञासि अज्ञास्थाः अज्ञास्त । अज्ञास्वहि अज्ञासाथाम् अज्ञासाताम् । अज्ञास्महि अज्ञाध्वम् अज्ञासत ॥ आशीर्वादवाचक ज्ञेयासम् वा ज्ञायासम् ॥ आत्मनेपद ज्ञासीय ॥ आशंसार्थ अज्ञास्यम् ॥ आत्म० अज्ञास्ये ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० (२५० वें सूत्र की १ली शाखा देखो) ज्ञाये ॥ पूर्णभूत जज्ञे (२७३री सूत्र देखो) ॥ प्रथम भविष्यत ज्ञाताहे वा ज्ञायिताहे (२५४वां सूत्र देखो) ॥ द्वितीय भविष्यत ज्ञास्ये वा ज्ञायिष्ये ॥ अनियतभूत अ० ए० व० अज्ञायि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० ज्ञापयामि वा ज्ञपयामि ॥ अनियतभूत अजिज्ञपम् ॥ इच्छार्थक जिज्ञासे (जिज्ञासामि पौराणिक काव्य में) ॥ अधिकतार्थक जाज्ञाये जाज्ञामि वा जाज्ञेमि ॥ वर्तमान गु० जानत् ॥ आत्मनेपद जानान ॥ कर्मणिवाच्य गु० भू० ज्ञात ॥ अवर्तनीय भू० गु० ज्ञात्वा ०ज्ञाय ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० ज्ञातव्य ज्ञानीय ज्ञेय

६८९वां सूत्र

मूल की (मुख्य अपूर्णपद क्रीणा क्रीणी क्रीण् । ६८६ वे सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ भाववाचक क्रेतुम् (नोट देखो) ॥ परस्मैपद और आत्मनेपद वर्त० क्रीणामि क्रीणासि क्रीणाति । क्रीणीवः क्रीणीथः क्रीणीतः । क्रीणीमः क्रीणीथ क्रीणन्ति ॥ आत्मनेपद क्रीणे क्रीणीषे क्रीणीते । क्रीणीवहे क्रीणाथे क्रीणाते । क्रीणीमहे क्रीणीध्वे क्रीणते ॥ अपूर्णभूत अक्रीणाम् अक्रीणाः अक्रीणात् । अक्रीणीव अक्रीणीतम् अक्रीणीताम् । अक्रीणीम अक्रीणीत अक्रीणन् ॥ आत्मनेपद अक्रीणि अक्रीणीथाः अक्रीणीत । अक्रीणीवहि अक्रीणाथाम् अक्रीणाताम् । अक्रीणीमहि अक्रीणीध्वम् अक्रीणत ॥ शक्यर्थ क्रीणीयाम् ॥ आत्मनेपद क्रीणीय ॥ अनुमत्यर्थ क्रीणानि क्रीणीहि क्रीणातु । क्रीणाव क्रीणीतम् क्रीणीताम् ।

आत्मनेपद लुने ॥ शक्यर्थ लुनीयाम् ॥ आत्मनेपद लुनीय ॥ पूर्णभूत लुलाव ॥ आत्मनेपद लुलुवे ॥ प्रथमभविष्यत् लवितास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत् लविष्यामि ॥ अनियतभूत अलाविषम् ॥

६१२वां सूत्र

मूल बन्ध् (मुख्य अपूर्णपद बध्ना बध्नी बध्न्) ॥ भाववाचक बन्धुम् (बांधना) ॥ परस्मैपद वर्त० बध्नामि बध्नासि बध्नाति । बध्नीवः बध्नीथः बध्नीतः । बध्नीमः बध्नीथ बध्नन्ति ॥ अपूर्णभूत अबध्नाम् अबध्नाः अबध्नात् । अबध्नीव अबध्नीतम् अबध्नीताम् । अबध्नीम अबध्नीत अबध्नन् ॥ शक्यर्थ बध्नीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ बध्नानि बधान (३५७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) बध्नातु । बध्नाव बध्नीतम् बध्नीताम् । बध्नाम बध्नीत बध्नन्तु ॥ पूर्णभूत बबन्ध बबन्धिथ वा बबन्द्ध वा बबन्ध (२९८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) बबन्ध । बबन्धिव बबन्धथुः बबन्धतुः । बबन्धिम बबन्ध बबन्धुः ॥ प्रथमभविष्यत् बन्धास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत् भन्त्स्यामि (२९१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अनियतभूत अभान्त्सम् (२९१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अभान्त्सीः अभान्त्सीत् । अभान्त्स्व अबान्द्धम् अबान्द्धाम् । अभान्त्स्म अबान्द्ध अभान्त्सुः ॥ आशीर्वादवाचक बध्यासम् ॥ आशंसार्थ अभन्त्स्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्तमान (४६९ वां सूत्र देखो) बध्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० बन्धयामि ॥ अनियतभूत अबबन्धम् ॥ इच्छार्थक बिभन्त्सामि (२९१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) ॥ अधिकतार्थक बाबध्ये बाबन्ध्मि बाबन्धीमि ॥ वर्तमान गु० बध्नत् ॥ कर्मणिवाच्य भूत गु० बद्ध ॥ अव्ययीभाव गु० गु० बद्ध्वा ०बध्य ॥ कर्मणिवाच्य भ० गु० बन्धव्य बन्धनीय बन्ध्य

६१३वां सूत्र

मूल ग्रन्थ् (मुख्य अपूर्णपद ग्रथ्ना ग्रथ्नी ग्रथ्न् ३६० वां सूत्र देखो) ॥ भाववाच ग्रन्थितुम् (पिरोना, गांधना) ॥ परस्मैपद वर्त० ग्रथ्नामि ग्रथ्नासि ग्रथ्नाति । ग्रथ्नीवः ग्रथ्नीथः ग्रथ्नीतः । ग्रथ्नीमः ग्रथ्नीथ ग्रथ्नन्ति ॥ अपूर्णभूत अग्रथ्नाम् अग्रथ्नाः अग्र-

श्नात् । अग्रथ्नीव अग्रथ्नीतम् अग्रथ्नीताम् । अग्रथ्नीम अग्रथ्नीत अग्रथ्नन् ॥ शक्यर्थ ग्रथ्नीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ ग्रथ्नानि ग्रथान (३९५वें सूत्र की १ली शाखा देखो) ग्रथ्नातु । ग्रथ्नाव ग्रथ्नीतम् ग्रथ्नीताम् । ग्रथ्नाम ग्रथ्नीत ग्रथ्नन्तु ॥ पूर्णभूत (३७५ वें सूत्र की ८ वीं शाखा देखो) जग्रन्थ + जग्रन्थिथ वा ग्रेथिथ जग्रन्थ + । जग्रन्थिव वा ग्रेथिव जग्रन्थथुः वा ग्रेथथुः जग्रन्थतुः वा ग्रेथतुः । जग्रन्थिम वा ग्रेथिम जग्रन्थ वा ग्रेथ जग्रन्थुः वा ग्रेथुः ॥ प्रथमभविष्यत ग्रन्थितास्मि ॥ द्वितीयभविष्यत ग्रन्थिष्यामि ॥ आनद्यतभूत अग्रन्थिषम् अग्रन्थीः अग्रन्थीत् इत्यादि ॥ आशीर्वादवाचक ग्रथ्यासम् ॥ आशंसार्थ अग्रन्थिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० (४६१ वां सूत्र देखो) ग्रथ्ये ॥ प्रेरणार्थक वर्त० ग्रन्थयामि ॥ अनियतभूत अजग्रन्थम् ॥ इच्छार्थक जिग्रन्थिषामि ॥ आधिक्यार्थक जाग्रथ्ये जंग्रन्थ्मि जंग्रन्थीमि ॥ वर्त० गु० ग्रथ्नत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० ग्रथित ॥ अव्ययीभूत भू० गु० ग्रथित्वा वा ग्रन्थित्वा •ग्रथ्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० ग्रन्थितव्य ग्रन्थनीय ग्रन्थ्य

टीका

+ कोई २ व्याकरणी पूर्णभूत के उ० और अ० पुरुष में जग्राथ को इच्छानुसार समझते हैं (३३९ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

श्रन्थ् (खोल) और मन्थ् (बिलो) ग्रन्थ् के सदृश वर्तनी किए जाते हैं

६९२ वां सूत्र

मूल क्षुभ् + (मुख्य अपूर्णपद क्षुभ्ना क्षुभ्नी क्षुभ्न्) ॥ भाववाचक क्षोभितुम् (हिलाना) ॥ परस्मैपद वर्त० क्षुभ्नामि क्षुभ्नासि क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीवः क्षुभ्नीथः क्षुभ्नीतः । क्षुभ्नीमः क्षुभ्नीथ क्षुभ्नन्ति ॥ अपूर्णभूत अक्षुभ्नाम् अक्षुभ्नाः अक्षुभ्नात् । अक्षुभ्नीव अक्षुभ्नीतम् अक्षुभ्नीताम् । अक्षुभ्नीम अक्षुभ्नीत अक्षुभ्नन् ॥ शक्यर्थ क्षुभ्नीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ क्षुभ्नानि क्षुभाण (३५७ वें सूत्र की १ ली शाखा और ५८ वां सूत्र देखो) क्षुभ्नातु । क्षुभ्नाव क्षुभ्नीतम् क्षुभ्नीताम् । क्षुभ्नाम

क्षुभ्नीत क्षुभ्नन्तु ॥ पूर्णभूत चुक्षोभ चुक्षोभिथ चुक्षोभ । चुक्षुभिव चुक्षुभथुः चुक्षुभतुः । चुक्षुभिम चुक्षुभ चुक्षुभुः ॥ प्रथम भविष्यत क्षोभितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत क्षोभिष्यामि ॥ अनियतभूत अक्षोभिषम् अक्षोभिषा अक्षोभिषाम् इत्यादि । वा अक्षुभम् अक्षुभः अक्षुभत् । अक्षुभाव अक्षुभतम् अक्षुभताम् । अक्षुभाम अक्षुभत अक्षुभन् ॥ आशीर्वादवाचक क्षुभ्यासम् ॥ आशंसार्थ अक्षोभिष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० क्षुभ्ये ॥ अनियतभूत प्र० ए० व० अक्षोभि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० क्षोभयामि ॥ अनियतभूत अचुक्षुभम् ॥ इच्छार्थक चुक्षोभिषामि वा चुक्षुभिषामि ॥ अधिकतार्थक चोक्षुभ्ये चोक्षोभ्मि (अ० ए० व० चोक्षोब्धि) ॥ वर्तमान कृ० क्षुभ्नत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० कृ० क्षुब्ध वा क्षुभित ॥ अव्ययीय भू० कृ० क्षुब्ध्वा वा क्षुभित्वा । क्षुभ्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० कृ० क्षोभितव्य क्षोभणीय (५८ वां सूत्र देखो) क्षोभ्य

टीका

४ थे गण वाला अकर्मक भी ऐसे ही आता है जैसे वर्तमान क्षुभ्यामि (मैं हिलता हूं) (६१२ वां सूत्र देखो)

६[illegible] वां सूत्र

मूल स्तम्भ् (मुख्य अपूर्णपद स्तभ्ना स्तभ्नी स्तभ्नु [illegible] वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक स्तम्भितुम् । ठहराना थामना ॥ परस्मैपद वर्त० स्तभ्नामि क्षुभ् के अनुसार (६९४ वां सूत्र देखो) ॥ अपूर्णभूत अस्तभ्नाम् ॥ सम्भाव्य स्तभ्नीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ स्तभ्नानि स्तभान (३०० वें सूत्र की ? री गाथा देखो) स्तभ्नातु । स्तभ्नाव स्तभ्नीतम् स्तभ्नीताम् । स्तभ्नाम स्तभ्नीत स्तभ्नन्तु ॥ पूर्णभूत तस्तम्भ तस्तम्भिथ तस्तम्भ । तस्तम्भिव तस्तम्भथुः तस्तम्भतुः । तस्तम्भिम तस्तम्भ तस्तम्भुः ॥ प्रथम भविष्यत स्तम्भितास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत स्तम्भिष्यामि ॥ अनियतभूत अस्तम्भिषम् अस्तम्भिषा अस्तम्भिषाम् इत्यादि । वा अस्तभम् अस्तभः अस्तभत् । अस्तभाव अस्तभतम् अस्तभताम् । अस्तभाम अस्तभत अस्तभन् ॥ आशीर्वादवाच

६९७वां सूत्र

मूल क्लिश् (मुख्य अपूर्णपद क्लिश्ना क्लिश्नी क्लिश्) ॥ भाववाचक क्लेशितुम् व. क्लेष्टुम् (थकाना) ॥ परस्मैपद वर्त० क्लिश्नामि अश् के सदृश (६९६ वां सूत्र देखो) ॥ अपूर्णभूत अक्लिश्नाम् अक्लिश्नाः अक्लिश्नात् । अक्लिश्नीव अक्लिश्नीतम् अक्लिश्नीताम् । अक्लिश्नीम अक्लिश्नीत अक्लिश्नन् ॥ शक्त्यर्थ क्लिश्नीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ क्लिश्नानि क्लिशान इत्यादि ॥ पूर्णभूत चिक्लेश चिक्लेशिथ वा चिक्लेष्ठ चिक्लेश । चिक्लिशिव वा चिक्लिश्व (३७१ वां सूत्र देखो) चिक्लिशथुः चिक्लिशतुः । चिक्लिशिम वा चिक्लिश्म चिक्लिश चिक्लिशुः ॥ प्रथम भविष्यत क्लेशितास्मि वा क्लेष्टास्मि ॥ द्वितीय भविष्यत क्लेशिष्यामि वा क्लेक्ष्यामि ॥ अनियतभूत अक्लेशिषम् अक्लेशीः अक्लेशीत् । अक्लेशिष्व अक्लेशिष्टम् अक्लेशिष्टाम् । अक्लेशिष्म अक्लेशिष्ट अक्लेशिषुः । वा अक्लिक्षम् अक्लिक्षः अक्लिक्षत् । अक्लिक्षाव अक्लिक्षतम् अक्लिक्षताम् । अक्लिक्षाम अक्लिक्षत अक्लिक्षन् (४३९वां सूत्र देखो) ॥ आशी० क्लिश्यासम् ॥ आगमार्थ अक्लेशिष्यम् वा अक्लेक्ष्यम् ॥ कर्मणिवाच्य वर्त० क्लिश्ये ॥ अनियतभूत अ०ए०व० अक्लेशि ॥ प्रेरणार्थक वर्त० क्लेशयामि ॥ अनियतभूत अचिक्लिशम् ॥ इच्छार्थक चिक्लिशिषामि वा चिक्लेशिषामि वा चिक्लिक्षामि ॥ अधिकतार्थक चेक्लिश्ये चेक्लेश्मि ॥ वर्तमान गु० क्लिश्नत् ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० क्लिष्ट वा क्लिशित ॥ अवर्तमान भू० गु० क्लिष्ट्वा वा क्लिशित्वा ०क्लिश्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० क्लेशितव्य वा क्लेष्टव्य क्लेशनीय क्लेश्य

६९८वां सूत्र

मूल पुष् (मुख्य अपूर्णपद पुष्णा पुष्णी पुष्ण्) ॥ भाववाचक पोषितुम् (पालना) ॥ परस्मैपद वर्त० पुष्णामि पुष्णासि पुष्णाति । पुष्णीवः पुष्णीथः पुष्णीतः । पुष्णीमः पुष्णीथ पुष्णन्ति ॥ अपूर्णभूत अपुष्णाम् अपुष्णाः अपुष्णात् । अपुष्णीव अपुष्णीतम् अपुष्णीताम् । अपुष्णीम अपुष्णीत अपुष्णन् ॥ शक्त्यर्थ पुष्णीयाम् ॥ अनुमत्यर्थ पुष्णानि पुषाण (३५७ वें सूत्र की ? वीं शाखा देखो) पुष्णातु । पु-

णार्थक वर्त० ग्राहयामि ॥ अनियतभूत अजिग्रहम् ॥ इच्छार्थक जिघृक्षामि जिघृक्षे (५०२ सूत्र देखो) ॥ अधिकतार्थक जरीगृह्ये जाग्रह्मि (अ० ए० व० जाग्राढि) वा जाग्रहीमि (७११ वां सूत्र देखो) ॥ वर्तमान भू० गृह्णन् ॥ आत्मनेपद गृह्णान ॥ कर्मणिवाच्य भू० गु० गृहीत ॥ अवर्तनीय भू० गु० गृहीत्वा ०गृह्य ॥ कर्मणिवाच्य भवि० गु० ग्रहीतव्य ग्रहणीय ग्राह्य

४६१ वें सूत्र में बताई हुई कर्मणिवाच्य क्रियाओं के दृष्टान्त

७००१ सूत्र

मूल दा (३६५ वां सूत्र देखो) ॥ भावार्थक दातुम् (दियाजाना)

वर्तमान (मैं दियाजाता हूं)

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उ०	दीये	दीयावहे	दीयामहे
म०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
अ०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते

अपूर्णभूत [मैं दियागया वा दियाजाताथा]

उ०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि
म०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
अ०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त

शक्त्यर्थ (मैं दियाजाऊं इत्यादि)

उ०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

म०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
अ०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्

अनुमत्यर्थ [मैं दियाजाऊं]

उ०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै
म०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
अ०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्

पूर्णभूत (मैं दियागया वा दियागया हूं)

उ०	ददे	ददिवहे	ददिमहे
म०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
अ०	ददे	ददाते	ददिरे

प्रथम भविष्यत [मैं दियाजाऊंगा]

उ०	दाताहे वा दायिताहे	दातास्वहे वा दायितास्वहे	दातास्महे वा दायितास्महे इत्य

द्वितीय भविष्यत [मैं दियाजाऊंगा]

उ०	दास्ये वा दायिष्ये	दास्यावहे वा दायिष्यावहे	दास्यामहे वा दायिष्यामहे इत्यादि

अनियतभूत [मैं दियागया वा दियागयाथा]

उ०	अदिषि वा अदायिषि	अदिष्वहि वा अदायिष्वहि	अदिष्महि वा अदायिष्महि

म॰	अदिषाः वा अदायिषाः	अदिषाथाम् वा अदायिषाथाम्	अदिढ्वम् वा अदायिढ्वम् वा अदायिढ्वम्
अ॰	अदायि	अदिषाताम् वा अदायिषाताम्	अदिषत वा अदायिषत

आशीर्वादवाचक दासीष वा दायिषीष इत्यादि ॥ आशंसार्थ अदास्ये वा अदायिष्ये इत्यादि

७१५ला सूत्र

मूल कृ (३६७ वां सूत्र देखो) ॥ भाववाचक कर्तृ (बनाया वा कियाजाना)

वर्तमान (मैं कियाजाता वा बनायाजाताहूं)				अपूर्णभूत (मैं कियागया वा कियाजाताथा)		
उ॰	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि
म॰	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे	अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
अ॰	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त

शक्यर्थ [मैं कियाजाऊं]				पूर्णभूत [मैं कियागया वा कियागयाहूं		
उ॰	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे
म॰	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
अ॰	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे

अनुमत्यर्थ [मैं किया जाऊं]	प्रथम भविष्यत [मैं कियाजाऊंगा]

उ०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै	कर्ताहे वा कारिताहे	कर्तास्वहे वा कारितास्वहे	कर्तास्महे इत्यादि वा कारितास्महे इत्यादि
म०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्			
अ०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्	द्वि० भ० करिष्ये वा कारिष्ये इत्यादि		

अनियतभूत [मैं कियागया वा कियागया था]

उ०	अकृषि वा अकारिषि	अकृष्वहि वा अकारिष्वहि	अकृष्महि वा अकारिष्महि
म०	अकृथाः वा अकारिष्ठाः	अकृषाथाम् वा अकारिषाथाम्	अकृढ्वम् वा अकारिध्वम् (अकारिढ्वम्)
अ०	अकारि	अकृषाताम् वा अकारिषाताम्	अकृषत वा अकारिषत

आशीर्वादवाचक कृषीय वा कारिषीय ॥ आशंसार्थ अकरिष्ये वा अकारिष्ये

७०२ रा सूत्र

व्यञ्जन अन्त में रखनेवाले मूल से कर्म णिवाच्य का दृष्टान्त

मूल युज् ॥ भाववाचक योक्तुम् (योग्य होना वा कियाजाना) ॥ वर्तमान युज्ये युज्यसे युज्यते इत्यादि ॥ अपूर्णभूत अयुज्ये अयुज्यथाः अयुज्यत इत्यादि ॥ शक्यर्थ युज्येय ॥ अनुमत्यर्थ युज्यै युज्यस्व युज्यताम् इत्यादि ॥ पूर्णभूत यु युजे युयुजिषे युयुजे इत्यादि ॥ प्रथम भविष्यत योक्ताहे योक्तासे योक्ता इत्यादि ॥ द्वितीय भविष्यत योक्ष्ये योक्ष्यसे इत्यादि ॥ अनियतभूत अयुक्षि अयुक्थाः अयो

म०	भावयेः	भावयेतम्	भावयेत	भावयेथाः	भावयेयाथाम्	भावयेध्वम्
अ०	भावयेत्	भावयेताम्	भावयेयुः	भावयेत	भावयेयाताम्	भावयेरन्

अनुमत्यर्थ [मैं होने की प्रेरणा करूं]

उ०	भावयानि	भावयाव	भावयाम	भावयै	भावयावहै	भावयामहै
म०	भावय	भावयतम्	भावयत	भावयस्व	भावयेथाम्	भावयध्वम्
अ०	भावयतु	भावयताम्	भावयन्तु	भावयताम्	भावयेताम्	भावयन्ताम्

पूर्णभूत [मैंने होने की प्रेरणा की वा की है]

उ०	भावयाञ्चकार	भावयाञ्चकृव	भावयाञ्चकृम	भावयाञ्चक्रे	भावयाञ्चकृवहे	भावयाञ्चकृमहे
म०	भावयाञ्चकर्थ	भावयाञ्चक्रथुः	भावयाञ्चक्र	भावयाञ्चकृषे	भावयाञ्चक्राथे	भावयाञ्चकृढ्वे
अ०	भावयाञ्चकार	भावयाञ्चक्रतुः	भावयाञ्चक्रुः	भावयाञ्चक्रे	भावयाञ्चक्राते	भावयाञ्चक्रिरे

प्रथमभविष्यत [मैं होने की प्रेरणा करूंगा]

उ०	भावयितास्मि	भावयितास्वः	भावयितास्मः	भावयिताहे	भावयितास्वहे	भावयितास्महे
म०	भावयितासि	भावयितास्थः	भावयितास्थ	भावयितासे	भावयितासाथे	भावयिताध्वे
अ०	भावयिता	भावयितारौ	भावयितारः	भावयिता	भावयितारौ	भावयितारः

द्वितीय भविष्यत [मैं होने की प्रेरणा करूंगा]

उ०	भावयिष्यामि	भावयिष्यावः	भावयिष्यामः	भावयिष्ये	भावयिष्यावहे	भावयिष्यामहे
म०	भावयिष्यसि	भावयिष्यथः	भावयिष्यथ	भावयिष्यसे	भावयिष्येथे	भावयिष्यध्वे
अ०	भावयिष्यति	भावयिष्यतः	भावयिष्यन्ति	भावयिष्यते	भावयिष्येते	भावयिष्यन्ते

अनियतभूत [मैंने होने की प्रेरणा की]

उ०	अबीभवम्	अबीभवाव	अबीभवाम	अबीभवे	अबीभवावहि	अबीभवामहि
म०	अबीभवः	अबीभवतम्	अबीभवत	अबीभवथाः	अबीभवेथाम्	अबीभवध्वम्
अ०	अबीभवत्	अबीभवताम्	अबीभवन्	अबीभवत	अबीभवेताम्	अबीभवन्त

आशीर्वादवाचक (मैं होने की प्रेरणा करूं)

उ०	भाव्यासम्	भाव्यास्व	भाव्यास्म	भावयिषीय	भावयिषीवहि	भावयिषीमहि
म०	भाव्याः	भाव्यास्तम्	भाव्यास्त	भावयिषीष्ठाः	भावयिषीयास्थाम्	भावयिषीध्वम्
अ०	भाव्यात्	भाव्यास्ताम्	भाव्यासुः	भावयिषीष्ट	भावयिषीयास्ताम्	भावयिषीरन्

आशंसार्थ (मैं होने की प्रेरणा करूं वा करूंगा इत्यादि

उ०	अभावयिष्यम्	अभावयिष्याव	अभावयिष्याम	अभावयिष्ये	अभावयिष्यावहि	अभावयिष्यामहि

म०	अभावयिष्यः	अभावयिष्यतम्	अभावयिष्यत	अभावयिष्यथाः	अभावयिष्येथाम्	अभावयिष्यध्वम्
अ०	अभावयिष्यत्	अभावयिष्यताम्	अभावयिष्यन्	अभावयिष्यत	अभावयिष्येताम्	अभावयिष्यन्त

७०४ वां सूत्र

इस दृष्टान्त के और ६३८ वें सूत्र में बताईहुई १० वें गणवाली अनिमित्त क्रियाओं के दृष्टान्त के अनुसार सब प्रेरणार्थक क्रियाओं की बननी कीजासकती है

४९८वें सूत्र में बताईहुई इच्छार्थक क्रियाओं के दृष्टान्त

७०५वां सूत्र

मूल भू ॥ भाववाचक बुभूषितुम् (हुआचाहना)

परस्मैपद			आत्मनेपद			
वर्तमान (मैं हुआचाहताहूं)						
उ०	बुभूषामि	बुभूषावः	बुभूषामः	बुभूषे	बुभूषावहे	बुभूषामहे
म०	बुभूषसि	बुभूषथः	बुभूषथ	बुभूषसे	बुभूषेथे	बुभूषध्वे
अ०	बुभूषति	बुभूषतः	बुभूषन्ति	बुभूषते	बुभूषेते	बुभूषन्ते

अपूर्णभूत [मैंने होनाचाहा वा चाहताथा]

उ०	अबुभूषम्	अबुभूषाव	अबुभूषाम	अबुभूषे	अबुभूषावहि	अबुभूषामहि

उ०	बुभूपितास्मि	बुभूपितास्वः	बुभूपितास्मः	बुभूपिताहे	बुभूपितास्वहे	बुभूपितास्महे
म०	बुभूपितासि	बुभूपितास्थः	बुभूपितास्थ	बुभूपितासे	बुभूपितासाथे	बुभूपिताध्वे
अ०	बुभूपिता	बुभूपितारौ	बुभूपितारः	बुभूपिता	बुभूपितारौ	बुभूपितारः

द्वितीय भविष्यत [मैं हुआ चाहूंगा]

उ०	बुभूपिष्यामि	बुभूपिष्यावः	बुभूपिष्यामः	बुभूपिष्ये	बुभूपिष्यावहे	बुभूपिष्यामहे
म०	बुभूपिष्यसि	बुभूपिष्यथः	बुभूपिष्यथ	बुभूपिष्यसे	बुभूपिष्येथे	बुभूपिष्यध्वे
अ०	बुभूपिष्यति	बुभूपिष्यतः	बुभूपिष्यन्ति	बुभूपिष्यते	बुभूपिष्येते	बुभूपिष्यन्ते

अनियतभूत [मैंने हुआ चाहा]

उ०	अबुभूपिषम्	अबुभूपिष्व	अबुभूपिष्म	अबुभूपिपि	अबुभूपिष्वहि	अबुभूपिष्महि
म०	अबुभूपीः	अबुभूपिष्टम्	अबुभूपिष्ट	अबुभूपिष्ठाः	अबुभूपिषाथाम्	अबुभूपिध्वम्
अ०	अबुभूपीत्	अबुभूपिष्टाम्	अबुभूपिषुः	अबुभूपिष्ट	अबुभूपिषाताम्	अबुभूपिषत

आशीर्वादवाचक (मैं हुआ चाहूं)

उ०	बुभूष्यासम्	बुभूष्यास्व	बुभूष्यास्म	बुभूपिषीय	बुभूपिषीवहि	बुभूपिषीमहि

अपूर्णभूत (मैं हुआ करता था वा मैं हुआ किया

उ०	अबोभूये	अबोभूयावहि	अबोभूयामहि
म०	अबोभूयथाः	अबोभूयेथाम्	अबोभूयध्वम्
अ०	अबोभूयत	अबोभूयेताम्	अबोभूयन्त

शक्त्यर्थ[मैं हुआकरूं वा बार२ होऊं इत्यादि)

उ०	बोभूयेय	बोभूयेवहि	बोभूयेमहि
म०	बोभूयेथाः	बोभूयेयाथाम्	बोभूयेध्वम्
अ०	बोभूयेत	बोभूयेयाताम्	बोभूयेरन्

अनुमत्यर्थ [मैं हुआ करूं वा बार२ होऊं]

उ०	बोभूयै	बोभूयावहै	बोभूयामहै
म०	बोभूयस्व	बोभूयेथाम्	बोभूयध्वम्
अ०	बोभूयताम्	बोभूयेताम्	बोभूयन्ताम्

पूर्णभूत [मैं हुआ किया वा हुआ किया हूं]

उ०	बोभूयाञ्चक्रे	बोभूयाञ्चकृवहे	बोभूयाञ्चकृमहे
म०	बोभूयाञ्चकृषे	बोभूयाञ्चक्राथे	बोभूयाञ्चकृढ्वे
अ०	बोभूयाञ्चक्रे	बोभूयाञ्चक्राते	बोभूयाञ्चक्रिरे

प्रथमभविष्यत [मैं हुआ करूंगा वा बार२ होऊंग

उ०	बोभूयिताहे	बोभूयितास्वहे	बोभूयितास्महे

बोभूविथ	बोभुवथुः वा बोभूवथुः	बोभुव वा बोभूव
बोभाव वा बोभूव	बोभुवतुः वा बोभूवतुः	बोभुवुः वा बोभूवुः

प भविष्यत [मैं हुआ करूंगा वा बार२ होऊंगा]

बोभवितास्मि	बोभवितास्वः	बोभवितास्मः
बोभवितासि	बोभवितास्थः	बोभवितास्थ
बोभविता	बोभवितारौ	बोभवितारः

ाविभविष्यत (मैं हुआ करूंगा वा बार२ होऊंगा)

बोभविष्यामि	बोभविष्यावः	बोभविष्यामः
बोभविष्यसि	बोभविष्यथः	बोभविष्यथ
बोभविष्यति	बोभविष्यतः	बोभविष्यन्ति

अनियतभूत [मैं हुआ किया वा बार२ हुआ]

अबोभूवम्	अबोभूव	अबोभूम
अबोभूः	अबोभूतम्	अबोभूत
अबोभूत्	अबोभूताम्	अबोभूवन्
वा	वा	वा
अबोभाविषम्	अबोभाविष्व	अबोभाविष्म
अबोभावीः	अबोभाविष्टम्	अबोभाविष्ट
अबोभावीत्	अबोभाविष्टाम्	अबोभाविषुः

परस्मैपद (५१४वां सूत्र देखो)

वर्तमान [मैं हुआ करता हूं वा मैं वार वार होता हूं]

उ०	बोभवीमि वा बोभोमि	बोभूवः	बोभूमः
म०	बोभवीषि वा बोभोषि	बोभूथः	बोभूथ
अ०	बोभवीति वा बोभोति	बोभूतः	बोभुवति

अपूर्णभूत [मैं हुआ करता था वा मैं हुआ किया]

उ०	अबोभवम्	अबोभूव	अबोभूम
म०	अबोभवीः वा अबोभोः	अबोभूतम्	अबोभूत
अ०	अबोभवीत् वा अबोभोत्	अबोभूताम्	अबोभवुः

शक्त्यर्थ (मैं हुआ करूं वा वार२ होऊं इत्यादि)

उ०	बोभूयाम्	बोभूयाव	बोभूयाम
म०	बोभूयाः	बोभूयातम्	बोभूयात
अ०	बोभूयात्	बोभूयाताम्	बोभूयुः

अनुमत्यर्थ [मैं हुआ करूं वा वार२ होऊं]

उ०	बोभवानि	बोभवाव	बोभवाम
म०	बोभूहि	बोभूतम्	बोभूत
अ०	बोभवीतु वा बोभोतु	बोभूताम्	बोभुवतु

पूर्णभूत (मैं हुआ किया वा हुआ किया हूं)

उ०	बोभुवाम्बभूव इत्यादि	बोभुवाम्बभूविव इत्यादि	बोभुवाम्बभूविम इत्यादि
	वा	वा	वा
उ०	बोभाव वा बोभूव	बोभुविव वा बोभूविव	बोभुविम वा बोभूविम

आशीर्वादवाचक (मैं हुआ करूं वा बार२ होऊं

उ०	बोभूयासम्	बोभूयास्व	बोभूयास्म
म०	बोभूयाः	बोभूयास्तम्	बोभूयास्त
अ०	बोभूयात्	बोभूयास्ताम्	बोभूयासुः

आशंसार्थ [मैं हुआ करता वा बार२ होता इत्यादि

उ०	अबोभविष्यम्	अबोभविष्याव	अबोभविष्याम
म०	अबोभविष्यः	अबोभविष्यतम्	अबोभविष्यत
अ०	अबोभविष्यत्	अबोभविष्यताम्	अबोभविष्यन्

७०८वां सूत्र

मूल हन् (मार) (३२३ वां और ६५२ वां सूत्र देखो) ॥ (अधिकार्थं परस्मैपद मारा करना) ॥ वर्तमान जङ्घन्मि वा जङ्घनीमि जङ्घंसि वा जङ्घनीषि जङ्घन्ति वा जङ्घनीति । जङ्घन्वः जङ्घथः जङ्घतः । जङ्घन्मः जङ्घथ जङ्घनति वा ... ति ॥ अपूर्णभूत अजङ्घनम् अजङ्घन् वा अजङ्घनीः अजङ्घन् वा अजङ्घनीत् । ... ङ्घन्व अजङ्घनम् अजङ्घताम् । अजङ्घन्म अजङ्घत अजङ्घनुः वा अज... ॥ शक्त्यर्थे जङ्घन्याम् ॥ अनुमत्यर्थे जङ्घनानि जंघहि जङ्घन्तु वा जङ्घनीतु ॥ जङ्घनाव जङ्घतम् जङ्घताम् । जङ्घनाम जङ्घत जङ्घनतु वा जं... ॥ पूर्णभूत जङ्घनाञ्चकार वा जङ्घनाञ्चकार इत्यादि इत्यादि

७०९वां सूत्र

मूल गम् (जा ६०२रा और २७०वां सूत्र देखो) ॥ अधिक० परस्मैपद (जा... करना) ॥ वर्तमान जङ्गन्मि वा जङ्गमीमि जङ्गंसि वा जङ्गमीषि जङ्गन्ति वा जङ्गमीति । जङ्गन्वः जङ्गथः जङ्गतः । जङ्गन्मः जङ्गथ जङ्गमति वा जंग्मति ॥ अपूर्णभूत अजङ्गमम् अजङ्गन् वा अजङ्गमीः अजङ्गन् वा अजङ्गमीत् । अजङ्गन्व अजङ्गतम् अज...

वे हैं जिनकी उत्पत्ति थोड़ी जानपड़ती है तीसरी भांति के वे हैं जो क्रियाविशेषण सम्बन्धी प्रत्ययों से बनते हैं चौथी भांति के वे हैं जो क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्गों से बनते हैं

क्रियाविशेषण जो संज्ञाओं की विभक्तियों और अप्रसिद्ध शब्दों से बनते हैं

७१३ वां सूत्र

बहुत से विशेषणों के कर्मवाचक नपुंसक जैसे

सत्यम् (ठीक) बहु (बहुत) शीघ्रम् क्षिप्रम् (झटपट) युक्तम् (ठीक) समीपम् (पास) ध्रुवम् (निस्सन्देह) लघु (हलकाई से) निर्भरम् अत्यन्तम् गाढम् भृशम् (अत्यन्त) अवश्यम् (निस्सन्देह) नित्यम् (सदा) चिरम् (दीर्घ काल तक) बलवत् (बल से वा बलकरके) भूयः (फिर वा दूसरी बार) (११८४वां सूत्र देखो) केवलम् (अकेला वा आपही) बाढम् (बहुत अच्छा)

१ ली शाखा

कई सर्वनामों के कर्मवाचक नपुंसक जैसे तत् (इसलिए तब) यत् (जिसलिए जब) तावत् (तबतक) यावत् (जबतक) किम् (क्या)

२ री शाखा

कई संज्ञाओं और अप्रसिद्ध शब्दों के कर्मवाचक नपुंसक जैसे रहः (छिपे छिपे) कामम् (चाहके) स्वयम् (आप से) नाम (अर्थात वा नाम लेके) वारं वारम् (लगातार) चिरम् (बहुत काल से) सुखम् (सुख से) साम्प्रतम् (अब) नक्तम् (रात को) नक्तंसे) सायम् (सांझको) मिश्र पिछला शब्द भी समास कर) की अपर्वतनीय गुणक्रिया होगा

७१४वां सूत्र

संज्ञाओं सर्वनामों और अप्रसिद्ध शब्दों के

७ वां अध्याय

अवर्तनीय शब्द

७१२वां सूत्र

संस्कृत में कई शब्द ऐसे हैं जो संज्ञाओं के सदृश केवल एक विभक्ति में अ
हैं सो अव्यय अर्थात् अवर्तनीय कहेजासकते हैं जैसे अस्तम् (अस्त वा सूर्य
इत्यादि का छिपना) अस्ति (वुह जो है वा होना) ओम् (एक पवित्र शब्द
है) स्वनः (तृप्ति भोजन) नमः (नमस्कार) नास्ति (वुह जो नहीं है वा नहीं
होना) बाद्रि वा वदि (अंधेरा पक्ष) भुवर् (आकाश) भूर् (पृथ्वी) शम् (चैन
संवत् (वर्ष) सुदि वा शुदि (उजेला पक्ष) स्वधा (एक शब्द है जो पित्रों को
नीं देने में आता है) स्वर् (आकाश) स्वस्ति (प्रणाम) (पा० १, १, ३७ स
रादि गण देखो) दूसरे ७१३ वें सूत्र से ७१७ वें सूत्र तक बताएजाएंगे ॥

क्रिया विशेषण

१ ली शाखा

क्रिया विशेषण (निपात) संज्ञाओं और क्रियाओं के सदृश दो प्रकार के हैं
अमिश्रित और मिश्रित मिश्रित आगे आनेवाले अध्याय में मिश्रित शब्दों के सा
थ लिखे जाएंगे अमिश्रित क्रियाविशेषण चार भांति के हैं पहली भांति के वे हैं
जो संज्ञाओं की विभक्तियों और अप्रसिद्ध शब्दों से बनाएजाते हैं दूसरी भांति के

करणवाचक

जैसे धर्मेण (धर्म से) दक्षिणेन (दक्षिण से वा दाएं से) उत्तरेण (उत्तर से वा बाएं से) व्यतिरेकेण (विना) उच्चैः (ऊंचे से) नीचैः (नीचे से) शनैः वा शनैः (हौले हौले) तेन (तिस से वा तिस लिए) येन (जिस से वा जिस लिए) अन्तरा वा अन्तरेण (विना) क्षणेन (तुर्त) चिरेण (बहुत काल से वा तक) अचिरेण (थोड़े काल से वा में) अशेषेण (सम्पूर्ण) दिवा (दिन में) दिष्ट्या (अच्छे भाग से) सहसा अञ्जसा (झटपट) अधुना (अब) विहायसा (आकाश मार्ग से) [illegible] (पहले आगे) क्षमा (पृथ्वी पर)

१ ली शाखा

सम्प्रदानवाचक बहुत थोड़े आते हैं
जैसे चिराय (बहुत काल के लिए) चिररात्राय (रातों तक) अर्थाय (लिए)

७१५वां सूत्र

संज्ञाओं सर्वनामों और अप्रसिद्ध शब्दों के अपादानवाचक जैसे बलात् (बल से वा बल के साथ) हर्षात् (हर्ष से) दूरात् (दूर से) तस्मात् (तिससे वा तिस लिए) कस्मात् (किससे वा किस लिए) अकस्मात् (अचानक) उत्तरात् (उत्तर से) चिरात् (बहुत काल से वा तक) पश्चात् (पीछे वा पीछे से) तत्क्षणात् (तिस समय में) समन्तात् (सब ओर से)

७१६वां सूत्र

संज्ञाओं और अप्रसिद्ध शब्दों के अधिकरणवाचक जैसे

रात्रौ (रात में) दूरे (दूर में) प्रभाते (प्रभात में) प्राह्णे (मध्यान्ह पहले) [illegible] ([illegible] में) अग्रे (सामने) एकपदे (एकसाथ) सपदि (तत्काल) [illegible] वा [illegible]) अन्तरे (भीतर) दक्षिणे (दक्षिण में) समीपे वा अभ्याशे (समीप में वा पास) एकान्ते (एकान्त में) मासान्ते (मास में वा मास को) [illegible] ([illegible] में)

दूसरे क्रियाविशेषण और निपात जिनकी उत्पत्ति थोड़ी जानपड़ती है

७१७वां सूत्र

स्वीकारतासूचक जैसे नूनम्, खलु, किल, एव, अङ्ग (यथार्थ में) अथकिम् (निस्सन्देह)

१ ली शाखा

अस्वीकारतासूचक जैसे न नो नहि (नहीं) मा मास्म (मत) जैसे मा कुरु मा कार्षीः (मत कर) (८८९ वां सूत्र देखो)

२ री शाखा

प्रश्नसूचक जैसे किम् किन्नु कच्चित् नु ननु किमु किमुत (क्या)

३ री शाखा

सदृशतासूचक जैसे इव (अनुसार या जैसे) एव एवम् (ऐसा) किम्पुनर् या किम्पुनः (क्या, और क्या) तथैव (तथा + एव) (वैसेही)

४ थी शाखा

प्रमाणसूचक जैसे अतीव (बहुत या बहुत ही) ईषत् (थोड़ा) (७२१ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

५ वीं शाखा

प्रकारसूचक जैसे इति एवम् (ऐसा) पुनर् या पुनः (फिर) प्रायः (बहुधा) नाना (पृथक् पृथक्) पृथक् (अलग अलग) मृषा मिथ्या (झूठ या असत्य) वृथा मुधा (निष्फल) अलम् (बहुत) झटिति आशु सपदि तूष्णीम् (चुप चाप या चुपचुपाते) मिथः (आपस में या मिलके)

६ ठी शाखा

समयसूचक जैसे अद्य (आज अब) श्वः (कल आनेवाला) ह्यः (कल बीता)

आ) परश्वः (परसों आनेवाला) संप्रति (अब) पुरा (पहले) पुरः पुरस्तात् प्राक् (आगे पहले) युगपद् (एकसाथ) सद्यः (ततकाल) प्रेत्य (मरनेपर वा मरके) परम् (पीछे) जातु (सदा) न जातु [सदा नहीं] अन्येद्युः परेद्युः (दूसरे दिन) सकृत् (एकसमय) असकृत् पुनर् मुहुः (फिरके लगातार)

वर्णन

स्म वर्तमानकाल के साथ आके व्यतीतकाल का अर्थ देताहै (२५१ वें सूत्र की २ री शाखा और ८७८ वां सूत्र देखो)

७ वीं शाखा

स्थानसूचक जैसे इह (यिहां) क्व (कहां) बहिः (बाहर)

८ वीं शाखा

सन्देहसूचक जैसे स्विद् किंस्विद् अपिनाम उत उताहो उताहोस्विद् आहो स्विद् (कदाचित) इत्यादि

९ वीं शाखा

अपि (भी) एव (ही) ह (ही) शब्दों के पीछे उनका अर्थ पलटने को अथवा निश्चय दिखाने को आते हैं ऐसेही इद् ईम् च वेद में आते हैं

वर्णन

ऊपरवाले शब्दों में थोड़े यथार्थ में समुच्चयसूचक हैं (७२७ वां सूत्र देखो)

क्रिया विशेषण सम्बन्धी प्रत्यय

७१८ वां सूत्र

चिद् अपि और चन प्रश्नसूचक क्रियाविशेषणों के पीछे लगने से अनिश्चित समयसूचक और स्थानसूचक क्रियाविशेषण बनासक्तेहैं जैसे

कदा (कब) से कदाचिद् कदापि और कदाचन (कभी) कुत्र और क्व (कहां) से कुत्रचिद् कुत्रापि क्वचिद् क्वापि (कहीं) कुतः (कहीं) से कुतश्चिद्

और कुत्रश्चन (कहीं) से कति (कितने) से कतिचिद् (थोड़े) कर्हि (कब) से कर्हिचित् (कभी) कथम् (कैसा) से कथमपि कथञ्चन (कैसेही) (२२८ वां और २३० वां सूत्र देखो).

१ ली शाखा

अपि बहुधा किसी शब्द के पीछे आके (भी) का अर्थ देता है परन्तु सम्पासम्बन्धियों के पीछे प्रत्येक या बहुवचन या बहुवचन ग्नेत (ही) का अर्थ देता है जैसे त्रयोऽपि (प्रत्येक तीन या तीनों या तीनोंही) सर्वेऽपि (सब ही या सबके सब)

७१९ वां सूत्र

तः प्रत्येक नाम के अपूर्णपद और थोड़े सर्वनामों में लगके क्रियाविशेषण बनाता है जैसे

यत्न से यत्नतः (यत्न से वा यत्न के साथ) आदि से आदितः (आदि से वा आदि के साथ) सर्वनाम तद् के शुद्ध अपूर्णपद त से ततः (वहां से वा तब तिसपर वा तिसलिए) ऐसेही यतः (जहां से जिससे जिसलिए) अतः इतः अमुतः (यहां से इससे इस पर वा इसलिए)

वर्णन

देखो सर्वनामों के पीछे तः बढ़ाते हैं तो तद् के पलटे अपूर्णपद त एतद् के पलटे अ इदम् के पलटे इ अदस् के पलटे अमु यद् के पलटे य और किम् के पलटे कु आते हैं

१ ली शाखा

पिछ प्रत्यय बहुधा (से) का अर्थ देता है और बहुधा पांचवीं विभक्ति के अर्थ में आता है जैसे मत्तः (मुझ) से त्वत्तः * (तुझ) से पितृतः (पिता) से शत्रुतः (शत्रु) से

टीका

* ये रूप बहुधा ५ वीं विभक्ति के पलटे पुरुषसम्बन्धी सर्वनामों के पलटे आते हैं.

और उनके उस विभक्ति वाले शुद्ध रूप मत् और त्वत् थोड़े आते हैं

२ री शाखा

परन्तु यिह कभी२ अनियत रीति से दूसरे अर्थ भी देताहै
जैसे पृष्ठतः (पीठपीछे) अन्यतः (और कहीं) प्रथमतः (पहले वा पहले पहल) इतस्ततः (इधर उधर) समन्ततः (चारों ओर) समीपतः (पास से वा पास) पुरतः अग्रतः (आगे सामने) अभितः (पास ही वा पास से) विभवतः (धूमधाम से)

३ री शाखा

तात् पीछे आके बहुधा स्थान वा प्रान्त का अर्थ देता है
जैसे अधः से अधस्तात् (नीचे से वा नीचे) उपरि जो उपरिस् होजाता है] उपरिष्टात् [ऊपर से वा ऊपर [८४ वें सूत्र का ५ वां प्रत्यय देखो]

७२०वां सूत्र

त्र सर्वनाम विशेषण इत्यादि के अपूर्णपदों के पीछे आके ७वीं विभक्ति के अर्थ में स्थानसूचक क्रियाविशेषण बनाताहै
जैसे अत्र (यहां) तत्र (तहां) कुत्र (कहां) यत्र (यहां) सर्वत्र (सब ठौर) अन्यत्र (और स्थानमें) एकत्र (एक स्थान में) बहुत्र (बहुत स्थानों में) अमुत्र (वहां वा परलोक में

१ ली शाखा

त्रा जैसे देवत्रा (देवताओं में) मनुष्यत्रा (मनुष्यों में) (पा० ५, ४, ५६) बहुत्रा (बहुतों में)

७२१ वां सूत्र

था और थम् प्रकारसूचक क्रियाविशेषण बनाते हैं
जैसे तथा (वैसे वा उस प्रकार से) यथा (जैसे वा जिसप्रकार से) सर्वथा (सब प्रकार से) अन्यथा (और प्रकार से) कथम् (किस प्रकार से वा कैसे) इत्थम् (इस प्रकार से वा ऐसे)

७२२ वां सूत्र

दा हिं नीम् सर्वनाम् इत्यादि के पीछे आने से स्थानसूचक क्रियाविशेषण बनाते हैं जैसे

तदा (तब) यदा (जब) कदा (कब) एकदा (एकसमय) नित्यदा (सदा) सर्वदा, सदा (प्रत्येक समय) नहिं तदानीम् (तब) इदानीम् (अब)

७२३ वां सूत्र

धा संख्यासम्बन्धियों के पीछे आके विभागसूचक क्रिया विशेषण बनाता है जैसे

एकधा (एक भाग में) द्विधा (दो भाग में) षोधा (छः भाग में) शतधा (सौ भाग में) सहस्रधा (सहस्र भाग में) बहुधा वा अनेकधा (बहुत भागों में वा कई भागों में)

१ ली शाखा

कृत्वः जब पञ्च इत्यादि संख्यासम्बन्धियों के पीछे आता है (जैसा २१५ वें सूत्र में बताया है) तब समय का अर्थ देता है जैसे सकृत् (एकसमय) सकृत्वः (इस समय) का अपभ्रंश जानपड़ता है और द्वि त्रि के साथ केवल स् (:) आता है सो चतुर् के पीछे गिरजाता है जैसे द्विः (दो समय) त्रिः (तीन समय) चतुः (चार समय)

७२४वां सूत्र

वत् जिस को वति कहते हैं प्रत्येक संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे आता है और सदृशता वा समानतासूचक क्रियाविशेषण बनाताहै (१२०वां सूत्र देखो) जैसे सूर्य से सूर्यवत् (सूरज सा सूरज के सदृश) पूर्व पूर्ववत् (पहले सा वा पहले के सदृश) यिह दूसरी विभक्ति वाले शब्द से मिलके भी आता है

१ ली शाखा

यिह प्रत्यय अनुसार का भी अर्थ देता है जैसे विधिवत् (विधि के अनुसार) प्रयोजनवत् (प्रयोजन के अनुसार) यिह क्रियाविशेषणों के साथ भी आता है

जैसे यथावत् (जैसा के सदृश वा अनुसार अर्थात् ठीक)

७२५वां सूत्र

शस् (श) पीछे आने से अनुमानसूचक इत्यादि क्रियाविशेषण बनते हैं जैसे बहुशः (बहुत २) अल्पशः (थोड़ा २) सर्वशः (सम्पूर्ण) एकशः (एक २ पृथक २) शतसहस्रशः (सौ २ सहस्र २) क्रमशः (क्रम २ से) मुख्यशः (मुख्य २) पादशः (पाद २) द्विशः (दो २) त्रिशः (तीन २) अनेकशः (अनेक २) अक्षरशः (अक्षर २) तावच्छः (तितना २) कतशः (कितना २)

१ ली शाखा

सात् कृ अस् भू से कोई मूल साथ लेके संज्ञाओं के पीछे आता है और उनके अर्थ की पूरी अवस्था दिखाता है जैसे अग्निसात् (आग सा) (७८१ वां सूत्र और ७० वें सूत्र की १ वीं शाखा देखो)

क्रियाविशेषण सम्बन्धी उपसर्ग

७२६ वां सूत्र

अ संज्ञाओं और गुणक्रियाओं के पहले आता है और उनके अर्थ को पलट देताहै जैसे शक्य (शक्ति रखनेवाला) से अशक्य (नहीं शक्ति रखनेवाला) स्पृष्ट (छूताहुआ) से अस्पृशत् (नहीं छूताहुआ) कृत्वा (करके) से अकृत्वा (नहीं जो कोई शब्द आदि में स्वर रखताहैतो इस अ के पलटे इसी अर्थ में अन् है जैसे अन्त से अनन्त (अन्त रहित)

१ ली शाखा

अति (बहुत) का अर्थ देता है जैसे अतिमहत् (बहुत बड़ा)

२ री शाखा

आ न्यूनता दिखाता है जैसे आपाण्डु (कुछ एक पीला वा पीलासा) ईषत् भी इसी अर्थ में आता है जैसे ईषदुष्ण (कुछ एक तत्ता वा तत्ता स

३ री शाखा

का वा कु शब्दों के पहले आके बुरा का अर्थ देते हैं जैसे कापुरुष (बुरा पुरुष) अर्थात् डरपोक) कुरूप (बुरे रूप वाला)

४ थी शाखा

दुस् वा दुर् पहले आते हैं और (बुरा वा कठिन) का अर्थ देते हैं जैसे दुष्कृत (बुरा किया हुआ) (७२ वां सूत्र देखो । दुर्भेद्य (कठिन टूटनेवाला) यिह सु के प्रतिकूल है

५ वीं शाखा

निस् वा निर् और वि संज्ञाओं के पहले अ के सदृश आके (रहित वा हीन) का अर्थ देते हैं जैसे निर्बल (बल रहित वा बलहीन) निष्फल (फल रहित वा फल हीन) (७२ वां सूत्र देखो) विशस्त्र (शस्त्र रहित वा शस्त्र हीन) परन्तु ये गुनक्रियाओं के पहले नहीं आते

६ ठी शाखा

सु पहले आके (अच्छा वा सहज) का अर्थ देता है जैसे सुकृत (अच्छा किया हुआ) सुभेद्य (सहज टूटनेवाला) यिह दुस् के प्रतिकूल आताहै और अति के पहले आके (बहुत) का भी अर्थ देताहै जैसे सुमहत् (बहुत बड़ा)

समुच्चयसूचक

योगिक

७२० वां सूत्र

च (और वा भी) का अर्थ देता है परन्तु वाक्य के आदि में कभी नहीं आता और जिस शब्द का योगिक होताहै उसके पीछे आताहै फिर तो (च और एव) से बनाहै (भी) का अर्थ देताहै और निदाक्य में बहुत आताहै

१ ली शाखा

जैसे यथावत् (जैसा के सदृश वा अनुसार अर्थात् ठीक)

७२५वां सूत्र

शस् (श) पीछे आने से अनुमानसूचक इत्यादि क्रियाविशेषण बनते हैं जैसे बहुशः (बहुत २) अल्पशः (थोड़ा २) सर्वशः (सम्पूर्ण) एकशः (एक २ पृथक २) शतसहस्रशः (सौ २ सहस्र २) क्रमशः (क्रम २ से) मुख्यशः (मुख्य २) पादशः (पाद २) द्विशः (दो २) त्रिशः (तीन २) अनेकशः (अनेक २) अक्षरशः (अक्षर २) तावच्छः (तितना २) कतशः (कितना २)

१ ली शाखा

सात् छ अस् भू से कोई मूल साथ लेके संज्ञाओं के पीछे आता है और उनके अर्थ की पूरी अवस्था दिखाता है जैसे अग्निसात् (आग सा) (७८९ वां सूत्र और ७० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

क्रियाविशेषण सम्बन्धी उपसर्ग

७२६ वां सूत्र

अ संज्ञाओं और गुणक्रियाओं के पहले आता है और उनके अर्थ को उलट देता है जैसे शक्य (शक्ति रखनेवाला) से अशक्य (नहीं शक्ति रखनेवाला) स्पृ छूताहुआ) से अस्पृशत् (नहीं छूताहुआ) कृत्वा (करके) से अकृत्वा (नहीं क जो कोई शब्द आदि में स्वर रखताहैतो इस अ के पलटे इसी अर्थ में अन् अ है जैसे अन्त से अनन्त (अन्त रहित)

१ ली शाखा

अति (बहुत) का अर्थ देता है जैसे अतिमहत् (बहुत बड़ा)

२ री शाखा

आ न्यूनता दिखाता है जैसे आपाण्डु (कुछ एक पीला वा पीलासा) ईषत् भी इसी अर्थ में आता है जैसे ईषदुष्ण (कुछ एक तत्ता वा तत्ता सा

३ री शाखा

का वा कु शब्दों के पहले आके बुरा का अर्थ देते हैं जैसे कापुरुष (बुरा पुरु
अर्थात् डरपोक) कुरूप (बुरे रूप वाला)

४ थी शाखा

दुस् वा दुर् पहले आते हैं और (बुरा वा कठिन) का अर्थ देते है जैसे दुष्कृ
(बुरा कियाहुआ) (७२ वां सूत्र देखो) दुर्भेद्य (कठिन टूटनेवाला) विरुद्ध सु के प्र
तिकूल है

५ वीं शाखा

निस् वा निर् और वि संज्ञाओं के पहले अक महता आके (रहित वा हीन)
का अर्थ देते हैं जैसे निर्बल (बल रहित वा बलहीन) निष्फल (फल रहित वा फ
ल हीन) (७२ वां सूत्र देखो) विशस्त्र (शस्त्र रहित वा शस्त्र हीन) परन्तु ये गुण-
क्रियाओं के पहले नहीं आते

६ ठी शाखा

सु पहले आके (अच्छा वा सहज) का अर्थ देता है जैसे सुकृत (अच्छा कि
याहुआ) सुभेद्य (सहज टूटनेवाला) विरुद्ध दुस् के प्रतिकूल आता है और अति
के पहले आके (बहुत) का भी अर्थ देता है जैसे सुमहत् (बहुत बड़ा)

समुच्चयसूचक

यौगिक

७३ वां सूत्र

च (और वा भी) का अर्थ देता है परन्तु वाक्य के आदि में कभी नहीं आ
ता और जिस शब्द का यौगिक होता है उसके पीछे आता है फिर तो (च
और एव) से बना है (भी का अर्थ देता है और निश्चय से पहले आता है

१ ली शाखा

उत (और वा भी) का अर्थ देताहै और कभी योगिक होके आत
सन्देहसूचक वा प्रश्नसूचक होके आता है

२ री शाखा

तथा (ऐसा वैसा) (७२१ वां सूत्र देखो) बहुधा च के पलटे (
में आताहै और तब जिसको मिलाताहै उसके पीछे आताहै

३ री शाखा

अथ (अब और) अथो (तब) आरम्भसूचक हैं बहुधा वाक्य
आदि में आतेहैं अथ इति के प्रतिकूल है जो वार्ता के अन्त में आत

४ थी शाखा

हि (निमित्त वा लिए) प्रेरणार्थक समुच्चयसूचक है तथा च के स
पीछे आताहै और वाक्य में कभी पहले नहीं आता

५ वीं शाखा

यदि चेद् दोनों (जो का अर्थ देते हैं और आशंसार्थ समुच्चयसूच
सूचक कहेजाते हैं

६ ठी शाखा

ततः (तिसपर तब) (७१९ वां सूत्र देखो) तत् (तब) अन्यच
ऽच परञ्च अपिच (फिर वरन) योगिक समुच्चयसूचक हैं वार्ता में व

अयोगिक

७२८ वां सूत्र

वा (वा अथवा) (विकल्प) का अर्थ देताहै और अपने
ताहै वाक्य में कभी पहले नहीं आताहै

१ ली शाखा

तु किन्तु (परन्तु) का अर्थ देते हैं परन्तु तु अपने शब्द के पी

यद्यपि [यदि और अपि से बना है] तथापि (तथा और अपि से बना है) पहला (जो) का और दूसरा (तोभी) का अर्थ देताहै परन्तु तथापि कभी निश्चयसूचक का अर्थ भी देताहै अथवा किं वा (नहीं तो) नवा (नहींतो) यदिवा (नहीं तो) का अर्थ देते हैं

३ री शाखा

अथवा पहले विचार की शुद्धता के लिये आता है और तब (तोभी या परन्तु) का अर्थ देता है

४ थी शाखा

स्म, ह, तु, वै (पाद पूरक या भरती) के शब्द हैं तो पद्य में पाद की पूर्णता के लिए आया करते हैं

संयोजक उपसर्ग

७२९ वां सूत्र

संयोजक उपसर्ग अनुमान से बीस हैं [७८३वां सूत्र देखो] परन्तु अब की संस्कृत भाषा में उनको सब उपसर्ग कहतेहैं सो क्रियाओं के अर्थ की प्रकृति बताते हैं और जब क्रियासम्बन्धी निमूनों के अर्थ की प्रकृति बतातेहैं तब गति कहेजातेहैं अनुमान से दस उपसर्ग संज्ञाओं की विभक्तियों के साथ अलग आसकते हैं सो कर्म - प्रवचनीय कहेजाते हैं वे ये हैं आ, प्रति, अनु अति अधि, अभि, परि, अप, अपि, उप, परन्तु इनमें पहले तीन अच्छी संस्कृत भाषा में अलग होसकतेहैं निपात कहे जातेहैं

७३० वां सूत्र

आ बहुधा ५वीं विभक्ति के साथ आंक (तक) का अर्थ देता है जैसे आ समुद्रात् (समुद्र तक) आ मनोः (मनु तक) आ मणिबन्धनात् (मणि बन्धन तक) आ मृत्योः (मृत्यु तक) आव्रतस्य समापनात् (व्रत के अन्त तक) और दूसरी विभक्ति के साथ थोड़ा आता है जैसे शतम् आजातीः (सौ जन्म तक)

१ ली शाखा

आ कभी २ (से) का अर्थ देता है जैसे आ मूलात्. (जड़ से) आ प्रथम दर्शनात्. (पहले देखने से) आ जन्मनः (जन्म से)

२ री शाखा

यिह दूसरी विभक्ति के नपुन्सकलिङ्ग वाले किसी शब्द के साथ मिलके अव्ययीभावः भी बनाता है (७६० वां सूत्र देखो) जैसे आमेखलम् (मेखला तक)
यहां मेखलम् मेखलाम् के पलटे आया है

३ री शाखा

प्रति चहुधा प्रत्यय है दूसरी विभक्ति के साथ आके (ओर, पर, सामने) आदि अर्थ देता है जैसे गङ्गां प्रति (गङ्गा पर या गङ्गा की ओर) धर्मप्रति (ध
) शत्रुं प्रति (शत्रु पर) मां प्रति (मुझ पर या मुझ से वा मेरे लिये) जब बु
काने का अर्थ देता है तब संज्ञा को पांचवीं विभक्ति में रखना है

४ थी शाखा

अनु दूसरी विभक्ति के साथ और कभी पांचवीं वा छठी विभक्ति के साथ के पीछे का अर्थ देता है जैसे गङ्गाया अनु (गङ्गा के पीछे) तदनु वा ततोऽनु
सके पीछे)

५ वीं शाखा

प्रति, और, कभी अनु, और अभि २री विभक्ति के पीछे आके प्रत्येक का देते हैं जैसे वृक्षमनु (वृक्ष २ वा प्रत्येक वृक्ष) ये अव्ययीभावः बनाने के लिये आते हैं जैसे प्रतिवत्सरम् वा अनुवत्सरम् (प्रत्येक वर्ष) (७६०वां सूत्र देखो)

६ ठी शाखा

अति, अभि, परि २री विभक्ति चाहते हैं अधि ७वीं और २ री विभक्ति हताहै अप और परि (छोड़के वा उपरान्त) के अर्थ में ५वीं विभक्ति चाहते हैं प ७ वीं और २ री विभक्ति चाहता है परन्तु अच्छी संस्कृत भाषा में ऐसे शब्द

त्तरेण (उत्तर को) सम्बन्धवाचक वा कर्मवाचक के साथ । उपरि (ऊपर) सम्बन्ध वाचक वा कर्मवाचक के साथ । यह कभी दुहराया जाता है जैसे उपर्युपरि (ऊपर २)। ऊर्ध्वम् (ऊपर) सम्बन्धवाचक वा कर्मवाचक के साथ। और जब (पीछे वा उधर) का अर्थ देता है तब अपादानवाचक के साथ । ऋते (उपरान्त बिना छोड़के) कर्मवाचक के साथ । और कभी अपादानवाचक के साथ । कारणात् वा कृते (कारण से वा लिए) सम्बन्धवाचक के साथ । दक्षिणात् (दक्षिण को वा मेंधा से) सम्बन्धवाचक के साथ । दक्षिणेन (दक्षिण को वा दहने हाथ को) सम्बन्धवाचक वा कर्मवाचक के साथ । निमित्ते (निमित्त वा लिए) सम्बन्धवाचक के सा । परतः (पीछे) सम्बन्धवाचक के साथ । परम् वा परेण (पीछे वा उधर) अपादानवाचक के साथ । पश्चात् (पीछे) सम्बन्धवाचक वा अपादानवाचक के साथ पारे (पार पार वा उधर) सम्बन्धवाचक के साथ । पुरतः वा पुरः (आगे साम्हने सम्बन्धवाचक के साथ । पूर्वम् (पहले) अपादानवाचक के साथ । और कभी सम्बन्धवाचक वा कर्मवाचक के साथ । प्रभृति (से, वा से, लेके, वा आदि से) अपादानवाचक के साथ । प्राक् (पहले आगे) अपादानवाचक के साथ । और कभी सम्बन्धवाचक वा कर्मवाचक के साथ । मध्ये (बीच में) सम्बन्धवाचक के साथ । बहिः (बाहिर) अपादानवाचक वा सम्बन्धवाचक के साथ । यावत् (जबतक, तक) कभी कर्मवाचक के साथ । विना (विना) करणवाचक वा कर्मवाचक के साथ । और कभी अपादानवाचक के साथ। सकाशम् (पास) सम्बन्धवाचक के साथ । सकाशात् (से वा पास से) सम्बन्धवाचक के साथ । समक्षम् (आंख के साम्हने) सम्बन्धवाचक के साथ । समम् (साथ) करणवाचक के साथ । समीपतः वा समीपम् (पास) सम्बन्धवाचक के साथ । सह (साथ) करणवाचक के साथ । साकम् (साथ) करणवाचक के साथ । साक्षात् (आंखों के साम्हने) सम्बन्धवाचक के साथ । सार्धम् (साथ) करणवाचक के साथ । हेतोः वा हेतौ (लिए निमित्त) सम्बन्धवाचक के साथ ।

अध्याय

मिश्रित शब्द

७३२वाँ सूत्र

संस्कृत में मिश्रित शब्द इतने आते हैं कि उतने किसी दूसरी भाषा में नहीं
ते हैं इसलिए अवश्य है कि जिन सूत्रों से वे बनते हैं उनको सीखें, ऐसा कि
कोई पढ़नेवाला किसी सरल पुस्तक का एक छोटे से छोटा बहुत सीधा वा
नहीं समझ सकेगा। ऊपरवाले अध्याओं में अमिश्रित संज्ञाओं और अमि
याओं और अमिश्रित क्रियाविशेषणों का व्याख्यान लिखा है अब मि
ज्ञाओं और मिश्रित क्रियाओं और मिश्रित क्रियाविशेषणों का व्याख्
या जाता है

१ ली शाखा

देखो इस अध्याय में सदा १ ली विभक्ति में आएगी किसी मिश्रि
में आनेवाला संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद नहीं आएगा और जो किसी
पिछला अङ्ग कोई विशेषण होगा तो १ ली विभक्ति वाला पुल्लिङ्ग स्त्री
नपुंसकलिङ्ग आएगा इस विषय में जो दृष्टान्त दिए हैं सो विशेष
पदों से लिए हैं उनमें कहीं २ भी विभक्तियां भी आती हैं सो जहां की

१ ला प्रकरण

मिश्रित संज्ञाएं

७३४वां सूत्र

पढ़नेवाला अब व्याकरण के उस स्थान पर पहुंचा है जहां संज्ञासम्बन्धी अपूर्ण पद का काम बहुत प्रत्यक्ष जानपड़ता है उसका चिह्न काम ७७ वें सूत्र में आगया है और उसका बनाना ८० वें सूत्र से ८७ वें सूत्र तक समझायाहै

१ ली शाखा

सब मिश्रित नामों में केवल पिछला शब्द ही बर्तने योग्य होताहै और दूसरे अगले शब्द आते हैं सो सब अपूर्ण होते हैं और प्रत्येक वचन का अर्थ देसकते परन्तु ऐसे दृष्टान्त भी दिएजाएंगे जिनमें विभक्ति और वचन के स्वभावसूचक चिह्न मिश्रित शब्द के पहले अंग में बने रहते हैं परन्तु वे निरोध वा सूत्र विरुद्ध गिनेजाते हैं

वर्णन

मिश्रित शब्दों में जो शून्य प्रत्येक शब्द के तले रखाजाएगा सो शब्द के पृथक् अंगों का अन्तर दिखाएगा

७३५ वां सूत्र

व्याकरणियों ने मिश्रित नाम छ प्रकार के लिखे हैं

१ ले प्रकार के

द्वन्द्व कहेजाते हैं सो दो वा अधिक नामों के एकत्र होने से बनते हैं और उन में केवल पिछला नाम यथावस्था द्विवचन बहुवचन वा नपुन्सकलिङ्ग एकव० होजाता है और दूसरे उसके सब पहले आनेवाले नाम अपूर्णपद रहते हैं सो नहीं मिलाए जाते हैं पो योगिक समुच्चयसूचक साथ होने से मिलते हैं और सब एकही विभक्ति में आते हैं जैसे गुरु, शिष्यौ । गुरु और शिष्य । पहले (गुरु शिष्यम्) के । गरुत.

व्याधि.शोकाः (मरण व्याधि और शोक) पल्टे (मरणं व्याधिः शोकश्च । के । पाणि पादम् (हाथ और पांव) पल्टे (पाणिः पादश्च) के

२ रे प्रकार के

तत्-पुरुष कहलाते हैं सो दो नामों से बनते हैं उनमें पहला अपूर्णपद होताहै जो नहीं मिलायाजाताहै तो पहिले से अलग विभक्ति में आताहै जैसे चन्द्र.प्रभा चांदनी) पल्टे (चन्द्रस्य प्रभा) (चन्द्रमा की चमक) के । शस्त्र.कुशलः पु० शस्त्र कुशला स्त्री० शस्त्र.कुशलं न० (शस्त्रों में अच्छा वा अच्छी) पल्टे (शस्त्रेषु कुशलः) के । मणि.भूषितः पु० मणि.भूषिता स्त्री० मणि.भूषितम् न० (मणियों से जड़ा हुआ वा जड़ीहुई) पल्टे (मणिभिर् भूषितः) के

३ रे प्रकार के

कर्म-धारय कहलाते हैं सो विशेषण वा गुणक्रिया और संज्ञा से बनते हैं विशेषण वा गुणक्रिया अपूर्णपद होतेहैं और पहले आते हैं सो जो नहीं मिला तो व्याकरण की रीति से विभक्ति वचन और लिङ्ग में उस संज्ञा से मिलते हैं साधु.जनः (अच्छा मनुष्य) पल्टे (साधुर् जनः) के । सर्व.द्रव्याणि (सब द्र पल्टे (सर्वाणि द्रव्याणि) के

४ थे प्रकार के

द्विगु कहेजाते हैं सो संख्यासम्बन्धी अपूर्णपद और संज्ञा से बनते हैं ऐसे वि करवनवाले समूहवाचक वा विशेषण होजाते हैं जैसे त्रि.गुणम् (तीन गुण) प (त्रयोगुणाः) के । त्रि.गुणः पु० त्रि.गुणा स्त्री० त्रि.गुणम् न० (तीन गुण रखने वा वा वाली)

५ वें प्रकार के

बहु-व्रीहि अर्थात् गुणवाचक मिश्रित कहे जातेहैं सो बहुधा दूसरी संज्ञाओं

गुणवाचक होते हैं और (पा० २, २, २४) के अनुसार दो वा अधिक शब्दों को किसी दूसरे शब्द का गुण दिखाने के लिये मिलाने से बनते हैं जैसे प्राप्तोदको ग्रामः (जल पायाहुआ गांव) पलटे (प्रामम्-उदकं प्राप्तम् (गांव जिस को जल प्राप्त हुआहै) के ॥

छठे प्रकार के

अव्ययी-भावः कहलाते हैं सो कोई उपसर्ग वा अव्यय संज्ञा के पहले आने से बनते हैं पिछला किसी लिङ्ग का हो सदा कर्मवाचक नपुन्सकलिङ्ग का रूप ग्रहण करता है और अवर्तनीय होजाता है

१ली शाखा

देखो इन नामों से कई प्रकार के मिश्रितों के दृष्टान्त अथवा उनके कुछ व्याख्यान पाएजाते हैं जैसे द्वन्द्व (समासः) पहले प्रकार का व्याख्यान है और (और) का अर्थ देता है तत्पुरुष (उसका पुरुष) दूसरे प्रकार का दृष्टान्त है पलटे (तस्य पुरुषः) के कर्मधारयः तीसरे प्रकार का कुछ सन्देहयुक्त व्याख्यान है अर्थात् कर्म धारनेवाला द्विगुः चौथे प्रकार का एक दृष्टान्त है अर्थात् दो गायों के मोल वाला बहुव्रीहिः पांचवें प्रकार का एक दृष्टान्त है अर्थात् (बहुत चावल वाला) अव्ययी-भावः छठे प्रकार का एक दृष्टान्त है अर्थात् (अव्यय के भाववाला) अर्थात् व्यय नहोने का वा वर्तनी नकिएजाने का स्वभाव रखनेवाला

७३६वां सूत्र

परन्तु जानना चाहिये कि ऊपरवाले छः प्रकार के मिश्रित व्याकरणियों की मति के अनुसार केवल चार प्रकार के हैं इसलिए कि ३ रे और ४ थे प्रकारवाले पर्यात् कर्म-धारय और द्विगु तत्पुरुषः के विभाग समझेजाते हैं

वर्णन

देखो पाणिनि (१, २, ४२) के अनुसार कर्म-धारय को तत्पुरुषः समानाधिकरण...

णः लिखता है

ऐसे प्रकारों में पूरी स्पष्टता नहीं रहती और कुछ विरुद्धता पाईजाती है इस लिये इस आशय को एक दूसरी रीति से बताते हैं परन्तु जो नाम इन को व्याकरणियों ने दिए हैं सो नहीं पलटते

७३७वां सूत्र

इन मिश्रित नामों को अमिश्रित मिश्रित या मिश्रित मिश्रित कहते हैं अमिश्रित मिश्रित वे हैं जो अमिश्रितों के मिलने से बनते हैं और मिश्रित मिश्रित वे हैं जो मिश्रितों के मिलने से बनते हैं सो काव्य में बहुत आते हैं और दो तीन प्रकार के मिश्रितों से मिलके एक प्रकार के होजाते हैं

अमिश्रित मिश्रित नाम

७३८वां सूत्र.

इन के ये भाग किये जाते हैं १ ला आधीन वा विभक्ति में आधीन अर्थात् तत्पुरुषः २ रा समुच्चयी वा सम्वाई अर्थात् द्वन्द्व ३ रा व्याख्यानक ४ था निधारक अर्थात् कर्मधारय ४ था संख्यासम्बन्धी वा संगृहीत् अर्थात् द्विगु ५ वां क्रियाविशेषण सम्बन्धी वा अवर्तनीय अर्थात् अव्ययी-भावः ६ ठा अपेक्षापूरक अर्थात् बहु-व्रीहि फिर इस पिछले के अर्थात् अपेक्षापूरक के पांच विभाग किए जाते हैं १ ला आधीन मिश्रित संज्ञा अन्त में रखनेवाले मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप २ रा समुच्चयी वा सम्वायी मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप ३ रा व्याख्यानक वा निधारक मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप ४ था संख्यासम्बन्धी या संगृहीत् मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप ५ वां क्रियाविशेषण सम्बन्धी वा अवर्तनीय मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप

टीका

१ जिस संज्ञा के पहले विशेषण वा गुणकिया आने से बनता है और उस संज्ञा का कुछ व्याख्यान करता है इस लिये वोपदेव ने इस को अपने व्याकरण में र

का अर्थ देताहै परन्तु दूसरे अर्थ भी देसकताहै जैसे गोष्ठी.गतः गोष्ठी.गता गोष्ठी.गतम् (बात में गयाहुआ वा गईहुई अर्थात् लगाहुआ वा लगीहुई) सखी.गतं किञ्चित् (मित्र में गयाहुआ कुछ अर्थात् मित्र सम्बन्धी)

२ री शाखा

नाटकसम्बन्धी भाषा में आत्म.गतम् और स्व.गतम् (आप में गयाहुआ) का अर्थ है (अपने लिए)

३ री शाखा

कर्तृवाचक जैसे नामों के पहले बहुधा दूसरी विभक्ति बनी रहती है विशेषकरके काव्य में जैसे अरिन्दमः अरिन्दमा अरिन्दमम् (शत्रु को दबानेवाला वा वाली) हृदयङ्गमः हृदयङ्गमा हृदयङ्गमम् (मन को छूताहुआ वा छूतीहुई) भयङ्करः भयङ्करी भयङ्करम् (भय करताहुआ वा करतीहुई) (५८० के सूत्र की १ ली शाखा देखो) सागरङ्गमः सागरङ्गमा सागरङ्गमम् (सागर को जाताहुआ वा जातीहुई) पण्डितम्मन्यः पण्डितम्मन्या पण्डितम्मन्यम् (आप को पण्डित मानताहुआ वा मानतीहुई) रात्रिम्मन्यः (रात मानताहुआ)

३री विभक्तिवाले

७४०वां सूत्र

वे सब मिश्रित हैं जिनमें पहले शब्द का (जो अपूर्णपद होताहै) सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ तीसरी विभक्ति का सा होताहै ये बहुत आते हैं और बहुधा [illegible] पहला अंग कोई संज्ञा रखते हैं और पिछला कोई कर्मणिवाच्य भूत गुण वा संगृहीत् [illegible].मोहितः लोभ.मोहिता लोभ.मोहितम् (लोभ से मोहाहुआ वा गो [illegible] परनीय मिश्रितों [illegible] मोहितः के । वस्त्र.वेष्टितः वस्त्र.वेष्टिता वस्त्र.वेष्टितम् (वस्त्र से [illegible] [illegible]) राज.पूजितः राज.पूजिता राज.पूजितम् (राजा से पूजा [illegible]

[illegible] पिछ संज्ञा के पहले.हीनः विद्या.[illegible] [illegible]हीनम् (विद्या से घटाहुआ वा [illegible]

[illegible] का कुछ [illegible] [illegible]हि से रीता कियाहुआ वा [illegible]

की हुई) दुःखार्तः दुःखार्ता दुःखार्तम् (दुख से दुखायाहुआ वा दुखाई हुई) आत्मकृतः आत्मकृता आत्मकृतम् (आप से कियाहुआ वा कीहुई) आदित्यसदृशः आदित्यसदृशी आदित्यसदृशम् (सूर्य से समान कियाहुआ वा समान की हुई) पलटे आदित्येन सदृशः के (८२६ वां सूत्र देखो) अस्मदुपार्जितः अस्मदुपार्जिता अस्मदुपार्जितम् (हम से प्राप्त कियाहुआ वा कीहुई)

१ ली शाखा

कभी २ इस प्रकार के मिश्रित का पिछला अङ्ग कोई संज्ञा वा कर्तृवाचक नाम होता है जैसे विद्या धनम् (विद्या से पायाहुआ धन) शस्त्रोपजीवी (शस्त्र से जीने वाला)

७२४ वां सूत्र

४ थी विभक्ति वाले

वे हैं जिन में पहले शब्द का सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ ४ थी विभक्ति का सा होता है जैसे परिधान.वल्कलम् (कपड़े के लिए छाल) पादो.दकम् (पांव के लिए जल) यूप दारु (बलिस्थम्भ के लिए लकड़ी) शरणागत. शरणागता शरणागतम् (शरण के लिये आयाहुआ वा आईहुई) पलटे (शरणाय आगतः) के इस प्रकार के मिश्रित बहुत नहीं आते और बहुधा ४ थी विभक्ति के पलटे अर्थम् शब्द से बनाये जाते हैं (७३१ वां सूत्र देखो) जैसे शरणार्थम् आगतः

१ ली शाखा

परस्मैपद और आत्मनेपद (२४१ वां सूत्र देखो) उन मिश्रितों के दृष्टान्त हैं जिन में ४ थी विभक्ति का चिन्ह बनारहता है

७२५ वां सूत्र

५ वीं विभक्ति वाले

वे मिश्रित हैं जिन में पहले शब्द का सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ ५ वीं वि-

का अर्थ देताहै परन्तु दूसरे अर्थ भी देसकताहै-जैसे गोष्ठी.गतः गोष्ठी.गता गोष्ठी.गतम् (बात में गयाहुआ वा गईहुई अर्थात् लगाहुआ वा लगीहुई) सखी.गतं किञ्चित् (मित्र में गयाहुआ कुछ अर्थात् मित्र सम्बन्धी)

२ री शाखा

नाटकसम्बन्धी भाषा में आत्म.गतम् और स्व.गतम् (आप में गयाहुआ) का अर्थ है (अपने लिए)

३ री शाखा

कर्तृवाचक जैसे नामों के पहले बहुधा दूसरी विभक्ति बनी रहती है विशेषकरके काव्य में जैसे अरिन्दमः अरिन्दमा अरिन्दमम् (शत्रु को दबानेवाला वा वाली) हृदयङ्गमः हृदयङ्गमा हृदयङ्गमम् (मन को छूताहुआ वा छूतीहुई) भयङ्करः भयङ्करी भयङ्करम् (भय करानाहुआ वा करातीहुई) (५८० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) सागरङ्गमः सागरङ्गमा सागरङ्गमम् (सागर को जाताहुआ वा जातीहुई) पण्डितम्मन्यः पण्डितम्मन्या पण्डितम्मन्यम् (आप को पण्डित मानताहुआ वा मान

शण्डम् पल्टे (कुक्कुटचण्डम्) (कुक्कुटी का अण्डा) के

२ री शाखा

कभी२ अत्यन्तता सूचक विशेषण संज्ञा के सदृश मिश्रित में पिछला अंग होता है जैसे नरश्रेष्ठः वा पुरुषोत्तमः (नरों का श्रेष्ठ वा पुरुषों का उत्तम)

३ री शाखा

कभी२ ६ ठी विभक्ति का चिन्ह बनारहता है जैसे विशाम्पतिः (मनुष्यों का स्वामी) दिवस्पतिः (आकाश का स्वामी)

४ थी शाखा

विशेषकर के अवज्ञासूचक शब्दों में जैसे दास्याःपुत्रः वा दासीपुत्रः (दासी का पुत्र)

७४४ वां सूत्र

७ वीं विभक्तिवाले

वे मिश्रित हैं जिनमें पहले शब्द का सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ सातवीं विभक्ति वाला है जैसे पङ्कमग्न पङ्कमग्ना पङ्कमग्नम् (कीचड़ में डूबाहुआ वा डूबीहुई) पङ्केः [पङ्के मग्नः] के । गगनविहारी (आकाश में विहार करनेवाला) जलक्रीडा (जल में क्रीडा) ग्रामवासी (गांव में रहनेवाला) जलचर (जल में जानेवाला) जलजः (जल में जन्माहुआ) शिरोरत्नम् (सिर पर रत्न)

१ ली शाखा

थोड़ी अवस्थाओं में ७ वीं विभक्ति का चिन्ह बनारहता है विशेषकर के [illegible] शब्दों के पहले जैसे ग्रामेवासी (गांव में रहनेवाला) जलेचर (जल में जाने वाला) अग्निशुचिर अग्निशुचिता अग्निशुचिम् ([illegible]) अग्रेगः वा अग्रेसरः (आगे जानेवाला वा चलनेवाला) दिविषद् ([illegible]) (आकाश में रहनाहुआ) दिविस्पृक् ([illegible]) ([illegible] वा आकाश में [illegible]) युधिष्ठिरः (युद्ध में स्थिर)

भक्ति का सा है. जैसे पितृ.प्राप्तः पितृ.प्राप्ता पितृ.प्राप्तम् (पिता से पाया हुआ या पाई हुई) राज्य.भ्रष्टः राज्य.भ्रष्टा राज्य.भ्रष्टम् (राज से गिरा हुआ या गिरी हुई) पलटे (राज्याद् भ्रष्ट)के तरङ्गचञ्चलतरः तरङ्गचञ्चलतरा तरङ्गचञ्चलतरम् (तरङ्ग से अधिक चञ्चल (भवदन्यः (आप से और) पलटे (भवतोऽन्यः) के भवद्भयम् (आप से भय) (८१४वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) कुक्कुरभयम् (कुत्ते से भय) शास्त्र पराङ्मुखः शास्त्रपराङ्मुखी शास्त्रपराङ्मुखम् (शास्त्र से मुख फेरा हुआ या फेरी हुई)

७२३वां सूत्र

६ ठी विभक्ति वाले

वे मिश्रित हैं जिनमें पहले शब्द का सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ ६ ठी विभक्ति का सा होता है ये सब आधीन मिश्रितों से बहुत आते हैं और बहुधा दो संज्ञाओं से बनते हैं जैसे समुद्रतीरम् (समुद्र का तीर) पलटे (समुद्रस्य तीरम्) के

१ ली शाखा

इसके दूसरे दृष्टान्त ये हैं अश्वपृष्ठम् (घोड़े की पीठ) धनुर्गुणः (धनु का चिल्ला) इष्टिका गृहम् (ईंट का घर) गिरिनदी (पहाड़ की नदी) जलतीरम् (जल का तीर) अर्थागमः या अर्थोपार्जना (धन का आना या पाना) विपद्दशा (विपत् की दशा) सुहृद्भेदः (मित्रों का भेद) यन्मूर्ध्नि (जिस के मूर्धा पर) (मूर्ध्नि ७ वीं विभक्ति में है) तद्वचः (उस की बातें) जन्मस्थानम् या जन्मभूमिः (जन्म का स्थान) मूर्खशतैः (मूर्खों के सैकड़ों से अर्थात् सैकड़ों मूर्खों से) (शतैः ३ री विभक्ति में है) श्लोकद्वयम् (श्लोकों का जोड़ा) भूतलम् (पृथ्वी का तला) पृथिवी पतिः (पृथिवी का पति) तज्जीवनाय (उसके जीवन के लिये) (जीवनाय ४ थी विभक्ति में है) ब्राह्मण पुत्राः (ब्राह्मण के पुत्र) अस्मत्पुत्राः (हमारे पुत्र) त्वत्कर्म (तेरा काम) पितृवचनम् [पिता का वचन] मृत्युद्वारम् (मृत्यु का द्वार) इच्छा सम्पत् (इच्छा का पूरा होना) मात्रानन्दः (मां का आनन्द) जलाशयः (जल का स्थान) विद्यार्थी (विद्या का अर्थी अर्थात् चाहनेवाला) कुक्कु-

ण्डम् पढ़ते (कुक्कुट्यण्डम्) (कुक्कुटी का अण्डा) के

२ री शाखा

कभी२ अत्यन्ततासूचक विशेषण संज्ञा के सदृश मिश्रित में पिछला अंग होताहै मे नरश्रेष्ठः वा पुरुषोत्तमः (नरों का श्रेष्ठ वा पुरुषों का उत्तम)

३ री शाखा

कभी२ ६ ठी विभक्ति का चिन्ह बनारहता है जैसे विशाम्पतिः (मनुष्यों का [स्वा]मी) दिवस्पति. (आकाश का स्वामी)

४थी शाखा

विशेषकरके अवज्ञासूचक शब्दों में जैसे दास्याःपुत्रः वा दासीपुत्र. (दासी का [पु]त्र)

७४४ वां सूत्र

७ वीं विभक्तिवाले

वे मिश्रित हैं जिनमें पहले शब्द का सम्बन्ध पिछले शब्द के साथ सातवीं विभक्ति [हो]ता है जैसे पङ्कमग्नः पङ्कमग्ना पङ्कमग्नम् (कीचड़ में डूबाहुआ वा डूबीहुई) प[ढ़ते] (पङ्के मग्नः) के। नभस विहारी (आकाश में विहार करनेवाला) जलक्रीडा [ज]ल में क्रीडा) ग्रामवासी (गांव में रहनेवाला) जलचरः (जल में जानेवाला) [जल]जः (जल में जन्माहुआ) शिरोरत्नम् (सिर पर रत्न)

१ ली शाखा

थोड़ी अवस्थाओं में ७ वीं विभक्ति का चिन्ह बनारहताहै विशेषकरके [कि]र नामों के पहले जैसे ग्रामेवासी (गांव में रहनेवाला) जलेचर (जल में जाने[वा]ला) उरसिभूषितः उरसिभूषिता उरसिभूषितम् (छातीपर सजाहुआ वा सजी[हुई]) अग्रेगः वा अग्रेसरः (आगे जानेवाला वा चलनेवाला) दिविषद् (मृत्यु नहीं [आ]काश में रहनाहुआ) दिविस्पृक् (मूल स्पृश्) (आकाश वा आकाश में छू[ता]हुआ) युधिष्ठिरः (युद्ध में स्थिर)

एक से अधिक विभक्ति रखनेवाले आधीन

७२५ वां सूत्र

मिश्रित सदा दो शब्दों से ही नहीं बनते वहुत से नाम रखसकते हैं सो सब प्रत्येक वाक्य में जैसी विभक्ति अवश्य होती है वैसी विभक्ति का सा एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखते हैं जैसे चक्षुर्विषयातिक्रान्तः चक्षुर्विषयातिक्रान्ता चक्षुर्विषयातिक्रान्तम् (आंख के विषय से निकलाहुआ वा निकलीहुई) पलटे (चक्षुषो विषयम् अति क्रान्तः) के । रथमध्यस्थः (रथ के मध्य पर खड़ाहुआ) भीतपरित्राणवस्तुपालम्भपण्डितः (डरेहुए को बचाने की वस्तु प्राप्त करने में पंडित)

१ ली शाखा

तत्पुरुषः का एक सूत्रविरुद्ध रूप है सो यथार्थ में किसी मिलेहुए मिश्रित का दूसरा वा विचला अंग निकलजाने का फल है (जिसको उत्तरपद लोप वा मध्यम पद लोप कहते हैं) जैसे शाकपार्थिवः पलटे (शाकप्रियपार्थिवः) के (७७५ वां सूत्र देखो)

द्वन्द्व अर्थात् समुच्चयी वा समवायी मिश्रित

७२६ वां सूत्र

इस प्रकार के मिश्रित दूसरी भाषाओं में नहीं आते

जब दो वा अधिक संज्ञाएं साथ आती हैं तब संस्कृत में उसके बीच में समुच्चयसूचक लाके मिलाने के पलटे वैसेही मिलाके एक मिश्रित करदेते हैं ऐसे मिश्रितों से किसी मिश्रित के अंगों के बीच में एक विभक्ति का दूसरी विभक्ति के साथ कुछ वाक्यरचना सम्बन्धी सम्बन्ध नहीं रहता क्योंकि जो उस मिश्रित के अंग अलग २ रखेजाते हैं तो एक ही विभक्ति में आते हैं व्याकरणसम्बन्धी मिलाव अङ्गों के बीच में केवल इतना रखनापड़ता है कि यौगिक समुच्चयसूचक जैसा (और) अपनी भाषा में आताहै वैसा संस्कृत भाषा में च आताहै सो किसी अङ्ग के पहले आना चाहिए यथार्थ में इस प्रकार में और पिछले प्रकार में जो भेद है सो मिले

शब्दों का एक दूसरे के साथ विभक्ति सम्बन्धी सम्बन्ध है यहां तक कि ऐसे
न्ध का रहना नरहना प्रसङ्ग से जानपड़ता है सोई किसी२ अवस्था में पदार्थ
ा है इस लिए पढ़नेवाले को चाहिए कि मिश्रित के प्रत्येक प्रकार को देख जै-
गुरुशिष्यसेवकाः आधीन मिश्रित होसकता है और गुरु के शिष्यों के सेवक ऐ-
अर्थ देसकता है अथवा समुच्चयी मिश्रित भी होसकता है और गुरु और शि
और सेवक ऐसा अर्थ देसकता है ऐसे ही मांसशोणितम् आधीन मिश्रित
कता है और मांस का रुधिर ऐसा अर्थ देसकता है अथवा समुच्चयी होसकता
और मांस और रुधिर ऐसा अर्थ देसकता है परन्तु ऐसा सन्देह उन द्वन्द्वों में
ा नहीं होसकता जो द्विवचनवाली विभक्ति में आते हैं

७४८वां सूत्र

समुच्चयी मिश्रित तीन जाति के हैं पहली जाति के वे हैं जो बहुवचन वाली
क्ति में आते हैं दूसरी जाति के वे हैं जो द्विवचन वाली विभक्ति में आते हैं औ
सरी जाति के वे हैं जो एकवचन वाली विभक्ति में आते हैं पहली दो जाति
मिश्रितों में पिछले शब्द के अपूर्णपद के पिछले वर्ण से वर्तनी और उस के
से वर्तनी का मुख्य रूप ठहराते हैं और तीसरी जाति वाले मिश्रितों के लि-
यह एक सामान्य सूत्र है कि ऐसा मिश्रित जब तक पिछला शब्द अन्त में
अथवा अ से पलटनेवाला कोई दूसरा स्वर अथवा कोई ऐसा व्यञ्जन जिससे
लगसकता हो नहीं रखता तब तक नहीं बनसकता और पिछले शब्द का
हो लिङ्ग हो उसका लिङ्ग नपुंसक होता है

बहुवचनवाली विभक्तिवाले

७४९वां सूत्र

जब किसी मिश्रित में दो से अधिक जीवधारी संज्ञाएं आती हैं तब पिछली
बहुवचन में रहती है और वर्तनी उस मिश्रित के पिछले अङ्ग के लिङ्ग के अ
र होती है जैसे इन्द्रानिलयमार्काः (इन्द्र अनिल यम (और) अर्क) पलटे

(इन्द्रोऽनिलोयमोऽकश्च) के रामलक्ष्मणभरताः (राम लक्ष्मण (और) भरत) मृगव्याधसर्पशूकराः (मृग व्याध सर्प (और) शूकर) पढ़ने वाला देखेगा कि इन मिश्रिनों का पिछला अङ्ग बहुवचन में आता है और पहले प्रत्येक अङ्ग एक वचन में आते हैं परन्तु ऐसे मिश्रिनों के सब वा किसी२ शब्द में बहुवचन का अर्थ भी पायाजासकता है जैसे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः (ब्राह्मण क्षत्री वैश्य (और) शूद्र) मित्रोदासीनाशत्रवः (मित्र उदासीन (और शत्रु) पलटे (मित्राणि उदासीनाः शत्रवश्च) के ऋषिदेवपितृतिथिभूतानि (ऋषि देव पितृ अतिथि और भूत) पलटे (ऋषयोदेवाःपितरोऽतिथयोभूतानि च) के सिंहव्याघ्रमहोरगाः (सिंह व्याघ्र और बड़े सर्प) श्वगृध्रकङ्ककाकोलभासगोमायुवायसाः (कुत्ते गिद्ध बगुले पहाड़ी कौए चील गीदड़ और कौए)

७४९वां सूत्र

ऐसेही जो दो से अधिक अजीवधारी संज्ञाएं आती हैं तो पिछला अंग बहुवचन में आसकताहै जैसे धर्मार्थकाममोक्षाः (धर्म अर्थ काम (और) मोक्ष) पलटे (धर्मोऽर्थः कामो मोक्षश्च) के इज्याध्ययनदानानि (यज्ञ अध्ययन (और) दान) पलटे (इज्या अध्ययनं दानं च) के इन आगे आनेवाले दृष्टान्तों में से कई दृष्टान्तों में बहुवचन का अर्थ पायाजाताहै जैसे पुष्पमूलफलानि (पुष्प मूल (और) फल) अजातमृतमूर्खाणाम् (नहीं जन्मे हुओं मरेहुओं (और) मूर्खों का) पलटे (अजातानां मृतानां मूर्खाणां च) के नेत्रमनःस्वभावाः (आंख मन और स्वभाव) रोगशोकपरितापबन्धनव्यसनानि (रोग शोक परिताप बन्धन और व्यसन) काष्ठजलफलमूलमधूनि (जल फल मूल और मधु)

७५०वां सूत्र

ऐसेही जो केवल दो जीवधारी वा अजीवधारी संज्ञाएं आती हैं और बहुवचन का अर्थ रखती हैं तो पिछली बहुवचन में आती है जैसे देवमनुष्याः (देव और मनुष्य) पुत्रपौत्राः (पुत्र और पौत्र) पातोत्पाताः (गिराव और उठाव) प्रकारप-

गिपाः (गढ़ और खाइयां) सुखदुःखेषु (सुखों में और दुखों में) पलटे (सुखे-षु दुःखेषु च) के पापपुण्यानि (पाप और पुण्य)

द्विवचनवाली विभक्तिवाले द्वन्द्व

७५१वां सूत्र

जब केवल दो जीवधारी संज्ञाएं आती हैं और उनमें प्रत्येक से ए० व० का अर्थ पायाजाताहै तब पिछली द्विवचन में आती है और वर्तनी पिछले अंग के लिङ्ग के अनुसार होती है जैसे रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण) पलटे (रामो लक्ष्मणश्च) के चन्द्रसूर्यौ (चन्द्र और सूर्य) मृगकाकौ (मृग और कौआ) भार्यापती (स्त्री और पति) मयूरीकुक्कुटौ (मयूरी और कुक्कुट) कुक्कुटमयूर्यौ (कुक्कुट और मयूरी)

७५२वां सूत्र

ऐसेही जब दो अजीवधारी संज्ञाएं आती हैं और उनमें प्रत्येक से एकवचन का अर्थ पायाजाताहै तो पिछली द्विवचन में आती है जैसे आरम्भावसाने (आरम्भ (और) अवसान) पलटे (आरम्भोऽवसानं च) के अनुरागापरागौ (अनुराग और अपराग) पलटे (अनुरागोऽपरागश्च) के हर्षविषादौ (हर्ष और विषाद) क्षुत्पिपासे (भूख और प्यास) पलटे (क्षुत् पिपासा च) के क्षुद्रोगौ (भूख और रोग) स्थानासनाभ्याम् (उठने और बैठने से) पलटे (स्थानेन आसनेन च) के मधुसर्पिषी (मधु और घी) सुखदुःखे (सुख और दुःख) उलूखलमुसले (ओखली और मूसल) प्रत्युत्थानाभिवादाभ्याम् (उठने और नमस्कार करने से) मृदाम्भ्याम् (मिट्टी और पानी से)

एकवचनवाली विभक्तिवाले द्वन्द्व

७५३वां सूत्र

जब दो या अधिक अजीवधारी संज्ञाएं आती हैं और एकवचन या बहुवचन

था में आते हैं सो भी वेदिक जानपड़ते हैं जैसे द्यावापृथिवी (आकाश (और) पृथिवी) मातापितरौ (माता (और) पिता इत्यादि)

७ वीं शाखा

परन्तु यिह एक सामान्य सूत्र है कि जो दो अपूर्णपद अन्त में ऋ रखते हैं तो पहले का पिछला ऋ आ होजाता है जैसा ऊपर बताएहुए मातापितरौ में जो किसी मिश्रित का पिछला अंग पुत्र होता है तो भी ऐसा होता है जैसे पितापुत्रौ (पिता (और) पुत्र)

कर्मधारय अर्थात् व्याख्यानक वा निर्धारक मिश्रित

७५५वां सूत्र

किसी विशेषण वा गुणक्रिया से किसी संज्ञा का कुछ व्याख्यान वा स्वभाव वा गुण जताने के लिये संस्कृत में यिह रीति है कि उन दो शब्दों को मिलाते हैं उन में विशेषण वा गुणक्रिया के अपूर्णपद को पहले रखते हैं जैसे साधुजनः (अच्छा मनुष्य) पलटे साधुर् जनः) के चिरमित्रम् [पुराना मित्र] पलटे (चिरंमित्रम्) के क्षुब्धार्णवः (व्याकुल समुद्र) पुण्यकर्म [अच्छा काम] अनन्तात्मा [अनन्त आत्मा] संस्कृतोक्तिः [संवारीहुई बोली] पुण्यकर्माणि (अच्छे काम) पलटे (पुण्यानि कर्माणि) के उत्तमनराणाम् (उत्तम नरों का) पलटे (उत्तमानां नराणाम्) के महापातकम् (बड़ा पाप) ७७८ वां सूत्र देखो) महाराजः (बड़ा राजा) (७७८ वां सूत्र देखो) प्रियसखः (प्यारा मित्र) (७७८ वां सूत्र देखो) दीर्घरात्रम् (लम्बी रात) ७७८ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

विशेषणों के स्त्री० अपूर्णपद बहुधा मिश्रितों में नहीं आते जैसे प्रियभार्या (प्यारी स्त्री) पलटे (प्रिया भार्या) के महाभार्या (बड़ी स्त्री) पलटे (महती भार्या के (७७८ वां सूत्र देखो (रूपवद्भार्या (रूपवान स्त्री) पलटे (रूपवती भार्या) के पाचकस्त्री (पकानेवाली स्त्री) पलटे (पाचिका स्त्री) के

२ री शाखा

परन्तु विशेषणों के स्त्रीलिङ्ग अपूर्णपदों के भी मिश्रितों में आने के कुछ दृष्टान्त हैं जैसे वामोरुभार्या (अच्छी जांघवाली स्त्री) कामिनीजनः (कामिनी स्त्री) पिछो कामिनी संज्ञा के सदृश आयाहै (७६६ वें सूत्र की २री शाखा देखो)

७५६ वां सूत्र

ऐसे मिश्रित में विशेषण के पलटे कोई अवर्तनीय शब्द वा उपसर्ग भी आसकताहै जैसे सुपथः (अच्छा मार्ग) सुदिनम् (अच्छा दिन) सुभाषितम् (अच्छी बोली) दुश्चरितम् (बुरी चाल) अभयम् (नहीं डर) बहिःशौचम् (बाहिरीपवित्रता) बहिः (बाहिर) और शौच (पवित्रता से) अन्तःशौचम् (भीतरी पवित्रता) ईषद्दर्शनम् (थोड़ा देखना) कुपुरुषः (बुरा पुरुष)

७५७ वां सूत्र

जो विशेषण संज्ञा के सदृश आते हैं सो कभी ऐसे मिश्रित के पिछले अंग बन सकते हैं जैसे परमधार्मिकः (बहुत धर्मवाला) परमाद्भुतम् (बहुत अद्भुत)

१ ली शाखा

ऐसेही जो संज्ञाएं विशेषणों के सदृश आती हैं सो ऐसे मिश्रितों का पहला अंग बन सकती हैं जैसे मलद्रव्याणि (मैली वस्तुएं) राजर्षिः (राजसम्बन्धी ऋषि)

७५८ वां सूत्र

जो व्याख्यानक वा निर्धारक मिश्रित श्रेष्ठता वा प्रसिद्धता दिखाते हैं सो इसी प्रकार के होते हैं और दो संज्ञाओं से बनते हैं जिनमें से एक बहुधा किसी श्रेष्ठता दिखानेवाले जीवधारी का नाम होताहै सो दूसरी का कुछ व्याख्यान करने वा गुण दिखाने के लिए संज्ञा के सदृश पीछे रखीजातीहै जैसे पुरुषव्याघ्रः (व्याघ्रसा पुरुष) पुरुषपुङ्गवः (पुंग पुरुष) पुरुषसिंहः (सिंह सा पुरुष) पुरुषर्षभः (बैल सा पुरुष अर्थात् प्रसिद्ध पुरुष)

ऐसेही गौरवम् (रत्न सी स्त्री अर्थात् अच्छी स्त्री) वदनाब्जम् (कमल सा

मुख)

१ ली शाखा

ऐसेही दूसरे सदृशता वा समानता दिखानेवाले मिश्रितों को व्याकरणी इसी प्रकार के मिश्रितों में रखते हैं इनमें विशेषण पीछे आता है जैसे छायाचञ्चलः छायाचञ्चला छायाचञ्चलम् (छायासा वा छाया सी चञ्चल) अम्बुदश्यामः अम्बुदश्यामा अम्बुदश्यामम् (बादल सा काला वा बादल सी काली) भूधरविस्तीर्णः भूधरविस्तीर्णा भूधरविस्तीर्णम् (पहाड़ सा फैलाहुआ वा पहाड़ सी फैलीहुई)

द्विगु अर्थात् संख्यासम्बन्धी वा संगृहीत मिश्रित

७५९वां सूत्र

संख्यासम्बन्धी बहुधा किसी संज्ञा के साथ संगृहीत् संज्ञा बनाने के लिये मिला याजाता है और ऐसे मिश्रित का पिछला अंग बहुत करके एक वचन नपुंसकलिङ्ग रहता है जैसे चतुर्युगम् (चार युग) बदले (चत्वारि युगानि) के चतुर्दिशम् (चार दिशा) त्रिदिनम् (तीन दिन) त्रिरात्रम् (तीन रात) रात्र बदले रात्रि के आया है (७०८वां सूत्र देखो) त्र्यब्दम् (तीन वर्ष) पञ्चाग्नि (पांच अग्नि)

१ ली शाखा

कभी संख्यासम्बन्धियों के अपूर्णपद बहुवचन वाली संज्ञा के साथ मिलायेजाते हैं जैसे चतुर्वर्णाः (चार वर्ण) पञ्चबाणाः (पांच बाण) सप्तर्षय (सात ऋषि)

२ री शाखा

कभी मिश्रित का पिछला अङ्ग ई अन्त में रखनेवाला स्त्रीलिङ्ग एकवचन होता है जैसे त्रिलोकी (तीन लोक)

अव्ययीभावः अर्थात् क्रियाविशेषणसम्बन्धी वा अवर्तनीय मिश्रित

७६० वां सूत्र

अवर्तनीय मिश्रित वे हैं जो वर्तनी नहीं कियेजाते इनका पहला अंग अवश्य कोई संयोजक उपसर्ग होता है (ऐसा जैसा अति. अधि, अनु, प्रति इत्यादि [७८३ वां सूत्र देखो] अथवा कोई क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्ग ऐसा जैसा यथा, यावत्, अ वा अन्, सः इत्यादि) और पिछला अंग कोई संज्ञा होता है सो दूसरी विभक्ति का नपुन्सकलिङ्ग होती है उसके अपूर्णपद का अन्त चाहे जिस लिङ्ग का होवे जैसे यथाश्रद्धम् [श्रद्धा के अनुसार] [यथा और श्रद्धा] से प्रतिनिशम् (प्रत्येक रात) प्रति और निशा) से प्रतिदिशम् (प्रत्येक दिशा में) प्रति और दिश) से अतिनु [नाव से उधर] (अति और नौ) से

१ ली शाखा

इन मिश्रितों में से बहुत से क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्ग सः से जो घटके स होजाता है बनते हैं जैसे सकोपम् (कोप के साथ) स और कोप) से सादरम् [आदर के साथ] स और आदरम्] से साष्टाङ्गपातम् (आठ अंग के साथ नमस्कार) सोपधि (बहुधा स और उपाधि) से साग्नि (आग्नि के साथ स और अग्नि) से पाणिनि २. १. ९ इत्यादि में उपसर्गों के साथ कुछ सूत्रविरुद्ध रूप लाताहै जैसे सूपप्रति (थोड़ा झोल).

२ री शाखा

ये आगे दूसरे अव्ययों के साथ अवर्तनीय मिश्रितों के दृष्टान्त लिखेजाते हैं जैसे अनुज्येष्ठम् (बड़ाई के अनुसार) प्रत्यङ्गम् (प्रत्येक अङ्ग पर) प्रतिमासम् (प्रत्येक मास में (७३०वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) यथाविधि [विधि के अनुसार] यथाशक्ति या यावच्छक्यम् (३९ वां सूत्र देखो) (शक्ति के अनुसार) यथासुखम् (सुख से) यथार्हम् (उचितता से) यथोक्तम् (कहेहुए के अनुसार) अनुक्षणम् (क्षणक्षण) समक्षम् आंख के आगे) ७७८ वां सूत्र देखो) प्रतिस्कन्धम् (कांधों पर) अधिवृक्षम् [पेड़ पर] उपमालिनीतीरम् (मालिनी के तीर पर या निकट)

असंशयम् (संशय रहित) निर्विशेषम् (भेदरहित) मध्येगङ्गम् (गंगा के मध्य में)

३ री शाखा

नपुंसकलिङ्ग अर्थम् (लिये निमित्त हेतु) (७३१ वें सूत्र का वर्णन देखो) बहुधा मिश्रितों के अन्त में आताहै जैसे स्वमार्थम् (सोने के लिये) कर्मानुष्ठानार्थम् (कर्म पूरा करने के लिये) परन्तु ७३१ वें सूत्र की टीका देखो)

४ थी शाखा

एक मुख्य क्रियाविशेषणसम्बन्धी मिश्रित संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद को दुहराने से बनता है उसके पहले अंग का पिछला दीर्घ होजाता है और पिछले अंग का पिछला इ होजाता है फिर बहुधा आपस का वा एक दूसरे का वा साम्हना करने का अर्थ देता है जैसे मुष्टीमुष्टि (मुक्का मुक्की अर्थात् आपस में मुक्की मारना) दण्डादण्डि (आपस में दण्ड मारना वा लड़ना) अंशांशि (आपस में बांटना) केशाकेशि (आपस में बाल खेंचना) अङ्गाङ्गि (अंग के साम्हने अंग करना) बाहूबाहवि (बांह के साम्हने बांह करना) नखानखि (नख के साम्हने नख करना)

५ वीं शाखा

ऐसेही अन्य और पर दुहराने से आते हैं जैसे अन्योन्यम् परस्परम् (आपस वा एक दूसरे से)

बहुव्रीहि अर्थात् अपेक्षापूरक मिश्रित

७६१वां सूत्र

जो मिश्रित ऊपरवाले चार प्रकारों में आते हैं सो अन्त में संज्ञाएं रखते हैं और प्रत्येक संज्ञा उस अवस्था में अपना अर्थ आप में पूरा रखती है ऐसे मिश्रितों बहुत से अपेक्षापूरक के सदृश आसकतेहैं अर्थात् दूसरे शब्दों के गुणवाचक नाम होते हैं और पिछला नाम विशेषण के सदृश तीनों लिङ्ग लेसकता है (१०८वां १९ वां १३०वां सूत्र और १२४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जो मिश्रित ऐसे आते हैं उनको अपेक्षापूरक नाम दियागया है सो केवल उनको अपेक्षापूरक के

सदृश आने से और अकेला न आने से नहीं दिया वरन इसलिये भी दियाहै कि वे बहुधा अपेक्षापूरक सर्वनाम के सदृश आते हैं और कभी२ अपनी भाषा में अपेक्षापूरक की सहायता से उल्था किये जाते हैं व्याकरणी जब इन मिश्रितों को अलग करते हैं तब ६ ठी विभक्ति वाले अपेक्षापूरक (यस्य) की सहायता से करते हैं जैसे महाधनम् एक व्याख्यानक मिश्रित है और बहुत धन का अर्थ देता है परन्तु विशेषण के सदृश पुरुषः के साथ आसकता है जैसे महाधनः पुरुषः (बहुत धन रखनेवाला पुरुष अर्थात् वुह पुरुष जिसका बहुत धन है) अथवा स्त्री के साथ जैसे महाधना स्त्री (बहुत धन वाली स्त्री अर्थात् वुह स्त्री जिसका बहुत धन है) व्याकरणी इस का अर्थ यों करेंगे यस्य वा यस्या महद् धनम् (जिसका बहुत धन है)

तत्पुरुषः अर्थात् आधीन मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप

७६२वां सूत्र

बहुत से आधीन मिश्रित विशेषकरके वे जो ३री विभक्ति के आधीन होते हैं (७४० वां सूत्र देखो) पहले ही अपनी प्रकृति से अपेक्षापूरक के सदृश होते हैं और वाक्य में किसी दूसरे शब्द से मिले विना नहीं आसकते परन्तु दूसरे बहुत से और विशेषकरके वे जो ६ ठी विभक्ति के आधीन होते हैं इस प्रकार के मिश्रितों में आते हैं और अपनी प्रकृति से आपही में अपना अर्थ पूर्ण रखते हैं पे पिछले शब्द को विशेषण के सदृश वर्तनी करने से अपेक्षापूरक होसकते हैं जैसे चन्द्राकृति. पु० चन्द्राकृतिः स्त्री० चन्द्राकृति न० (वुह जिसका रूप चन्द्रमा का सा है) (१११ वां सूत्र देखो) चन्द्राकृतिः (चन्द्रमा का रूप) से बना है

१ ली शाखा

दूसरे दृष्टान्त ये हैं देवरूपः देवरूपा देवरूपम् (वुह जिसका रूप देवता का सा है) (११८ वां सूत्र देखो) सर्पभासः सर्पभासा सर्पभासम् (वुह जिसका सर्प का

...सकाव है) १०८वां सूत्र देखो) हस्तिपादः हस्तिपादा हस्तिपादम् * (वुह जिसका ...ी का ना पांव है) ५७वां सूत्र देखो) सागरान्तः सागरान्ता सागरान्तम् (वुह ...का अन्त सागर है) मरणान्तः मरणान्ता मरणान्तम् (वुह जिसका अन्त मर- ...है) कर्णपुरोगमः कर्णपुरोगमा कर्णपुरोगमम् या कर्णमुखः कर्णमुखा कर्णमुखम् ...ह जिसका कर्ण अग्रगामी है) विष्णुशर्मनामा पु० विष्णुशर्मनामा स्त्री० विष्णु ...नाम न० (वुह जिसका नाम विष्णु शर्मन है) (१५४ वां सूत्र देखो) पुण्ड- ...ाक्षः पुण्डरीकाक्षी पुण्डरीकाक्षम् (वुह जिसके नेत्र कमल से हैं) ७७८ वां सूत्र ...ो) नारायणाख्यः नारायणाख्या नारायणाख्यम् (वुह जिसका नारायण नाम ...) धनमूलः धनमूला धनमूलम् (वुह जिसका मूल धन है) लक्षसंख्यानि (धना- ...मे लाखहैं) [ये धन] जिनकी संख्या लाखों है) गदाहस्तः गदाहस्ता गदाह- ...म् (वुह जिसके हाथ में गदा है) शस्त्रपाणिः शस्त्रपाणिः शस्त्रपाणि (वुह जिस- ...हाथ में शस्त्र है) जालहस्तः जालहस्ता जालहस्तम् (वुह जिसके हाथ में जाल ...) पुष्पविषयः पुष्पविषया पुष्पविषयम् (वुह जिसका विषय पुष्प है) ध्यानपरः ...ानपरा ध्यानपरम् (वुह जिसका ध्यान लगाहुआ है) तद्विद्यः तद्विद्या तद्विद्यम् ...वुह जिसको उसकी विद्या है) ये मिश्रित व्याख्यानक मिश्रितों से पहचाने नहीं ...ाते परन्तु केवल तीनों लिङ्ग में वर्तनी कियेजाने से पहचाने जाते हैं

टीका

* इस प्रकार के मिश्रितों में पाद के पलटे पाद् आसकताहै परन्तु हस्तिन् के पी...े नहीं आसकताहै (७७८ वां सूत्र देखो)

७६३वां सूत्र

परन्तु इन मिश्रितों में से बहुत से अपेक्षापूरक के सदृश आते हैं और जो व्या...ख्यानक के सदृश आते हैं तो दूसरा अर्थ देते हैं जैसे कर्णमुखम् व्याख्यानक होके ...आयाहै इसलिए इसका अर्थ (कर्ण का मुख) परन्तु कर्णमुखा राजानः अपेक्षापूरक ...होके आयाहै इसलिए इसका अर्थ है (वे राजा जिनका मुखिया कर्ण है) ऐसेही

चारचक्षुः (दूत की आंख) व्याख्यानक है परन्तु चारचक्षु राजा (वुह राजा जिस की आंख दूत है) अपेक्षापूरक है (१६६ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो)

७६४वां सूत्र

संज्ञा आदि (आरम्भ वा प्रथम) जब ऐसे मिश्रित का पिछला अङ्ग होके आती है और तब किसी गुप्त वा प्रकट शब्द की अपेक्षापूरक होती है और (और दूसरे वा से वा से लेके वा प्रथम का अर्थ देतीहै बहुधा यिह बहुवचन में वा एकवचन नपुंसकलिङ्ग में आती है जैसे इन्द्रादयः (इन्द्र और दूसरे अथवा वे जिनका प्रथम इन्द्र है) यिह १ ली विभक्तिवाले सुराः वा देवाः जैसे प्रकट वा गुप्त शब्द से लगताहै जैसे इन्द्रादयःसुराः वा इन्द्रादयःदेवाः (देवता जिनका प्रथम इन्द्र है) अग्न्यादीनाम् (अग्नि और दूसरों का अथवा उनका जिनकी प्रथम अग्नि है) यिह ६ ठी विभक्तिवाले पूर्वोक्तानाम (पहले कहीहुई वस्तुओं का) से लगता है जो यिहां गुप्त समझाजाताहै और तब ऐसा अर्थ देता है (पहले कहीहुई वस्तुओं का की प्रथम अग्नि है) चक्षुरादीनि (आंख और दूसरे अथवा वे जिनकी प्रथम ख है) इन्द्रियाणि (इन्द्रियां) से लगताहै जैसे चक्षुरादीनि इन्द्रियाणि (और दूसरी इन्द्रियां अथवा वे इन्द्रियां जिनकी प्रथम आंख है) जब यिह आदि न० ए० व० में आती है तब पूर्वोक्तम् (पहले कहाहुआ) से गुप्त सम जाता है लगती है अथवा किसी वस्तुओं से जो कई दूसरी वस्तुओं के पहले तीहै परन्तु तब उसके पहले क्रियाविशेषण इति+ आसकताहै जैसे देवानित्या देवता और दूसरे) यिह पूर्वोक्तम् से लगताहै जो गुप्त समझाजाताहै अर्थात् प कहाहुआ) जिसका देवान् ऐसा प्रथम है] दानादिना [दान और दूसरों से अ वा उन वस्तुओं से जिनका प्रथम दान है] ७७२ वां सूत्र देखो)

टीका

+ कभी २ एवम् पहले आता है जैसे एवमादीनि प्रलापानि [ऐसे और दू विलाप]

भा शुभाशुभम् (भला और बुरा वा भली और बुरी) (७५४ वां सूत्र देखो) सा न्द्रस्निग्धः सान्द्रस्निग्धा सान्द्रस्निग्धम् (मोटा और चिकना वा मोटी और चिकनी) निःशब्दस्तिमितः निःशब्दस्तिमिता निःशब्दस्तिमितम् (न बोलने और न चलनेवा ला वा वाली) गृहीतप्रतिमुक्तस्य (पकड़ेहुए और छोड़ेहुए का) इसके दूसरे दृष्टान्त मिश्रित मिश्रितों में देखो)

वर्णन

बहुत से ऐसे मिश्रितों में झटका आता है इससे जानपड़ताहै कि ये बहुव्रीहि प्र कारवाले सूत्र के अनुगामी हैं (पा० ६. २, ३.) परन्तु व्याकरणियों ने इस प्रकार के बहुत से मिश्रितों को तत्पुरुषः में लिखा है (पा० २, १. ६९)

कर्मधारय अर्थात् व्याख्यानक वा निर्धारक मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप

७६६वां सूत्र

बहुत से मिश्रित शब्द जितने इस प्रकार में आते हैं उतने दूसरे किसी प्रकार में नहीं आते प्रत्येक भांति की लिखावट में ऐसे मिश्रित बहुत आते हैं जैसे अ शक्तिः अल्पशक्तिः अल्पशक्ति [जिसकी शक्ति थोड़ी है वा थोड़ी शक्तिवाला वा ली] (११९ वां सूत्र देखो)

१ली शाखा

इस के दूसरे दृष्टान्त ये हैं महाबलः महाबला महाबलम् (जिस का बल ब है वा बहुत बल वाला वा वाली) (१०८ वां और ७७८ वां सूत्र देखो) महा जाः महातेजाः महातेजः (जिस का तेज बड़ा है वा बड़े तेजवाला वा वाली (१६४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) अल्पधनः अल्पधना अल्पधनम् (जि का धन थोड़ा है वा थोड़े धन वाला वा वाली) महात्मा महात्मा महात्म (जि

का मन बड़ा है वा बड़े मन वाला वा वाली) (१५१वां सूत्र देखो) उदारचरितः उदारचरिता उदारचरितम्) (जिस की अच्छी चाल है वा अच्छी चाल वाला वा वाली) बहुमत्स्यः बहुमत्स्या बहुमत्स्यम् (जिस की मछली बहुत हैं वा बहुत मछलीवाला वा वाली) स्वल्पसलिलः स्वल्पसलिला स्वल्पसलिलम् (जिस का थोड़ा जल है वा थोड़े जल वाला वा वाली) पण्डितबुद्धिः पण्डितबुद्धिः पण्डितबुद्धि (जिस की अच्छी बुद्धि है वा अच्छी बुद्धि वाला वा वाली) (११९ वां सूत्र देखो) प्रियभार्यः प्रियभार्या प्रियभार्यम् (जिस की स्त्री प्यारी है वा प्यारी स्त्रीवाला वा वाली) अशक्यसन्धानः अशक्यसन्धाना अशक्यसन्धानम् (जिसका मेल अशक्य है वा अशक्य मेलवाला वा वाली) संवृतसंवार्यः (राजा के साथ आता है (राजा जो छिपाने जैसी बात को छिपाता है)

२ री शाखा

कर्मा२ विशेषण का स्त्रीलिङ्ग ऐसे मिश्रित में आता है जैसे षष्ठीभार्यः (जिस की ६ ठी स्त्री है वा ६ ठी स्त्री वाला) ७५५ वें सूत्र की २ री शाखा देखो।)

७६७वां सूत्र

कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया किसी नाम के साथ नियम वा अपने अर्थ में बहुत नहीं आती परन्तु अपेक्षापूरक मिश्रितों की बनावट में बहुत आती है जैसे प्राप्तकालः प्राप्तकाला प्राप्तकालम् (जिस का काल पाया हुआ है वा पाया हुए काल वाला वा वाली)

१ ली शाखा

इस के दूसरे दृष्टान्त ये हैं जितेन्द्रियः जितेन्द्रिया जितेन्द्रियम् (जिस की इन्द्रियां जीती हुई हैं वा जीती हुई इन्द्रियों वाला वा वाली) शान्तचेता शान्तचेता शान्तचेतः (जिस का मन शान्त है वा शान्त मन वाला वा वाली) संहृष्टमना संहृष्टमनाः संहृष्टमनः (जिस का मन हर्षित है वा हर्षित मन वाला वा वाली) (१६२ वां सूत्र देखो) भग्नाशः भग्नाशा भग्नाशम् (जिसकी आशा टूटी हुई है वा

टूटीहुई आशावाला वा वाली) हृतराज्यः हृतराज्या हृतराज्यम् (जिसका राज छीनाहुआ है वा छीनेहुए राजवाला वा वाली) अमिततेजाः अमिततेजाः अमिततेज. (जिस का तेज अमित है वा अमित तेजवाला वा वाली) आसन्नमृत्युः आसन्नमृत्युः आसन्नमृत्यु (जिस की मृत्यु पास आईहुई है वा पास आईहुई मृत्युवाला वा वाली) कृतकामः कृतकामा कृतकामम् (जिसका काम कियाहुआहै वा किएहुए काम वाला वा वाली) कृतभोजनः कृतभोजना कृतभोजनम् (जिसका भोजनकियाहुआहै वा किएहुए भोजनवाला वा वाली) अनधिगतशास्त्रः अनधिगतशास्त्रा अनधिगतशास्त्रम् (जिसका शास्त्र नहीं पढ़ाहुआ है वा नहीं पढ़ेहुए शास्त्र वाला वा वाली) भिन्नहृदयः भिन्नहृदया भिन्नहृदयम् वा दलहृदयः दलहृदया दलहृदयम् (जिसका हृदय छिदाहुआ है वा छिदेहुए हृदय वाला वा वाली) जितशत्रुः जितशत्रुः जितशत्रु (जिसका शत्रु जीताहुआहै वा जीतेहुए शत्रु वाला वा वाली) छिन्नकेशः छिन्नकेशा छिन्नकेशम् (जिसके बाल कटेहुए हैं वा कटेहुए बाल वाला वा वाली) मिताशनः मिताशना मिताशनम् (जिसका खाना थोड़ा है वा थोड़ा खानेवाला वा वाली) धूतपापः धूतपापा धूतपापम् (जिसका पाप धोयाहुआ है वा धोएहुए पाप वाला वा वाली)

२ री माला

वाक्य के रूप यहां हैं जैसे हतश्रीकः हतश्रीका हतश्रीकम् (जिसकी श्री मारी हुई है वा मारी हुई श्री वाला वा वाली) हतत्विट्कः हतत्विट्का हतत्विट्कम् (जिसकी कान्ति घटी हुई है वा घटीहुई कान्तिवाला वा वाली) ([illegible] १ ली माला देखो)

द्विगु अर्थात् संख्यासम्बन्धी वा संगृहीत मिश्रि का अपेक्षापूरक रूप

[illegible]

द्विगु वा संख्यासम्बन्धी मिश्रित अपेक्षापूरक के अर्थ में आसकते हैं जैसे द्विप र्णः द्विपर्णा द्विपर्णम् (जिसके दो पत्र हैं वा दो पत्र वाला वा वाली) त्रिलोचनः त्रिलोचना वा त्रिलोचनी त्रिलोचनम् (जिसके तीन नेत्र हैं वा तीन नेत्र वाला वा वाली)

१ ली शाखा

दूसरे दृष्टान्त ये हैं त्रिमूर्धः त्रिमूर्धा त्रिमूर्धम् (जिसके तीन मस्तक हैं वा तीन मस्तक वाला वा वाली) यिहां मूर्धः मूर्धन् से बना है) ७७८ वां सूत्र देखो चतुर्मुखः चतुर्मुखी चतुर्मुखम् (जिसके चार मुख हैं वा चार मुख वाला वा वाली) चतुष्कोणः चतुष्कोणा चतुष्कोणम् (जिसके चार कोने हैं वा चार कोने वाला वा वाली) शतद्वारः शतद्वारा शतद्वारम् (जिसके सौ द्वार हैं वा सौ द्वारवाला वा वाली) चतुर्विद्यः चतुर्विद्या चतुर्विद्यम् (जिसके चार विद्या हैं वा चार विद्यावाला वा वाली) (१०८ वां सूत्र देखो) सहस्राक्षः सहस्राक्षी सहस्राक्षम् (जिसके सहस्र आंख हैं वा सहस्र आंख वाला वा वाली) ७७८ वां सूत्र देखो) पञ्चगवधनः पञ्चगवधना पञ्चगवधनम् (जिसके पांच बैल का धन है वा पांच बैल के धन वाला वा वाली)

क्रिया विशेषणसम्बन्धी उपसर्गों के साथ मिश्रितों का अपेक्षापूरक रूप

७६९वां सूत्र

क्रियाविशेषण सम्बन्धी मिश्रित बहुधा विशेषणों के सदृश अपेक्षापूरक के अर्थ में आते हैं सो क्रियाविशेषण सम्बन्धी उपसर्ग सह (साथ) के साथ (जिसका स संक्षिप्त रूप है) बनाएजाते हैं जैसे सकोपः सकोपा सकोपम् (जिसके साथ कोप है वा कोप वाला वा वाली) सफलः सफला सफलम् (जिसके साथ फल है वा फल वाला वा वाली) (१०८ वां सूत्र देखो) सबन्धुः सबन्धुः सबन्धु (जिसके

बहुत से दृष्टान्त ऐसे हैं जिन में अपेक्षापूर्वक मिश्रित बनाने के लिए क्रियावि-
ष सम्बन्धी उपसर्गों के साथ संज्ञाएं मिलाईजाती हैं ऐसे मिश्रित अव्ययीभावः
अपेक्षापूर्वक रूप नहीं समझे जासकते जैसे उदायुधः उदायुधा उदायुधम् (जि-
ा आयुध उठाहुआ है वा उठेहुए आयुधवाला वा वाली) नानाप्रकारः नानाप्र-
ा नानाप्रकारम् (जिस के साथ पृथक् प्रकार है वा पृथक् प्रकार वाला वा
ी) क्वनिवासः क्वनिवासा क्वनिवासम् (जिसका निवास कहां है वा कहां निवा
ाला वा वाली) क्वजन्मा क्वजन्मा क्वजन्म (जिसका जन्म कहां है वा कहां ज
हुआ वा जन्मीहुई) निरपराधः निरपराधा निरपराधम् (जिसका अपराध नहीं
। नहीं अपराध वाला वा वाली) निराहारः निराहारा निराहारम् (जिस का
र नहींहै वा नहीं आहार वाला वा वाली) अभीः अभीः अभि (जिसके
य नहीं है वा नहीं भय वाला वा वाली) (१२३ वें सूत्र की २ री शाखा
।) तथाविधः तथाविधा तथाविधम् (जिसका प्रकार वैसा है वा वैसे प्रकार वा
ला वा वाली) दुर्बुद्धिः दुर्बुद्धिः दुर्बुद्धि (जिस की बुद्धि बुरी है वा बुरी बुद्धि वा
ला वा वाली) दुष्प्रकृतिः दुष्प्रकृतिः दुष्प्रकृति (जिसका स्वभाव बुरा है वा बुरे स्व
भाव वाला वा वाली) सुमुखः सुमुखा वा सुमुखी सुमुखम् (जिसका मुख अच्छा है
वा अच्छे मुख वाला वा वाली) सुबुद्धिः सुबुद्धिः सुबुद्धि (जिस की बुद्धि अच्छी
है वा अच्छी बुद्धि वाला वा वाली) ऊपर वाले दृष्टान्तों में से थोड़े व्याख्यानक
मिश्रितों के अव्ययीभाव उपसर्गों के साथ बनेहुए अपेक्षापूर्वक रूप समझेजासकते हैं
(७५६ वां सूत्र देखो)

७ वीं शाखा

क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्ग दुस् और सु (७२६ वें सूत्र की २ री और ६ठी
शाखा देखो) गुणक्रियासम्बन्धी कर्तृवाचक नामों को कर्मवाचक का अर्थ देते हैं
जैसे दुष्कर (कठिनता से कियाजानेवाला) सुकर (सरलता से कियाजानेवाला)
दुर्लभ (कठिनता से पायाजानेवाला) सुलभ (सरलता से पायाजानेवाला) दुस्तर

(कठिनता से पार किया जानेवाला) इत्यादि

६ ठी शाखा

सनाथः सनाथा सनाथम् (जिसका स्वामी है या स्वामीवाला या वाली रखनेवाला के अर्थ में मिश्रितों के पीछे आता है वितानसनाथं शिलातलम् (वितान रखनेवाला शिला तल) शिलापट्टसनाथो मण्डपः (शिला पट्ट रखनेवाला मण्डप ऐसेही बहुवकसनाथो वट्पादपः (बहुत बगुले रखनेवाला वट का पेड़)

७ वीं शाखा

देखो प्रत्येक मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप वेद में झटके से पहचानाजाता है कर्मधारय मिश्रित महाबाहु (बड़ी बांह) में झटका पिछले शब्दभाग पर रहता है जैसे महाबाहु परन्तु अपेक्षापूरक महाबाहु (जिस की बड़ी बांह है वा बड़ी बांह वाला) में झटका पिछले के पहले शब्दभाग पर रहता है जैसे महाबाहु इसलिये टीकाकार ठीक झटका बताने के लिए यह दृष्टान्त देते हैं इन्द्रशत्रु इसके पहले शब्दभाग पर झटका होने से बहुव्रीहि होताहै (पा० ६. २, १) इस सूत्र के अनुसार पहला अंग अपना आद्य झटका रखता है परन्तु पिछले के पहले पर झटका होने से तत्पुरुष होताहै पहले का अर्थ है (जिसका शत्रु इन्द्र है) और दूसरे का अर्थ है (इन्द्र का शत्रु)

८ वीं शाखा

देखो आरम्भक और रूप (८० वें सूत्र का ७९ वां प्रत्यय देखो) अपेक्षापूरक मिश्रितों के अन्त में (बनाहुआ के अर्थ में आते हैं परन्तु बहुधा अपेक्षापूरक मिश्रित मिश्रित के अन्त में बहुत आते हैं (७७४ वां सूत्र देखो)

मिश्रित मिश्रितनाम

७७०वां सूत्र

अब मिश्रित मिश्रित शब्दों का अर्थात् मिश्रित शब्दों के साथ मिलेहुए [illegible] त शब्दों का वर्णन करते हैं सो संस्कृत भाषा में बहुतही बनाने के योग्य है व

ऐसे मिलेहुए शब्दों के दृष्टान्त देसकते हैं परन्तु यिह अबके व्याकरणियों
इच्छानुसार कल्पना है और इससे केवल यिह बात पाईजाती है कि संस्कृत
हुत से शब्द मिलासकते हैं यहां तक कि अच्छे नहीं लगते परन्तु अच्छी सं-
भाषा में और साधारण लिखावट में भी चार चार पांच पांच छः छः शब्द आ
में मिलजाते हैं और दो दो तीन तीन रूप एक प्रकार में आजाते हैं उनकी प्रकृ-
का ठहराना इन आगे आने वाले सूत्रों से सरल होगा
से मिश्रित मिश्रितों के दृष्टान्त जिनका अर्थ पूरा और अलग अलग होताहै
नहीं आते हैं

१ ला शाखा

दान्त ये हैं कालान्तराहत्तिशुभाशुभानि (काल के अन्तर पर शुभ और अशु-
होना) यिह पूरा आधीन मिश्रित है दो प्रकार के मिश्रित रचना है आधी
और समुच्चयी सेनापतिबलाध्यक्षौ (सेनापति और बलाध्यक्ष) यिह पूरा एक
यी मिश्रित है दो आधीन मिश्रित रचना है । शोकारातिभयत्राणम् (शोक
और भय से बचाना) यिह एक पूरा आधीन मिश्रित है एक समुच्चयी या स
मिश्रित रचना है । अवधीरितसुहृद्वाक्यम् (सुहृद का विचार रहित वाक्य)
एक पूरा व्याख्यानक मिश्रित है एक आधीन मिश्रित रचना है । शुक्लाम्बर-
धान (धौला कपड़ा और माला की लड़ी) यिह एक पूरा समुच्चयी मिश्रित
एक व्याख्यानक और एक आधीन मिश्रित रचना है । सर्वशास्त्रपारग (स-
स्त्रों के पार पर गया हुआ) मृतसिंहास्थीनि (मरे हुए सिंह की हड्डियां)

७७३वां सूत्र

मिश्रित मिश्रित बहुधा वाक्य में किसी शब्द के विशेषण वा गुणवाचक होके
अपेक्षापूरक के अर्थ में आते हैं जैसे गलितनखनयनः गलितनखनयनी गलितनख-
नयनम् (जिसके नख और नयन बिगड़ेहुए हैं या बिगड़ेहुए नख और नयनवाला
वाली) यिह एक पूरा व्याख्यानक मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है सो एक स

मुच्चयी मिश्रित रखता है । क्षुत्क्षामकण्ठः [जिसका कण्ठ भूख से सूखा हुआ है वा भूख से सूखेहुए कण्ठवाला] यिह एक पूरा व्याख्यानक का अपेक्षापूरक रू है सो एक आधीन मिश्रित रखता है

१ ली शाखा

इस के दूसरे दृष्टान्त ये ह शुक्लमाल्यानुलेपनः शुक्लमाल्यानुलेपना शुक्लमाल्यानुलेपनम् (जिसके धौली माला और अनुलेपन है वा धौली माला और अनुलेपन वाला वा वाली) यिह एक पूरा समुच्चयी मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है सो एक व्याख्यानक मिश्रित रखता है । पीनस्कन्धोरुबाहुः (जिसके कांधे जांघ और बांह मोटे हैं वा मोटे कांधे जांघ और बांह वाला) यिह एक पूरा समुच्चयी मिश्रित है सो दो व्याख्यानक मिश्रित रखता है । पूर्वजन्मकृतः पूर्वजन्मकृता पूर्वजन्मकृतम् (पहले जन्म में कियाहुआ वा की हुई) यिह एक पूरा आधीन मिश्रित है सो एक व्याख्यानक मिश्रित रखता है । विद्यावयोवृद्धः विद्यावयोवृद्धा विद्यावयोवृद्धम् (विद्या की अवस्था में बढ़ाहुआ वा बढ़ी हुई) यिह एक पूरा आधीन मिश्रित है सो एक समुच्चयी मिश्रित रखताहै । स्थपितस्रग्रजोहीनः स्थपितस्रग्रजोहीना स्थपितस्रग्रजोहीनम् (जिसकी माला नवीन है और रज से रहित) यिह एक पूरा समुच्चयी मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है एक व्याख्यानक और एक आधीन मिश्रित रखताहै । अभिषेकार्द्रशिराः अभिषेकार्द्रशिराः अभिषेकार्द्रशिरः (जिसका सिर अभिषेक से भीगाहुआ है वा अभिषेक से भीगे हुए सिर वाला वा वाली) यथेप्सितमुखः यथेप्सितमुखा वा यथेप्सितमुखी यथेप्सितमुखम् (जैसा कोई चाहे वैसा मुख रखने वाला वा वाली) शूलमुद्गरहस्तः शूलमुद्गरहस्ता शूलमुद्गरहस्तम् (शूल मुद्गर हाथ में रखने वाला वा वाली) एकरात्रनिर्वाहोचितः एकरात्रनिर्वाहोचिता एकरात्रनिर्वाहोचितम् (एक रात्र के निर्वाह के योग्य) ७१८वां सूत्र देखो) ऋग्यजुःसामाख्यत्रयग्रन्थार्थाभिज्ञाः (ऋग यजुर और साम नाम वाले तीन ग्रन्थों का अर्थ जानने वाले) मन्दष्टदन्तच्छदताम्रनेत्राः (होठ काटते हुए लाल आंखवाले) गा·

जाता से लगताहै। परद्रोह कर्मधीः (कर्म और इच्छा से दूसरे के साथ द्रोह रखने वाला)

७७२वां सूत्र

संज्ञा आदि (आरम्भ) बहुधा मिलेहुए अपेक्षापूरक मिश्रितों में आताहै और (और दूसरे इत्यादि से लेके) का अर्थ देता है जैसा अकेले अपेक्षापूरक मिश्रित में देता है (७६४ वां सूत्र देखो) जैसे शुकसारिकादयः (पक्षिणः से लगता है) (तोता मैना और दूसरे अर्थात् तोता मैना से लेके दूसरे पक्षी) यदि एक पूरा आधीन मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है सो एक समुच्चयी मिश्रित रखता है मन्दिरविग्रहादि (मन्दिर विग्रह से लेके दूसरे) गृहदेवागारादियुक्तः गृहदेवागारादियुक्ता गृहदेवागारादियुक्तम् (घर मन्दिर इत्यादि रखनेवाला वा वाली) करितुरगकोषादिपरिच्छदयुक्तः करितुरगकोषादिपरिच्छदयुक्ता करितुरगकोषादिपरिच्छदयुक्तम् (हाथी घोड़ा कोष इत्यादि सामग्री रखनेवाला वा वाली)

१ ली भाष्य।

ऐसेही आद्य उत्तमगन्धाद्या (उत्तम गन्ध इत्यादि रखनेवाला)

७७३वां सूत्र

लम्बे मिश्रित मिश्रितों का उल्था उनके शब्दों के क्रम और योग पर ध्यान रखने से होसकता है जैसे मत्तमधुकरनिकरमुक्तझङ्कारमिलितकोकिलालापसङ्गीतकसुखावहः मत्तमधुकरनिकरमुक्तझङ्कारमिलितकोकिलालापसङ्गीतकसुखावहा मत्तमधुकरनिकरमुक्तझङ्कारमिलितकोकिलालापसङ्गीतकसुखावहम् (मतवाले भौंरों के झुण्ड की छोड़ीहुई और कोयल के शब्द के गाने में मिलीहुई झनकार से प्रसन्नता पहुंचानेवाला वा वाली)

७७४वां सूत्र

आत्मक अथवा रूप अपेक्षापूरक मिश्रित मिश्रित के पीछे आता है मय (बनाहुआ) का अर्थ देता है जैसे द्रव्यस्वच्छरागनिर्मलकान्तिक वस्त्रम् (हाथी

घोड़े रथ पैदल और अनुचर से बनाहुआ बल) प्राग्जन्मसुकृतदुष्कृतरूपे कर्मणि (अगले जन्म में कीहुई भलाई और बुराई से बनेहुए दो कर्म)

७७५वां सूत्र

मिश्रित मिश्रितों का दूसरा वा बिचला अङ्ग कभी२ छोड़दियाजाता है जैसे भिज्ञानशकुन्तलम् यथार्थ में एक मिश्रित मिश्रित है सो एक पूरा व्याख्यानक एक आधीन मिश्रित रखता है परन्तु बिचला अङ्ग स्मृत नहीं रखता ऐसे ही शाः पार्थिवः (सम्वत का राजा) पलटे शाकप्रियपार्थिवः (सम्वत का प्यारा राजा) विक्रमोर्वशी पलटे विक्रमप्राप्तोर्वशी (विक्रम से पाईहुई उर्वशी) के

१ ली शाखा

सदृशता दिखाने वाले मिश्रित मिश्रित थोड़े नहीं आते जैसे जलबिन्दुलोलच पलः जलबिन्दुलोलचपला जलबिन्दुलोलचपलम् [जल की बूंद सा वा जल की बूंद सी अस्थिर और चपल) नलिनीदलतोयतरलः नलिनीदलतोयतरल नलिनीदलतोयतरलम् (कमल के पत्र पर जल सा नहीं ठहरनेवाला वा जल नहीं ठहरनेवाली) (७५८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

२ री शाखा

द्वन्द्व के साथ प्रत्यय ईय बढ़ाने से इस प्रकार का एक मुख्य मिश्रित बनत जैसे काकतालीयः काकतालीया काकतालीयम् [कौए और खजूर की बात के दृश] श्येनकपोतीयः श्येनकपोतीया श्येनकपोतीयम् (चील और कपोत बातों सा वा सी)

३ री शाखा

संज्ञासदृश क्रिया बहुधा अपेक्षापूरक मिश्रित के साथ आती है जैसे प्रारम्भ सदृशोदयः (प्रारम्भ के सदृश उदय) पीताम्भसि (जल पीने पर वा पीतेहुए) पलटे तेन अम्भसिपीतेसति के

७७६वां सूत्र

मिश्रित मिश्रित क्रियाविशेषण अथवा अवर्तनीय मिश्रित जो दूसरे मिश्रितों से मिले रहते हैं कर्मी२ देखने में आते हैं जैसे स्वगृहनिर्विशेषण (अपने घर से पृथक नहीं) शब्दोच्चारणानन्तरम् (शब्द उच्चारण करने से पीछे) स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम् (स्तन के भार से झुकती हुई कटि का विचार नरख के) यथादृष्टश्रुतम् (जैसा देखा और सुना था जैसा देखाहुआ और सुनाहुआ)

सूत्रविरुद्ध मिश्रित

७७७ वां सूत्र

कई मिश्रित अपनी बनावट में ऐसे सूत्र विरुद्ध हैं कि ऊपर बताएहुए प्रकारों से किसी प्रकार में नहीं आसकते

१ ली शाखा

कल्प देशीय दघ्न द्वयस मात्र अपूर्णपदों के पीछे आने से सूत्रविरुद्ध मिश्रित बनते हैं (८० वें सूत्र के ५७ वें और ७० वें प्रत्यय से ७२ वें और ७६ वें प्रत्यय तक देखो)

२ री शाखा

एक सामान्य मिश्रित है जो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे अन्तर पड़ने से बनता है और दूसरे का अर्थ देताहै जैसे स्थानान्तरम् वा देशान्तरम् (दूसरे स्थान में वा देश में) राजान्तरेणसह (दूसरे राजा के साथ) जन्मान्तराणि (दूसरे जन्म)

३ री शाखा

ऐसेही मात्र (केवल) के अर्थ में आताहै (९१९ वां सूत्र देखो)

४ थी शाखा

पूर्व वा पूर्वक वा पुरःसर (आगे साथ से) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों के पीछे आते हैं और जिस प्रकार से कोई काम होताहै सो प्रकाश करते हैं जैसे कोपपूर्वम् (क्रोध से) पूजापूर्वकम् अन्नं ददौ (उसने आदर से अन्न दिया)

५ वीं शाखा

मिश्रित का पिछला अंग कोई कमगूचक संज्ञा होने से एक मुख्य मिश्रित बन ताहै जैसे सारगहितीयः (सारस के साथ दूसरा) सीतातृतीयः (रामः) सीता के साथ तीसरा - अर्थात् राम लक्ष्मण समेत सीता के साथ तीसरा) छायाद्वितीयः (नलः) नल अपनी छाया के साथ दूसरा) मातृषष्ठाः मा के साथ छठे पाण्डवाः (पाण्डव) वेदा आत्मपञ्चमाः (आत्मान के साथ पांचवें वेद) वृषभैकादशा गावः (बैलों के साथ ११ वीं गाय) मनु ११. १२९)

६ ठी शाखा

ये आगे आने वाले मुख्य प्रकार के मिश्रित हैं त्यक्तजीवितयोधी (जीव हुआ अर्थात् जीव छोड़के लड़नेवाला) अकुतोभयः अकुतोभया अकुतोभय कहीं से भय न रखने वाला या वाली) अदृष्टपूर्वः अदृष्टपूर्वा अदृष्टपूर्वम् (अ देखाहुआ या न देखीहुई) सप्तरात्रोषितः (सात रात रहाहुआ)

७ वीं शाखा

गन्तुकाम [जाना चाहनेवाला] जैसे मिश्रितों के लिए (८७१ वां देखो)

८ वीं शाखा

वेद में कुछ मुख्य प्रकार के मिश्रित आते हैं जैसे विदद्वसु (धन देता हुआ पारयद्-द्वेषः (शत्रुओं से बचता हुआ) क्षयद्-वीर (वीरोंपर आज्ञा करता हुआ ये मिश्रित एक प्रकार के उलटे तत्पुरुष हैं

कई मिश्रितों में कई शब्दों की उलटा पलटी

७७८ वां सूत्र

थोड़े शब्द जब कई मिश्रितों में आते हैं तो उन के पिछले शब्दभाग में तिनिधि आते हैं और कुछ उलटापलटी होती है उनका एक सूचीपत्र वर्णा क्रम से लिखाजाताहै व्याकरणी इन को समासान्त प्रत्यय कहते हैं सो ये त्पुरुष और कर्मधारय वाले मिश्रितों में आते हैं

पलटे ऊधस् न० (ऐन) के बहुव्रीहि के पीछे आता है (पा० ४.१,२५) जैसे पीनोध्नी (बड़े ऐन वाली) द्व्यूध्नी (दो ऐन वाली] अत्यूध्नी (बहुत बड़े ऐन वाली) । ऊप पलटे अप् स्त्री० (जल) के जैसे अनूपः अनूपा अनूपम् (जल के पास वा जलसम्बन्धी) । ऋच पलटे ऋच् के (७७९ वां सूत्र देखो) । ककुद् पलटे ककुद पु० (चोटी) के जैसे त्रिककुत् (तीन चोटीवाला अर्थात् पहाड़) । कद् वा का वा कव पलटे कु न्यूनतासूचक निपात के जैसे कदुष्ण वा कोष्ण वा कवोष्ण (कुछ तत्ता) कदक्षरम् (बुरा अक्षर) कापुरुषः (नीच) । काकुद् पलटे काकुद पु० (तालू) के बहुव्रीहि के पीछे आताहै जैसे विकाकुत् (तालू नरखने वाला) । कुक्ष पलटे कुक्षि पु० (कोख) के । खार पलटे खारी के जैसे अर्धखारम् (आ खारी एक नाप है) । गन्धि पलटे गन्ध पु० (बास) के जैसे पूतिगन्धिः पूतिगन्धि पूतिगन्धि (सड़ा हुआ) ! गव द्विगु में आताहै पलटे गो पु० स्त्री० (गाय वा बैल) के जैसे पञ्चगवम् (पांच गायों का समूह) । चतुर पलटे चतुर् (चार) के ७७९ वा सूत्र देखो] । जम् पलटे जाया [स्त्री] के जैसे जम्पती द्विवचन [स्त्री और पुरुष) । जम्भन् पलटे जम्भ (दांत) के जैसे तृणजम्भा तृणजम्भा तृणजम्भ (घास के दांत वाला वा वाली अर्थात् तृणभक्षक) । जानि पलटे जाया स्त्री (स्त्री) के जैसे युवजानिः (तरुण स्त्रीवाला) । ज्ञ और ज्ञु बहुव्रीहि में आते हैं पलटे जानु न० (घुटना) के जैसे प्रज्ञुः प्रज्ञुः प्रज्ञु वा प्रज्ञः प्रज्ञा प्रज्ञम् [गठीले घुटने वाला वा वाली) । तक्ष पलटे तक्षन् पु० [खाती] के जैसे कौटतक्षः (अपने लिए काम करनेवाला खाती)ग्रामतक्षः (गांव का खाती) । तमस (सम् वा अव वा अन्ध के पीछे) कर्मधारयः में आता है पलटे तमस् न० [अंधेरा] के जैसे अवतमसम् (कुछ अंधेरा) । त्वच पलटे त्वच् के (७७९वां सूत्र देखो) । दत् (स्त्री० दती) पलटे दन्त पु० (दांत) के जैसे सुदन् सुदती सुदत् [अच्छे दांतवाला वा वाली) । दम् पलटे जाया (स्त्री०) के जैसे दम्पती [स्त्री और पुरुष] (कोई कहते हैं कि दम् का अर्थ है घर इसलिये दम्पती का अर्थ है घर के दो मालिक)

। दिव अन्त में आताहै और दिवा आदि में पलटे दिवन् पु० (दिन) के जैसे न-
क्तंदिवम् (रात दिन) दिवा निशम् (दिन रात) । दिश अन्त में आताहै पलटे
दिश् के (पा० ५, ४, १०७) शरदादिगण देखो) । दुघ अन्त में आताहै पलटे दु-
ह् (दुधेल) के जैसे कामदुघा (कामधेनु) । द्यावा [पुराना द्विवचन है पलटे दिव
स्त्री० (आकाश) के जैसे द्यावापृथिव्यौ (आकाश और पृथिवी) । धन्वन् बहु-
व्रीहि के पीछे आताहै पलटे धनुस् न० (चाप) के जैसे दृढधन्वा दृढधन्वा दृढधन्व
(बलवान चापधारी) । धर्मन् पीछे आताहै पलटे धर्म पु० [भलाई] के जैसे क-
ल्याणधर्मा कल्याणधर्मी कल्याणधर्म (भला या भली) । धुर पलटे धुर् स्त्री० (बोझ)
के जैसे राजधुर (राजका बोझ) । न थोड़े मिश्रितों के आदि में अ के पलटे आ-
ताहै जैसे नपुंसकः (नपुंसक) । नद पलटे नदी के जैसे पञ्चनदम् (पांच नदीवाला
एक देश का नामहै) । नस या नस् पलटे नासिका (नाक) के जैसे खरणाः खरणाः
खरणः या खरणस. खरणसा खरणसम् (पैनी नाक वाला या वाली) । नाभ पलटे
नाभि स्त्री० (ढुंढी) के जैसे पद्मनाभः [पद्म की सी नाभिवाला अर्थात् विष्णु] ।
नाव पलटे नौ स्त्री० (नाव) के परन्तु केवल द्विगु मिश्रितों में और अर्ध के पीछे
आताहै (पा० ५, ४, ९९, १००) जैसे द्विनावम् (दो नाव) अर्धनावम् (आधी
नाव) । पथ पलटे पथिन् पु० (मार्ग) के जैसे सुपथः (अच्छा मार्ग) । पद और
पाद् (स्त्री० पदी) पलटे पाद पु० (पांव) के जैसे पद्धिमम् (पांवकी ठण्डक)
द्विपात् द्विपदी द्विपम् (दो पांव वाला या वाली) चतुष्पाद् (चार पांव वाला) ।
पद पलटे पाद पु० [पांव] के जैसे पदगः पदगा पदगम् [पांव से चलनेवाला या
वाली] पैदल] । पुंस द्वन्द्व में आताहै पलटे पुंस् पु० (नर) के जैसे स्त्रीपुंसौ
१ वि० द्विवचन (स्त्री और पुरुष) । प्रज पलटे प्रजा स्त्री० (सेना) के । प्रजस् अ,
दुस् या दुर् के पीछे आके बहुव्रीहि के पीछे आताहै पलटे प्रजा स्त्री० [स्नेह या स-
न्तान] के जैसे बहुप्रजाः बहुप्रजाः बहुप्रज. (बहुत सन्तान वाला या वाली) । ब्र-
ह्म पलटे ब्रह्मन् पु० [ब्राह्मण] के जैसे कुब्रह्मः (बुरा ब्राह्मण) । भूम पलटे भूमि

स्त्री० (पृथ्वी) के जैसे उदग्भूमः (उत्तरी प्रान्त की पृथ्वी)। भ्रुव द्वन्द्व में आताहै पलटे भ्रू स्त्री० (भौं) के जैसे अक्षिभ्रुवम् (आंख और भौं)। मनस द्वन्द्व में आताहै पलटे मनस् न० (मन) के जैसे वाङ्मनसे (१ वि० द्विवचन न० (बोली और मन)। मह और मही पिता माता इत्यादि के पीछे आता है (७५१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) पलटे महत् (बड़ा) के जैसे पितामहः (दादा)। महा कर्मधारय और बहुव्रीहि के पहले आताहै पलटे महत् पु० स्त्री० न० (बड़े के परन्तु तत्पुरुषः अर्थात् आधीन मिश्रितों में महत् आताहै जैसे महदाश्रयः (बड़ों का आश्रय) ऐसेही भूत (होगयाहुआ) और ऐसे ही अर्थ वाले शब्दों के पहले भी जैसे महद्भूतः (बड़ा होगयाहुआ) परन्तु महाभूतम् (तत्व) में नहीं मूर्ध द्वि, त्रि इत्यादि के पीछे आके बहुव्रीहि के पीछे आता है पलटे मूर्धन् पु० (मस्तक) के जैसे द्विमूर्धः द्विमुर्धा द्विमूर्धम् (पा० ५. ४. ११५, और ६. १९७)। मेधस् अ. सु, दुम्, अल्प. मन्द, के पीछे आके बहुव्रीहि के पीछे आता पलटे मेधा स्त्री० (बुद्धि) के जैसे अल्पमेधाः अल्पमेधाः अल्पमेधः। रहस पलटे रहस् के अनु, अव और तप्त के पीछे आताहै जैसे अनुरहसः (एकान्तवाला) राज कर्मधारय और तत्पुरुष के पीछे आता है पलटे राजन् पु० (राजा) के १५ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) जैसे परमराजः (बड़ा राजा) देवराजः (देवताओं का राजा) परन्तु कभी२ तत्पुरुषः के पीछे राजन् भी आताहै जैसे विदर्भराज्ञः (विदर्भ के राजा का) नल १३, २१. ॥ रात्र द्विगु कर्मधारय और द्वन्द्व के पीछे आताहै पलटे रात्रि स्त्री० (रात) के जैसे अहोरात्रम् (दिन और रात) द्विरात्रम् (दो रात) मध्यरात्रः (रात का बीच)। लोम. अनु. अव. और प्रति के पीछे आता है पलटे लोमन् न० (बाल) के जैसे अनुलोमः अनुलोमा अनुलोमम् (बाल के साथ)। वर्चस तत्पुरुष में आताहै पलटे वर्चस् न० (तेज) के जैसे ब्रह्मवर्चसम् (ब्राह्मण का तेज)। श्रेयस कर्मधारय और बहुव्रीहि में आता है पलटे श्रेयस् न० (भलाई कल्याण) के निःश्रेयसः निःश्रेयसी निःश्रेयसम् (भलाई या कल्याण से

सहित)। श्व वा श्वा पलटे श्वन् पु० (कुत्ता) के जैसे अतिश्वः अतिश्वी अतिश्वम् (कुत्ते से बढ़के वा बुरा) श्वापदः (आखेट) श्वादन्तः (कुत्ते का दांत)। स अव्ययीभाव और बहुव्रीहि के आदि में आताहै पलटे सह (साथ) के जैसे सकोपम् (कोप सहित) सपुत्रः (पुत्र सहित) सहपुत्रः भी शुद्ध होता है। स पलटे समान (एकही वा साथ) जैसे सपिण्डः (एकही वा साथ पिण्ड वाला)। सक्थ कर्मधारय और बहुव्रीहि में आता है पलटे सक्थि न० (जांघ) के जैसे असक्थः असक्था असक्थम् (बिना जांघवाला वा वाली)। सख तत्पुरुष और द्विगु में आताहै पलटे सखि पु० (मित्र) के जैसे मरुत्सखः (वायु का मित्र अर्थात् इन्द्र) । सरस कर्मधारय में आता है पलटे सरस् न० (झील) के जैसे महासरसम् (बड़ी झील)। साम, अनु, अव, प्रति के पीछे आता है पलटे सामन् न० (मिलाप) के जैसे अनुसामः अनुसामा अनुसामम् (मिलाप वा मित्र के सदृश)। हल पलटे हलि पु० (हल) के जैसे अहलः अहला अहलम् (नहीं जोताहुआ वा नहीं जोतीहुई)। हृद् पलटे हृदय न० (मन) के जैसे हृच्छयः (मन में सोताहुआ) सुहृद् पु० (अच्छे मनवाला अर्थात मित्र)...

७७१वां सूत्र

ऊपर वाले सूचीपत्र में यह बात पाईजाती है कि समस्त शब्द के पिछले स्वर के अथवा पिछले स्वर और व्यञ्जन के पलटे जो प्रायः करके आता है सो अ है और दूसरे च् छ् ज् झ् द् ष् स ह अन्त में रखनेवाले अव्ययीभाव अ का बढ़ना चाहसकते हैं जैसे त्वच पलटे त्वच् के वाक्त्वचम् (बोली और त्वचा) में यजुष पलटे यजुस् के ऋग्यजुषम् (ऋग और यजुर्वेद) में ऐसे ही राज पलटे राजन् के आयुष पलटे आयुस् के शरद पलटे शरद् के इत्यादि ऐसे ही ऋच पलटे ऋच् के अर्धर्चः अर्धर्चम् (आधी ऋचा) में और बह्वृच (ऋग्वेद समझनेवाला)

१ टीकाभाग

कोई शब्द किसी मिश्रित के पहले अङ्ग होने में अपने पिछले स्वरों वा दीर्घ

होना चाहते हैं (पा० ६. ३, ११७ और ८,४,४) जैसे कोटर पहले वनके जैसे कोटरावणम् (खोखले पेड़ों का वन) अञ्जन पहले गिरि के जैसे अञ्जनागिरिः (एक पहाड़ का नाम) विश्व पहले राज् और मित्र के जैसे विश्वाराट् (विश्व का राजा) विश्वामित्रः (विश्व का मित्र एक ऋषि का नाम) ऐसे शब्द वेद में बहुत आते हैं

२ री शाखा

थोड़े शब्द ऐसे हैं कि जब किसी मिश्रित के पहले अङ्ग होते हैं विशेषकरके नाम जो अन्त में ऊ वा ई रखते हैं तब अपने पिछले स्वरों का ह्रस्व होजाता है जैसे भ्रु पलटे भ्रू के भ्रुकुटिः स्त्री० (त्यौरी) ग्रामणि पलटे ग्रामणी के ग्रामणिपुत्रः (छिनाल का लड़का) पा० ६,३.६१) ऐसे ही लक्ष्मिसम्पन्नः पलटे लक्ष्मीसम्पन्नः (लक्ष्मी से परि पूर्ण) के रामायण १,१९,२१)

३ री शाखा

थोड़े छाया सभा निशा शाला कन्या जैसे आ अन्त में रखनेवाले स्त्रीलिङ्ग मिश्रितों के अन्त में नपुन्सकलिङ्ग होजाते हैं जैसे इक्षुच्छायम् (ईख की छाया) पा० २.४,२२) प्रच्छायम् (छाया का स्थान) ईश्वरसभम् (राजाओं की सभा) स्त्रीसभम् (स्त्रियों की सभा) श्वनिशम् वा श्वनिशा कुत्तों की रात अर्थात् वुह रात जिस में कुत्ते रोते हैं

४ थी शाखा

कभी२ किसी मिश्रित के दो अंगों के बीच में एक सीटीयुक्त पढ़ा देते हैं जैसे प्रायश्चित्तम् पलटे प्रायचित्तम् (पाप से अलग होना के परस्परम् (आपस में आस्पदम् (स्थान)

७८०वां सूत्र

संख्यासम्बन्धी जब निपात उपसर्ग वा दूसरे संख्यासम्बन्धी पहले आते हैं तब अपने पिछले स्वर को अ से पलटते हैं अथवा जो उन के पिछले वर्ण व्यञ्जन होते हैं तो उन को गिरादेते हैं अथवा उनके पीछे अ बढ़ाते हैं जैसे द्वित्र १ वि० द्वित्र

द्वित्राः द्वित्राणि (दो वा तीन) पञ्चष १ त्रि० पञ्चषाः पञ्चषाः पञ्चषाणि (पाँच वा छः) उपचतुर १ त्रि० उपचतुराः (चार के लगभग)

७८१वां सूत्र

अहम् कई सूत्रविरुद्ध मिश्रितों के आदि में पलटे मद (मैं) के आता है जैसे अहंयुः अहम्पूर्विका इत्यादि

२ रा प्रकरण

मिश्रित क्रियाओं के विषय में

७८२वां सूत्र

ऐसा सोच सकते हैं कि दो सहस्र अमिश्रित मूल हैं (७४ वें सूत्र की २री शाखा देखो) सो विचार की प्रत्येक दिखाने योग्य पृथकता दिखा सकते हैं और संयोजक उपसर्ग और क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्ग जो प्रत्येक मूल के अर्थ को फैलाने और सुधारने के लिए आते हैं उनकी सहायता व्यर्थ है परन्तु यथार्थ में बहुत आने वाले मूल संस्कृत में बहुत थोड़े हैं और जो आते हैं सो एक या दो वा तीन उपसर्गों के साथ मिश्रित होने से पृथक२ रूप इतने बनजाते हैं कि दूसरे मूल संज्ञाओं की बनावट छोड़के और कहीं कुछ काम नहीं आते इसी लिए जितनी मिश्रित क्रियाएं आती हैं उतनी अमिश्रित नहीं आतीं

ये क्रियाएं दो रीति से बनाई जाती हैं पहली मूलों को उपसर्गों के साथ मिलाने से दूसरी सहायक क्रिया कृ (कर) और भू (हो) को क्रियाविशेषणों के साथ अथवा जो संज्ञाएं क्रियाविशेषण बनजाती हैं उनके साथ मिलाने से

मिश्रित क्रियाएं जो मूलों के साथ संयोजक उपसर्ग मिलाने से बनाईजाती हैं

७८३वां सूत्र

यिह आगे आनेवाला एक सूचीपत्र है उन उपसर्गों का जो बहुत करके मूलों के साथ मिलाएजाते हैं

१ ली शाखा

अति (पार उधर ऊपर) जैसे अतिया अती वर्तमान अत्येमि इत्यादि) अतिक्रम् [छोड़केजा लांघ]

२ री शाखा

अधि (ऊपर) जैसे अधिष्ठा (ऊपर खड़ा हो आज्ञाकर) [वर्तमान अधिष्ठामि] अधिरुह् (ऊपर चढ़) अधिशी (ऊपर सो वा लेट) अधिगम् [ऊपर ओर जा] अधी (ऊपर जा अर्थात् पढ़) पहला अ पौराणिक काव्य में कभी जाताहै जैसे धिष्ठित पलटे अधिष्ठित के

३ री शाखा

अनु (पीछे) जैसे अनुचर् (पीछे चल) अनुष्ठा (पीछे खड़ाहो अर्थात् क अनुकृ (देखा देखी कर) अनुमन् (स्वीकार कर) अनुभू [भोग सह]

४ थी शाखा

अन्तर् (बीचमें मध्य में) जैसे अन्तर्धा (बीचमें रख छिपा मिटा) अन्त बीच में हो) अन्तश्चर् (बीच में चल)

५ वीं शाखा

अप [दूर एक ओर से अर्थात् यिहां से] जैसे अपगम् अपसृ अपे [अ और इ से) दूर वा एक ओर वा यहां से जा (अर्थात् चला जा) अपनी (दूर एक ओर वा यिहां से मार्ग दिखा अर्थात् लेजा) अपकृष् (दूर वा एक ओर यहां से खैंच) अपवह् (दूर वा एक ओर वा यिहां से उठा अर्थात् उ लेजा) यिह न्यूनतासूचक भी है अर्थात् बुरे का अर्थ भी देता है जैसे अप वद् (बुरा कह)

६ ठी शाखा

अपि (ऊपर) केवल धा और नह् के साथ आता है जैसे अपिधा (ऊपर रख अर्थात् ढांक) अपिनह् (ऊपर बांध अर्थात् बांधले) इनका पहला अ बहुधा छोड़दियाजाता है जैसे पिधा पिनह्

७ वीं शाखा

अभि (को तक और पास) जैसे अभिया अभी (जा (वहां को उस के पास) अभिधाव् (दौड़ (उस की ओर वा उस के पास) अभिदृश् (देख (उसको वा उसकी ओर) अभिवद् वा अभिधा (६६४ वें सूत्र में धा देखा ! (कह (किसी को वा किसी से)

८ वीं शाखा

अव (नीचे दूर) जैसे अवरुह् अवतॄ (उतर) अवेक्ष् (नीचे देख) अवकृ (नीचे डाल वा बखेर) अवकृत् (काटडाल) पिछ न्यूनतासूचक भी है जैसे अवज्ञा (बुरा जान) अवक्षिप् (बुरा कह) धा के साथ (साथ रहने का अर्थ देता है अवगाह (नहां से पहला अ इच्छानुसार छोड़दियाजाताहै)

९ वीं शाखा

आ (को ओर पास) जैसे आविश् (प्रवेश कर) आक्रम् (जा) आरुह् (चढ़) जब पिछ गम् या और इ [जा] और दा (दे) के पहले आता है तब अर्थ को उलट देता है जैसे आगम् आया ए [आ] आदा (ले) चर् के साथ काम करने का अर्थ देता है

१० वीं शाखा

उद् (ऊपर को ऊपर बाहिर) नि के प्रतिकूल जैसे उद्यत् (२८ वां सूत्र देखो) उदि (ऊपर जा अर्थात् उठ) उड्डी (ऊपर उड़) उद्धन् (मार ऊपर) (उद् और हन् से) ५० वां सूत्र देखो) उद्धृ [उद् और हृ से] ५० वां सूत्र देखो] (ऊपर खेंच) उन्मिष् और उन्मील् (४७ वां सूत्र देखो) (आंख खोल) उत्कृत् उच्छिद् (काट) उन्मूल् (उखाड़) उच्छ्रि (उठा (उद् और श्रि से) ४९ वां सूत्र देखो)

जब उद् स्था और स्तम्भ के पासही पहले आताहै तब स् छूटजाता है जैसे उत्था (खड़ा हो) उत्तम्भ् (उठा) कभी अर्थ को उलटदेता है जैसे नम् (झुक) से उन्नम् (४७ वां सूत्र देखो) (उठा) यम् (नीचा रख) से उद्यम् (ऊंचा रख उठा)

११वीं शाखा

उप (अप के प्रतिकूल है) को और पास नीचे) का अर्थ देताहै आ और अभि के सदृश चलने का अर्थ देनेवाली क्रियाओं के पहले आता है जैसे उपया (पास जा) उपचर् (पास चल अर्थात् पास रह) उपस्था (पास खड़ा हो श्रम कर) विश् । (६ठा ग०) के साथ जैसे उपविशति (पास या नीचे बैठ) आस् के साथ जैसे उपास् (पास बैठ)

वर्णन

देखो उप् से बने हुए ओषति के साथ जब उप आता है तब होता है उपोषति (कुछ जलाता है) ७८४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१२वीं शाखा

नि को अनिसृत मूल आनि का प्रतिनिधि समझते हैं सो (भीतर ऊपर नीचे) का अर्थ देता है उद् के प्रतिकूल जैसे निपत् (नीचे गिर) नियम् (दबा) निमिष् और निमील् (आंख मूंद) निक्षिप् निधा न्यस् (नीचे रख) निविश् (भीतर, जा, हटाकर) हन् के साथ (लौट, फिर, (हट) शम् के साथ सुन) किसी अवस्था में यिह अर्थ को उलटता नहीं है परन्तु दृढ़ करताहै जैसे निहन् (मारडाल)

१३वीं शाखा

निस् (बाहिर) जैसे निष्क्रम् (६९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) निर्गम् निःसृ (बाहिर आ बाहिर जा निकल) निष्कृत् (काट) निर्दृश् (अन्तर पर आ छोड़) निश्चि ठहरा)

१४वीं शाखा

परा (पीछे को) जि और भू के साथ आता है तब हारने का अर्थ देता है जैसे पराजि (हार) पराभू (हार) इ [२ ग०] के साथ हटने का अर्थ देता है जैसे संमान परैमि इ वा अय (१ ग०) आ के साथ भागने का अर्थ देता है और तब रा पला होजाता है जैसे वर्त० पलाये

१५वीं शाखा

परि (आसपास चारों ओर) जैसे परिवेष्ट् परिट (घेर) परिचर्, परिगम् (चक्कर दे आसपास जा) परीक्ष् (आसपास देख जांच) परिहन् (आसपास फिर) परिधाव् (आसपास दौड़) जब कृ के पहले आता है तब सजाने का अर्थ देता है और स् अधिक लेता है जैसे परिष्कृ भू के साथ अवज्ञा का अर्थ देता है और हृ के साथ धप- का कभी अर्थ को केवल दृढ़ करता है जैसे परित्यज् (छोड़ दे) परिज्ञा (अच्छी रीति से जान निश्चय कर) .

१६वीं शाखा

प्र (आगे) जैसे प्रगम् प्रसृप् (आगे जा) प्रयम् (आगे रख वा दिखा) प्रक्रम् (आरम्भ कर) प्रवृत् (बढ़ आरम्भ कर) प्रधाव् (आगे दौड़) प्रस्था (आगे चल) प्ररुह् (आगे हो चढ़) प्रदृश् (आगे देख) लभ् के साथ धोका देने का अर्थ देता है

वर्णन

प्र (साथ) ऋच्छति (युद्ध जाता है) के साथ प्रार्च्छति (वा प्रार्छति) होजाता है (युद्ध में जाता है) [३८वें सूत्र की ६ ठी शाखा देखो] इष् (जा) के प्रेरणार्थक अ- प्रापद एषय के साथ होता है प्रेषयामि (मैं भेजता हूं) ऐसेही प्र + एजते = प्रेजते (वह कांपता है) प्र + ओदति (उपूस) = प्रोषति (युद्ध जलाता है (३८३ वें सूत्र की ठी शाखा देखो)

प्र का र् पीछे आनेवाले न् को ५८ वें सूत्र के अनुसार अपना प्रभाव दिखाता है जैसे प्रणम् (आगे झुक अर्थात् नमस्कार कर) कभी मूल के अर्थ को पलटता

नहीं है जैसे आप् (पा) [६८१ वां सूत्र देखो]

१७वीं शाखा

प्रति (साम्हने, को. ओर फिर, पास) जैसे प्रतियुध् (साम्हने लड़) प्रती (जा) किसी की ओर) जैसे वर्त॰ प्रत्येमि. प्रतिगम् (जा किसी की ओर, लौट) प्रतिवस् (पास रह) प्रतिकृ (प्रतिकूल कर) प्रतिहन् (पलट के मार हटा) प्रतिवच् (पलटके बोल उत्तर दे) प्रतिलभ् (फिरपा फिरले) प्रतिनी (फिर मार्ग दिखा) प्रतिनन्द् (फिर नमस्कार कर) श्रु के साथ प्रण करने का अर्थ देता है पद् के साथ पहुंचाने वा पाने का ईक्ष् के साथ बाट देखने का

१८वीं शाखा

वि (अलग वा अलग२) जैसे विचर् (भटक घूम) विचल् (आगे पीछे विहृ (प्रसन्नता के लिए फिर वा विहार कर) विकॄ (बखेर छितरा) विदॄ (दो टुकड़े कर) विभज् (बांट) विविच् (पहचान) कभी२ अर्थ को उलटा क है जैसे वियुज् (अलगा) विस्मृ (भूल) विक्री (बेच) कृ के साथ बुरे के पलटने का अर्थ देता है और कभी२ मूल को अपना थोड़ा प्रत्यक्ष प्रभाव दि ताहै जैसे विनश् (नष्ट हो वा सम्पूर्ण नष्ट हो) विचिन्त् (सोच्)

१९वीं शाखा

सम् (साथ सहित समेत) जैसे सञ्चि सङ्ग्रह् (जोड़ इकट्ठाकर) संयुज(प मिला) सङ्गम् (मिला) सम्पद् (हो वा साथ हो) संक्षिप् (सुकड़) कृ के पूरा करने का अर्थ देता है और म् अधिक लेताहै जैसे संस्कृ बहुधा अर्थ में फेरफार नहीं करता जैसे सञ्जन् (उत्पन्न हो)

२०वीं शाखा

दुस् (बुरा वा बुरी रीति से) सु (अच्छा वा अच्छी रीति से) भी क्रियाओं वा क्रियासम्बन्धी निमूलों के पहले आते हैं (७२६ वें सूत्र की २ थी और शाखा देखो)

नहीं है जैसे पाप् (पा) [६८१ वां सूत्र देखो]

१७वीं शाखा

प्रति (साम्हने, को. और फिर, पास) जैसे प्रतिपुष् (साम्हने छट) प्रती (जा) किसी की ओर) जैसे वर्त० प्रत्येमि. प्रतिगम् (जा किसी की ओर, लौट) प्रतिवस् (पास रह) प्रतिरु (प्रतिकूल कर) प्रतिहन् (पलट के मार हटा) प्रति वच् (पलटके बोल उत्तर दे) प्रतिछग् (फिरना फिरले) प्रतिनी (फिर मार्ग दिखा) प्रतिनन्द् (फिर नमस्कार कर) श्रु के साथ प्रण करने का अर्थ देता है पद के साथ पहुंचाने या पाने का ईक्ष् के साथ बाट देखने का

१८वीं शाखा

वि (अलग या अलग२) जैसे विचर् (भटक घूम) विचल् (आगे पीछे फिर) विहृ (प्रसन्नता के लिए फिर या विहार कर) विकॄ (बखेर छिनरा) विदॄ (फाड़ दो टुकड़े कर) विभज् (बांट) विविच् (पहचान) कभी२ अर्थ को उलटा देता है जैसे वियुज् (अलगा) विस्मृ (भूल) विक्री (बेच) रु के साथ बुरे व पलटने का अर्थ देता है और कभी२ मूल को अपना थोड़ा प्रत्यक्ष प्रभाव देता है जैसे विनश् (नष्ट हो या सम्पूर्ण नष्ट हो) विचिन्त् (सोच्)

१९वीं शाखा

सम् (साथ सहित समेत) जैसे सञ्चि सङ्ग्रह् (जोड़ इकट्ठाकर) संयुज (मिला) सङ्गम् (मिला) सम्पद् (हो वा साथ हो) सङ्क्षिप् (सुकड़) कृ के पूरा करने का अर्थ देता है और स् अधिक लेताहै जैसे संस्कृ बहुधा अर्थ में फेरफार नहीं करता जैसे सञ्जन् (उत्पन्न हो)

२०वीं शाखा

दुस् (बुरा या बुरी रीति से) सु (अच्छा या अच्छी रीति से) भी क्रियाओं वा क्रियासम्बन्धी निसृतों के पहले आते हैं. (७२६ वें सूत्र की ट वीं और शाखा देखो)

२१वीं शाखा

ऐसे ही दूसरे अवर्णनीय उपसर्ग जैसे अस्तम् (उतार) इ के साथ मिलना है
र उभरने वा डूबने का अर्थ देता है तिरम् (पार) धा के साथ छिपाने का गम्
साथ छिपने का कृ के साथ धिक्कार देने का अर्थ देता है श्रत् धा के साथ निश्च-
करने का अर्थ देता है

७८४वां सूत्र

बहुधा दो संयोजक उपसर्ग मिलके मूल के साथ आते हैं जैसे (वि + आ + दा
ल) = व्यादा (खोल) वि + आ + पद् (मूल) = व्यापद् (१० वां ग०) मा
उप + आ + गम् (मूल)= उपागम् (नीचे जा उठा पहुंच) सम् + आ + इ)
ल) = समे [इकट्ठा हो) प + नि (५८ वां सूत्र देखो) + पत (मूल] = प्र-
त (नमस्कारकर झुक) प्र + उद् + हृ (मूल) = प्रोद्धृ (उठा) और कभी २ तीन
र्ग साथ आते हैं जैसे प्र + वि + आ + हृ (मूल) = प्रव्याहृ (पहले से कह) प्रति+
आ+हृ (मूल) = प्रत्युदाहृ (उत्तरदे) तिहरे उपसर्ग कभी २ मूलों के साथ आते हैं सो
सं+उद्+ आ । अभि+वि+आ । स+ अभि + प्र । उप + सं + प्र । अनु + सं + वि

१ ली शाखा

देखो उपसर्ग का पिछला अ और आ मूल के पहले ऋ से मिलके आर् होजा
और मूल के पहले ए और ओ के पहले छूटजाते हैं परन्तु जो इण् इ (जा
र एध् (बढ़) से बनते हैं उनके पहले ए और ओ के पहले नहीं (३८ वें सू
की ६ ठी और ७ वीं शाखा देखो) और ऊपर लिखेहुए प और उप देखो) प
दूसरी अवस्थाओं में अन्त में स्वर रखने वाले उपसर्ग आदि में स्वर रखनेवा
लों के साथ सन्धि के सूत्रों के अनुसार मिलजाते हैं जैसे आ और इ (जा)
के ३२ वें सूत्र से ए होजाता है और वर्तमान में (आ + इमि ३३ वें सूत्र के
) इत्यादि अपूर्णभूत में आयम् ऐः (६२५ वां और ३३ वां सूत्र देखो) इ-
दि सम्भवार्थ में (आ + इयाम् = एयाम्) इत्यादि अनुमत्यर्थ में (आ -

= आयानि:)) इत्यादि ऐसे ही अप और एमि ३३ वें सूत्र से मिलके अपैमि होते हैं

२ री शाखा

और देखो कि उपसर्ग अप उप, परि, प्रति,सम् और मूल कृ (कर) और कृ [बिखेर] के बीच में बहुधा एक सीटीयुक्त बढ़ता है ऊपर लिखेहुए परि और सम् के नीचे देखो ऐसे ही अव और कृ से अवस्कर (मैला) बनता है

३ री शाखा

अति,प्रति, परि,नि, का पिछला इ इच्छानुसार मिश्रित क्रियाओं से कई संज्ञा बनाने में दीर्घ होजाताहै जैसे अतीसार. प्रतीकार, परीहास. नीकार,

७८५वां सूत्र

जो मिश्रित क्रियाएं संयोजक उपसर्गों के साथ बनती हैं उनकी वर्तनी में न गम् लाने में न दुहरावट करने में कुछ स्थानसम्बन्धी उलटापलटी होती है पर मूल के साथ जैसे उपसर्ग हैं वैसे रहते हैं * जैसे पर्यणयम् अपूर्णभूत नी का प के साथ । उपाविशम् अपूर्णभूत विश् का उप के साथ । अन्वतिष्ठम् अपूर्ण स्था का अनु के साथ । प्रतिजघान पूर्णभूत हन् का प्रति के साथ । प्रोज्जहार पूर्ण हृ का प्र और उद् के साथ ॥

टीका

* महाभारत् में इस सूत्र के कुछ निषेध आते हैं जैसे अन्वसञ्चरन्.

१ ली शाखा.

वेद में दूसरे शब्दों के बीच में आने से उपसर्ग मूलों से अलग होजाते हैं जैसे आ त्वा विशंतु (वे तुझ में वा तुझको आवें)

७८६वां सूत्र

व्याकरणी मुख्य उपसर्गों के साथ अथवा जब कोई मुख्य अर्थ देते हैं तब कई क्रियाओं को केवल परस्मैपद में लाते हैं और कई क्रियाओं को आत्मनेपद में

१ (पाणिनि ने इसके बहुत दृष्टान्त दिए हैं (पा० १, ३, १ से १३ वें तक) सो यिहां लिखेजाते हैं अ० ए०व० वर्त० लिखाजायगा परस्मैपद और आत्मनेपद की पहचान के लिये अन्त ति और ते आवेंगे इन्हीं अन्तों से प्रत्येक अवस्था में जो रूप आवेगा सो समझेगा

टीका

२ परन्तु पौराणिक काव्य में इसका विचार बहुत नहीं है जैसे यत् और प्रार्थ् शुद्धता से आत्मनेपद वाली क्रियाएं हैं परन्तु परस्मैपद में आती हैं कर्मणिवाच्य क्रियाएं परस्मैपदवाले अन्त लेती हैं उनके दृष्टान्त आगे बताए हैं (४६१ वें सूत्र की ३ री शाखा देखो) और मन्द् (प्रसन्न कर) शुद्धता से परस्मैपद वाली क्रिया है परन्तु आत्मनेपद में आती है

दृष्टान्त

अस् (फेंक) बहुधा परस्मैपद में आता है और ऊह् (कारण बता) बहुधा आत्मनेपद में आता है परन्तु जब किसी उपसर्ग के साथ आते हैं तब दोनों पद में आ सकते हैं । कृ (कर) अनुकरोति [वुह देखादेखी करता है] अधिकुरुते (वुह जीतता है) उत्कुरुते (वुह प्रतिकूल जताता है बुरा कहता है) उदाकुरुते (उद् + आ) (वुह बुरा कहता है) उपकुरुते (वुह आदर करता है) उपस्कुरुते (७८४ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) वुह स्थित करता है) उपस्करोति (वुह पोटता है) पराकरोति (वुह छोड़ता है) प्रकुरुते (वुह बल करता है वा बातें करता है) । कृ (बखेर) अपस्किरते (७८४ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) (वुह (कुक्कुट) मिट्टी उछालता है) परन्तु अपकिरति (वुह बखेरता है फूल इत्यादि) ! क्रम् (जा) आक्रमते (वुह (सूरज) ऊंचा होता है) परन्तु जब किसी नक्षत्र इत्यादि के ऊंचे होने का अर्थ नहीं देता तब आक्रामति होता है विक्रमते (वुह घोड़ा) चलता है) परन्तु जब वुह (जोड़) फटता है का अर्थ देता है तब विक्रामति होता है उपक्रमते वा प्रक्रमते (वुह शूरता दिखाता है) परन्तु उपक्रामति (वुह पास आता है) और प्रक्रामति (

दन्ते वा विप्रवदन्ति (वे झगड़ते हैं) सम्प्रवदन्ते (वे आपस में बोलते हैं) परन्तु सम्प्रवदन्ति (वे पक्षी) आपस में बोलते हैं) अपवदते (वुह अनुचित बोलता है) परन्तु अपवदति (वुह प्रतिकूल बोलता है) (उपसर्ग बिना वद् आत्मनेपद में आता है और शास्त्र इत्यादि में अथवा कृषि इत्यादि में निपुण होने का अर्थ देता है)। वह् (लेजा वा उठा) प्रवहति (वुह नदी बहती है)। विद् (जान) संवित्ते (वुह अच्छी रीति से जानता है) संविदते वा संविद्रते (वे अच्छी रीति से जानते हैं) ३०८ वां सूत्र देखो)। विश् (प्रवेश कर) निविशते (वुह प्रवेश करता है) शप् (शपत कर) शपते (वुह शपत करता है) ४ थी विभक्ति के साथ आता है)। श्रु सुन संशृणोति [वुह सुनता है] परन्तु संश्रृणुते (वुह अच्छी रीति से सुनता है) ३री विभक्ति के साथ आता है)। स्था (खड़ा हो) अवतिष्ठते [वुह धीर्य से रहता है] प्रतिष्ठते (वुह जाता है) वितिष्ठते (वुह अलग खड़ा रहता है) सन्तिष्ठते (वुह साथ रहता है) उपतिष्ठते (वुह पूजता है-वुह पास रहता है) जब किसी काम वा विषय में लीन होने का अर्थ देता है तब स्था उपसर्ग विना आत्मनेपद में आता है (पा० १, ३, २३) जैसे तिष्ठते गोपी कृष्णाय (गोपी कृष्ण के लिए लीन है) परन्तु उपतिष्ठति [वुह उपस्थित रहता है] किसी धर्म के काम में नहीं आता तब २ री विभक्ति चाहता है) उत्तिष्ठते (वुह तरसता है मोक्ष के लिए) परन्तु उत्तिष्ठति (वुह उठता है (बैठक से)। हन् (मार) आहते (६५४ वां सूत्र देखो वुह मारता है। आप को कर्म नहीं चाहता) परन्तु आहन्तिदृषभं (वुह बैल को मारता है)। स्वृ [शब्द कर] संस्वरते (वुह स्पष्ट शब्द कहता है)। हृ (ले) अनुहरते (वुह लेता है)। अपने माता पिता की प्रकृति) नहीं तो अनुहरति होता है)। ह्वे (बुला) उपह्वयते वा निह्वयते वा विह्वयते वा संह्वयते (वुह बुलाता है वा प्रार्थना करता है] अह्वयते (वुह ललकारता है (शत्रु को) परन्तु आह्वयति (वुह बुलाता है (बेटे को)॥

१८ी शाखा

थोड़े प्रेरणार्थक जो उपसर्ग उन से लगते हैं और जो अर्थ देते हैं उनके अनुसा- केवल परस्मैपद में आते हैं वा केवल आत्मनेपद में जैसे मुह् का प्रेरणार्थक परि साथ वश करने के अर्थ में केवल आत्मनेपद में आता है ऐसे ही गृध् (छलना का प्रेरणार्थक धोका देने के अर्थ में केवल आत्मनेपद में आता है और पञ्च् उठ) का प्रेरणार्थक आत्मनेपद में आता है परन्तु पचने के अर्थ में परस्मैपद में ता है फिर कृ का प्रेरणार्थक जब मिथ्या के साथ आता है और बुरा बोलने का र्थ देता है तब परस्मैपद में आता है (परन्तु केवल एक समय ऐसा करने के अ में) और झूठा भय उत्पन्नकराने के अर्थ में मुह् आत्मनेपद में आताहै परन्तु विषय के व्याख्यान से थोड़ा सा लाभ होसकता है सो दिखाने के लिए ऊपर देहुए थोड़े नहीं हैं

मिश्रित क्रियाएं जो कृ और भू के साथ क्रिया विशेषण मिलाने से वनाईजातीहैं

७८७वां सूत्र

ये क्रियाएं दो प्रकार की हैं पहली ये हैं जो कृ (कर) और भू (हो) के सा- क्रियाविशेषण मिलाने से बनाई जाती हैं दूसरी ये हैं जो इन क्रियाओं के साथ एं मिलाने से बनाई जाती हैं जो क्रियाविशेषणों के सदृश आती हैं

१ ली शाखा

पहले प्रकार की क्रियाओं के ये दृष्टान्त हैं अलङ्कृ (संवार) आविष्कृ (प्र- कर) ७२ वां सूत्र देखो) वहिष्कृ (वाहिर कर) पुरस्कृ (आगे कर वा रख) कृ (रहित कर) सत्कृ (सत्कार कर) नमस्कृ (नमस्कार कर) साक्षाद्भू. प्र- (प्रत्यक्ष हो इत्यादि)

७८८वां सूत्र

दूसरे प्रकार की क्रियाओं के दृष्टान्त आगे लिखेजाते हैं इनमें अपूर्णवाक्यों का

पिछला वर्ण अ वा आ होताहै तो ई से पलटजाता है जैसे सज्ज से सज्जीकृ (उपस्थित कर) सज्जीभू (उपस्थितहो) कृष्ण से कृष्णीकृ (काला कर) परिखा (खाई) से परिखीकृ (खाई बना) कभी अ आ होजाता है जैसे प्रिय से प्रियाकृ (प्यार कर अर्थात् प्रसन्न कर) पिछला इ वा उ दीर्घ होजाता है जैसे शुचि से शुचीभू (पवित्र हो) लघु से लघूकृ (हलकाकर) पिछला ऋ री होजाता है जैसे मातृ से मात्रीभू (माता हो वा बन) पिछला अस् और अन् ई होजाताहै जैसे सुमनस् से सुमनीभू (अच्छे मनवाला हो) राजन् से राजीभू (राजा हो)

१ली शाखा

परन्तु इस प्रकार के बहुत से मिश्रित रूप अन्त में रखनेवाले संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों से बनाए जाते हैं जैसे तृणीकृ (तृण समझ) स्तम्भीकृ (मोटा कर) एकचित्तीभू (एक चित्त हो) स्वीकृ (अपना कर वा समझ) मैत्रीभू (मित्र सा हो) कभी२ इन से संज्ञाएं बनाईजाती हैं जैसे मैत्रीभाव (मित्रता वा मित्र होना)

वर्णन

देखो पिछले वर्ण का कृ और भू के पहले ई के साथ पलटना च्वि कहलाताहै और आ के साथ पलटना डाच् कहाजाता है

२री शाखा

ये मिश्रित बहुधा कर्मणिवाच्य गुणीक्रियाओं में आतेहैं जैसे अलङ्कृत (संवाराहुआ) प्रादुर्भूत (प्रत्यक्ष होगयाहुआ) सज्जीभूत (उपस्थित होगयाहुआ) लघूकृत (हलका कियाहुआ) स्वीकरणीय (स्वीकार कियाजानेवाला वा स्वीकार करने के योग्य)

७८९वां सूत्र

कभी क्रियासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे सात् बढ़ने से इस प्रकार की मिश्रित क्रिया बनती है जैसे जल (पानी) से जलसात्कृ (पानीसा कर) भस्मन् (राख) से भस्मसात्कृ) ५८वां सूत्र देखो) (राख सा कर) (७२८वें सूत्र की १ ली

शाखा देखो)

३रा प्रकरण
मिश्रित क्रियाविशेषण

७९०वां सूत्र

मिश्रित क्रियाविशेषण बनते हैं पहले क्रियाविशेषणों को संयोजक उपसर्गों को और क्रियाविशेषणसम्बन्धी उपसर्गों का २री वि० ए० व० न० वाली संज्ञाओं के साथ मिलाने से दूसरे संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपदों के पीछे क्रियाविशेषण और विशेषण जो क्रियाविशेषणों के सदृश आते हैं लाने से

१ ली शाखा

पहले प्रकार के मिश्रित क्रियाविशेषण वैसेही होते हैं जैसे अव्ययीभाव मिश्रित होते हैं [७६० वां सूत्र देखो]

७९१ वां सूत्र

जो क्रियाविशेषण ७३१ वें सूत्र में बताए हैं उन में से बहुत से संज्ञाओं के अपूर्णपदों के पीछे आसकते हैं जैसे बालकसमीप (बालक के पास) रक्षार्थम् (रक्षा के लिए) प्रजार्थं (सन्तान के लिए) किमर्थम् (किस लिए) शब्दोच्चारणानन्तरम् (शब्द बोलने से पीछे) ७३१ वें सूत्र की ३ री शाखा भी देखो)

७९२ वां सूत्र

अव्ययीभाव गुणक्रिया आरभ्य (आरम्भ करके) अद्य (आज) के साथ आती है जैसे अद्यारभ्य (आज से) और शब्दों के अपूर्णपदों के साथ भी आती है और (से लेके) का अर्थ देती है (९२५ वां सूत्र देखो) प्रभृति इसी अर्थ में क्रियाविशेषण के सदृश आता है जैसे जन्मप्रभृति (जन्म से वा जन्म से लेके) बाल्यप्रभृति (बालपन से वा बचपन से लेके) (९१७ वां सूत्र देखो)

९ वां अध्याय

वाक्य रचना

७९३र्वा सूत्र

संस्कृत की वाक्यरचना में इतनी कठिनता नहीं पाईजाती है जितनी संस्कृत व्याकरण के दूसरे विषयों में पाई जाती है यथार्थ में जो मिश्रितों की बनावट अच्छी रीति से समझगया है सो वाक्यसम्बन्धी शब्दों के वाक्यविन्यास, वाक्यविवेक और पदान्वय अर्थात् प्रत्येक वाक्य में शब्दों को क्रम से लाने रखने और मिलाने में आधे प्रकार से भी अधिक जानचुका है

७९४र्वा सूत्र

देखो इस अध्याय में वाक्यरचना का आशय जहांतक होसके स्पष्ट रहे इसलिए प्रत्येक शब्द दूसरे शब्द से अलग रहेगा सन्धि के सूत्रों से स्वरों का मिलाना उचित होगा तो भी स्वर को मिलने न देंगे जब मिश्रित शब्द आवेंगे तब उनके पृथक पृथक अङ्गों की पृथकता दिखाने के लिए एक शून्य उनके तले रक्खेंगे परन्तु बहुत सी संस्कृत विद्या पद्य में लिखी है और पद्य के प्रबन्ध की अवश्यकता के आगे वाक्यरचना के सूत्र दबजाते हैं इस लिए जो सूत्र बताएंगे उन में बहुत सी अनियतता और अनिश्चितता पाईजायगी

नियततासूचक वा अनियततासूचक निपात

७१५वां सूत्र

संस्कृत की अच्छी भाषा में अनियततासूचक निपात नहीं है परन्तु कभी उस[के] पलटे कश्चिद् [कोई] (२२८वां सूत्र देखो) और नई संस्कृत में एक (एक) २००[वां] सूत्र में देखो) आते हैं जैसे एकस्मिन् प्रदेशे (एक वा किसी देश में) कश्चित् शृगालः (कोई गीदड़) नियततासूचक निपात के पलटे बहुधा सर्वनाम सः (वुह) २२०वां सूत्र [दे]खो) आता है जैसे स पुरुषः (वुह पुरुष) परन्तु बहुधा इसको नहीं लाते ॥

क्रिया की मिलावट पहली विभक्ति के साथ.

७१६वां सूत्र

क्रिया का वचन और पुरुष वुही होताहै जो उसके कर्ता का अर्थात् पहली वि[भ]क्ति का होता है जैसे अहं करवाणि (मैं करूं)

१ ली शाखा

इस के दूसरे दृष्टान्त ये हैं त्वम् अवधेहि (तू ध्यान कर) स ददाति (वुह देता है) [व]यं ब्रूमः (हम कहते हैं) कपोता ऊचुः (कपोतों ने कहा) यूयं चिन्तयत (तु[म] [सो]चो) यूयम् आयात (तुम आओ) सज्जनाः पूज्यन्ते (सज्जन आदर किए [जा]ते हैं) वाति पवनः (पवन चलती है) उदेति शशाङ्कः (चन्द्रमा उदय होताहै) [स्फु]रति पुष्पम् (फूल खिलता है)

वर्णन

[सो इ]सलिए जो एक२ वचन के दो नाम च से मिलाए जाते हैं तो द्विवचन वाली [क्रि]या चाहतेहैं जैसे राजा मन्त्री च जग्मतुः (राजा और मन्त्री गए) यावत् चन्द्रा[र्कौ] तिष्ठतः (जबतक चन्द्र और सूर्य रहते हैं) ॥

२ री शाखा

क्रिया का स्थान सदा एक ही नहीं रहता कभी वाक्य में पहले भी आती है

७१७वां सूत्र

जब कोई गुणक्रिया किसी नियत क्रिया का स्थान लेती है तब पुरुष वचन और लिङ्ग में कर्त्ता के सदृश होती है जैसे स गतः (वह गया वा गयाहुआ) सा गता (वह गई वा गईहुई) नार्यौ उक्तवत्यौ (वे दो स्त्री बोलीं वा बोलीहुईं) राजा हतः (राजा मारागया वा माराहुआ) बन्धनानि छिन्नानि (बन्धन काटेगए वा काटे हुए)

१ ली शाखा

जब कभी गुणक्रिया दो वा अधिक कर्त्ताओं के बीच में आती है तब वह वचन और लिङ्ग में केवल एक के सदृश होती है जैसे स्वभूः प्रबोधिता पुत्रश्च (अपनी स्त्री समझाई गई वा जगाई गई और पुत्र).

२ री शाखा

ये दृष्टान्त बताने योग्य हैं राज्यम् आत्मा वयं वधूर् नीतानि पणताम् [राज्य आप हम स्त्री लाएगए वा लाएहुए खूंटे पर] (किरात ११. २७) (९०६ठा सूत्र भी देखो)

३ री शाखा

बहुधा उद्देश्य विधेय संयोजक क्रिया नहीं आती जो उद्देश्य (कर्त्ता) को विधेय (विशेषण) के साथ मिलाती है तब जो विशेषण क्रिया का स्थान लेताहै सो वचन और लिङ्ग में मिलावट के सूत्रों का अनुगामी होता है जैसे धनं दुर्लभम् (धन दुर्लभ (है) आवां कृताहारौ (हम दो अहार किएहुए (हैं) परन्तु जब संज्ञा क्रिया के स्थान में आती है तब लिङ्ग वा वचन की मिलावट अवश्य नहीं है जैसे सम्पदः पदम् आपदाम् (सम्पत आपदा का मार्ग है)

विशेषण की मिलावट संज्ञा के साथ

७१८वां सूत्र

विशेषण गुणक्रिया वा विशेषणसम्बन्धी सर्वनाम अमिश्रित रहके संज्ञा के सा

य आते हैं तब लिङ्ग वचन और विभक्ति में अवश्य उसके सदृश होते हैं जैसे साधुः पुरुषः (अच्छा पुरुष) महद् दुःखम् (बड़ा दुख) एतेषु पूर्वोक्तेषु राष्ट्रेषु (इन आगे कहेहुए देशों में) त्रीणि मित्राणि (तीन मित्र)

अपेक्षापूरक की मिलावट सापेक्षक के साथ

७९९वां सूत्र

अपेक्षापूरक को सापेक्षक संज्ञा के साथ लिङ्ग वचन और पुरुष में मिलाना पड़ता है परन्तु संस्कृत में अपेक्षापूरक सर्वनाम बहुधा जिस संज्ञा से प्रयोजन रखता है उसके पहले आता है और वुह संज्ञा अपेक्षापूरक के साथ उन्हीं विभक्ति में रहती है और सर्वनाम तद् पिछले वाक्यखण्ड में रहता है जैसे यस्य नरस्य बुद्धिः स बलवान् (जिस पुरुष की बुद्धि है सो बलवान है अर्थात् जो पुरुष बुद्धि रखता है सो बलवान है)

१ ली शाखा

जिस संज्ञा से अपेक्षापूरक सम्बन्ध रखता है सो तद् के साथ आ भी सकती है जैसे यस्य बुद्धिः स नरो बलवान् (जिसकी बुद्धि सो नर बलवान अर्थात् जो नर बुद्धि रखता है सो नर बलवान है) अथवा संज्ञा छोड़दीजाती है जैसे यत् प्रतिज्ञातं तत् पालय (जो प्रतिज्ञा की है सो पूरी कर) येषाम् अपत्यानि खादितानि तै (पक्षिभिः) जिज्ञासा समारब्धा (जिन पक्षियों के पुत्र खाएगए उनसे पूछापूछी की गई अर्थात् उन्हीं ने पूछापूछी की) यः सर्वान् विषयान् प्राप्नुयात् यश्च एतान् उपेक्षेत तयोर् विषयापेक्षकः श्रेयान् (जो सब विषयों को पाए और जो उनको नहीं चाहे उन दोनों से विषय का न चाहने वाला अच्छा है)

८००वां सूत्र

कभी अपेक्षापूरक अकेला आता है और सापेक्षक संज्ञा वा सर्वनाम गुप्त रहता है उससे अपेक्षापूरक अपना लिङ्ग और वचन लेता है जैसे श्रुतेनापि यो न धर्मम् आचरेत् (सुनने से भी जो धर्म को नहीं करे) धनेनापि यो न ददाति (धन से भी

जो नहीं देता.]

१ ली शाखा

कभी सापेक्षक संज्ञा अपेक्षापूरक के पहले यथाप्रकाश आती है जैसे सा भार्या यस्यां भर्ता न तुष्यति (वह स्त्री नहीं है जिस पर भर्ता तुष्ट नहीं होत

८०१ला सूत्र

तावत् और यावत् संकेतसूचक और अपेक्षापूरक के सदृश-एक दूसरे के सा आते हैं जैसे यावन्ति तस्य द्वीपस्य वस्तूनि तावन्ति अस्माकम् उपनेतव्यानि (जि तनी उस द्वीप की वस्तु हैं उतनी हमको लाने योग्य हैं (८७६ वां सूत्र भी देखो

१ ली शाखा

ऐसे ही तादृश और यादृश जैसे यादृशं वृत्तं तादृशं तस्मै कथितवन्तः (जैसा हु आ वैसा उससे उन्हों ने कहा) ५२० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

संज्ञाओं की वाक्यरचना

८०२ रा सूत्र

इस वाक्यरचना में संज्ञाओं की मिलावट बताएंगे और जो क्रियाएं उनपर अप ना प्रभाव रखेंगी उनका मुख्य विचार न करेंगे और इसलिए वे दृष्टान्त बताने उचित हैं जो आदि में १ वि० सम्बन्धी संज्ञा रखते हैं

कर्तृवाचक वा पहली विभक्ति

८०३ रा सूत्र

जो संज्ञा अकेली आती है सो अवश्य १ वि० में आसकती है जैसे हितोपदेशः (हितोपदेश) भट्टिकाव्यम् (भट्टिकाव्य).

१ ली शाखा

दो कर्ता पृथक २ वचन के एक अवस्था में आसकते हैं जैसे गुणानि शय्या (बि छौने की पात)

कर्मवाचक वा दूसरी विभक्ति

८०४था सूत्र

संज्ञाएं जबतक क्रियाओं वा गुणक्रियाओं के साथ नहीं मिलती हैं तबतक दूसरी विभक्ति में नहीं आती परन्तु जब समय वा स्थान की स्थिरता दिखाती हैं तब आसकती हैं (८२१ वां सूत्र देखो)

करणवाचक वा तीसरी विभक्ति

८०५वां सूत्र

यिह विभक्ति बहुत से प्रथक२ अर्थ रखती है जो अर्थ बहुत आते हैं सो कर्तृवाचक और करणवाचक होते हैं अर्थात् वे जिनसे कोई काम कियाजाता है जैसे मया(उक्तम्) (मुझसे कहाहुआ या कहागया) व्याधेन (पाशो योजितः) (वधिक से फन्दा लगायाहुआ वा लगायागया) वेदाध्ययनेन (वेद पढ़ने से) स्वचक्षुषा (अपनी आंख से)

८०६ठा सूत्र

यिह दूसरे प्रसंगिक अर्थ में साथ का अर्थ देतीहै जैसे बलीयसा स्पर्धा (बलवान के साथ समान होना) मित्रेण सम्भाषः (मित्र के साथ बोलना) पशुभिः सामान्यम् (पशुओं के साथ समान होना) पितुर् गोचरेण (पिता के जानने के साथ) विशेषकरके जब साथ का अर्थ वांछित होताहै जैसे शिष्येण गुरुः (शिष्य के साथ गुरु) आत्मनापञ्चमः (आत्मा के साथ पांचवां अथवा आप समेत पांचवां)

८०७वां सूत्र

यिह विभक्ति कभी से द्वारा वा सहायता या कारण से का अर्थ देती है जैसे रूपया (रूपा से वा रूपा की द्वारा वा सहायता वा रूपा के कारण से) तेन अपराधेन (उस अपराध से अर्थात् उस अपराध के कारण से) विशेषकरके उन अवस्थावाचक संज्ञाओं में जो ता बढ़ने से बनतींहैं (८० वें सूत्र का ६२ वां प्रत्य-

य देखो) जैसे मूढ़तया (मूढ़ता से अर्थात् मूढ़ता के कारण से)

१ ली शाखा

कभी अनुसार का अर्थ देती है जैसे विधिना (विधि से अर्थात् विधि के अनुसार) मम सम्मतेन (मेरी सम्मत से अर्थात् मेरी सम्मत के अनुसार) जात्या (जन्म से अर्थात् जन्म के अनुसार)

२ री शाखा

कभी वुह रीति वा प्रकार दिखाती है जिस रीति वा प्रकार से कोई काम कियाजाता है जैसे बाहुल्येन (बहुतायत से अर्थात् बहुतायत की रीति से) धर्मेण (धर्म से वा धर्म की रीति से) यथेच्छया वा स्वेच्छया (इच्छा से अर्थात् जिस रीति की इच्छा हो उस रीति से) सुखेन (सुख से अर्थात् जिस रीति से सुख हो उस रीति से) अनेन विधिना (इस रीति से) महता स्नेहेन (निवसतः) (वे दो बहुत स्नेह से रहते हैं अर्थात् जिस रीति से बहुत स्नेह दिखाई देताहै उस रीति से रहतेहैं) (नृपः सर्वभूतानि अभिभवति) तेजसा (राजा सब प्राणियों से अधिक होताहै तेज से अर्थात् तेज की रीति से) मनसा [न कर्तव्यम्] (मन से अर्थात् जिस रीति से मन हो उस रीति से नहीं करना चाहिए) मानुषरूपेण (मनुष्य के रूप से अर्थात् मनुष्य के रूप की रीति से) प्रतिबन्धेन (रोक से अर्थात् रोक की रीति से)

८०८ वां सूत्र

जिस की चाहना या आवश्यकता होती है उसकी तीसरी विभक्ति के साथ वुह चाहना वा आवश्यकता दिखानेवाली संज्ञा लाई जाती है जैसे चर्चया न प्रयोजनम् (चर्चा से अर्थात् चर्चा का कुछ काम नहीं) मया सेवकेन न प्रयोजनम् (मुझ सेवक से अर्थात् मुझ सेवक का प्रयोजन नहीं) तृणेन कार्यम् (तिनके से अर्थात् तिनके का काम)

८०९ वां सूत्र

स्त्री) को उस के सेवकों से चन्दन के जल से उसने फिर जिलवाया)

सम्प्रदानवाचक वा चौथी विभक्ति

८११वां सूत्र

यिह विभक्ति बहुत नहीं आती और इस के अर्थ क्रियाओं के प्रभाव से सम्बन्ध न रख के उस कर्म वा हेतु वा कारण से सम्बन्ध रखते हैं जिस के लिए वुह काम कियाजाता है वा उस काम का फल दिखायाजाता है जैसे आत्मविवृद्धये (अपने बढ़ने के लिये) आपत्प्रतीकाराय (आपत के प्रतीकार के लिए) शस्त्रं च शास्त्रं च प्रतिपत्तये (शस्त्र और शास्त्र प्रतिष्ठा के लिये)

१ली शाखा

जब जैसा पिछले दृष्टान्त में वुह फल वा अन्त जिसके लिए कोई काम आता है इस विभक्ति से दिखायाजाता है तब क्रिया कभी आती है परन्तु बहुधा इस विभक्ति ही में समझीजाती है इस के दूसरे दृष्टान्त ये हैं यत्र आस्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे (जहां विश का संसर्ग है तहां अमृत भी मृत्यु के लिए है) उपदेशो मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (उपदेश मूर्खों के कोप के लिए न शान्त के लिये) स वृद्धपतिस् तस्याः सन्तोषाय न अभवत् (वुह वृद्ध पति उस (स्त्री) के सन्तोष के लिये नहीं हुआ) स राजा तस्या रुचये न बभूव (वुह राजा उस स्त्री की प्रसन्नता के लिये न हुआ) सिद्धये गच्छ (सिद्धि के लिए जा)

२री शाखा

आगे जान पड़ेगा कि जाने और सम्बन्ध का अर्थ रखनेवाली कई क्रियाएं चौथी विभक्ति चाहती हैं और जो संज्ञाएं ऐसी क्रियाओं से निकलती हैं सो भी ऐसाही प्रभाव रखती हैं जैसे अन्यस्मै दानम् (दूसरे के लिए देना) अन्यस्मै कथनम् (दूसरे के लिए कहना) ..

३री शाखा

जो नमस्कार वा प्रतिष्ठा का अर्थ देती हैं सो भी चौथी विभक्ति के साथ

आती हैं जैसे गणेशाय नमः (गणेश के लिए नमस्कार) कुशलं ते (तेरे लिए कुशल

अपादानवाचक वा पांचवीं विभक्ति

८१२वां सूत्र

इस विभक्ति का शुद्ध अर्थ (से में से पास से वा ऊपर से) से दिखाया जाता है जैसे लोभात् [क्रोधः प्रभवति] (लोभ से वा लोभ में से क्रोध उठता है) गिरेः पतनम् (पहाड़ से वा पहाड़ के ऊपर से गिरना) चाराणांमुखात् (दूतों के मुख से)

८१३वां सूत्र

इस लिए यह विभक्ति बहुतसे परस्परसम्बन्धी अर्थ देती है जैसे आहारात् किञ्चित् (आहार से वा आहार में से कुछ) और तीसरी विभक्ति के अनुसार हेतु से कारण से निमित्त से का भी अर्थ देती है जैसे गोमनुष्याणां वधात् (गाय और मनुष्यों के वध से अर्थात् वध करने के कारण से) अनवसरप्रवेशात् (पुत्रं निन्दति) [ठीक समय पर न आने से अर्थात् न आने के कारण से वृद्ध पुत्र को बुरा कहता है) दण्डभयात् (दण्ड के भय से अर्थात् दण्ड के भय के कारण से) अस्मत्पुण्योदयात् (हमारे पुण्य के उदय से अर्थात् उदय के कारण से) फलाभोऽविशेषात् (फल के विशेष न रहने से अर्थात् न रहने के कारण से) ।

१ली शाखा

अनुसार का भी अर्थ देती है जैसे मन्त्रिवचनात् (मन्त्री के वचन से अर्थात् मन्त्री के वचन के अनुसार) जो अवस्थावाचक संज्ञाएं त्व लगाने से बनती हैं सो बहुधा इसी विभक्ति में आती हैं और ऐसे ही अर्थ देती हैं जैसे अनवस्थितचित्तत्वात् (चित्त स्थिर न होने से अर्थात् स्थिर न होने के अनुसार) विशेषकर के टीकाकारों के व्याख्यान में जैसे वक्ष्यमाणत्वात् (आगे कहाजानेवाला होने से अर्थात् आगे कहाजानेवाला होने के अनुसार) स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् (स्पृष्ट ईषत्स्पृष्ट ईषद् विवृत् विवृत और संवृत के भेद से अर्थात् भेद के अनुसार)

८१४वां सूत्र

चिह्न द्वारा या कारण का भी अर्थ देती है जैसे शृगालात् पाशबद्धः (गीदड़ से अर्थात् गीदड़ के द्वारा या कारण से जाल में बंधाहुआ) न औषधपरिज्ञानाद् (व्याधेः शान्तिर् भवेत्) (औषध के ज्ञान ही से अर्थात् ज्ञान की द्वारा व्याधि की शान्ति नहीं होसकती)

१ ली शाखा

जिस रीति से कोई काम कियाजाता है सो बहुधा इस विभक्ति से दिखाईजाती है और यह चिह्न क्रिया विशेषण के सदृश आती है (७१५वां सूत्र देखो) जैसे यत्नात् (यत्न से अर्थात् जिस रीति से यत्न होसकता है उस रीति से) बलात् (बल से अर्थात् बल के साथ या जिस रीति से बल होसकता हो उस रीति से) कुतूहलात् (कुतूहल से अर्थात् कुतूहल की रीति से) उपचारात् उपचार से अर्थात् उपचार की रीति से) मूलाद् उद्धरणम् (मूल से अर्थात् मूल के साथ उखाड़ना अर्थात् जिस रीति से मूल उखड़सकताहै उस रीति से उखाड़ना) अथवा पांचवीं विभक्ति या प्रत्यय तस् (तः) से जैसे स्वेच्छातः (अपनी इच्छा से अर्थात् जिस रीति से अपनी इच्छा हो उस रीति से (७१९वें सूत्र की १ ली और २ री शाखा देखो)

२ री शाखा

यह विभक्ति पीछे का भी अर्थ देती है जैसे शरीरविगमात् (शरीर अलग होने से अर्थात् शरीर अलग होने के पीछे) मुख्यप्रतिबन्धनात् (मुखिया को बांधने से अर्थात् बांधने के पीछे) तस्य आगमनात् (उस के आने से अर्थात् उस के आने के पीछे)

३ री शाखा

ऐसे ही व्याकरण के ग्रन्थों में यह विभक्ति पीछे के अर्थ में आतीहै जैसे रहाभ्याम् (र और ह से अर्थात् र और ह के पीछे) शात् (श से अर्थात् श के पीछे) ऋवर्णाद् नस्य णत्वं वाच्यम् (ऋ वर्ण से अर्थात् ऋ और ॠ से अर्थात् ऋ और ॠ के पीछे न का ण होना कहना चाहिये)

४ थी शाखा

समय के साथ छिट विभक्ति (में या बीच) का अर्थ देती हैं जैसे त्रिपक्षा (तीन पक्ष में)

५ वीं शाखा

जो संज्ञाएं डर का अर्थ देती हैं सो डराने वाली वस्तु को अपने साथ पांचवीं विभक्ति में चाहती हैं जैसे मृत्योर् भयम् (मृत्यु से भय) चौरेभ्यो भयम् (चोरों से भय)

सम्बन्धवाचक अर्थात् छठी विभक्ति

८१५ वां सूत्र

छिट विभक्ति और सातवीं विभक्ति बहुत फैलाव रखती हैं अर्थात् बहुत से अर्थ देती हैं दोनों बहुधा सन्देहयुक्त और मध्य वर्ती रीति से ऐसे अर्थ दिखाती हैं जो दूसरी विभक्तियों से दिखाए जाते हैं

१ ली शाखा

छठी विभक्ति का शुद्ध अर्थ (का) के सदश है सो बहुधा दो संज्ञाओं के साथ तब आती है जब वे दोनों एक बात दिखाती हैं जैसे मित्रस्य वचनम् (मित्र का वचन) भर्ता नार्याः परमं भूषणम् (भर्ता स्त्री का परमभूषण (है) न नरस्य नरो दासो दासस् तु अर्थस्य (नर का नर दास नहीं परन्तु धनका दास (है)

८१६ वां सूत्र

बहुधा छठी विभक्ति से केवल रखना अथवा स्वामी होना पायाजाता है क्रिया बिना जैसे सर्वाः सम्पत्तयस् तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् (सब सम्पत्ति उसकी जिस का मन सन्तुष्ट अर्थात् वह सब सम्पत्ति रखता है जो सन्तुष्ट मन रखता है अथवा जो सन्तुष्ट मन का स्वामी (है) सो सब सम्पत्तियों का स्वामी (है) धन्योऽहं यस्य ईदृशी भार्या (मैं धन्य हूं जिसकी ऐसी स्त्री अर्थात् जो ऐसी स्त्री रखताहूं अथवा ऐसी स्त्री का स्वामी हूं)

१ ली शाखा

परन्तु बहुधा यिह विभक्ति (को वा लिए) का अर्थ देती है और ४थी वि० के पलटे आती है जैसे प्राणा आत्मनोऽभीष्टाः (प्राण अपने प्यारे अर्थात् अपने को वा अपने लिए प्राण प्यारे (हैं) न योजनशतं दूरं बाह्यमानस्य तृष्णया (तृष्णा से उठाएजानेवाले के सौ योजन दूर नहीं अर्थात् तृष्णा से उठाएजानेवाले को वा तृष्णा से उठाएजानेवाले के लिए सौ योजन दूर नहीं हैं) किं प्रज्ञावताम् अविदितम् (बुद्धिवानों का क्या न जानाहुआ अर्थात् बुद्धिवानों को वा बुद्धिवानों के लिए क्या न जानाहुआ (है) किम् अन्धस्य (प्रकाशयति) प्रदीपः (अन्धे का दिया क्या दिखाता है अर्थात् अन्धे को वा अन्धे के लिए दिया क्या दिखाताहै) किं मया अपकृतं राज्ञः (मुझ से राजा का क्या बुरा कियाहुआ अर्थात् मुझ से राजा को वा राजा के लिए क्या बुरा कियाहुआ (है) किम् अयम् अस्माकं (कर्तुं समर्थः) (यिह हमारा अर्थात् हमको वा हमारे लिए [क्या करने को सामर्थ (है)]

२ री शाखा

यिह विभक्ति बहुधा (में वा पर) का अर्थ देती है जैसे स्त्रीणां विश्वासः (स्त्रियों का विश्वास अर्थात् स्त्रियों में वा स्त्रियों पर विश्वास) मम आयत्तत्वम् (मेरी आधीनता अर्थात् मुझ में आधीनता)

३ री शाखा

कभी२ यिह (से वा द्वारा) का अर्थ देती है जैसा पांचवीं वा तीसरी विभक्ति देती है जैसे न कस्यापि (उपायनं गृहीतव्यं) (किसी की भी भेट नहीं लेनी चाहिए अर्थात् किसी से वा किसी की द्वारा भेट नहीं लेनी चाहिए) अस्माकं (वनं त्याज्यम्) (हमारा वन छोड़ने योग्य है अर्थात् हम से वा हमारी द्वारा से वन छोड़ाजाना चाहिये) स धन्यो यस्य अर्थिनो न प्रयान्ति विमुखाः (वुह धन्य जिसके मांगनेवाले विमुख नहीं जाते हैं अर्थात् वुह धन्य है जिस से वा जिसकी द्वारा से मां-

मनेवाले विमुख नहीं जाते) नलस्य उपसंस्कृतं मांसम् (नल का अर्थात् नल से वा नल की द्वारा पकायाहुआ मांस)

४थी शाखा

षष्ठ विभक्ति दो का अन्तर भी दिखाती है जैसे स्वामिसेवकयोर्महद् अन्तरम् (स्वामी और सेवक का बड़ा अन्तर है) (८०९ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

५ वीं शाखा

व्याकरणों में षष्ठ विभक्ति पलटे का अर्थ देती है जैसे उरण् रपरः (अण् पलटे ऋ के जब र पीछे आता है)

अधिकरणवाचक अर्थात् सातवीं विभक्ति

८१७वां सूत्र

७वीं विभक्ति ६ ठी विभक्ति के सदृश बहुत अर्थों में आती है और दूसरी विभक्तियों का भी काम देती है इसका शुद्ध अर्थ में वा पर वा ओर है जैसे रात्रौ (रात में) ग्रामे (गांव में) पृष्ठे (पीठ पर) त्वयि विश्वासः (तुझ में विश्वास) मरुस्थल्यां वृष्टिः (रेती के स्थान पर बर्सात) प्रथमबुभुक्षायाम् (पहली भूख पर अर्थात् पहली भूख की ओर) पृथिव्यां रोपितो वृक्षः (पृथिवी में लगायाहुआ पेड़)

८१८वां सूत्र

षष्ठ ओर वा साथ का अर्थ देती है जैसे क्षमा शत्रौ च मित्रे च (शत्रु और मित्र पर अर्थात् शत्रु और मित्र की ओर क्षमा) सर्वभूतेषु दया (सब प्राणियों पर अर्थात् सब प्राणियों की ओर दया) सुहृत्सु अजिह्मः (मित्रों में अर्थात् मित्रों की ओर सचा) धूर्तेषु शतम् असत्सु नरम् (धूर्तों में अर्थात् धूर्तों की ओर वा धूर्तों के साथ सौ अच्छे काम वृथा (हैं) नलेऽनुरागः (नल में अर्थात् नल की ओर वा नल के साथ स्नेह) तस्याम् अनुरागः (उस (स्त्री) में अर्थात् उस (स्त्री) की ओर वा उस (स्त्री) के साथ स्नेह)

८१९ वां सूत्र

जो शब्द कारण वा हेतु वा प्रयोजन का अर्थ रखते हैं सो इस विभक्ति के साथ आते हैं जैसे सत्रपत्वे हेतुः (उस के स विनय होने में हेतु (है) भूपालयोर् विग्रहे भवद्वचनं निदानम् (दो राजाओं के बिगाड़ में आप की बात निदान अर्थात् कारण (थी) भर्तृकाभावः सतीत्वे कारणं स्त्रियाः (पति का वियोग स्त्रियों के सती होने में कारण (है) नौकायां किं प्रयोजनम् (नाव में अर्थात् नाव का क्या प्रयोजन) और जो शब्द काम वा लीन होने का अर्थ देते हैं सो भी इसी विभक्ति के साथ आते हैं जैसे अर्थार्जने प्रवृत्तिः (धन के प्राप्त करने में लगना वा लीन होना) .

१ ली शाखा

जो शब्द मूल युज् से निकले हैं सो बहुधा इसी विभक्ति के साथ आते हैं जैसे मम राज्यरक्षायाम् उपयोगः (राज की रक्षा में मेरा काम)

२ री शाखा

यिह विभक्ति कारण, लिए, निमित्त का अर्थ भी देती है जैसे मे छिद्रेषु (मेरे छिद्रों में अर्थात् मेरे छिद्रों के लिए वा छिद्रों के कारण से) चारः पराराष्ट्राणाम् अवलोकने (दूत पराए राजस्थानों के देखने में अर्थात् देखने को वा देखने के लिए) युद्धे कालोऽयम् (युद्ध में अर्थात् युद्ध के लिए यिह समय) उपदेशेऽनादरः (उपदेश में अर्थात् उपदेश के लिए अनादर) का चिन्ता मरणे रणे (क्या चिन्ता लड़ाई में अर्थात् लड़ाई के लिए मरने में अर्थात् मरने से वा मरने के कारण से) कालं मन्ये पलायने (समय को भागने में अर्थात् भागने के लिए मानता हूं) पुत्रस्य अनुमते (पुत्र के अनुमत में अर्थात् पुत्र के अनुमत के कारण से)

३ री शाखा

यिह मूल का अर्थ बताने में भी आती है जैसे ग्रह् उपादाने (ग्रह उपादान में अर्थात् लेने के अर्थ में (आता है)

कुछ दिनों के लिए) परन्तु ३ री वि० कभी इस अर्थ में आती है और कभी दूसरे अर्थ भी देती है जैसे द्वादशभिर् वर्षैर् वाणिज्यं कृत्वा (बारह वर्ष तक बनज करके) कतिपयदिवसैः (थोड़े दिन तक) और कभी ६ ठी वि० लाते हैं जैसे चिरस्य कालस्य (अथवा चिरस्य) [बहुत काल तक] कतिपयाहस्य (थोड़े दिन के पीछे)

८२२वां सूत्र

जब कोई मुख्य वर्ष वा सम्वत अथवा कोई तिथि जिसपर वा जिस में कोई काम हुआ है वा होगा दिखाते हैं तब ७वीं विभक्ति लासकते हैं जैसे कस्मिंश्चिद् दिवसे (किसी दिन को वा किसी दिन पर) तृतीये दिवसे (तीसरे दिन को वा तीसरे दिन पर) द्वादशेऽह्नि (बारहें दिन को वा बारहें दिन पर) इतः सप्तदशेऽहनि [इस से अर्थात् इस समयसे १७वें दिनको वा दिनपर] अथवा कभी २री वि० लातेहैं जैसे यां रात्रिं ते दूताः प्रविशन्ति स्म पुरीं तां रात्रिं भरतेन स्वप्नो दृष्टः (जिस रात को वे दूत पुरी में पहुंचे उस रात को भरत से स्वप्न देखा गया अर्थात् भरत ने स्वप्न देखा)

१ ली शाखा

जो क्रियाविशेषण ७३१ वें सूत्र में बताए हैं सो बहुधा समय का सम्बन्ध दिखाते हैं जैसे षण्मासाद् ऊर्ध्वम् वा षण्मासाद् परम् (छः महीने से ऊपर वा छः महीने से पीछे अर्थात् छः महीने पीछे) षण्मासेन वा षण्मासाभ्यन्तरेण पूर्वम् (छः महीने से वा छः महीने से पहले) अथवा अकेली सातवीं विभक्ति लाते हैं जैसे पूर्णे वर्षसहस्रे [पूरे सहस्र वर्ष में वा पीछे]

अन्तर वा स्थानसूचक संज्ञाओं की वाक्यरचना

८२३वां सूत्र

जो संज्ञाएं दो, स्थानों का अन्तर वा बीच दिखाती हैं सो पहली विभक्ति में आसकती हैं जैसे शतं कोशाः सोमनाथात् (सोमनाथ से सौ कोस) परन्तु अधिक शुद्धता से २री वि० में आती हैं जैसे योजनम् (एक योजन वा एक योजन तक)

कोशम् (एक कोस था एक कोस तक) अथवा ३ री विभक्ति में जैसे कोशेन ग-ता (एक कोस जाके) और जिस स्थान में कोई काम किया जाता है उस को ७ वीं विभक्ति में लाते हैं जैसे विदर्भेषु (विदर्भ देश में)

विशेषणों की वाक्यरचना

विशेषणों के पहले दूसरी विभक्ति

८२४वां सूत्र

जो विशेषण इच्छार्थक अपूर्णपदों से बनाएजाते हैं सो बहुधा २ री विभक्ति चाहते हैं जैसे वे क्रियाएं चाहती हैं जिन से वे बने हैं जैसे त्वगृहं जिगमिषुः (अपने घर को जायाचाहनेवाला) पुत्रम् अभीप्सुः (पुत्र को पायाचाहनेवाला) राजानं दिदृक्षुः (राजा को देखाचाहनेवाला)

विशेषणों के पहले ३ री विभक्ति

८२५वां सूत्र

जो विशेषण और विशेषणों के सदृश आनेवाली गुणक्रियाएं घटना वा रलना दिखाते हैं सो ३ री विभक्ति चाहते हैं जैसे अर्थेन हीनः (धन से घटाहुआ) धनैः समायुक्तः (धनों से अर्थात् धन से मिलाहुआ) वारिणा पूर्णो घटः (जल से अर्थात् जल से भराहुआ घड़ा)

८२६वां सूत्र

ऐसे ही सदृशता वा समानतासूचक अभिन्नता वा अल्पन्नतासूचक जैसे अनेन स-दृशो लोके न भूतो न भविष्यति (इस से वा इस के सदृश लोक में न हुआ न होगा) ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते (वह ब्राह्मण के समान पढ़ताहै) पारस्य सदृश उदयः (पारस के सदृश उदय) प्राणैः समा पत्नी (प्राण के समान पत्नी) राजा अभ्यधिको नृपः (राजाओं से अधिक देनेवाला) आदित्येन तुल्यः (सूर्य से अर्थात् सूर्य के सदृश) कभी २ ६ ठी विभक्ति के साथ भी आते हैं (८२७ वें सूत्र

की २ री शाखा देखो)

विशेषणों के पहले ६ ठी विभक्ति

८२७ वां सूत्र

जो विशेषण प्रिय या अप्रिय का अर्थ देते हैं सो ६ ठी विभक्ति के साथ आते हैं जैसे राज्ञां प्रियः (राजाओं का प्यारा) भर्तारः स्त्रीणां प्रियाः [भर्त्ता स्त्रियों के प्यारे] न कश्चित् स्त्रीणाम् अप्रियः (स्त्रियों का कोई अप्रिय नहीं) द्वेष्यो भवति मन्त्रिणाम् (वुह मन्त्रियों का अनिच्छित है)

१ ली शाखा.

जो विशेषण भयसूचक हैं सो ५वीं ६ ठी विभक्ति के साथ आते हैं जैसे कपेर् भीतः (कपि का अर्थात् कपि से डराहुआ)

२ री शाखा

जो विशेषण समानता वा अनुसारता दिखातेहैं सो कभी२ ६ ठी और ३ री विभक्ति के साथ आसकते हैं (८२६ वां सूत्र देखो) जैसे सर्वस्य समः (सब के समान) तस्य अनुरूपः [उस के अनुसार] चन्द्रस्य कल्पः (चन्द्रमा के समान) न तस्य तुल्यः कश्चन (उस के तुल्य कोई नहीं)

३ री शाखा

ऐसे ही दूसरे विशेषण जैसे परोपदेशः सर्वेषां सुकरः नृणाम् (सब नरों का अर्थात् नरों को दूसरों को उपदेश करना सहज है) सुखानाम् उचितः (सुखों के उचित) उचितः क्लेशानाम् (दुखों के उचित) अज्ञातं धृतराष्ट्रस्य (धृतराष्ट्र का नजानाहुआ) धर्मस्य कल्पः (धर्म का पक्का)

विशेषणों के पहले ७ वीं विभक्ति

८२८ वां सूत्र

जो विशेषण और विशेषणों के सदृश आनेवाली गुणक्रियाएं शक्ति वा योग्यता

दिखाते हैं सो ७ वीं वि॰ के साथ आते हैं जैसे अध्वनि क्षमा अश्वाः (मार्ग में अर्थात् मार्ग के योग्य घोड़े) महति शत्रौ क्षमो राजा (राजा बड़े शत्रु में अर्थात् बड़े शत्रु के योग्य वा सामर्थ्य) अशक्ता गृहकरणे शक्ता गृहभञ्जने (घर बनाने में असामर्थ और तोड़ने में सामर्थ)

१ ली शाखा

ऐसे ही दूसरे विशेषण जैसे शस्त्रेषु कुशलः (शस्त्रों में निपुण) अल्पेषु प्राज्ञः (छोटी बातों में बुद्धिवान) त्वयि अनुरक्तो विरक्तो वा स्वामी (स्वामी तुझ में वा तुझसे प्रसन्न है वा अप्रसन्न) अनुजीविषु मन्दादरः (अपने आधीनों में अर्थात् आधीनों का थोड़ा आदर करने वाला)

अतितासूचक और अत्यन्ततासूचक की वाक्यरचना

८२१वां सूत्र

अतितासूचक विशेषण जिससे अतिता दिखाते हैं उसके लिए ५ वीं विभक्ति चाहते हैं जैसे पत्नी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी (प्राण से भी अति प्यारी पत्नी) पुत्रस्पर्शात् सुखतरः स्पर्शो लोके न विद्यते (पुत्र को मिलने से अति सुख करने वाला मिलना संसार में नहीं है) धनार्जनात् प्रजारक्षणं श्रेयः (प्रजा की रक्षा वृद्धि से अधिक अच्छी है) न मत्तो (७११ वें सूत्र की १ली शाखा देखो) दुःखितरः पुमान् अस्ति (न मुझसे अति दुखी पुरुष है) मतिर् बलाद् बलीयसी (मति बल से अति बलवान है)

८२२वां सूत्र

कर्म॰२ चिह्न जिस में अतिता दिखाते हैं उस के लिए ३री विभक्ति चाहते हैं जैसे प्राणैः प्रियतरः (प्राणों से अति प्यारा) न अस्ति मया कश्चिद् अल्पभाग्यतरो भुवि (मुझ से कोई अति अल्पभागी पृथिवी में नहीं है)

१ली शाखा

जब यिह दो में से एक की अतिता दिखाताहै तब ६ठी विभक्ति चाहसकताहै जैसे अनयोर् देशयोः को देशो भद्रतरः (इन दो देशों का अर्थात् इन दो देशों में से कौनसा देश अधिक अच्छा है)

८३५वां सूत्र

अतितासूचक संस्कृत में बहुधा वरम् (अच्छा) और न (न) नच (और न) नतु (परन्तु यिह नहीं कि) लगने से अपना अर्थ देता है जैसे वरं प्राणपरित्यागो न पुनर् ईदृशे कर्मणि प्रवृत्तिः (प्राण का छोड़ना अच्छा न फिर ऐसे काम में लगना अर्थात् ऐसे काम में लगने से प्राण का छोड़ना अति अच्छा है) वरं मौनं कार्यं न च वचनम् उक्तं यद् अनृतम् (चुप रहना अच्छा और न बोलना जो असत्य हो अर्थात् असत्य बोलने से चुपरहना अति अच्छा है) विद्यया सह वेदाध्यापकेन वरं मर्तव्यं न तु अध्यापनयोग्यशिष्याभावे अपात्राय एतां प्रतिपादयेत् (वेद पढ़ानेवाले से अर्थात् वेद पढ़ानेवाले को विद्या समेत मरना अच्छा परन्तु यिह नहीं कि पढ़ाने योग्य शिष्य न मिलने पर अयोग्य को यिह [विद्या] पढ़ावे).

८३६वां सूत्र

अत्यन्ततासूचक विशेषण यथाविधि ६ठी वि० चाहता है जैसे ब्राह्मणो द्विपदां श्रेष्ठो गौर् वरिष्ठा चतुष्पदाम् । गुरुर् गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः (ब्राह्मण दो पांववालों का अर्थात् दो पांववालों में अत्यन्त अच्छा गाय चार पांववालों की अर्थात् चार पांववालों में अत्यन्त अच्छी गुरु बड़ों का अर्थात् बड़ों में अत्यन्त अच्छा पुत्र मिलनेवालों का अर्थात् मिलने वालों में अत्यन्त अच्छा) परन्तु कभी २ ७वीं विभक्ति चाहते हैं जैसे नरेषु बलवत्तमः (नरों में अत्यन्त बलवान) और पांचवीं विभक्ति भी जैसे धान्यानां संग्रह उत्तमः सर्वसंग्रहात् (सब संग्रहों से धान्य का संग्रह अत्यन्त अच्छा).

१ छठी शाखा

कभी ३ री विभक्ति चाहते हैं जैसे नृवीरः कुन्त्याः प्राणैर् इष्टतमः । नरों में वीर कुन्ती का प्राणों से अत्यन्त प्यारा । इस दृष्टान्त से जानपड़ता है कि कभीर अत्यन्ततासूचक अतितासूचक के पलटे आताहै इसका दूसरा दृष्टान्त यिह है अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः (पढ़े लिखे मूर्खों से अत्यन्त अच्छे)

२ री शाखा

कभी अतितासूचक अत्यन्ततासूचक के पलटे आताहै और छठी विभक्ति चाहताहै जैसे तेषां ज्येष्ठतरः (उनका अर्थात् उन में अत्यन्त बड़ा) ११० वें सूत्र की १ ली शाखा देखो ।

३ री शाखा

अतितासूचक अत्यन्ततासूचक का भी अर्थ देसकता है जैसे दृढतरः (अत्यन्त दृढ)

८३३वां सूत्र

बहुधा पर्यायतासूचक ५ वीं वा ३ री वि० पर्ती संज्ञा के साथ आके अतितासूचक का अर्थ देता है जैसे नास्ति तस्मात् पुण्यवान् (उससे पुण्यवान नहीं है अर्थात् अति पुण्यवान नहीं है) स मत्तो (७११ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) महान् (वह मुझसे बड़ा अर्थात् अति बड़ा) ऐसे ही अन्येर् विशेषतः (दूसरों से विशेष अर्थात् अति विशेष)

१ ली शाखा

अबकी संस्कृत में अतितासूचक का अर्थ अपेक्ष्य (देख के) जो (ईक्ष् की अप् के साथ बनीहुई अवर्तनीयभूत गुणक्रिया है) कभी कभी होने से होताहै जैसे दशोपाध्यायान् अपेक्ष्य आचार्य आचार्यशतम् अपेक्ष्य पिता गौरवेण अतिरिच्यते (दस उपाध्यायों को देखके आचार्य (और) सौ आचार्यों को देख के पिता बड़ाई मे अतिरिक्त अर्थात् अधिक होताहै)

८३४वां सूत्र

बहुत से शब्द अतिताख्चक का प्रभाव रखते हैं और ५ वीं वि० के साथ आते हैं बहुतकरके परम्, अवरम्, अन्य, अन्यदा, अन्यत्र, इतर, पर, पूर्व, अधिक, ऊन, अवशिष्ट, गुण, जैसे प्रक्षालनात् पङ्कस्य अस्पर्शनं परम् (धोने से कीचड़ का न छूना अच्छा अर्थात् अति अच्छा) दारिद्र्यम् अवरं मरणात् (दरिद्रता मरने से न्यून है) को मां मित्राद् अन्यस् त्रातुं समर्थः (कौन मुझको मित्र से अर्थात् मित्र को छोड़के दूसरा बचाने को सामर्थ है) किन्तु दुःखम् अतः परम् (क्या दुख इससे आगे अर्थात् बढ़के) न श्रुताद् अन्यद् विब्रूयात् (सुनेहुए से अर्थात् सुनेहुए को छोड़के और नहीं बोलना चाहिए) तत्कालाद् अन्यदा (इस समय से अर्थात् इस समय को छोड़के और समय) नरस्य न अन्यत्र मरणाद् भयम् (नर का भय मरने से अर्थात् मरने को छोड़के और कहीं नहीं) श्राद्धाहात् (७३१ वां और ७७८ वां सूत्र देखो) पूर्वेद्युः (श्राद्ध के दिन से पहले दिन) योजनशताद् अधिकम् (सौ योजन से अधिक) कान्तोदन्तः सङ्गमात् किञ्चिद् ऊनः (प्यारे का समाचार मिलाप से कुछ न्यून) अन्नाद् अवशिष्टम् (अन्न से शेष) मूल्यात् पञ्चगुणम् (मूल से पांच गुना)

संख्यासम्बन्धी

८३५वां सूत्र

संख्या सम्बन्धियों की वाक्यरचना २०६ ठे और २०७ वें सूत्र में बताई है ये थोड़े दृष्टान्त बताते हैं नवतेर् नराणाम् (नब्बे का नरों का अर्थात् नब्बे नरों का) षष्टेर् नराणाम् (साठ का नरों का अर्थात् साठ नरों का) सहस्रस्य नराणाम् (सहस्र नरों का) सहस्रं पितरः (सहस्र पितृ) त्रिभिर् गुणितं शतम् (तीन से वा तीन के साथ सौ गुने हुए) फलसहस्रे द्वे (दो सहस्र फल) एषां त्रयाणां मध्याद् अन्यतमः (इन तीन से वा इन तीन में से और) अयुतं गा ददौ (उसने दस सहस्र गाय दीं) पञ्चशतं मृगान् जघान (उसने पांचसौ मृग मारे)

१ टी शाखा

कभी २ संख्यासम्बन्धियों का बहुवचन ऊनविंशति (उन्नीस) से ऊपर आसकता है जैसे पञ्चाशद्भिर् बाणैः (पचास बाण से वा पचास बाण के साथ)

२ री शाखा

समूहसूचक संख्यासम्बन्धी संख्यासूचकों के पलटे मिश्रितों के अन्त में आसकते हैं जैसे सैन्यद्वयम् (दो सेना) विवाहचतुष्टयम् (चार विवाह) (२१२ वां सूत्र देखो)

३ री शाखा

उन्नीस (ऊनविंशति) से ऊपर संख्यासम्बन्धी संख्या कोइई वस्तुओं को अपने पहले वा पीछे ६ ठी विभक्ति में चाहता है जैसे अश्वानां शतसहस्राणि (घोड़ों के सौ सहस्र अर्थात् लाखघोड़े) पत्तीनां सप्तशतानि (पैदलों के सात सौ अर्थात् ७सौ पैदल) शतम् आचार्याणाम् (आचारियों के सौ अर्थात् सौ आचार्य) गवां पञ्चशतानि षष्टिश्च (गायों के पांच सौ और साठ अर्थात् पांचसौ साठ गाय) सर्गाणां षट् शतानि विंशतिश्च (सर्गों के छः सौ और बीस अर्थात् छः सौ बीस सर्ग) नराणां त्रिंशदधिकशतं द्वे सहस्रे च (नरों के दो सहस्र एक सौ और तीस अर्थात् दो सहस्र एक सौ तीस नर) पञ्च रथसहस्राणि (पांच सहस्र रथ) एकशतं गवाम् (गायों का एक सौ अर्थात् एक सौ गाय) (मनु ११, १२९) ये ६ ठी विभक्ति वाले आधीन मिश्रितों के अन्त में भी आसकते हैं जैसे तृषाशीति (अस्सी तृषा

वर्णन

परन्तु उन्नीस से नीचे संख्यासम्बन्धी ६ ठी विभक्ति नहीं चाहसकते जैसे दश नराः (दस नर) दश नराणाम् नहीं होसकता है

४ थी शाखा

जब संख्यासम्बन्धी अतिशयसूचक के सदृश आते हैं तब ५ वीं विभक्ति लेसकते हैं जैसे विवादाद् द्विगुणो दमः (विवाद से दूना दण्ड)

सर्वनामों की वाक्यरचना

८३६वां सूत्र

सर्वनामों की वाक्यरचना में जो मुख्य बातें हैं सो २१६ वें सूत्र से २४० वें सूत्र तक और ७९९ वें सूत्र से ८०१ ले सूत्र तक ऊपर बताईगई हैं

वैकल्पिक एनम् इत्यादि के विषय में [२२३ वां सूत्र देखो] यिह शुद्धता से वाक्य के अगले भाग में इस सर्वनाम के अन्वादेश अर्थात् दुहराव में होताहै और तब इदम् वा एतद् आताहै जैसे अनेन व्याकरणम् अधीतम् एनं छन्दोऽध्यापय (इस से व्याकरण पढ़ागया अर्थात् इस ने व्याकरण पढ़ा इस को वेद पढ़ा) (नल १२. ३१, ३२) यिह एक शब्द वा शब्दभाग है जो पहले अव्यय पर झुकना चाहता है) इसलिए किसी वाक्य के आदि में नहीं आसकता

१ ली शाखा

अपेक्षापूरक और प्रश्नसूचक सर्वनाम लाने में बहुधा बहुत विचार रखना पड़ताहै जब अपेक्षापूरक या प्रश्नसूचक सर्वनाम आता है और कोई अनियत सर्वनाम यथाप्रकृति पीछे आता है तब अपेक्षापूरक और प्रश्नसूचक को दुहराना पड़ताहै जैसे इन अगले दृष्टान्तों में योयस्य (पलटे कस्यचिद् के) भावः स्यात (जो जिस का (किसी का) भाव होय) यद् रोचते यस्मै (जो जिस को अच्छा लगे) योयस्य मांसम् अश्नाति (जो जिसका मांस खाता है) यस्य ये गुणाः सन्ति (जिसके जो गुण होते हैं) यद् येन युज्यते (जो जिस से मिलता है) केषां किं शास्त्रम् अध्ययनीयम् (किन का अर्थात् किन को कौन शास्त्र पढ़ने के योग्य है

८३७वां सूत्र

अपेक्षापूरक और प्रश्नसूचक कभी२ अनिश्चित विभागसूचक के अर्थ में साथ आते हैं जैसे यानि यानि मित्राणि (जो कोई मित्र) और बहुधा प्रश्नसूचक के पीछे चिद् आता है जैसे यस्मै कस्मै चित् (जिस किसी को)

१ ली शाखा

प्रश्नसूचक का नपुंसकलिङ्ग किम् बहुधा ३ री विभक्ति के साथ आता है और वा किस काम का अर्थ देता है जैसे श्रुतेन किं यो न धर्मम् आचरेत् । किम् तना यो न जितेन्द्रियो भवेत् (सुनने से क्या जो धर्म न करे आत्मा से क्या न्द्रियों को जीतने वाली न होवे) किं ते अनेन प्रश्नेन (तुझ को इस प्रश्न से) किं बहुना (बहुत से क्या (निदान)

२ री शाखा

सा ७६१ वें सूत्र में बताया है अपेक्षापूरक सर्वनाम कभी२ अपेक्षापूरक मि- के आने से निकम्मा होजाताहै जैसे नगरी चन्द्रिकाधौतहर्म्या (चांदनी से धो परवाली नगरी) ऐसा है जैसा । नगरी यस्याश् चन्द्रिकाधौतानि हर्म्याणि ी जिस के घर चांदनी से धोएहुए हैं)

८६८वां सूत्र

। अगले दृष्टान्तों से अनुमानसूचक सर्वनाम और सर्वनामसम्बन्धी कैसे आते अच्छी रीति से जानपड़ेगा यावतः (अथवा यत्संख्यकान्) ग्रासान् मुंके (वा तत्संख्यकान्) ददाति (जितने (जिस संख्या के) ग्रास मुझ खाताहै (वा उस संख्या के (मुझ देता है) यदि एतावन् मह्यं दीयते तदा एतावद् अ- ामि (जो इतना मुझ को देवे तो इतना मैं पढ़ाऊं) तेषां सर्वेषां मध्याद् ए- (उन सब के मध्य से एक) (८०१ वां सूत्र देखो)

क्रियाओं की वाक्यरचना

८६९वां सूत्र

स्त में ऐसा बहुत होता है कि क्रियाएं छोड़ दीजाती हैं अथवा प्रसङ्ग से छे- ी हैं

१ ली शाखा

ा उद्देश विधेय संयोजक वा संज्ञावाचक क्रिया में बहुत होताहै जैसे (श्लोक ् मेरुस्थिता देवा यावद् गङ्गा महीतले । चन्द्रार्कौ गगने यावत् तावद् विप्र-

कुले वयम् ॥ (जबतक देवता मेरु पर स्थित जबतक पृथिवी के तले पर गङ्गा नब क चन्द्र और सूर्य आकाश में तबतक हम ब्राह्मण के कुल में) १ ले ३ रे औ ४ थे वाक्य में क्रिया (हैं) और २रे वाक्य में (है) छिपीहुई हैं सो समझ जानपड़ती हैं। परिच्छेदः पाण्डित्यम् (विवेक पण्डिताई है)

स्वाधीन ७ वीं और ६ ठी विभक्ति

८४८वां सूत्र

७वीं विभक्ति बहुधा गुणक्रियाओं के साथ स्वाधीन रीति से आती है जैसे तस्मि जीवति जीवामि मृते तस्मिन् म्रिये पुनः (उस के जीतेहुए मैं जीता हूं फिर उसके मरे हुए मैं मरता हूं) अवसन्नायां रात्रौ (रात अन्त होतेहुए वा अन्त होतीहुई रात में ज्येष्ठे भ्रातरि अनूढे (बड़ा भाई कुंवाराहोतेहुए) असति उपायान्तरे (दूसरा उपाय नहो तेहुए) तथा सति (वैसा होतेहुए) कभी २ गुणक्रिया छोड़दीजाती है जैसे दूरे भये (दूरभय में अर्थात् भय दूर होतेहुए) जब कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया स्वाधीन रीति से किसी सं ज्ञा के साथ ७वीं विभक्ति में आती है तब अस् (हो) की वर्तमान गुणक्रिया बहुधा बढ़ाईजाती है जैसे तथा कृते सति वा तथा अनुष्ठिते (ऐसा कियेजातेहुए)+

टीका

+ सति बढ़ाने से यिह अभिप्राय जानपड़ता है कि यिह बात दिखाईजावे कि क र्मणिवाच्य गुणक्रिया यहां गुणक्रिया की रीति से आती है भूतकाल होके नहीं आ ती ऐसे ही टीकाओं में भी किसी २ शब्द के पीछे सति आता है जैसे आगच्छति के पीछे सो यिह दिखाना है कि यिह भूतगुणक्रिया की एकवचनवाली ७ वीं वि० है सो वर्तमानकाल के अ० ए० व० से अलग है

१ली शाखा

६ ठी वि० स्वाधीन रीति से बहुत नहीं आती है जैसे आपदाम् आपतन्तीनाम् (पड़तीहुई आपदाओं का) पश्यतां नराणाम् (देखते हुए लोगों का)

२ री शाखा

जब कोई कर्तृवाचक इस रीति से आताहै तब यथार्थ में दो वाक्य होते
म सुहृन् मे समायातः पुण्यवान् अस्मि (मेरा मित्र आते हुए मैं पुण्यवान हूं

३ री शाखा

फिर बात प्रत्यक्ष है कि जब ७ वीं और ६ ठी विभक्ति इस स्वाधीन री
आतीहैं तब अपनी भाषा में भाववाचक के साथ मे वा पर का अर्थ देती है
तस्मिन् अपक्रान्ते (उसके जाने पर वा उसके जाने से पीछे)

क्रिया के साथ पहली विभक्ति

८४१वां सूत्र

जो क्रियाएं होना दीखना बुलायाजाना समझाजाना इत्यादि कर्मणि
क्रियाओं का अर्थ देती हैं सो दो १ ली वि० लेसकती हैं जैसे राजा प्रजापा
स्यात् (राजा प्रजा का पालनेवाला होवे) मानिरानन्दा प्रतिभाति (वृद्ध
दीखती है) ग्रामोऽरण्यं प्रतिभाति (गांव बन दीखता है) राजा धर्म आभिध
(राजा धर्म कहा जाता है)

क्रिया के साथ दूसरी विभक्ति

८४२वां सूत्र

सकर्मक क्रियाएं बहुधा २ री वि० भी चाहती हैं जैसे विश्वं ससर्ज वेधा (ब्र
ने विश्व को उत्पन्न किया) पुष्पाणि चिनोति नारी (नारी फूल चुनती है) प्रा
न् जहौ मुमूर्षुः (मरना चाहनेवाले ने प्राण को छोड़ा) मधु पतंगेत् (वृद्ध मदरा
वर्जित जाने) सत्यं ब्रूहि (सच बोल)

१ ली शाखा

जो क्रियाएं बोलने वा बात करने का अर्थ देती हैं सो दूसरी विभक्ति चाहती
जैसे तम् अब्रवीत् (उसको उसने कहा) इति उवाच फाल्गुनम् (वृद्ध अर्जुन
को बोला)

कुले वयम् ॥ (जबतक देवता मेरु पर स्थित जबतक पृथिवी के तले पर गङ्गा जबतक चन्द्र और सूर्य आकाश में तबतक हम ब्राह्मण के कुल में) १ ले ३ रे और ४ थे वाक्य में किरा (हैं) और २ रे वाक्य में (है) छिपीहुई हैं सो प्रसङ्ग से जानपड़ती हैं । परिच्छेदः पाण्डित्यम् (विवेक पण्डिताई है)

स्वाधीन ७ वीं और ६ ठी विभक्ति

८४८वां सूत्र

७वीं विभक्ति बहुधा गुणक्रियाओं के साथ स्वाधीन रीति से आती है जैसे तस्मिन् जीवति जीवामि मृते तस्मिन् म्रिये पुनः (उस के जीतेहुए मैं जीता हूं फिर उसके मरतेहुए मैं मरता हूं) अवसन्नायां रात्रौ (रात अन्त होतेहुए वा अन्त होतीहुई रात में) ज्येष्ठे भ्रातरि अनूढे (बड़ा भाई कुवाराहोतेहुए) असति उपायान्तरे (दूसरा उपाय नहीं होतेहुए) तथा सति (वैसा होतेहुए) कभी२ गुणक्रिया छोड़दीजाती है जैसे दूरे भये (दूरभय में अर्थात् भय दूर होतेहुए) जब कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया स्वाधीन रीति से किसी संज्ञा के साथ ७वीं विभक्ति में आती है तब अस् (हो) की वर्तमान गुणक्रिया बहुधा बढ़ाईजाती है जैसे तथा कृते सति वा तथा अनुष्ठिते (ऐसा कियेजातेहुए)*

टीका

* सति बढ़ाने से यिह अभिप्राय जानपड़ता है कि यिह बात दिखाईजावे कि कर्मणिवाच्य गुणक्रिया यहां गुणक्रिया की रीति से आती है भूतकाल होके नहीं आती ऐसे ही टीकाओं में भी किसी२ शब्द के पीछे सति आता है जैसे आगच्छति के पीछे भी यिह दिखाना है कि यिह भूतगुणक्रिया की एकवचनवाली ७ वीं वि॰ है सो वर्तमानकाल के प्र॰ ए॰ व॰ से अलग है

६ठी भाषा

६ ठी वि॰ स्वाधीन रीति से बहुत नहीं आती है जैसे आपदाम् आपतन्तीनाम् (पड़तीहुई आपदाओं का) पश्यतां नराणाम् (देखते हुए लोगों का)

७ वीं भाषा

कुले वयम् ॥ (जबतक देवता मेरु पर स्थित जबतक पृथिवी के तले पर गङ्गा जबतक चन्द्र और सूर्य आकाश में तबतक हम ब्राह्मण के कुल में), १ ले ३ रे और ४ थे वाक्य में क्रिया (हैं) और २ रे वाक्य में (है) छिपीहुई हैं सो प्रसङ्ग से जानपड़ती हैं। परिच्छेदः पाण्डित्यम् (विवेक पण्डिताई है)

स्वाधीन ७ वीं और ६ ठी विभक्ति

८४८ वां सूत्र

७वीं विभक्ति बहुधा गुणक्रियाओं के साथ स्वाधीन रीति से आती है जैसे तस्मिन् जीवति जीवामि मृते तस्मिन् म्रिये पुनः (उस के जीतेहुए मैं जीता हूं फिर उसके मरते हुए मैं मरताहूं) अवसन्नायां रात्रौ (रात अन्त होतेहुए वा अन्त होतीहुई रात में) ज्येष्ठे भ्रातरि अनूढे (बड़ा भाई कुवाराहोतेहुए) असति उपायान्तरे (दूसरा उपाय नहीं होतेहुए) तथा सति (वैसा होतेहुए) कभी २ गुणक्रिया छोड़दीजाती है जैसे दूरे भये (दूर भय में अर्थात् भय दूर होतेहुए) जब कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया स्वाधीन रीति से किसी संज्ञा के साथ ७वीं विभक्ति में आती है तब अस् (हो) की वर्तमान गुणक्रिया बहुधा बढ़ाईजाती है जैसे तथा कृते सति वा तथा अनुष्ठिते (ऐसा कियेजातेहुए)+

टीका

+ सति बढ़ाने से यिह अभिप्राय जानपड़ता है कि यिह बात दिखाईजावे कि कर्मणिवाच्य गुणक्रिया यहां गुणक्रिया की रीति से आती है भूतकाल होके नहीं आती ऐसे ही टीकाओं में भी किसी २ शब्द के पीछे सति आता है जैसे आगच्छति के पीछे सो यिह दिखाता है कि यिह भूतगुणक्रिया की एकवचनवाली ७ वीं वि० है सो वर्तमानकाल के अ० ए० व० से अलग है

१ ली शाखा

६ ठी वि० स्वाधीन रीति से बहुत नहीं आती है जैसे आपदाम् आपतन्तीनाम् (पड़तीहुई आपदाओं का) पश्यतां नराणाम् (देखते हुए लोगों का)

२ री शाखा

८४३वां सूत्र

ऐसे ही चलने का अर्थ रखनेवाली क्रियाएं जैसे गच्छति तीर्थं मुनिः (मुनि तीर्थ को जाताहै) नद्यः समुद्रं द्रवन्ति (नदियां समुद्र को दौड़ती हैं) भ्रमति महीम् (वुह पृथ्वी पर फिरताहै)

८४४ वां सूत्र

चलने का अर्थ रखने वाली क्रियाएं बहुधा संज्ञाओं के साथ दूसरी क्रियाओं का अर्थ देती हैं जैसे ख्यातिं याति (वुह ख्याति को जाता है अर्थात् विख्यात होताहै) समताम् एति (वुह समता को जाताहै अर्थात् समान होताहै) तयोः मित्रताम् आजगाम (वुह उन दो की मित्रता को आया अर्थात् उन दो का मित्र हुआ) पञ्चत्वं गतः (वुह पञ्चत्व को गया अर्थात् वुह मरा) नृपतिं तुष्टिं नयति (वुह राजा को प्रसन्नता पर लेजाता है अर्थात् प्रसन्न करता है) इत्यादि

१ ली शाखा

ये आगे दूसरे दृष्टान्त लिखे जाते हैं अन्येषां पीडां परिहरति (वुह दूसरों की पीडा हरता है) अप्राप्यम् इच्छति (वुह न मिलनेवाली वस्तु को चाहताहै) विद्यां चिन्तयेत् (वुह विद्या को सोचे) अश्वम् आरोहति (वुह घोड़े पर चढ़ताहै) कर्माणि आरेभिरे (उन्हों ने काम आरम्भ किए) गतान् मा शुचः (गएहुओं को मत सोच) सर्वलोकाधिपत्यम् अर्हति (वुह सब लोक के स्वामी पने को योग्य होताहै) पर्वतकन्दरम् अधिशेते (वुह पहाड़ की कन्दरा में सोताहै) गां क्षीरं पिबन्तीं न निवारयेत् (वुह दूध पीती हुई गाय को न रोके)

८४५वां सूत्र

कई क्रियाएं ऐसीहैं कि अपने मूल से निकलीहुई संज्ञा को २री वि० में अधिक लेती हैं जैसे शपथं शेपे (उसने शपथ की) वसति वासम् (वुह रहताहै) वर्तते वृत्तिम् (वुह अच्छी चाल रखता है) वाक्यं वदति (वुह बात बोलताहै) जीविकां जीवति (वुह जीता है) नदति नादम् (वुह नाद करता है)

र्थात् घोड़े पर जाता है) मार्गेण गच्छति (वुह मार्ग से अर्थात् मार्ग में वा मार्ग पर जाता है) शस्यक्षेत्रेण गच्छति (वुह नाज के खेत से अर्थात् नाज के खेत में होके जाता है) पुप्लुवे सागरं नौकया (उसने समुद्र को नाव से पार किया) ऐसे ही सुस्राव नयनैः सलिलम् (जल नेत्रों से बहा)

१ ली शाखा

यिह विभक्ति लेजाना रखना इत्यादि अर्थवाली क्रियाओं के साथ उस स्थान के अनुसार आती है जिसमें वा जिसपर किसी को लेजाते हैं वा रखते हैं जैसे वहति मूर्ध्ना इन्धनम् (वुह माथे से अर्थात् माथे पर ईंधन को लेजाता है) कुक्कुरः स्कन्धेन उह्यते (कुत्ता कांधे से अर्थात् कांधे पर उठाया जाता है) कृ इस विभक्ति के साथ रखने के अर्थ में आता है जैसे शिरसा पुत्रम् अकरोत् (उसने पुत्र को सिर से अर्थात् सिर पर रखा)

ये आगे दूसरे दृष्टान्त हैं शिष्येण गच्छति गुरुः (गुरु शिष्य करके अर्थात् शिष्य के साथ जाता है) मन्त्रयामास मन्त्रिभिः (उसने मन्त्रियों से मन्त्र लिया) परन्तु इस अर्थ में विभक्ति के पीछे बहुधा सह आता है भर्ता भार्यया सङ्गच्छति (भर्ता भार्या से मिलता है) संयोजयति रथं हयैः (वुह रथ को घोड़ों से जोतता है अर्थात् रथ में घोड़े जोतता है) युध्यते शत्रुभिः (वुह शत्रुओं से लड़ता है) अर्थात् शत्रुभिः सह (शत्रुओं के साथ) इत्यादि वैरं न केनचित् सह कुर्यात् (वैर किसी के साथ न करे) मां दोषेण परि शंकते (वुह मुझ को दोष से शंकित करता है)

८५९वां सूत्र

प्रभुता दिखाना इत्यादि अर्थ वाली क्रियाएं ३ री वि॰ चाहती हैं जैसे विद्यया विकत्थसे (तू विद्या की प्रभुता दिखाता है) परेषां यशसा श्लाघसे (तू दूसरों के यश से बड़ाई करता है)

१ ली शाखा

शपथ करने के अर्थवाली भी जैसे धनुषा शेपे (उसने धनुष से अर्थात् धनुष की

८१७वां सूत्र

प्रेरणार्थक क्रियाएं भी दो कर्म चाहतीं हैं जैसे अतिथिं भोजयति अन्नम् (वुह अतिथ को अन्न खिलाता है) (पा० १, ४, ५२) त्वां बोधयामि यत् ते हितम् (में तुझ को समझाता हूं जो तेरे लिये हित है) शिष्यं वेदान् अध्यापयति गुरुः (गुरु शिष्य को वेद सिखाता है) तां गृहं प्रवेशयति (वुह उस को घर को लेजाता है) फलपुष्पोदकं ग्राहयामास नृपात्मजम् (उस ने राजा के पुत्र को फल फूल जल दिये) पुत्रम् अङ्कम् आरोपयति (वुह पुत्र को गोद में लेताहै) विद्या नरं नृपं सङ्गमयति [विद्या नर को राजा के साथ मिलाती है

क्रिया के साथ तीसरी विभक्ति

८२८वां सूत्र

प्रत्येक क्रिया काम का कर्ता करण कारण या प्रकार दिखाने को ३ री विभक्ति चाहसकती है जैसे पुष्पं वातेन म्लायति (फूल वायु से अर्थात् वायु के कारण से कुम्हलाता है) अक्षैः क्रीडति (वुह पासे से खेलता है) मेघोऽग्निं वर्षैर् निर्वापयति (मेघ अग्नि को वर्षा से बुझाताहै) सुखेन जीवति (वुह सुख से जीताहै) ८६५ वां सूत्र देखो)

१ ली शाखा

इस अर्थ में बहुत से प्रेरणार्थक ३ री विभक्ति चाहते हैं जैसे तां मिष्टान्नैर् भोजयामास (उसने उसको मिठाई खिलाई) पक्षिभिः पिण्डान् खादयति (वुह पक्षियों से अर्थात् पक्षियों को पिण्ड खिलाता है) (८३७ वां सूत्र देखो)

८४९वां सूत्र

जाने के अर्थवाली क्रियाओं के साथ उस वाहन के वा उस स्थान के अनुसार विह विभक्ति आती है जिसपर वा जिस में जाना होता है जैसे रथेन प्रयाति (वुह रथ से अर्थात् रथ पर या रथ में जाता है) अश्वेन सञ्चरति (वुह घोड़े से अ-

दय (कन्या उसको दे) विशेषकरके इस अर्थ में ७ वीं विभक्ति आवी है (८६१ वां सूत्र देखो)

१ली शाखा

४थीविभक्ति के दूसरे दृष्टान्त ये हैं तेषां विनाशाय प्रकुरुते मनः (वुह उन के विनाश के लिए मन करताहै) गमनाय मतिं दधौ (उसने जाने के लिये मति रखी) अथवा ७ वीं विभक्ति जैसे तन् मह्यं रोचते (वुह मुझ को अच्छा लगताहै) शिष्येभ्यः प्रवक्ष्यामि तत् (मैं उस को शिष्यों से कहूंगा) सर्वं राज्ञे विज्ञापयति (वुह सब राजा को जनाताहै) अमृतत्वाय कल्पते (वुह नमरने के लिये योग्य है) विभवति मम वधाय (वुह मेरे वध के लिये शक्तिवान होता है) तान् मातुर् वधाय अचोदयत् (उसने उन को मा के वध के लिये प्रेरणा की) पुत्राय क्रुध्यति (वुह पुत्र पर क्रोध करता है) इयं मांसपेशी जाता पुत्रगताय (यिह मांस का लोंदा सौ पुत्र के लिए उत्पन्न हुआ) नाशंसे विजयाय (वुह विजय के लिये आशा न रखता था)

क्रिया के साथ ५वीं विभक्ति

८५४वां सूत्र

सब क्रियाएं उस वस्तु वा पुरुष को ५ वीं विभक्ति में चाहती हैं जिस में कुछ निकलता है वा अलग होता है जैसे भ्रश्यति वृक्षात् पत्रम् (पत्ता पेड़ से गिरता है) रुधिरं स्रवति गात्रात् (रुधिर गात्र से बहता है) आसनाद् उत्तिष्ठति (वुह आसन से उठताहै) मृत्पिण्डतः (७१९ वां सूत्र देखो) कर्ता कुरुते यद्यद् इच्छति (मिट्टी के पिण्ड से बनानेवाला जो जो चाहता है बनाता है) विनयाद् याति पात्रताम् (वुह विनय से योग्यता में जाता है) निर्जगाम नगरात् (वुह नगर से निकला)

८५५वां सूत्र

डरने का अर्थ रखनेवाली क्रियाएं ५ वीं विभक्ति चाहतीं हैं और कभी ६ठी विभक्ति जैसे साधुर् न तथा मृत्योर् बिभेति यथा अनृतात् (साधु मृत्यु से ऐसा न-

शपथ की)

२ री शाखा

सोचने विचारने के अर्थ वाली जैसे मनसा विचिन्त्य (मन में सोचके)

३ री शाखा

सदृशता वा समानता का अर्थ रखनेवाली जैसे जटाकया उपमीयते प्रमदा (प्रमदा आँख से सदृश की जाती है)

८५१वां सूत्र

किसी वस्तु से छूटने वा अलग होने का अर्थ रखने वाली क्रियाएं कभी ३ री वि० चाहती हैं जैसे सर्वपापैः प्रमुच्यते (वुह सब पापों से छूटता है) देहेन वियुज्यते (वुह देह से छूटता है) बहुधा ऐसी क्रियाएं ५ वीं वि० चाहती हैं

८५२वां सूत्र

मोल लेने और देने का अर्थ रखनेवाली क्रियाएं मोल को ३ री विभक्ति में चाहती हैं जैसे सहस्रैर् अपि मूर्खाणाम् एकं क्रीणीष्व पण्डितम् (मूर्खों के सहस्रों से भी अर्थात् कई सहस्र मूर्खों से भी एक पण्डित को मोल ले) गवां सहस्रेण गृहं विक्रीणीते (गायों के सहस्र से अर्थात् सहस्र गायों से वुह घर मोल लेता है)) क्रीणीष्व तद् दशभिः सुवर्णैः (उस को दस सुवर्ण से वा पर मोल ले)

क्रिया के साथ ४थी विभक्ति

८५३वां सूत्र

जो क्रियाएं कोई वस्तु देने वा सौंपने का अर्थ रखती हैं सो जो वस्तु देते वा सौंपते हैं उस को दूसरी विभक्ति में चाहती हैं और जिस पुरुष को देते वा सौंपते हैं उसको ४ थी विभक्ति में चाहती हैं परन्तु बहुधा उसको ६ ठी और ७ वीं विभक्ति में भी चाहती हैं (८५० वां सूत्र देखो) जैसे पुत्राय मोदकान् ददाति (वुह पुत्र को मोदक देता है) विप्राय गां प्रतिशृणोति (वुह विप्र को गाय देनी कहता है) देवदत्ताय धनं धारयति (वुह देवदत्त का धन देना रखता है) कन्यां तस्मै प्रति पा-

जैसे निक्षेपं मम समर्पयति [वुह मुझको बन्धक सौंपता है] अथवा विश्वास् का अर्थ रखनेवाली क्रियाओं के साथ जैसे न कश्चित् स्त्रीणां श्रद्दधाति (स्त्रियों का अर्थात् स्त्रियों में कोई विश्वास नहीं करता) और २री वि० के पलटे आतीहै ऐसे दृष्टान्तों में जैसा यिह है अचिन्तितानि दुःखानि आयान्ति देहिनाम् (नहीं सोचेहुए दुख देह रखनेवालों (के) को आते हैं)

८५१वां सूत्र

यिह कभी २ डरने का अर्थ रखने वाली क्रियाओं के साथ आतीहै जैसे तस्य किं न भेष्यसि (तू उससे क्यों नहीं डरेगा) (८५५वां सूत्र देखो) और अभिलाषा इच्छा और ईर्षा का अर्थ रखनेवाली क्रियाओं के साथ भी जैसे अवमानस्य आकांक्षेत् (वुह अपमान चाहे) स्पृहयामि पुरुषाणां सचक्षुषाम् (मैं आंख वाले पुरुषों से ईर्षा रखता हूं, स्मर्ण करने का अर्थ रखने वाली क्रियाओं के साथ भी जैसे दिवो न स्मरन्ति (वे आकाश का स्मर्ण नहीं करते) किरात ५. २८)

१ ली शाखा

छठी विभक्ति चाहनेवाली क्रियाओं के दूसरे दृष्टान्त जैसे अजानताम् अस्माकं व्यापय कस्य अस्ति भार्या (हम नजाननेहुओं को समझा तू किसकी भार्या है) कस्य (पलटे कस्मात् के) बिभ्यति धार्मिका (धरम वाले किससे डरते हैं) यद् अन्यस्य प्रतिजानीते न तद् अन्यस्य दद्यात् (जो दूसरे का जाने सो दूसरे को न देवे) मम न शृणोति (वुह मुझको वा मेरी नहीं सुनता) मम स्मर (मुझको वा मेरा स्मर्ण कर) वा २री वि० के साथ अस्माकं मृत्युः प्रभवति (हमारी वा हमको मृत्यु आतीहै) अग्निर् न तृप्यति काष्ठानाम् (अग्नि काष्ट से नहीं तृप्त होती) तेषां क्षमेथाः (उनको क्षमा कर) किं मया तस्य अपराद्धम् (क्या मुझ से उसका अपराध)

क्रिया के साथ ७वीं विभक्ति

८६०वां सूत्र

यिह विभक्ति बहुत आती है परन्तु जैसा आगे बताचुके हैं ३ री और ६

[illegible]) ग्रामात् निर्गत (गाँव में से गया) [illegible] ([illegible] में [illegible] है) [illegible] में [illegible] ([illegible] से [illegible] है) ८५१ वाँ सूत्र देखो)

८५१ वाँ सूत्र

अपादान का अभिप्रायवाली क्रियाएं ५ वीं विभक्ति चाहती हैं जैसे चापलात् कामानां परित्यागो विशिष्यते (कामों के पाने से छोड़ना विशेषता रखता है)

१ ली धारा

५ वीं विभक्ति चाहनेवाली क्रियाओं के दूसरे दृष्टान्त ये हैं प्रासादात् अवरोहति (वुह मन्दिर से उतरता है) विष्णुः स्वर्गात् अवतरत् (विष्णु स्वर्ग से उतरा) कनकसूत्रम् स्कन्धात् अपनयति (वुह सोने का डोरा अंस से उतारता है) निवर्तते पापात् (वुह पाप से छूटता है) वचनात् विरराम (वुह बोलने से ठहरा) नरकात् पितरं त्रायते पुत्रो धार्मिकः (धर्मवाला पुत्र पिता को नर्क से बचाता है) अश्वमेधसहस्रात् सत्यम् अतिरिच्यते (सत्य सहस्र अश्वमेध से ऊपर है) स्वहितात् प्रमाद्यति (वुह अपने हित से चूकता है) मित्रम् अकुशलात् निवारयति (वुह मित्र को अपाप से रोकता है)

क्रिया के साथ छठी विभक्ति

८५७ वां सूत्र

संस्कृत में ६ ठी विभक्ति सदा ४ थी और ७ वीं विभक्ति से बदल जाती और ३ री विभक्ति से भी पलटसकती है परन्तु बहुतकरके यह ४ थी विभक्ति के पलटे बहुत आती है ऐसा कि जिस को कुछ देते हैं या सौंपते हैं उसको सब क्रियाएं ६ ठी और ४ थी विभक्ति में चाहती हैं जैसे दरिद्रस्य धनं ददाति (वुह दरिद्री को धन देता है) उपकुरुते परेषाम् (वुह दूसरों का भला करता है)

८५८ वां सूत्र

यिह सौंपने का अर्थ रखनेवाली क्रियाओं के साथ ४ थी वि० के पलटे आसकती है

जैसे निक्षेपं मम समर्पयति (वुह मुझको धन्धक सौंपता है) अथवा विश्वास् का अर्थ रखनेवाली क्रियाओं के साथ जैसे न कश्चित् स्त्रीणां श्रद्दधाति (स्त्रियों का अर्थात् स्त्रियों में कोई विश्वास नहीं करता) और २री वि० के पलटे आतीहै ऐसे दृष्टान्तों में जैसा यिह है अचिन्तितानि दुःखानि आयान्ति देहिनाम् (नहीं सोचेहुए दुख देह रखनेवालों (के) को आते हैं)

८५९वां सूत्र

यिह कभी २ डरने का अर्थ रखने वाली क्रियाओं के साथ आतीहै जैसे तस्य किं न भेष्यति (तू उससे क्यों नहीं डरेगा) (८५५वां सूत्र देखो) और अभिलाषा इच्छा और ईर्षा का अर्थ रखनेवाली क्रियाओं के साथ भी जैसे अवमानस्य आकांक्षेत् (वुह अपमान चाहे) स्पृहयामि पुरुषाणां सचक्षुषाम् (मैं आंख वाले पुरुषों से ईर्षा रखता हूं, स्मर्ण करने का अर्थ रखने वाली क्रियाओं के साथ भी जैसे दिशो न स्मरन्ति (वे आकाश का स्मर्ण नहीं करते) किरात ५. २८)

१ ली शाखा

छठी विभक्ति चाहनेवाली क्रियाओं के दूसरे दृष्टान्त जैसे अजानताम् अस्माकं व्यापय कस्य असि भार्या । हम नजाननेहूओं को समझा तू किसकी भार्या है, कस्य (पलटे कस्मात् के) बिभ्यति धार्मिका (धर्म वाले किससे डरते हैं) यद् अन्यस्य प्रतिजानीते न तद् अन्यस्य दद्यात् (जो दूसरे का जाने सो दूसरे को न देवे) मम न शृणोति (वुह मुझको वा मेरी नहीं सुनता) मम स्मर. (मुझको वा मेरा स्मर्ण कर) वा २री वि० के साथ अस्माकं मृत्युः प्रभवति (हमारी वा हमको मृत्यु आतीहै) अग्निर् न तृप्यति काष्ठानाम् (अग्नि काठ से नहीं तृप्त होती) तेषां क्षमेथाः (उनको क्षमा कर) किं मया तस्य अपराद्धम् (क्या मुझ से उसका अपराध)

क्रिया के साथ ७वीं विभक्ति

८६०वां सूत्र

यिह विभक्ति बहुत आती है परन्तु जैसा आगे बताते हैं ४ थी और ६

ठी वि० से वहुत पलट सकती है इसका पहला अर्थ चाहताहै कि यिह उन किया ओं के साथ आवे जो उस समय और स्थान से सम्बन्ध रखती हैं जिसमें वा जिस पर कोई काम कियाजाताहै जैसे पंके मज्जति (वुह कीचड़ में डूबता है) पुरे वसति (वुह पुर में रहताहै) रणमूर्ध्नि तिष्ठति (वुह रण के मस्तक पर खड़ा होताहै) सूर्योदये प्रबुध्यते (वुह सूर्य उदय होने पर जागता है)

८६१वां सूत्र

काम का एक से दूसरे स्थान में जाना स्वभाविक है इसलिए ७वीं वि० उसका स्थान होती है जिसको कुछ दिया वा सौंपा जाता है जैसे इन दृष्टान्तों में मा प्रयच्छ ईश्वरे धनम् (सामर्थ में अर्थात् सामर्थ को धन मत दे) तस्मिन् कार्याणि निक्षिपामि (मैं उसपर अपने काम डालताहूं) पुत्रे अंगुरीयकं समर्पयति (वुह पुत्र में अर्थात् पुत्र को अंगूठी सौंपता है) योग्ये सचिवे न्यस्यति राज्यभारम् (वुह योग्य मन्त्री पर राज का भार रखता है) राज्ञि वा राजकुले निवेदयति (वुह राजा में वा राज कुल में अर्थात् राजा से वा राजकुल से निवेदन करताहै) नलेवद (नल में अर्थात् नल को कह)

१ ली शाखा

प्रेतं भूमौ निदध्यात् (वुह मरे हुए को पृथ्वी में रखे) धर्मे मनो दधाति (वुह धर्म में मन रखता है) इस अर्थ में कृ भी आसकताहै जैसे पृष्ठे इन्धनम् अकरोत् (उसने पीठ पर ईंधन रखा) मतिं पापे करोति (वुह पाप में मति रखता है)

८६२वां सूत्र

जव दा (दे) रखने का अर्थ देताहै तव इसी अनुमान पर आताहै जैसे तस्य पुच्छाग्रे हस्तं देहि (उसकी पूंछ के आगे हाथ दे वा रख) भस्मचये पदं ददौ (उसने राख के ढेर पर पांव दिया वा रखा) ऐसे ही वस्त्राञ्चले धृतोऽस्ति (वुह वस्त्र के अञ्चल में अर्थात् अञ्चल से बांधा गया) ऐसे ही वे क्रियाएं चाहती हैं जो पकड़ने वा मारने का अर्थ देती हैं जैसे केशेषु गृह्णाति वा आकृषति (वुह वाल में

अर्थात् बाल से पकड़ता है या खैंचता है) सुप्तं प्रहरति (वुह सोए हुए में या सोए हुए को मारता है) गृहीत्वा तं दक्षिणे पाणौ (उसको दाहिने हाथ में अर्थात् दाहिने हाथ से पकड़कर)

८६३ वां सूत्र

७ वीं विभक्ति बहुधा ४ थी विभक्ति के पलटे आती है उन वाक्यों में जिनमें ४थी विभक्ति भाववाचक के पलटे आती है जैसे भर्तुर् अन्वेषणे त्वरस्व (भर्ता के ढूंढने में (ढूंढने के लिए) शीघ्रता कर) नलस्य आनयने यतस्व (नल के लाने में यत्न कर) न शेकुस् तस्य धनुषो ग्रहणे (वे उस के धनुष के उठाने में नहीं शक्तिवान हुए) न शक्तोऽभवन् निवारणे (वुह रोकने में शक्तिवान नहीं हुआ)

१ ली शाखा

दूसरे दृष्टान्त ये हैं उग्रे तपसि वर्तते (वुह भारी तप में रहता है) पार्कार्येषु मा व्यापृतो भूः (पराये काम में मत लग) विषयेषु सज्यते (वुह विषयों में तत्पर होता है) सर्वलोकहिते रमते (वुह सब लोक के हित में प्रसन्न होता है) दुर्गाधिकारे नियुज्यते (वुह गढ़ के अधिकार पर नियत होता है) द्वौ वृषभौ धुरि नियोजयति (वुह दो बैलों को धुरि में जोड़ता है) सेनापत्ये अभिषिञ्च माम् (सेनापति के काम पर मुझको अभिषेचन कर) यतते पापनिग्रहे (वुह पाप को दबाने में यत्न करता है) कोपम् तेषाम् आसीन् नृपे (उनका कोप राजा पर हुआ) परीक्षां कुरु बाहुके (बाहुक में अर्थात् बाहुक की परीक्षा कर) आधास्ये त्वयि दोषम् (मैं तुझ पर दोष रक्खूंगा) वरयस्व तं पतित्वे (उसको पति होने पर स्वीकार कर) देवा अमृते प्रयत्नो बभूवुः (देवता अमृत पर यत्नवान हुए)

२ री शाखा

न मद्विधे युज्यते वाक्यम् ईदृशम् (मुझ जैसे में ऐसा वाक्य योग्य नहीं होता है) सर्वं त्वयि प्रयुज्यते (सब कुछ तुझ में योग्य होता है) आसने उपाविशत् (वुह आसन पर बैठा) इत्याम् आसन्व (तू यहां पर बैठ) गत्वा विश्वामित्रे (वुह वि-

न्त्रओं में विश्वास करता है) चरणयोः पतति (वुह चरणों पर वा चरणों में पड़ताहै) लुठति पादेषु (वुह पांवों में लोटता है)

टीका

× आसस्व पौराणिककाव्य सम्बन्धी रूप है आस्स्व या आस्व के पलटे

विभक्ति का पलटना एकही क्रिया के साथ

८६४वां सूत्र

कभी एक ही क्रिया दो विभक्ति लेती है जैसे विधुरो धृतराष्ट्राय कुन्ती च गान्धार्याः सर्वं न्यवेदयेताम् (विधुर ने धृतराष्ट्र को और कुन्ती ने गांधारी का अर्थात् को सब जताया) अस्त्रशिक्षा ३४) इस वाक्य में एक ही क्रिया ४ थी और ६ठी विभक्ति लेती है ऐसे ही हितोपदेश में जैसे शृङ्गिणां विश्वासो न कर्त्तव्यः स्त्रीषु च (सींगवालों का विश्वास नहीं करना चाहिए और स्त्रियों में अर्थात् स्त्रियों का)

३ री विभक्ति कर्मणिवाच्य क्रियाओं के साथ

८६५वां सूत्र

इस भाषा की वाक्यरचना में कर्मणिवाच्य क्रिया के साथ ३ री वि० बहुत आती है और बताने के योग्य है ये क्रियाएं अपने कर्ता करण या कारण को ३ री वि० में चाहती हैं + और वचन और पुरुष में कर्म के सदृश होती हैं जैसे वातेन रज उद्धूयते (वायु से धूल उठाई जाती है वा उठती है) तेन सर्वद्रव्याणि सन्निक्षिप्यन्ताम् (उससे सब द्रव्य उपस्थित किएजावें) इषुभिः आदित्योऽन्तर्धीयत (बाणों से सूर्य छिपायागया)

टीका

+ थोड़े दृष्टान्त ऐसे हैं जिनमें कर्ता ३ री वि० के पलटे ६ ठी वि० में आताहै जैसे मम कृतं पापम् (मेरा कियाहुआ पाप या मुझ से कियाहुआ पाप) यहां मम मया के पलटे आयाहै

सके अन्त तुम् से जानपड़ताहै

१ ली शाखा

दूसरी भाषाओं में भाववाचक उद्देश और विधेय होसकताहै अर्थात् कर्ता और कर्म होसकताहै परन्तु संस्कृत में यिह न कभी उद्देश होसकताहै न कर्मी विधेय और केवल अनियत समय और अपूर्ण काम दिखासकताहै और जब आताहै तब किसी प्रकट या गुप्त क्रिया का विधेय समझाजाता है न उद्देश जब यिह क्रिया का विधेय होवे तब इसको क्रियासम्बन्धी संज्ञा के सदृश समझना चाहिए जो दो विभक्ति का प्रभाव रखती है अर्थात् २ री और ४ थी वि० का और दूसरी संज्ञाओं के सदृश किसी और विभक्ति में नहीं आती केवल २ री विभक्ति में आती है जैसे तत् सर्वं श्रोतुम् इच्छामि (उस सब को सुनना (सुनने को)चाहताहूं) यहां श्रोतुम् २री विभक्ति के सदृश है और आप भी २री विभक्ति को चाहताहै ऐसे ही रोदितुं प्रवृत्ता (वुह रोने लगी) मही जेतुम् आरेभे (वुह पृथ्वी को जीतने लगा) यहां महीजयम् आरेभे (वुह पृथ्वी की जय करने लगा) कहसकते हैं

२ री शाखा

वोपदेव कहता है कि भाववाचक का अन्त प्रत्यय तु की दूसरी विभक्ति है (४५८ वें सूत्र का वर्णन देखो) और यिह बात निश्चित है कि वेद में संज्ञाओं की दूसरी विभक्तियां इसः प्रत्यय के साथ भाववाचक के अर्थ में आसकती हैं जैसे ४ थी विभक्ति तवे वा तवै जैसे हन् से हन्तवे (मारना वा मारने को) अनु इ से अन्वेतवे (पीछे आना वा जाना अथवा आने को वा जाने को) मन् से मन्तवे (सोचना वा सोचने को) एक रूप तोः के साथ भी आता है और बहुधा ५ वीं विभक्ति का अर्थ देताहै जैसे इ से एतोः (जाने से) हन् से हन्तोः जैसे पुराहन्तोः (मारने से पहले) और त्वी के साथ भी आता है सो त्वा वाली अवर्तनीय गुण क्रिया के सदृश होता है जैसे हन् से हत्वी (मारताहुआ वा मारके) भू से भूत्वी (होताहुआ वा होके) वेद में भाववाचक मूल के साथ केवल विधिपूर्वक विभक्ति

सम्बन्धी अन्त बढ़ाने से भी बनसकता है जैसे दूसरी विभक्ति के अर्थ में आ-रुह् से आरुहम् (चढ़ना वा चढ़ने को) आ-सद् से आसदम् (बैठना वा बैठने को) ४थी विभक्ति के अर्थ में आ-धृष् से आधृषे (दबाने के लिए) सं-चक्ष् से संचक्षे (देखने के लिए) ५वीं विभक्ति के अर्थ में जैसे अव-पद् से अवपदः (गिरने से) भाववाचक जो मूल अन्त में आ रखतेहैं उनके आ को ऐ के साथ पलटने से भी बनाएजातेहैं जैसे प्र-या से प्रयै (पास आने को) अथवा मूलों के पीछे से बढ़ाने से जो ये होजाताहै जैसे जि से जिये (जीतना वा जीतने को) अथवा असे बढ़ाने से जैसे जीव् से जीवसे (जीना वा जीने को) अथवा अध्ये जैसे भृ से भरध्ये (उठाना वा उठाने को) यज् से यजध्ये (यज्ञ करना वा यज्ञ करने को) इत्यादि

८६८वां सूत्र

परन्तु संस्कृत भाववाचक बहुतकरके वह अर्थ देता है जो बहुधा संस्कृत में ४थी विभक्ति देती है अर्थात् लिए वा निमित्त का जैसे शावकान् भक्षितुम् आगच्छति (वह पक्षियों के बच्चों को खाने के लिये आता है) शत्रून् योद्धुं सैन्यं प्राहिणोत् (उसने शत्रु से लड़ने के लिए सेना भेजी)

१ली शाखा

इन अवस्थाओं में संस्कृत में भाववाचकों के बदले क्रियासम्बन्धी संज्ञाओं की ४थी विभक्ति जो प्रत्यय अन लगने से बनती हैं लाना शुद्धता से विरुद्ध नहीं है जैसे भक्षणाय (खाने के लिए) बदले भक्षितुम् के योधनाय (लड़ने के लिए) बदले योद्धुम् के ये आगे दूसरे दृष्टान्त हैं जिनमें भाववाचक ४ थी विभक्ति की शक्ति रखता है और काम का हेतु दिखाता है पानीयं पातुं नदीम् अगमत् (वह पानी पीने को नदी पर गया अर्थात् पानी पीने के हेतु से) मम बन्धनं छेत्तुम् उपसर्पति (वह मेरा बन्धन काटने को आता है) मां त्रातुं समर्थः (वह मुझे बचाने को समर्थ) पाशान् संहर्तुं यत्नो यभूत् (वह फन्दे इकट्ठे करने को यत्न करनेवाला हुआ)

२ री शाखा

प

अच्छे२ पण्डित कहते हैं कि जो क्रिया भाववाचक के साथ आती है सो कि- सी भिन्न पुरुष से सम्बन्ध रखती है अथवा समानाधि करणे नहीं होती तब भाव- वाचक को नहीं आना चाहिए जैसे तं गन्तुम् आज्ञापय के पलटे तं गमनाय आ- ज्ञापय (उसको जाने के लिए आज्ञा दे) कहना अच्छा जानपड़ताहै,

३ री शाखा

कर्म के पीछे (कि) का अर्थ देने के लिए जैसे अपनी भाषा में कहते हैं पिता सुनके कि दुर्योधन मारागया भाववाचक नहीं आसकता है उसके पलटे संस्कृत में ऐसा कहते हैं हतं दुर्योधनम् श्रुत्वा (मारा हुआ दुर्योधन सुनके)

८६१वां सूत्र

इसलिए यिह भाववाचक एक प्रकार की क्रियासम्बन्धी संज्ञा है जो सकर्मक वा कर्मप्रधान क्रिया का अर्थ लेसकती है जब वुह कर्मप्रधान अर्थात् कर्मणिवाच्यक्रि- या का अर्थ रखता है तब केवल थोड़े शब्दों के साथ आताहै बहुत करके ऐसे जैसे शक् (शक्तिवान हो) और युज् (योग्य हो) और जो शब्द इनसे निसृत होते हैं जैसे त्यक्तुं न शक्यते (वुह छोड़ा नहीं जा सकता) पाशो न छेत्तुं शक्यते (फंदा नहीं काटा जासकता) न शक्याः समाधातुं ते दोषाः (वे दोष उपाय नहीं किएजासकते) श्रोतुं न युज्यते (वुह सुना जाने के योग्य नहीं) छेत्तुम् अयोग्यः (वुह काटाजाने के योग्य नहीं) त्वया न युक्तम् अवमानम् अस्य कर्तुम् (तुझसे उसका अपमान किया जाना योग्य नहीं) कीर्तयितुम् योग्यः (कीर्त कियाजाने के योग्य)

१ ली शाखा

ये आगे इसी के दूसरे दृष्टान्त हैं मण्डपः कारयितुम् आरब्धः (मण्डप बनाया जाने वा बनाने लगा) राज्ये अभिषेक्तुम् भवान् निरूपितः (आप राज पर अभि- षेचन किए जाने के लिए चुने गए) अर्हति कर्तुम् (वुह कियाजाने को योग्य है) कर्तुम् अनुचितम् (कियाजाने के लिए अनुचित) सा मोचयितुं न्याय्या (वुह छो- ड़ीजाने को योग्य है) किम् इदं मार्थितं कर्तुम् (क्या यिह कियाजाने के लिए प्-

होगया) अकर्मक क्रियाओं का भाववाचक कर्मणिवाच्य का अर्थ रखताहै इ
ए यथार्थ में कर्मणिवाच्य होताहै जैसे क्रोद्धुं न अर्हसि (तू क्रोध होने के य
नहीं)

८७०वां सूत्र

अर्ह् (योग्य हो) जब भाववाचक के साथ आताहै तब प्रार्थना का अर्थ
है अर्थात् मानयुक्त अनुमत्यर्थ होताहै जैसे धर्मान् नो वक्तुम् अर्हसि (तू
को धर्म कहने के योग्यहै अर्थात् आप हमसे धर्म कहें) फिर कभी अवश्यकता
योग्यतासूचक का अर्थ देता है जैसे न मादृशी त्वाम् अभिभाषुम् अर्हति (
जैसे को तुझसे बोलना नहीं चाहिए) न तं शोचितुम् अर्हसि (तू उसको सोचने
योग्य नहीं अर्थात् तुझे उसको सोचना नहीं चाहिए)

८७१वां सूत्र

फिर भाववाचक कभी काम (इच्छा) के साथ मिलके एक प्रकार का मिश्रि
विशेषण बनताहै और कोई काम किया चाहने का अर्थ देताहै परन्तु तब पीछे इस
म् छूटजाता है जैसे द्रष्टुकामः द्रष्टुकामा द्रष्टुकामम् (देखा चाहनेवाला या वाली
जेतुकामः जेतुकामा जेतुकामम् (जीता चाहने वाला या वाली)

१ ली शाखा

ऐसे ही कभी मनस् के साथ मिलता है जैसे स द्रष्टुमनाः (वह देखने को या
खने के लिए मन रखता है)

८७२वां सूत्र

जब भाववाचक के पीछे किम् आता है तब एक मुख्य प्रकार की उलट,पलट
होती है इसका एक दृष्टान्त शकुन्तलानाटक के आदि में आया है सो फिर है
सखी से ज्ञातुम् इच्छामि किम् अनया वैखानसं व्रतं निषेवितव्यम् (मैं तेरी सखी
को जानाचाहता हूं क्या उससे वैखानस व्रत किया जाने के योग्य है) पलटे ज्ञातुम्
इच्छामि किं सख्या ते वैखानसं व्रतं निषेवितव्यम् (मैं जानाचाहता हूं क्या तेरी स

अच्छे २ पण्डित कहते हैं कि जो क्रिया भाववाचक के साथ आती है सो किसी भिन्न पुरुष से सम्बन्ध रखती है अथवा समानाधिकरणे नहीं होती तब भाववाचक को नहीं आना चाहिए जैसे तं गन्तुम् आज्ञापय के पलटे तं गमनाय आज्ञापय (उसको जाने के लिए आज्ञा दे) कहना अच्छा जानपड़ताहै

३ री शाखा

कर्म के पीछे (कि) का अर्थ देने के लिए जैसे अपनी भाषा में कहते हैं पिता सुनके कि दुर्योधन मारागया भाववाचक नहीं आसकता है उसके पलटे संस्कृत में ऐसा कहते हैं हतं दुर्योधनम् श्रुत्वा (मारा हुआ दुर्योधन सुनके)

८६९वां सूत्र

इसलिए यिह भाववाचक एक प्रकार की क्रियासम्बन्धी संज्ञा है जो सकर्मक वा कर्मप्रधान क्रिया का अर्थ लेसकती है जब वुह कर्मप्रधान अर्थात् कर्मणिवाच्यक्रिया का अर्थ रखता है तब केवल थोड़े शब्दों के साथ आताहै बहुत करके ऐसे जैसे शक् (शक्तिवान हो) और युज् (योग्य हो) और जो शब्द इनसे निकृत होते हैं जैसे त्यक्तुं न शक्यते (वुह छोड़ा नहीं जा सकता) पाशो न छेत्तुं शक्यते (फंदा नहीं काटा जासकता) न शक्याः समाधातुं ते दोषाः (वे दोष उपाय नहीं किएजासकते) श्रोतुं न युज्यते (वुह सुना जाने के योग्य नहीं) छेत्तुम् अयोग्यः (वुह काटाजाने के योग्य नहीं) त्वया न युक्तम् अवमानम् अस्य कर्तुम् (तुझसे उसका अपमान किया जाना योग्य नहीं) कीर्तयितुम् योग्यः (कीर्त कियाजाने के योग्य)

१ ली शाखा

ये आगे इसी के दूसरे दृष्टान्त हैं मण्डपः कारयितुम् आरब्धः (मण्डप बनाया जाने वा बनाने लगा) राज्ये अभिषेक्तुम् भवान् निरूपितः (आप राज पर अभिषेचन किए जाने के लिए चुने गए) अर्हति कर्तुम् (वुह कियाजाने को योग्य है) कर्तुम् अनुचितम् (कियाजाने के लिए अनुचित) सा मोचयितुं न्याय्या (वुह छोड़ीजाने को योग्य है) किम् इदं माधितं कर्तुम् (क्या यिह कियाजाने के लिए प्

कुर्वन् आस्ते (वुह पशुओं का वध करतारहताहै) मम पश्चाद् आगच्छन् आस्ते (वुह मेरे पीछे आतारहता है)

८७८वां सूत्र

निपात स्म जब वर्तमान के साथ आता है तब पूर्णभूत का अर्थ देताहै जैसे प्रविशन्ति स्म पुरीम् (उन्हों ने पुरी में प्रवेश किया) निवसन्ति स्म (वे रहे) (२५१ वें सूत्र का वर्णन देखो)

८७९वां सूत्र

शत्तचर्थ

इस नाम से जो वहुत से अर्थ यिह देता है उनका ज्ञान नहीं होसकता है परन्तु जैसा प्रसङ्ग चाहता है वैसा अर्थ देता है जैसे आगतं सर्वं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम् (आयाहुआ हर देखके मनुष्य जैसा उचित हो वैसा करे)

८८०वां सूत्र

यिह अनियत और सामान्य अर्थ के लिए आसकताहै जैसे यस्य यो भावः स्यात् (जिसका जो भाव होवे) यदा राजा स्वयं न कुर्यात् कार्यदर्शनम् (जब राजा आप काम देखना न करे) अप्राप्तकालवचनं ब्रुवन् प्राप्नुयात् अपमानम् (अन अवसर का वचन कहताहुआ या कहनेवाला अपमान पाए अर्थात् पाता है या पाएगा)

१ली शाखा

विशेषकरके यिह रूप उपाधिसूचक और अभिप्रायसूचक वाक्यों में आता है जैसे यदि राजा दण्डं नप्रणयेत् स्वाम्यं कस्मिंश्चिन् न स्यात् सर्वसेतवश्च भिद्येरन् (जो राजा दण्ड नकरे या नकरता तो किसी में स्वामीपना न रहे या रहता) और सब रोकें टूटजाएं या टूटजातीं) कहीं उपाधिसूचक शब्द साथ नहीं रहता जैसे नभवेद् (न होवे या नहोता) नस्यात् पर्याप्तिः (वुह पर्याप्त नहोवे या नहोता)

स्त्री से पैलानस मन कियाजाने के योग्य है) के

क्रियासम्बन्धी रूपों की मिलावट और उनके काम

८०३वां सूत्र

वर्तमानकाल

यिह काल अपना अर्थ तो देताही है परन्तु भविष्यत का भी देताहै जैसे क्वगच्छामि (मैं कहां जाऊंगा) कदा त्वां पश्यामि (मैं तुझको कब देखूंगा) किं करोमि (मैं क्या करूंगा) और कभी अनुमत्यर्थ का जैसे तत् कुर्मः (मैं उसको करूं)

८७४वां सूत्र

व्याख्यान में यिह भूतकाल के पलटे आताहै जैसे स भूमिं स्पृष्ट्वा कर्णौ स्पृशति ब्रूते च (वुह पृथ्वी छूके दोनों कान छूताहै और बोलता है अर्थात् उसने पृथ्वी छूके दोनों कान छूए और बोला)

८७५वां सूत्र

यिह स्वभाविक काम भी दिखाता है अर्थात् वुह काम जो सदा करनेमें आता है जैसे मृगः प्रत्यहं तत्र गत्वा शस्यं खादति (मृग प्रत्येक दिन वहां जाके खेती खाताहै अर्थात् खायाकरता है) यदा स मूषिकशब्दं शृणोति तदा बिडालं संवर्धयति (जब वुह चूहे का शब्द सुनता है तब बिलाव को खिलाता है)

८७६वां सूत्र

बहुधा यिह यावत् और तावत् के साथ आता है जैसे यावत् मे दन्ता न त्रुट्यन्ति तावत् तव पाशं छिनद्मि (जबतक मेरे दांत नहीं टूटते हैं (नहीं टूटेंगे) तबतक तेरा फन्दा काटता हूं (काटूंगा)

८७७वां सूत्र

मूल आस् (बैठ वा रह) का वर्तमान किसी दूसरी क्रिया की वर्तमान गुणक्रिया के साथ आता है तब निरन्तर वा समकालिक काम दिखाता है जैसे पशूनां वधं

कुर्वन् आस्ते (वुह पशुओं का वध करतारहताहै) मम पश्चाद् आगच्छन् आस्ते (वुह मेरे पीछे आतारहता है)

८७८वां सूत्र

निपात स्म जब वर्तमान के साथ आता है तब पूर्णभूत का अर्थ देताहै जैसे प्रविशन्ति स्म पुरीम् (उन्हों ने पुरी में प्रवेश किया) निवसन्ति स्म (वे रहे) (२५१ वें सूत्र का वर्णन देखो)

८७९वां सूत्र

शत्त्वर्थ

इस नाम से जो बहुत से अर्थ पिद्द देता है उनका ज्ञान नहीं होसकता है परन्तु जैसा प्रसङ्ग चाहता है वैसा अर्थ देता है जैसे आगतं भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम् (आयाहुआ डर देखके मनुष्य जैसा उचित हो वैसा करे)

८८०वां सूत्र

पिद्द अनिश्चित और सामान्य अर्थ के लिए आसकताहै जैसे यस्य यो भावः स्यात् (जिसका जो भाव होवे) यदा राजा स्वयं न कुर्यात् कार्यदर्शनम् (जब राजा आप काम देखना न करे) अप्राप्तकालवचनं ब्रुवन् प्राप्नुयाद् अपमानम् (अब अवसर का वचन कहताहुआ वा कहनेवाला अपमान पाए अर्थात् पाता है वा पाएगा)

१ली शाखा

विशेषकरके पिद्द रूप उपाधिसूचक और अभिलाषासूचक वाक्यों में आता है जैसे यदि राजा दण्डं न प्रणयेत् स्वाम्यं कस्मिंश्चिन् न स्यात् सर्वसेतवश्च भिद्येरन् (जो राजा दण्ड न करे वा नकरता तो किसी में स्वामीपना न रहे वा न रहता) और सब रोकें टूटजाएं वा टूटजातीं) कभी उपाधिसूचक शब्द साथ नहीं रहता जैसे न भवेत् (न होवे वा नहोता) न स्यात् पतितो नरः (वुह पापी न होवे वा न होता)

८८१वां सूत्र

शत्रर्थ बहुधा नम्र अनुमत्यर्थ के सदृश आता है जैसे गच्छ के पलटे गच्छेः (तू जा) और अत्तु फलानि के पलटे अद्यात् फलानि (तू फल खाए) स्यात् (तू होवे वा होना चाहिए) (पाणिनि की टीका देखो)

८८२वां सूत्र

अनुमत्यर्थ

यिह रूप आज्ञा वा विनय का अर्थ देता है जैसे आश्वसिहि (हियाव कर) माम् अनुस्मर (मुझको स्मर्ण कर)

मा और न निषेधसूचक हैं (मत) का अर्थ देते हैं जैसे अनृतं मा ब्रूहि (झूठ मतबोल) मा लज्जस्व (मत लजा) (८८९वां सूत्र देखो) उत्तम पुरुष का रूप अवश्यक्ता दिखाने में आता है (७१६ वें सूत्र में दृष्टान्त देखो)

१ली शाखा

अन्यपुरुष एकवचन कभी २ अन्तःक्षेपण के सदृश आता है जैसे भवतु (ऐसा हो-क्या-अच्छा) यातु (जा वा आ)

८८३वां सूत्र

अनुमत्यर्थ कभी २ उपाधिसूचक वाक्य में भी आता है जैसे अनुजानीहि मां गच्छामि (मुझ को आज्ञा दे जाऊं अर्थात् जो मुझको आज्ञा दे तो जाऊं) आज्ञापय हन्मि दुष्टजनम् (जो तू आज्ञा दे तो दुष्ट जन को मारूं) अभयवाचं मे यच्छ गच्छामि (अभय का वाक्य मुझको दे तो जाऊं)

८८४वां सूत्र

अपूर्णभूत

यिह रूप (२४२ वां सूत्र देखो) शुद्धता से बीता हुआ अपूर्ण काम दिखाता है और क्रियाओं की वर्तनियों में ऐसा ही बताया है सो भी यिह बहुधा अनियतभूत-

काल का अर्थ देताहै और किसी दूसरे से कुछ अवश्य लगाव नहीं रखता जैसे अर्थं ग्रहीतुं यत्नम् अकरवम् (मैंने धन बटोरने को यत्न किया) (था करताथा) अवश्य नहीं

वर्णन

आगम् अ मा या माश्म के पीछे दूर होसकताहै जैसा अनियतभूत में जैसे मा श्म भवत् (वुह मत हो अर्थात् नहो) (२४२ वें सूत्र का वर्णन देखो) [पा० ६, ४, ७४]

८८५वां सूत्र

पूर्णभूत

यिह रूप जैसा २४२ वें सूत्र में बतायाहै शुद्धता में वुह काम दिखाता है जो भूतकाल में किसी नियत समय पर हुआ है जैसे कौशल्यादयो भूपतिं दशरथं न-नन्दुः (कौशल्या इत्यादि राजा दशरथ को गईं) परन्तु बहुधा अनियत समय दिखाने को भी आताहै)

८८६वां सूत्र

प्रथमभविष्यत

यिह रूप (२४२ वां सूत्र देखो) निश्चय भविष्यता दिखाताहै परन्तु [illegible] सम्बन्धी भविष्यता नहीं दिखाता जैसे [illegible] (इन दिशाओं में तू इच्छा का फल पाएगा) [illegible])

८८७वां सूत्र

द्वितीय भविष्यत

यिह रूप शुद्धता में भविष्यता [illegible] चाहे निकट चाहे दूर चाहे नियतहो चाहे अनियत जैसे [illegible])

तत्र अवश्यं पत्नीं द्रक्ष्यति (वुह वहां अवश्य पत्नी को देखेगा) अद्य गमिष्यति (तू आज जाएगा)

१ ली शाखा

यिह कभी अनुमत्यर्थ के पलटे आताहै जैसे यद् देयं तद् दास्यसि (जो देने योग्य है सो तू देगा वा दे)

८८८वां सूत्र

अनियतभूत

यिह रूप (२४२ वां सूत्र देखो) शुद्धता से वुह काल दिखाता है जो बीत चुका है और नियत नहीं है जैसे अभून् नृपः (राजा था वा राजा हुआ)

८८९वां सूत्र

यिह निषेधसूचक मा और मास्म के साथ आताहै तब आगमवाला अ छूट जाताहै और अनुमत्यर्थ का अर्थ देताहै (२४२ वें सूत्र का वर्णन देखो) जैसे मा कृथाः (मतकर) मा त्याक्षीः समयम् (समय को मत खो) मा स्म अनृतं वादीः (झूठ मत बोल) मा क्रुधः (क्रोध मतकर) मा शुचः (सोच मत कर) मा हिंसीः (मत सता) मा नीनशः [मतबिगाड़] मैवं वोचः (ऐसा मत बोल) मा भैषीः (मत डर यिह माभैः का संक्षिप्त रूप है (नल १४. ३)

८९०वां सूत्र

आशीर्वादवाचक

यिह रूप हितोपदेश में केवल एक दृष्टान्त रखता है नित्यं भूयात् सकलसुखवसतिः (वुह सदा सब सुख का स्थान होवे) यिह बहुधा आशीर्वाद देने में आताहै और शाप देने में भीः

१ ली शाखा

जब शाप देने में आता है तब बहुधा प्रत्यय अनि उसके साथ आताहै और

अजीवनिश् ते भूयात् (तेरी अजीवनि वा मृत्यु होवे)

८९१वां सूत्र

आशंसार्थ

लिङ् रूप (२२४वां सूत्र देखो) आशीर्वादवाचक से भी थोड़ा आता है इसके दृष्टान्त ये हैं यदि राजा दण्डं न प्रणयेत् तदा शूले मत्स्यान् इव अपक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः (जो राजा दण्ड न देता वा न देवे तो अति बलवाले दुर्बलों को मछलियों के सदृश शूल पर भूनते वा भूनें) और किसी२ व्याकरणी ने इस दृष्टान्त में अपक्ष्यन् के पलटे हिंसाम् अकरिष्यन् (सताते वा सतावें) लिखा है सुवृष्टिश् चेद् अभविष्यत् तदा सुभिक्षम् अभविष्यत् (जो अच्छी वर्षा होती वा होवे तो अन्न की वृद्धि होती वा होवे) (पा० ३, ३, १३९ के अनुसार इस को क्रियातिपत्तौ कहते हैं और जब काम अपूर्ण रहता है तब क्रियाया अनिष्पत्तौ कहते हैं

१ली शाखा

वेदसम्बन्धी आशीर्वादवाचक अर्थात् लेट

इस रूप को बनाने में वर्तमानसम्बन्धी अपूर्णपद और अन्त के बीच में एक ह्रस्व अ बढ़ता है और जो वर्तमानसम्बन्धी अपूर्णपद अन्त में अ रखता है तो फिर अ दीर्घ होजाता है और अपूर्णभूत वा अनिपतभूत का आगमवाला अ गिरजाता है जैसे हन् से स्वार्थनियम का वर्तमान हन्ति होता है परन्तु इस आशंसार्थ नियम का हनति होता है पत से स्वार्थनियम का वर्तमान पतति इसका पताति अश् से स्वार्थनियम का अपूर्णभूत आश्नोत् इसका अश्नवत् जैसे अश्नो + अ + त ऐसेही प से स्वार्थनियम का अपूर्णभूत अपत् इस आशंसार्थ का पतात् तृ से स्वार्थनियम का अनिपतभूत अतारीत् होताहै (जो आदि में अतारिम था जैसे, शिवपत्र अतारिष इत्यादि) इस आशंसार्थ का अनिपतभूत तारिषत् होता है फिर भी जानना चाहिए कि आत्मनेपद में पिछला ए इच्छानुसार ऐ होजाता है जैसे मादयाध्वै और

नत्र अवश्यं पत्नीं द्रक्ष्यति (वुह सदा अवश्य पत्नी को देखेगा) अद्य गमिष्यति (वु आज जाएगा)

१ ली शाखा

यिह कभी अनुमत्यर्थ के पलटे आताहै जैसे यद् देयं तद् दास्यसि (जो देने योग्य है सो तू देगा या दे)

८८८वां सूत्र

अनियतभूत

यिह रूप (२४२ वां सूत्र देखो) शुद्धता से वुह काल दिखाता है जो बीत चुका है और नियत नहीं है जैसे अभूत् नृपः (राजा था वा राजा हुआ)

८८९वां सूत्र

यिह निषेधसूचक मा और मास्म के साथ आताहै यब आगमधातु अ छूट जाताहै और अनुमत्यर्थ का अर्थ देताहै (२४२ वें सूत्र का वर्णन देखो) जैसे मा कृथाः (मतकर) मा त्याक्षीः समयम् (समय को मत खो) मा स्म अनृतं वादीः (झूठ मत बोल) मा क्रुधः (क्रोध मतकर) मा शुचः (सोच मत कर) मा हिंसीः (मत सता) मा नीनशः (मतबिगाड़) मैवं वोचः (ऐसा मत बोल) मा गैपीः (मत गा) यिह मा गाः का संक्षिप्त रूप है (नल १४. ३)

८९०वां सूत्र.

आशीर्वादवाचक

यिह रूप हितोपदेश में केवल एक दृष्टान्त रखता है नित्यं भूयात् सकलसुखवसतिः (वुह सदा सब सुख का स्थान होवे) यिह बहुधा आशीर्वाद देने में आताहै और शाप देने में भी

१ ली शाखा

जब शाप देने में आता है तब बहुधा वरयम अनि उसके साथ आताहै जैसे

पिह कि अनिपतमूत का पिह आशावार्थ अ को दीर्घ किए बिना कभी: वर्तमान के अन्त होताहै जैसे यच् से स्वार्थनियम का अनिपतमूत अर्वाचत् होताहै और इसका योचमि

वर्णन

देखो लेट का चिन्ह अ का वर्णनहै

गुणक्रियाओं की वाक्यरचना

८९२वां सूत्र

संस्कृत में गुणक्रियाएं बहुधा क्रियाओं के रूपों के काम देती हैं सदा नहीं तो बहुधा ये भूत और भविष्यतों के पलट और विशेषकरके कर्मणिवाच्य क्रियाओं के पलटे आती हैं

८९३वां सूत्र

गुणक्रियाएं जिन क्रियाओं से निकलती हैं उन्ही का प्रभाव रखती हैं अर्थात् वेही विभक्तियां चाहती हैं जो वे चाहती हैं जैसे व्याधं पश्यन् (व्याध को देखता हुआ) अरण्ये चरन् (वन में चलताहुआ) तत् कृतवान् (उस ने उसको किया) शब्दम् आकर्ण्य (शब्द सुनके) पानीयम् अपीत्वागतः (वह पानी नपीके गया)

१ ली शाखा

कर्मणिवाच्य गुणक्रियाओं में जैसा आगे जानपड़ेगा कर्त्ता ३ री विभक्ति में आता है और गुणक्रिया विशेषण के सदृश कर्म के अनुसार होती है

वर्तमान गुणक्रियाएं

८९४वां सूत्र

ये गुणक्रियाएं संस्कृत भाषा में इतनी नहीं आती हैं जितनी भूत और भविष्यत गुणक्रियाएं आती हैं तो भी ये बहुधा विधिपूर्वक शुद्धता से आसकती हैं जैसे अहं दक्षिणारण्ये चरन्तं अपश्यम् (मैंने दक्षिण के वन में चलतेहुए देखा) इत्यादि

कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया

८९५ वां सूत्र

यह बहुत काम देने वाली गुणक्रिया सदा कर्मणिवाच्य पूर्णभूत के पलटे आती है और कभी२ सहायक क्रिया अस् और भू (हो) के साथ मिलके जैसे आदिष्टोऽस्मि (मैं आज्ञा दिया गयाहूं) वयं विस्मिताः स्मः (हम चकितहुए) उपितोऽस्मि (मैं रहाहूं) (८९६ वां सूत्र देखो) यथार्थ में यह गुणक्रिया विशेषण के सदृश लिङ्ग वचन और विभक्तियों में कर्म के अनुसार होती है और कर्ता को तीसरी विभक्ति में रखती है जैसे संस्कृत में मैंने पत्र लिखा को अहं पत्रं लिलेख कहना इतना अच्छा नहीं लगता जितना मया पत्रं लिखितम् (मुझ से पत्र लिखा गया) अच्छा लगता है ऐसे ही स बन्धनानि चिच्छेद (उसने बन्धन काटे) से तेन बन्धनानि छिन्नानि (उससे बन्धन काटेगए) अच्छाहै और स उवाच (उसने कहा) से तेन उक्तम् (उससे कहागया) अच्छा लगता है

१ ली शाखा

यह गुणक्रिया बहुधा पुरुष रहित आती है और जब जो क्रिया पहले अपेक्षा ही होती है तो इच्छानुसार यह गुण धारती है जैसे द्युतितम् या द्योतितं सूर्येण (वह सूर्य से चमकायागया) और जब किसी काम का आरम्भ दिखाते हैं तब भी ऐसा ही होता है जैसे सूर्यः प्रद्युतितः या प्रद्योतितः (सूर्य चमकने लगाहै)

२ री शाखा

जब कोई क्रिया दो कर्म रखती है (८४६ वां सूत्र देखो) तब कर्मणिवाच्यभूत गुणक्रिया के साथ एक कर्म रहजाताहै जैसे विश्वामित्रेण दशरथो रामं याचितः (विश्वामित्र से दशरथ से राम मांगा गया अर्थात् विश्वामित्र ने दशरथ से राम को मांगा) सुतोपितं घोर दुग्धा (मन का चाहाहुआ आकाश से दोहागया) जितो राज्यं वसूनि च (राज और द्रव्य जीता गया) ८४६ वें सूत्र का वर्णन देखो)

८९६ वां सूत्र

पिद कि अनिपतमूत का पिद आशार्थ अ को दीर्घ किए बिना कर्मीर वर्तमान के अन्त होताहै जैसे वच् से स्वार्थनियम का अनिपतमूत अवोचत् होताहै और इसका वोचनि

वर्णन

देखो लेट का चिन्ह अ का वढ़नाहै

गुणक्रियाओं की वाक्यरचना

८९२वां सूत्र

संस्कृत में गुणक्रियाएं बहुधा क्रियाओं के रूपों के काम देती हैं सदा नहीं तो बहुधा ये भूत और भविष्यतों के पलटे और विशेषकरके कर्मणिवाच्य क्रियाओं के पलटे आती हैं

८९३वां सूत्र

गुणक्रियाएं जिन क्रियाओं से निकलती हैं उन्हीं का प्रभाव रखती हैं अर्थात् वेही विभक्तियां चाहती हैं जो वे चाहती हैं जैसे व्याधं पश्यन् (व्याध को देखता हुआ) अरण्ये चरन् (बन में चलताहुआ) तत् कृतवान् (उस ने उसको किया) शब्दम् आकर्ण्य (शब्द सुनके) पानीयम् अपीत्वागतः (वह पानी नपीके गया)

१ ली शाखा

कर्मणिवाच्य गुणक्रियाओं में जैसा आगे जानपड़ेगा कर्त्ता ३ री विभक्ति में आता है और गुणक्रिया विशेषण के सदृश कर्म के अनुसार होती है

वर्तमान गुणक्रियाएं

८९४वां सूत्र

ये गुणक्रियाएं संस्कृत भाषा में इतनी नहीं आती हैं जितनी भूत और भविष्यत गुणक्रियाएं आती हैं तो भी ये बहुधा विधिपूर्वक शुद्धता से आसकती हैं जैसे अहं दक्षिणारण्ये चरन्तं अपश्यम् (मैंने दक्षिण के बन में चलतेहुए देखा) इत्यादि

परन्तु बहुधा कर्मणिवाच्यभूतगुणक्रिया कर्तरिवाच्य भूत गुणक्रिया के पलटे आती है और तब कर्तृवाच्य पूर्णभूत के सदृश कर्म चाहती है जैसे स वृक्षम् आरूढः (वुह पेड़ पर चढ़ा) स गृहं गतः (वुह घर को गया) वा स गृहम् आगतः (वुह घर को गया) वर्त्म तीर्णः (मार्ग को पार कियाहुआ) अहं पदवीम् अवतीर्णोऽस्मि (मैं मार्ग को उतरा) अहं नगरीम् अनुप्राप्तः (मैं नगरी को पहुंचा) आवाम् आश्रमं प्रविष्टौ स्वः (हम दोनों ने अपने आश्रम में प्रवेश कियाहै) परन्तु देखो इसका कर्तरिवाच्य गुणक्रिया के पलटे आना सदा नहीं परन्तु बहुधा चलने का अर्थ लेने वाली और थोड़ी दूसरी अकर्मक क्रियाओं में ही होताहै ये आगे इसके दूसरे दृष्टान्त हैं पक्षिण उत्पतिताः (पक्षी उड़गए) स मृतः (वुह मर गया) व्याधो निवृत्तः (व्याध फिरा) स भक्षयितुं प्रवृत्तः (वुह खाने लगा) स आश्रितः (उसने आसरा लिया) स प्रसुप्तः (वुह सोया) ते स्थिताः (वे खड़े हुए) उषितः (वुह रहा)

१ ली शाखा

सिद्ध गुणक्रिया कभी२ वर्तमान गुणक्रिया का अर्थ देती है जैसे स्थित (खड़ा हुआ) कभी (खड़ा होताहुआ) भीत (डराहुआ) कभी (डरता हुआ) स्मित (मुस्करायाहुआ) कभी (मुस्कराताहुआ) आश्लिष्ट (मिलाहुआ) कभी (मिलताहुआ) और त्रि अनुबन्ध रखनेवाली सब क्रियाओं की ये गुणक्रियाएं इच्छानुसार वर्तमान गुणक्रिया का अर्थ दे सकती हैं) ७५ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो).

२ री शाखा

कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया का नपुन्सक कभी२ संज्ञा के अर्थ में आताहै जैसे दत्तम् (दान) खातम् (खुदी हुई धरती) अन्नम् [नाज] दुग्धम् (दूध)

कर्तरिवाच्य भूतगुणक्रिया

८१७वां सूत्र

यिह गुणक्रिया कर्तरिवाच्य पूर्णभूत के पलटे बहुत आती है विशेषकरके नवीन संस्कृत में और टीकाकारों की लिखावट में और अपनी क्रिया की विभक्ति चाहती है जैसे सर्वं श्रुतवान् (उस ने सब सुना) पत्नी पतिम् आलिङ्गितवती (पत्नी पति को मिली) राज्ञो हस्ते फलं दत्तवान् (उस ने राजा के हाथ में फल दिया) सा तत् कृतवती (उस स्त्री ने वुह किया) यिह गुणक्रिया सहायक क्रिया अस् और भू (हो) के साथ आके मिश्रित पूर्ण रूप बनाती है जैसे तत् कृतवान् अस्मि (उसने वुह किया है) तत् कृतवान् भविष्यति (वुह उसको करेगा)

अवर्तनीय भूत गुणक्रियाएं

८९८वां सूत्र

संस्कृत भाषा में अपेक्षापूरक सर्वनाम समुच्चयी और संयोजक निपातों की मिलावट इन्हीं गुणक्रियाओं से होती है इन गुणक्रियाओं की सहायता से क्रिया का काम आगे चलता है और वाक्य से वाक्य मिलता है और कोई समुच्चयी बीचमें नहीं आता भाषण वा व्याख्यान में जितनी ये गुणक्रियाएं आती हैं उतनी दूसरी नहीं आती हैं और संस्कृत वाक्यरचना की मुख्य मुख्यता इन गुणक्रियाओं के बहुत आने से पाई जाती है

८९९वां सूत्र

ये बहुधा उस काल के पलटे आती हैं जो किसी यौगिक समुच्चयबोधक में मिलाहुआ रहताहै और जिसका उल्था अपनी भाषा में पीछे कर वा के लगाने से कियाजाता है (५५५ वां सूत्र देखो) जैसे तद् आकर्ण्य निश्चित्य एव अयं कुक्कुर इति मत्वा छागं त्यक्त्वा स्नात्वा स्वगृहं ययौ । यिह सुनके निश्चय हो किया यिह कुत्ता है यिह समझके बकरी को छोड़के नहाके अपने घर को गया । इन सब अवस्थाओं में अपनी भाषा में इन क्रियाओं का भूतकाल समुच्चयबोधक के साथ लासकते हैं जैसे यिह सुना तब उसने निश्चय दी किया कि यिह कुत्ता है यिह समझा और बकरी को छोड़ा और नहाया और अपने घर को गया)

१-ली शाखा

इस ऊपरवाले दृष्टान्त से यिह बात पाईजाती है कि यिह गुणक्रिया यथार्थ में जो काल आगे आता है उस के पीछे (और) के पलटे आती है

१००वां सूत्र

य वाली अवर्तनीय गुणक्रिया थोड़ी आती है परन्तु भविष्यत काल के लिए आती है जैसे नराः शास्त्राण्य् अधीत्य भवन्ति पण्डिताः (नर शास्त्रों को पढ़के पण्डित होतेहैं) भार्या अपि अकार्य शतं कृत्वा भर्तव्या (स्त्री सौ बुरे काम करके भी पालने के योग्य है) किं पौरुषं हत्वा सुप्तम् (क्या पुरुषपना सोएहुए को मारके)

ये गुणक्रियाएं योग्यता और अवश्यता का अर्थ देती हैं (५६८ वां सूत्र देखो) और कर्ता को जिसके आधीन वुह काम रहताहै ३ री वि० में चाहती हैं और आप कर्म की अनुगामी होती हैं जैसे त्वया प्रवृत्तिर् न विधेया (तुझ से प्रवृत्ति कीजाने के योग्य नहीं है)

१ ली शाखा

परन्तु ये कभी२ उस कर्ता को ६ठी वि० में चाहती हैं जैसे द्विजानीनां भक्ष्यम् अन्नम् (ब्राह्मणों का अर्थात् ब्राह्मणों से खायाजाने के योग्य अन्न है) ८६५वें सूत्र की टीका देखो)

९०३रा सूत्र

कभी यिह गुणक्रिया समान वा योग्य वा उचित का अर्थ देती है जैसे कश्य (कोड़े के योग्य) ताडनीय (ताडने के योग्य) मुसल्य (छड़ाजाने के योग्य वा मूसल से मारो जाने के योग्य) वध्य (वध कियाजाने के योग्य)

९०४था सूत्र

जो क्रिया दो कर्म चाहती है उसकी यिह गुणक्रिया एक कर्म चाहती है जैसे नयनसलिलं त्वया शान्तिं नेयम् (नेत्र का जल तुझ से शान्ति को अर्थात् शान्ति में लाया जाने के योग्य)

९०५वां सूत्र

कभी२ इस गुणक्रिया का नपुंसक पुरुष रहित आताहै और यह कर्म का अनुगामी नहीं होता और उसको जैसे क्रिया चाहती है वैसे चाहताहै जैसे मया ग्रामं गन्तव्यम् (मुझसे गांव को जाना योग्य है) पलटे मया ग्रामो गन्तव्यः (मुझसे गांव जाने के योग्य है) के ऐसे ही त्वया सभां प्रवेष्टव्यम् (तुझ से सभा को वा सभा में प्रवेश कियाजाना योग्य है)

१ ली शाखा

...व्यम् नपुन्सकलिङ्ग कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रिया है गु (टी) में मी

१ ली शाखा

इस ऊपरवाले दृष्टान्त से यिह बात पाईजाती है कि यिह गुणक्रिया यथार्थ में जो काल आगे आता है उस के पीछे (और) के पलटे आती है

११०वां सूत्र

य वाली अवर्तनीय गुणक्रिया थोड़ी आती है परन्तु भविष्यत काल के लि ती है जैसे नराः शास्त्राण्य् अधीत्य भवन्ति पण्डिताः (नर शास्त्रों को पढ़के प होतेहैं) भार्या अपि अकार्य शतं कृत्वा भर्तव्या (स्त्री सौ बुरे काम करके भी ः योग्य है) किं पौरुषं हत्वा सुप्तम् (क्या पुरुषपना सोएहुए को मारके)

वर्णन

ा यिह गुणक्रिया कभी कर्मणिवाच्य का भी अर्थ देती है

१०१ला सूत्र

ा अन्त त्वा करणवाचक जानपड़ता है और बहुत भी करणवाचक की प्र ः ः क्योंकि व्याकरणसम्बन्धी मिलावट में यिह सदा कर्ता के साथ इ ः आता है जैसे सर्वैः पशुभिर् मिलित्वा सिंहो विहतः (सब पशुओं . सिंह जतायागया) सर्वैर् जालम् आदाय उड्डीयताम् (सबों से जाल गा जावे)

१ ली शाखा

रणवाचक होने का एक अधिक बलवान प्रमाण यिह है कि निपात अ ः वि० चाहताहै सो बहुधा इस गुणक्रिया के साथ आताहै जैसे प्रभूतं भो ः (खाने से बहुत) शुद्धता के साथ अलंभुक्त्वा (खाके बहुत) के पलटे आ ः ः (९१८ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रियाएं

१०२ रा सूत्र

इस गुणक्रिया का नपुन्सक कभी२ भाववाचक वा संज्ञा के सदृश आताहै और अपनी क्रिया का केवल अनियत काम दिखाता है योग्यता वा अवश्यता नहीं दिखाता है इस अवस्था में इति उसके पीछे धरसकता है जैसे वञ्चयितव्यम् इति (छलना वा छल] (हितोपदेश की ४१६वीं पङ्क्ति देखो) मर्तव्यम् इति (मरने पर होना वा मरना) परन्तु इति सदा पीछे नहीं आता) जैसे जीवितव्यम् (जीना वा जीव)

गुणक्रियासम्बन्धी कर्तृवाचक नाम

१०९वां सूत्र

इन कर्तृवाचक नामों में से (५८०वां सूत्र देखो) पहला सदा काव्य में वर्तमान क्रिया के पलटे आता है परन्तु स्वभाविक काम का अर्थ देता है और इसलिए वर्त० काल से कुछ विशेषता रखता है यदि कभी२ वुही विभक्ति चाहता है जो वर्तमान गुणक्रिया चाहतीहै परन्तु उस शब्द से मिलारहताहै जिसपर किसी मिश्रित में अपना प्रभाव रखताहै जैसे पुरञ्जय (नगर जीतताहुआ वा जीतनेवाला) प्रियंवद (प्यारा बोलताहुआ वा बोलनेवाला) जलेचर (जल में चलताहुआ या चलनेवाला) सरसिज (सर में उत्पन्न होताहुआ वा होनेवाला) परन्तु जिस शब्द पर वुह अपना प्रभाव रखताहै सो बहुधा अगु० होताहै जैसे तेजस्कर (चमकताहुआ वा चमकनेवाला) (६९वां सूत्र देखो) तेजस् (और कृ से) मनोहर (मन हरताहुआ वा मन हरनेवाला) मनस् और हृ से) ६४वां सूत्र देखो) बहुद (बहुत देताहुआ वा देनेवाला) बहु और दा से आत्मज्ञ (आप को जानताहुआ वा जाननेवाला) आत्मन् और ज्ञा से (५७वें सूत्र की २ री शाखा देखो)

११०वां सूत्र

इन कर्तृवाचक नामों में से दूसरा (५८१वां सूत्र देखो) कभी२ परन्तु बहुत नहीं गुणक्रिया के सदृश होके आता है और अपनी क्रिया की विभक्ति को चाहता है जैसे वाक्यं वक्ता (वाक्य बोलताहुआ वा बोलनेवाला) बहुमाषितोश

ऐसे ही आती है और ८९१ वें सूत्र के अनुसार अपने साथ दो शे॰ वि॰ चाहती है जैसे केनापि कारणेन भवितव्यम् (किसी से भी कारण करके होना योग्य है अर्थात् कोई भी कारण होगा) स्वामिना सविशेषेण भवितव्यम् (स्वामी से विवेक करके होना चाहिए) मया तव अनुचरेण भवितव्यम् (मुझ से अर्थात् मुझको तेरा अनुचर करके होना योग्य है) आर्यया प्रवहणारूढया भवितव्यम् (आर्या से प्रवहणारूढ करके होना योग्य है अर्थात् आर्या को रथ पर चढ़ाहुआ होना चाहिए)

९०६ठा सूत्र

ऐसे ही शक्य का नपुंसक क्रियाविशेषण के सदृश आसकता है और भाववाचक को कर्मणिवाच्य का अर्थ देसकता है जैसे पवनः शक्यम् आलिङ्गितुम् अङ्गैः पलटे पवनः शक्यः आलिङ्गितुम् अङ्गैः (पवन अंगों से मिलाए जाने को योग्य है) के (शकुन्तलानाटक ६०११ श्लोक) फिर शक्यम् अञ्जलिभिः पातुं वाताः (वायु अञ्जली से पिए जाने को योग्य है) विभूतयः शक्यम् अवाप्तुम् (विभूतियां पाई जाने को योग्य हैं) ऐसे ही युक्तम् आता है जैसे न युक्तं भवान् वक्तुम् (आप को बोला जाना युक्त नहीं) महाभारत के आदि में २७ वां पृष्ठ देखो)

९०७वां सूत्र

यिह गुणक्रिया बहुधा भविष्यत रूप के पलटे भी आती है और तब कुछ योग्यता वा अवश्यता नहीं दिखाती है केवल ऐसे आती है जैसे कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया भूतकाल के पलटे आती है, जैसे नूनम् अनेन लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् (ठीक मृग का मांस चाहनेवाले इस लालची से जाना योग्य है) यहां गन्तव्यम् पुरुष नहीं रखता त्वां दृष्ट्वा लोकैः किञ्चिद् वक्तव्यम् (तुझको देखके लोगों से कुछ कहाजायगा अर्थात् लोग कुछ कहेंगे) यदि पक्षी पतति तदा मया खादितव्यः (जब पक्षी गिरेगा तब वुह मुझ से खायाजायगा) (९३० वें सूत्र का ११ वां टुकड़ा देखो)

९०८वां सूत्र

१ ली शाखा

कभी२ दो च आते हैं तब एक अधिक होताहै अथवा दोनों का अर्थ देताहै अथवा दोनों दो कामों में विरुद्धता दिखाते हैं जैसे अहश्च रात्रिश्च (दिन और रात अथवा दिन और रात दोनों) पहले अर्थ में एक च अधिक होताहै और दूसरे अर्थ में दूसरा दोनों का अर्थ देता है क हरिणकानां जीवितं चातिलोलं क च शरास्ते (कहां हिरनों का अति चञ्चल जीना और कहां तेरे बाण) यहां दोनों च हिरनों और बाणों की चञ्चलता में विरुद्धता दिखाते हैं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता स्त्री संस्थानं चाप्सरस्तीर्थम् उत्क्षिप्य एनां जगाम (वह रोने लगी तबही स्त्री के भेष में एक जोति उसको उठालेगई) (शकुन्तलानाटक का १३१ वां श्लोक देखो) ते च प्रापुरुदन्वन्तं बुबुधे चादिपूरुषः (वे समुद्र पर पहुंचे और आदिपुरुष जागा) (रघुवंश १०, ६)

२ री शाखा

जब क (कहां) आता है जैसा ऊपरवाले वाक्य में तब वह अत्यन्त विरुद्धता वा असदृशता दिखाताहै

३ री शाखा

कभी२ च दृढतासूचक निपात होके आता है यौगिक समुच्चयबोधक होके नहीं आता जैसे कि च मया परिणीतपूर्वा (क्या मैंने पूर्व में इस स्त्री से ब्याह किया है)

७११वां सूत्र

तथा (वैसा) (७२७वें सूत्र की २ री शाखा देखो) बहुधा च के पश्चात् आताहै जैसे अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस् तथा (दोनों अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति) हितोपदेश के चौथे आख्यान में दो मछलियों का नाम है)

७१२वां सूत्र

हि (क्योंकि) तु (परन्तु) वा (या) (७२७ वें सूत्र की २ री और ७२८ वें

(गङ्गा, लेजाताहुआ वा लेजानेवाला)

९११वां सूत्र

तीसरे गण के (५८२वें सूत्र की १ली और ३री शाखा देखो । पहले और दूसरे प्रकारवाले कर्तृवाचक पहले गण के कर्तृवाचक के सदृश बहुधा वर्तमान गुणक्रियाओं का अर्थ देते हैं और तब मिश्रितों में जिस शब्द पर अपना प्रभाव रखते हैं उसके अपूर्णपद से सदा मिलके आते हैं जैसे मनोहारिन् (मन हरताहुआ वा हरनेवाला) मनस् और हृ से कार्यसाधक (काम करताहुआ वा करनेवाला) कार्य और सिध् से कभी२ ये जिन क्रियाओं से बनते हैं उनकी विभक्ति चाहते हैं और तब जिस शब्द पर अपना प्रभाव रखते हैं उससे मिलके आते हैं और मिलके नहीं भी आते जैसे ग्रामवासिन् वा ग्रामे वासिन् (गांव में रहताहुआ वा गांव में रहनेवाला) मुकुलानि चुम्बकः (कलियां चूमता हुआ वा चूमनेवाला) (रत्नावली की ७वां पृष्ठ देखो)

समुच्चयसूचक संयोजक उपसर्ग क्रियाविशेषण इत्यादि की वाक्यरचना

समुच्चयसूचक

९१२वां सूत्र

च (और) (७२७वां सूत्र देखो) जिस शब्द को दूसरे शब्द से मिलाताहै सदा उससे पीछे आता है और वाक्य में कभी पहले नहीं आता है और न अपनी भाषा के (और) के स्थान पर आताहै जैसे परिकम्य अवलोक्य च (फिरके और देखके) परन्तु जिस शब्द का यौगिक होताहै सदा उसके पीछे आताहै यह वाक्य के किसी दूसरे स्थान में भी आसकताहै केवल पहले स्थान में नहीं आता है जैसे तनयम् अचिरात् प्राची इव अर्कं प्रसूय च पावनम् (और थोड़े काल पीछे पावन पुत्र को जन के जैसा पूर्व सूर्य को)

१ ली शाखा

कभी २ दो च आते हैं तब एक अधिक होताहै अथवा दोनों का अर्थ देताहै अथवा दोनों दो कामों में विरुद्धता दिखाते हैं जैसे अहश्च रात्रिश्च (दिन और रात अथवा दिन और रात दोनों) पहले अर्थ में एक च अधिक होताहै और दूसरे अर्थ में दूसरा दोनों का अर्थ देता है क्व हरिणकानां जीवितं च अतिलोलं क्व च शरास्ते (कहां हिरनों को अति चञ्चल जीना और कहां तेरे बाण) यहां दोनों च हिरनों और बाणों की चञ्चलता में विरुद्धता दिखाते हैं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता स्त्रीसंस्थानं च ज्योतिर् उत्क्षिप्य एनां जगाम (वुह रोने लगी तबही स्त्री के भेष में एक जोति उसको उठालेगई।) (शकुन्तलानाटक का १३१ वां श्लोक देखो।) ते च प्रापुर् उदन्वन्तं बुबुधे च आदिपुरुषः (वे समुद्र पर पहुंचे और आदिपुरुष जागा) (रघुवंश १०, ६।)

२ री शाखा

जब क्व (कहां) आता है जैसा ऊपरवाले वाक्य में तब वुह अत्यन्त विरुद्धता या असदृशता दिखाताहै

३ री शाखा

कभी २ च दृढ़तासूचक निपात होके आता है यौगिक समुच्चयसूचक होके नहीं आता जैसे किं च मया परिणीतपूर्वा (क्या यथार्थ में वुह आगे मुझ से ब्याही गई है)

७११वां सूत्र

तथा (वैसा) (७२७ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) बहुधा च के बदले आताहै जैसे अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस् तथा (दोनों अनागत् विधाता और प्रत्युत्पन्नमति) हितोपदेश के चौथे आख्यान में दो मछलों का नाम है।

७१२वां सूत्र

हि (क्योंकि) नु (परन्तु) वा (या) (७२७ वें सूत्र की २ री और ७२८ वें

सूत्र की १ ली शाखा देखो) च के सदृश किसी वाक्य में पहला स्थान नहीं पाते जैसे पूर्वविधिरिव श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते (क्योंकि पहले अपमानकियाहुआ सुख दुख को जाता है अर्थात् दुख उत्पन्न करता है) विपर्यये तु (परन्तु (इसके विपरीत) एनां त्यज वा गृहाण वा (उस स्त्री को छोड़ वा ग्रहण कर)

९१५वां सूत्र

यदि (जो) और चेद् (जो) (७२७ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) शर्तार्थ वा आशंसार्थ के साथ आते हैं (८९१ वां सूत्र देखो) परन्तु स्वार्थनियम के साथ भी आते हैं जैसे यदि जीवति भद्राणि पश्यति (जो वुह जियेगा तो कल्याण देखेगा) यदि मया प्रयोजनम् अस्ति (जो मुझ से प्रयोजन है) तृष्णा चेत् परित्यक्ता को दरिद्रः (जो तृष्णा छोड़ीजावे तो कौन दरिद्री)

संयोजक उपसर्ग और क्रियाविशेषण

९१६वां सूत्र

संयोजिक उपसर्ग बहुधा संज्ञाओं की विभक्तियों पर अपना प्रभाव रखते हैं (७२९ वां और ७३० वां सूत्र देखो)

९१७वां सूत्र

ये अगले दृष्टान्त संज्ञाओं की विभक्तियों के साथ क्रियाविशेषणों का आना दिखाते हैं जैसा ७३१ वें सूत्र में बताया है

मांसं शुनोऽग्रे निक्षिप्तम् (मांस कुत्ते के आगे फेंकागया) तरूणाम् अधः (पेड़ों के तले) नाभेर् अधस्तात् (नाभि के तले) वृक्षस्य अधस्तात् (वृक्ष के तले) भोजनानन्तरम् (भोजन से पीछे) फलम् अन्तरेण (फल विना) भर्तुर् अनुमतिम् अन्तरेण (भर्त्ता की अनुमति विना) धनस्य अर्थम् अथवा बहुधा धनार्थम् (धन के लिए) विवाहाद् अर्वाक् (विवाह से पीछे) अर्वाक् सञ्चयनाद् अस्थ्नाम् (हड्डियों के बटोरने से पीछे) उपरि ६ ठी विभक्ति के साथ बहुत आता है और अर्थ भी बहुत देता है जैसे नाभेर् उपरि (नाभि के ऊपर) सिंहम् तस्य उपरि पपात

(सिंह उसके ऊपर गिरा) मम उपरि विकारितः (वुह मेरे ऊपर अर्थात् मुझ से व मेरे साथ बिगड़ाहुआ है) तव उपरि असदृशव्यवहारी (वुह तेरे साथ एकसा व्यवहार नहीं रखता) पुत्रस्य उपरि क्रुद्धः (उसने पुत्र पर क्रोध किया) नाभेर् ऊर्ध्वम् (नाभि से ऊपर) तदवधेर् ऊर्ध्वम् (उस अवधि से पीछे) संवत्सराद् ऊर्ध्वम् (बरस से पीछे) नदण्डाद् ऋते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः (पाप का रुकना दण्ड बिना नहीं होसकता) तव कारणात् (तेरे कारण से) तस्याः कृते वा तत्कृते (उस स्त्री) के लिए) वाटिकाया दक्षिणेन (वाटिका की दाहिनी ओर) तन्निमित्ते (उस के निमित्त) अभिवादनात् परम् (बोलने से पीछे) अस्माकं पश्चात् (हमारे पीछे) स्नानात् पूर्वम् (स्नान से पहले) विवाहात् पूर्वम् (विवाह से पहले) आलोकनक्षणात् प्रभृति (देखने के समय से वा देखने के समय से लेके) जन्मप्रभृति (जन्म से वा जन्म से लेके) ततः प्रभृति (तब से वा तब से लेके) उपनयनात् प्रभृति (यज्ञोपवीत से वा यज्ञोपवीत से लेके) प्राक् निवेदनात् (कहने से पहले) प्राग् उपनयनात् (यज्ञोपवीत से पहले) भोजनात् प्राक् (भोजन से पहले) प्राक् दूसरी विभक्ति के साथ भी आता है जैसे प्राग् द्वादशसमाः (बारह वर्ष से पहले) शतं जन्मानि यावत् (सौ जन्म तक) सर्पविवरं यावत् (सांप के बिल तक) विवराद् बाहिर् निःसृत्य (बिल से बाहिर निकलके) हेतुं विना (हेतु बिना) अपराधेन विना (अपराध बिना) प्राणिहिंसाव्यतिरेकेण (प्राणियों की हिंसा बिना) पितुः सकाशाद् धनम् आदत्ते (वुह पिता के पास से धन पाता है) मम समक्षम् (मेरे साम्हने) राज्ञः समीपम् (राजा के पास) पुत्रेण सह (पुत्र के साथ) साक्षात् छठी विभक्ति चाहता है जैसे अन्येषां साक्षात् (औरों के साम्हने) पुत्रहेतो (पुत्र के हेतु वा पुत्र के लिये)

१८८। सूत्र

अलम् (बहुत वा बहुत हुआ) तीसरी विभक्ति के साथ आता है और (बस वा) का अर्थ देता है जैसे अलं शङ्कया (शङ्का से अलम् अर्थात् शंका मत करो)

१ ली शाखा

ऐसे ही पिछ अवर्तनीय भूत गुणक्रिया के साथ आता है जैसे अलं रुदित्वा (रोके अर्थात् रोने से अलम् अर्थात् रोना मत कर) अलं विचार्य (विचारके अर्थात् विचार से अलम् अर्थात् विचार मत कर) (९०३ले सूत्र की १ ली शाखा देखो)

वर्णन

देखो खलु भी ऐसे ही आता है और ऐसाही अर्थ देता है जैसे खलु रुत्वा वा अलं रुत्वा (पा. ३,४.१८)

२ री शाखा

कभी२ पिछ भाववाचक के पहले आताहै जैसे न अलम् अस्मि हृदयं निर्वर्तयितुम् (मैं अपने हृदय को निश्चल करने को अशक्य हूं)

९१९वां सूत्र

मात्रम् (ही वा केवल) किसी मिश्रित के पीछे आके वर्तनी क्रियाआसकता है जैसे उत्तरमात्रं न ददाति (वुह उत्तर भी नहीं देता) नशब्दमात्राद् भेतव्यम् (केवल शब्द से वा शब्द ही से नडरना चाहिए) शब्दमात्रेण (केवल शब्द से वा शब्द ही से) वचनमात्रेण [केवल वचन से वा वचन ही से] उक्तमात्रे वचने [केवल कहेहुए वचन से वा कहेहुए वचन से ही]

९२०वां सूत्र

यथा और तथा (जैसा और वैसा) निश्चयसूचक हैं और दो वाक्य में आतेहैं और पिछला कभी गुप्त रहताहै जैसे यथा स्वामी जागर्ति तथा मया कर्तव्यम् (जैसा स्वामी जागे वैसा मुझसे कियाजानाचाहिए ।

त्वं न जानासि यथा गृहरक्षां करोमि (तू नहीं जानताहै जैसे मैं घर की रक्षा करता हूं)

१ ली शाखा

ईदृशम् तादृशम् और यादृशम् भी ऐसे ही आते हैं जैसे तादृशम् अनापूर्व

न किंचिद् विद्यते यादृशं परदारगमनम् (वैसा आयु के प्रतिकूल कुछ नहीं होता जैसे पराई स्त्री के साथ जाना)

२ री शाखा

यद् और यथा (कि) का अर्थ देते हैं जैसे अयं नूतनो न्यायो यद् अरातिं हत्वा सन्तापः क्रियते (यिह नया न्याय है कि शत्रु को मार के सन्ताप किया जावे)

१२३ वां सूत्र

किम् (क्या वा किसलिए) बहुधा प्रश्नसूचक होके आताहै तब अपनी भाषा में इसका उल्था कियाजाताहै और नहीं भी कियाजाताहै केवल बोलने से समझ में आताहै जैसे जातिमात्रेण किं कश्चित् पूज्यते (केवल जाति से क्या कोई आदर कियाजाताहै या केवल जाति से कोई आदर कियाजाता है) ८३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)

१ ली शाखा

कभी यिह (कि) का अर्थ देता है जैसे ज्ञायतां किम् उपयुक्त एतावद् वर्तनं गृह्णाति अनुपयुक्तो वा (निश्चय करो कि इतनी जीविका लेताहै उचित या अनुचित है) मन्त्री वेत्ति किं गुणयुक्तो राजा न वा (मन्त्री जानताहै कि राजा गुणवान है वा नहीं)

१२४ वां सूत्र

वत् जिसको वति कहते हैं सादृश्य वा समानतासूचक प्रत्यय है (१२१ वां सूत्र देखो) सो संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे प्रयुक्त होताहै और जो वह अलग किया जाताहै तो वह अपूर्णपद २ री विभक्ति में आताहै जैसे आत्मानं मृतवत् संदर्श्य (आप को मरासा दिखाके) आश्चर्यवद् इदं पश्यति (वह इसको आश्चर्य सा देखताहै) और ७ वीं और ६ ठी विभक्ति में भी जैसे मथुरावत् सुघ्ने प्राकारः (मथुरा की भांति सुघ्न में) पा० ५, १, ११५ के अनुसार आता वा आचरणसूचक वि-

शेषणों के पीछे ३ री विभक्ति के पलटे भी आताहै परन्तु तब जब कोई काम दि खाते हैं जैसे ब्राह्मणेन तुल्यम् अधीते (८२६ वां सूत्र देखो) के पलटे (ब्राह्मणवद् अधीते) आसकताहै परन्तु पुत्रेण तुल्यः स्थूलः के पलटे पुत्रवत् स्थूलः कहना शुद्ध नहीं है

९२३वां सूत्र

अस्वीकारतासूचक न कभी२ स्वीकारता की दृढ़ता दिखाने के लिए दुहरायाजाताहै जैसे न न वक्ष्यति (वुह नहीं२ कहताहै) वक्ष्यति एव (वुह कहता ही है के समान है)

९२४वां सूत्र

अवर्तनीय गुणक्रिया उद्दिश्य (दिखाके वा बताके) कभी२ निमित्त और कारण दिखाने के लिए आती है और २ री विभक्ति चाहती है जैसे किम् उद्दिश्य (क्या दिखाके अर्थात् किस कारण से) तम् उद्दिश्य (उसको दिखाके अर्थात् उस लिए)

९२५वां सूत्र

अवर्तनीय गुणक्रिया आरभ्य (आरम्भ करके) क्रिया विशेषण होके आती है और से का अर्थ देती है और ५ वीं विभक्ति चाहतीहै अथवा संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद के पीछे आती है जैसे निमन्त्रणाद् आरभ्य श्राद्धं यावत् (निमन्त्रण से श्राद्ध तक) के पलटे निमित्रणारभ्य श्राद्धं यावत् (निमिन्त्रण आरम्भ करके श्राद्ध तक) आसकताहै

९२६वां सूत्र

अन्तःक्षेपण धिक् और हा २ री विभक्ति चाहते हैं जैसे धिक् पापिष्ठम् (धिक्कार पापी को) और सम्बोधनसूचक अन्तः क्षेपण ८ वीं विभक्ति चाहते हैं जैसे भोः पान्थ (भो पथिक)

५वीं शाखा

क्रियाविशेषण कभी२ संज्ञाओं के साथ मिलावट में विशेषणों के पलटे आते हैं जैसे तत्र शालायाम् (उस शाला में) पलटे (तस्यां शालायाम्) के अमात्येषु मुख्यशः (मुख्य मन्त्रियों में) पलटे अमात्येषु मुख्येषु) के

निपात इति का काम

१७७वां सूत्र

संस्कृत में किसी दूसरे पुरुष के वाक्य और विचार ऐसे बोलते हैं जैसे अपनी भाषा में

१ली शाखा

ऐसी अवस्थाओं में निपात इति जिसका अर्थ है ऐसा उन शब्दों के पीछे लाते हैं जो दूसरे की ओर से बोलेजाते हैं जैसे अपनी भाषा में (कि) पहले लाते हैं जैसे शिष्या ऊचुः कृतकृत्या वयम् इति (शिष्यों ने कहा हम कृतकृत्य हुए) ऐसा) अर्थात् शिष्यों ने कहा कि हम कृतकृत्य हुए) ऐसे ही कलहकारी इति मूर्ख भर्ता (भर्ता कहता है कलहकारी ऐसा) युष्मान् विश्वास्यतमान् इति सर्वे पक्षिणो मम अग्रे प्रस्तुवन्ति (तुमको विश्वास करने के योग्य हो ऐसा सब पक्षी मेरे आगे कहते हैं) यहां विश्वास्यतमः १ ली विभक्ति में आता है और युष्मान् २ री में परन्तु कई अवस्थाओं में इति के पहले २री विभक्ति आती है जैसे अज्ञम् बालम् इति आहुः (मूर्ख को बालक ऐसा कहते हैं) मनु २. १५३) परन्तु इस श्लोक के दूसरे भाग में ऐसा लिखा है पिता इति एव तु मन्त्रदम् (परन्तु मन्त्र देनवाले को पिता है ऐसा कहते हैं) पहले दृष्टान्त में बालं २ री विभक्ति में आयाहै और दूसरे दृष्टान्त में पिता १ ली विभक्ति में

१७८वां सूत्र

व्याख्यानों और वार्ताओं में इति वाक्य के अन्त में बहुधा अधिक आता है और जब किसी दूसरे का वा अपना विचार दिखाते हैं तब पिछे इति मानना मनसा इत्यादि अर्थ रखनेवाली अवर्णनीय गुणक्रिया के पहले आता है जैसे मत्वा

घंटां वादयति इति परिज्ञाय (बन्दर घंटा बजाता है ऐसा समझके) पुनः अर्थ-
शुद्धिः करणीया इति मतिर् बभूव (फिर धनकी शुद्धि करनी चाहिये ऐसा विचार हुआ
धन्योऽहं यस्य एतादृशी भार्या इति मनसि निधाय (मैं धन्य हूं जिसकी ऐसी भा
है ऐसा मन में समझके) इस अर्थ में इति के पहिले १ ली विभक्ति आती है जैसे
मृतम् इति मत्वा (मराहुआ ऐसा मानके) इन सब दृष्टान्तों में इति के पहिले आ
हैं सो दूसरों के वाक्य वा विचार हैं

९२३वां सूत्र

बहुधा सोचके समझके विचारके इत्यादि अर्थ रखनेवाली गुणक्रियाएं छोड़दी-
जाती हैं और इति आपही उनका अर्थ देता है जैसे बालोऽपि न अवमन्तव्यो म-
नुष्य इति भूमिपः (राजा बालक भी मनुष्य न समझना चाहिये ऐसा सोचके)
सौहार्दाद् वा विधुर इति वा मयि अनुक्रोशात् (मुझपर प्रीति वा दया होने से दु-
खी है ऐसा समझके) अयं वराहः। अयं शार्दूल इति वनराजिषु आहिण्डयते
यह वराह यह शार्दूल ऐसा पुकारतेहुए वा पुकारके वन

दसवां अध्याय

संस्कृत वाक्यों का उल्था और उनके पदों का निरूपण

१३०वां सूत्र

हितोपदेश से एक मुनि और चूहे की वार्ता लिखी जाती है और भाषा में उसका उल्था और उसके पदों का निरूपण कियाजाता है

१ अस्ति गौतमस्य मुनेस् तपोवने महातपानाम मुनिः

गौतम मुनि के तपोवन में महातपानाम का एक मुनि है।

२ तेनाश्रमसन्निधाने मूषिकशावकः काकमुखाद् भ्रष्टो दृष्टः।

उससे आश्रम के पास एक छोटा चूहा कौए के मुंह से गिराहुआ देखा गया।

३ ततो दयायुक्तेन तेन मुनिना नीवारकणैः संवर्धितः।

तब वह उस दयायुक्त मुनि से बनैले चावलों के कणों से पालागया।

४ तदनन्तरं मूषिकं खादितुम् अनुधावन् विडालो मुनिना दृष्टः।

इसके पीछे चूहे को खाने को दौड़ता हुआ बिलाव मुनि से देखागया।

५ तं मूषिकं भीतम् आलोक्य तपः प्रभावात् तेन मुनिना मूषिको बलिष्ठो विडालः कृतः।

उस चूहे को डराहुआ देखके तपके प्रभाव से उस मुनि से चूहा अत्यन्त बलवान बिलाव बनायागया।

६ स विडालः कुक्कुराद् बिभेति। ततः कुक्कुरः कृतः कुक्कुरस्य व्याघ्रात् महद् भयम्। तदनन्तरं स व्याघ्रः कृतः

वुह बिलाव कुत्ते से डरे इसलिए कुत्ता बनायागया कुत्ते को अर्थात् कुत्ते को व्याघ्र से बहुत डर है, इसलिए वुह व्याघ्र बनायागया।

७ अथ व्याघ्रम् अपि मूषिकनिर्विशेषं पश्यति मुनिः।

अब व्याघ्र को भी चूहे से अलग मुनि नहीं देखता।

८ अतः सर्वे तत्रस्था जनास् तं व्याघ्रं दृष्ट्वा वदन्ति।

तब वहां रहनेवाले सब मनुष्य उस व्याघ्र को देखके कहते हैं।

९ अनेन मुनिना मूषिकोऽयं व्याघ्रतां नीतः।

इस मुनि से यिह चूहा व्याघ्रपने को लायागया।

१० एतच् छ्रुत्वा स व्याघ्रः सव्यथो ऽचिन्तयत्।

यिह सुनके उस व्याघ्र ने अचैन होके सोचा।

सूत्र से ओ होगया है पिछला अङ्ग बने न० (बन) की ७ वीं वि० (१०२ था सू त्र देखो)। महातपा (बड़े तप वाला) (१६२ वें सूत्र की ३ ली शाखा देखो) व्याख्यानक मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है (७६६ वां सूत्र देखो) पहला अङ्ग महा है सो ७७८ वें सूत्र से महत् (बड़ा) के पलटे आया है पिछला अङ्ग न० सं ज्ञा तपस् की १ ली वि० पु० है (१६१ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) पिछला स् ६६ वें सूत्र की १ ली शाखा से गिरगया है। नाम (नाम का) क्रियाविशेषण (७१३ वें सूत्र की २ री शाखा देखो)। मुनिः (मुनि) संज्ञा १ ली वि० पु० (११० वां सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा से विसर्ग हो गया है॥

२-तेन (उससे) सर्वनाम तद् की ३ री वि० (२२० वां सूत्र देखो)। आश्रम् सन्निधाने (आश्रम के पास अर्थात् आश्रम के पड़ोस में) ६ ठी विभक्तिवाला आधीन मिश्रित (७४३ वां सूत्र देखो) पहला अंग संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद आ श्रम् (स्थान) से बना है पिछला अंग सन्निधान (पड़ोस) न० की ७ वीं वि० (१०४ था सूत्र देखो)। तेन का पिछला अ ३१ वें सूत्र से आश्रम के पहले आ से मिलजाता है। मूषिकशाविकः (छोटा चूहा) ६ ठी वि० वाला आधीन मिश्रि त (७४३ वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद मूषिक (चूहा) और शावक (शावक) पहली वि० से बना है (१०३ रा सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र से वि सर्ग होगया है। काकमुखाद् (कौए के मुख से) ६ ठी वि० वाला) आधीन मि श्रित संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद काक (कौआ) और मुख [मुंह] न० की ५ वीं वि० से बना है (१०४ था सूत्र देखो) त् (४५ वें सूत्र से द् होगया है।। भ्रष्टो (गिराहुआ) मूल भ्रंश् की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० पु० (५३४ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगया है। दृष्ट (देखाहुआ) मूल दृश् की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की १ली वि० ए० व० पु० पिछला स् ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा से विसर्ग होगया है॥

३-ततो (तब) क्रियाविशेषण (७१९ वां सूत्र देखो) अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै । दयायुक्तेन (दयावान) ३ री वि० वाला आधीन मिश्रित (७६० वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद दया (दया) और युज् की कर्मणिवाच्यभूतगुणक्रिया युक्त की ३ री वि० से बनाहै (६७६ वां सूत्र देखो) । तेन (देखो २) । मुनिना (मुनि से) ३ री वि० पु० (११० वां सूत्र देखो) । नीवारकणैः (बनैले चावलों के कणों से) ३ री वि० वाला आधीन मिश्रित (७४३ वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद नीवार (बनैले चावल) और कण की ३ री वि० ब० व० से बनाहै पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै । संवर्धितः (पालागया) सम् के साथ वृध् के प्रेरणार्थक की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० है (५२९ वां सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा से विसर्ग होगयाहै ॥

४-तदनन्तरम् (इसके पीछे) मिश्रित क्रियाविशेषण है सर्वनामसम्बन्धी अपूर्ण पद तद् (यिह) (२२० वां सूत्र देखो) और क्रियाविशेषण अनन्तरम् (पीछे) से (७११ वां और ९१० वां सूत्र देखो) बनाहै । मूषिकम् २ री वि० पु० (१०३ रा सूत्र देखो) । खादितुम् (खाना) मूल खाद् का भाववाचक (४५८ वां और ८६८ वां सूत्र देखो) । अनुधावन् पीछे दौड़ता हुआ । अनु (पीछे) के साथ मूल धाव् की वर्तमान गुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० है (५२४ वां सूत्र देखो) । विडालो (बिलाव) १ ली वि० पु० है (१०३ रा सूत्र देखो) अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै । मुनिना (देखो ३) । दृष्टः (देखो ३) ॥

५-तम् सर्वनाम तद् की २ री वि० पु० (२२० वां सूत्र देखो) निपतनासूचक निपात होके आयाहै (७१५ वां सूत्र देखो) । मूषिकम् (देखो ४) भीतम् (डरा हुआ) मूल भी की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की २ री वि० ए० व० पु० (५३२ वां सूत्र देखो) । आलोक्य (देखके) आ के साथ मूल लोक् की असमापिकाभूत गुणक्रिया (५५९ वां सूत्र देखो) । नरः वसतात् (नाके पनाव से) ८१४ वां सूत्र

देखो) ६ ठी वि० शाला आधीन मिश्रित (७४३ वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद तपस् (तप) से जिसका स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै और पहले भागवाली संज्ञा प्रभाव की (१०३रा सूत्र देखो) ७वीं वि० पु० से बनाहै। तेन (देखो २) मुनिना (देखो ३) मूषिको १ली वि० पु० (१०१ रा सूत्र देखो] अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै। बलिष्ठो (अत्यन्त बलवान) बलिन (बलवान) के अत्यन्ततासूचक की १ली वि० पु० है (१९३ वां सूत्र देखो] अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै। बिडालः (देखो ४) पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगया है। कृतः (बनायागया) मूल कृ की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० पु० है (६८२ वां सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा से विसर्ग होगयाहै॥

६—स सद् की १ ली वि० (२२० वां सूत्र देखो) भिपतनासूचक निपात (७६५ वां सूत्र देखो) पिछला स् ६७ वें सूत्र से गिरगया है। बिडालः (देखो ४) कुकुराद् (कुत्ते से (१०३ रा सूत्र देखो) डरने का अर्थ देनेवाली क्रिया के साथ ५ वीं वि० है (८५५ वां सूत्र देखो) त् ४५ वें सूत्र से द् होगया है। बिभेति (डरता है) ३ रे गण वाले मूल भी का अ० ए० व० वर्त० है (६६६ वां सूत्र देखो) ; ततः (तब) क्रियाविशेषण (७१९ वां सूत्र देखो) अस् ६३ वें सूत्र से अः होगयाहै। कुकुरः (कुत्ता) १ ली वि० पु० (१०३ रा सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै। कृतः (देखो ५) कुकुरस्य (कुत्ते का) ६ ठी वि० पु० (१०३ रा सूत्र देखो) व्याघ्रान् (व्याघ्र से) (१०३ रा सूत्र देखो) डरने का अर्थ रखनेवाली संज्ञा के साथ ५ वीं वि० (८१४ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) त् ४० वें सूत्र से न् होगया है। महद् (बड़ा) १४२ वां सूत्र देखो) १ ली वि० ए० व० न० त् ४५वें सूत्र से द् होगया है। भयम् (डर) १ ली वि० न० (१०४ था सूत्र देखो) तद् अनन्तरम् (देखो ४)। व्याघ्रः १ ली वि० पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगया है। कृत (देखो ५)।

देखो) ६ ठी वि० वाला आधीन मिश्रित (७४३ वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद तपस् (तप) से जिसका स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै और पहले भागवाली संज्ञा प्रभाव की (१०३रा सूत्र देखो) ५वीं वि० पु० से बनाहै। तेन (देखो २) । मुनिना (देखो ३) । मूषिको १ली वि० पु० (१०६ रा सूत्र देखो) अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै । बलिष्ठो (अत्यन्त बलवान) बलिन (बलवान्) के अत्यन्ततासूचक की १ ली वि० पु० है (१९३ वां सूत्र देखो) अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै । बिडालः (देखो ४) पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगया है । कृतः (बनायागयाः) मूल कृ की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० पु० है (६८२ वां सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र की १ ली शाखा से विसर्ग होगयाहै ॥

६—स तद् की १ ली वि० (२२० वां सूत्र देखो) नियतनासूचक निपात (७६५ वां सूत्र देखो) पिछला स् ६७ वें सूत्र से गिरगया है । बिडालः (देखो ४) । कुकुराद् (कुत्ते से (१०३ रा सूत्र देखो) डरने का अर्थ देनेवाली क्रिया के साथ ५ वीं वि० है (८५५ वां सूत्र देखो) त् ४५ वें सूत्र से द् होगया है । बिभेति (डरता है) ३ रे गण वाले मूल भी का अ० ए० व० वर्त० है (६६६ वां सूत्र देखो) । ततः (तब) क्रियाविशेषण (७१९ वां सूत्र देखो) अस् ६३ वें सूत्र से अः हो गया है । कुकुरः (कुत्ता) १ ली वि० पु० (१०३ रा सूत्र देखो) पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै । कृतः (देखो ५) । कुकुरस्य (कुत्ते का) ६ ठी वि० पु० (१०३ रा सूत्र देखो) व्याघ्रात् (व्याघ्र से) (१०३ रा सूत्र देखो) डरने का अर्थ रखनेवाली संज्ञा के साथ ५ वीं वि० (८१४ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) । त् ४० वें सूत्र से न् होगया है । महद् (बड़ा) १४२ वां सूत्र देखो) १ ली वि० ए० व० न० त् ४५वें सूत्र से द् होगया है । भयम् (डर) १ ली वि० न० (१०४ वां सूत्र देखो) तद् अनन्तरम् (देखो ४) । व्याघ्रः १ ली वि० पिछला स् ६३ वें सूत्र से विसर्ग होगया है । कृत (देखो ५) ।

श्रित क्रिया पलाय (का आत्मनेपद वाले द्वितीयपुरुषविध्यर्थ का अ० ए० व०, पला- य् [७८३ वें सूत्र की १४ वीं शाखा वाले मूल इ वा अय् के पहले उपसर्ग परा के लाने से बनाहै ॥

१२- इति (ऐसा) क्रियाविशेषण (७१७ वें सूत्र की ५ वीं शाखा और ३२८ वां सूत्र देखो) । समालोच्य (सोचके) समालोच् की (५५९ वां सूत्र देखो) अव्ययीय भूतगुणक्रिया है समालोच् मूल लोच् के साथ (७८४ वां सूत्र देखो) उपसर्ग सम् और आ लाने से बनाहै । मुनिम् २ री वि० । हन्तुम् (मारने) कोमूल हन् का भाववाचक (२५८ वां ८६८ वां और ६५४ वां सूत्र देखो] । समुद्यतः [उद्यतहुआ] समुद्यम् की जो मूल यम् के साथ (५४५ वां सूत्र देखो) उपसर्ग सम् और उद् लाने से बनाहै कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया की पहली विभक्ति ए० व० पु० ॥

१३- मुनिम् १ ली वि० पिछला म् ६२ वें सूत्र से नहीं पलटा । तस्य (उसका) तद् की (२२० वां सूत्र देखो) ६ ठी वि० । चिकीर्षितम् [सोचना वा अभिप्राय] मूल कृ (कर) के इच्छार्थक की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की २ री विभक्ति न० (५५० वां और ५०२ रा सूत्र देखो । ८९६ वें सूत्र की १ ली शाखा के अनुसार संज्ञा के अर्थ में आई है । ज्ञात्वा (जानके) मूल ज्ञा की (५५६ वां और ६८८ वां सूत्र देखो) अव्ययीय भूत गुणक्रिया है । पुनर् (फिर) क्रियाविशेषण (७१७ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) र् ७१ वें सूत्र की १ ली शाखा से बनाहुआहै : मुषिको १ ली वि० अम् ६३ वें सूत्र से ओ होगयाहै । भव (हो) मूल भू का अनुमत्यर्थ म० ए० व० (५८५ वां सूत्र देखो) । इत्य (१७७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) पिछला इ ३४ वें सूत्र से य होगयाहै ! उक्त्वा (कहके) मूलवच् की अव्ययीयभूतगुणक्रिया (५५६वां और ६५० वां सूत्र देखो) मूषिक १ ली वि० पिछला स् ६६ वें सूत्र से छूटगया है । एव (ही) क्रियाविशेषण (७१७ वां सूत्र देखो) ॥

च्य मूलगुणक्रिया की १ ली वि० ए० व० पु० (५३२ वां सूत्र देखो)

१०-एतच् (यिह) एतद् का २ री वि० न० (२२३ वां सूत्र देखो) त् ४१ वें सूत्र से च् होगयाहै। श्रुत्वा (सुनके) श्रु की अवर्तनीयमूलगुणक्रिया है।(६७६ वां और ५५६वांसूत्र देखो) (४९वांसूत्र देखो) व्यामः १ली वि० पिछला म् ६३वें सूत्र से विसर्ग होगयाहै। सन्यथा (अचैन) अवर्तनीय मिश्रित का अपेक्षापूरक रूप है स्त्री० संज्ञा व्यथा के साथ स् बढ़ने से बनाहै (७६९वां सूत्र देखो) अस् ६४वें सूत्र की १ ली शाखा से ओ होगयाहै। अचिन्तयत् (सोचा) १० वें गण वाले चिन्त् का अ० ए०व० अपूर्णभूत (६४१ वां सूत्र देखो) पहला अ ६४ वें सूत्र की १ ली शाखा से छूटगया है॥

११-यावद् (जब तक) क्रियाविशेषण (७१३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो) त् ४५ वें सूत्र से द् होगयाहै। अनेन (देखो ९)। जीवितव्यम् (जीयाजाना) मूल जीव् (जी) की कर्मणिवाच्य भविष्यतगुणक्रिया १ ली वि० न० (५६९वां और ९०५ वें सूत्र की १ली शाखा और ९०७वां सूत्र देखो)। तावद् (तबतक) क्रियाविशेषण यावत् का निश्चयसूचक (७१३ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)। इदम् (यिह) संकेतसूचक सर्वनाम जो २२४ वें सूत्र में बनायाहै १ ली वि० न०। मम (मेरा) सर्वनाम अहम् (मैं) जो २१८ वें सूत्र में बनायाहै ६ ठी वि०। स्वरूपाख्यानम् (स्वरूप की बातें) ६ ठी वि० वाला आधीन मिश्रित (७४३वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद स्वरूप (अपना रूप) से २३२ वें सूत्र की २ री शाखा देखो) और आख्यान २ री वि० न० से (१०४वां सूत्र देखो) बनाहै। म ६०वें सूत्र से बनारहताहै। अकीर्तिकरम् (अकीर्ति करनेवाला) २ री वि० वाला आधीन मिश्रित (७३९ वां सूत्र देखो) संज्ञासम्बन्धी अपूर्णपद अकीर्ति (अपयश) से और कृ (कर) के गुणक्रियासम्बन्धी कर्तृवाचक नाम कर (करता हुआ वा करनेवाला) की १ ली वि० न० से (५८० वां सूत्र देखो) बनाहै। न (नहीं) क्रियाविशेषण (७१७ वें सूत्र की १ ली शाखा देखो)। पलायिष्यते (मिटेगा) मि

श्रित क्रिया पलाय (का आत्मनेपद वाले द्वितीयमविष्यत का अ० ए० व०, पला-
यू [७८३ वें सूत्र की १४ वीं शाखा वाले मूल इ वा अय् के पहले उपसर्ग परा के
लाने से बनाहै ॥

१२– इति (ऐसा) क्रियाविशेषण (७१७ वें सूत्र की ५ वीं शाखा और १२८
वां सूत्र देखो) । समालोच्य (सोचके) समालोच की (५५९ वां सूत्र देखो) अव
तंनीय मूतगुणक्रिया है समालोच् मूल लोचृ के साथ (७८४ वां सूत्र देखो) उपस-
र्ग सम् और आ लाने से बनाहै । मुनिम् २ री वि० । हन्तुम् (मारने) को मूल
हन् का भाववाचक (४५८ वां ८६८ वां और ६५४ वां सूत्र देखो) । समुद्यतः (
उद्यत हुआ) समुद्यम् की जो मूल यम् के साथ (५४५ वां सूत्र देखो) उपसर्ग स-
म् और उद् लाने से बनाहै कर्मणिवाच्य भूत गुणक्रिया की पहली विभक्ति
ए० व० पु० ॥

१३– मुनिस् १ ली वि० पिछला स् ६२ वें सूत्र से नहीं पलटा । तस्य (उसका
) तद् की (२२० वां सूत्र देखो) ६ ठी वि० । चिकीर्षितम् (सोचना या अभि-
प्राय) मूल कृ (कर) के इच्छार्थक की कर्मणिवाच्य भूतगुणक्रिया की २ री वि
भक्ति न० (५५० वां और ५०२ रा सूत्र देखो । ८९६ वें सूत्र की २ री शाखा के
अनुसार संज्ञा के अर्थ में आई है । ज्ञात्वा (जानके) मूल ज्ञा की (५५६ वां
और ६८८ वां सूत्र देखो) अवर्तनीय भूत गुणक्रिया है । पुनर् (फिर) क्रियाविशेष
ण (७१७ वें सूत्र की ५ वीं शाखा देखो) र् ७१ वें सूत्र की १ ली शाखा से
बनारहताहै । मुषिको १ ली वि० अस् ६४ वें सूत्र से ओ होगयाहै । गाः (
हो) मूल भू का अनुमत्यर्थ म० ए० व० (५८५ वां सूत्र देखो) । इत्य् (१३७ वें
सूत्र की १ ली शाखा देखो) पिछला इ ३४ वें सूत्र से य होगयाहै । उक्त्वा (क
हके) मूल वच् की अवर्तनीय भूतगुणक्रिया (५५६ वां और ६५० वां सूत्र देखो) मृ-
षिक १ ली वि० पिछला स् ६६ वें सूत्र से छूटगया है । एव (ही) क्रियाविशेषण (
७१७ वां सूत्र देखो) ॥

उलथा और निरूपण करने के लिये दूसरे वाक्य

१३१वां सूत्र

देखो आगे आनेवाले वाक्यों में जो अंक शब्दों के ऊपर लिखे हैं सो इस व्याकरण के सूत्र दिखाते हैं और जो अंक दो अर्द्ध चन्द्र के बीच में लिखे हैं सो शाखा दिखाते हैं

२२० ७८३(१)६०२ २२० २१८

स आगच्छतु । तौ आगच्छताम् । आवाम्

२२० ७८३(११) ६७६

आगच्छाव । त उपविशन्तु । तौ शृणुताम् । ते शृ-

६७६ २१८ ५८७ २१९ ५८७ २१८

ण्वन्तु । अहं तिष्ठानि । युवां तिष्ठतम् । वयम्

७८३(१०)५८७ २२० २१९

उत्तिष्ठाम । स करोतु । त्वं कुरु । वयं करवामहै

७८३(८)६६१ ६६३ २१९ ६६३

। स चिन्तयतु । त्वम् अवधेहि । ते ददतु । यूयं दत्त

२३३ २३३ ६०७ २१९ ६०७

। भवान् एतु । कुत्र भवान् वसति । यूयं कुत्र वस-

६४६ ६४६ ६७५

थ । भवान् शेताम् । ते शेरताम् । नरः स्वपितु । ते

६७५ ६४४ २१९ २२८

सर्वे सुषुपुः । नरो गृहं याति । युष्माभिः किञ्चिद्

६६८ (१) ३११ ३१८
भोक्तव्यम् । वयं शास्त्रम् अध्ययामहे । अस्माभिः
३११. ५६९ ८९६(२) ६६८(१) ३१८,८९६(२)
शास्त्राण्यध्येतव्यानि । त्वम् अन्नं भुंक्ष्व । मयान्नं
६६८ (१) ३११ ८९६(२) ५८९ ३११ ५८९
भुज्यताम् । त्वया दुग्धं पीयताम् । यूयं जलं पिबत ।
६८८ ३११ ४८५
यद् अहं जानामि तद् युष्मान् अध्यापयिष्यामि ।
८८९ ७३४ ६५५ १०६ ८८९ ४३८(५) ८८२ ८५५
मा दिवा स्वाप्सीः । नदीं मा गाः । मा शब्दाद् वि-
६६६ ८८२ ७६१(२) ६९२
भीत । मा मां निरपराधं वधान ॥

७२३(१) ७८३(१०)
रात्रिशेषे विद्यार्थी शयनाद् उत्तिष्ठेत् ॥
७५४(१) ३३७ ७८३(१६)
मातापित्रोस् तुष्ट्या सर्वस्य तपसः फलं प्राप्यते॥
७८३(१६)
ईरिणे बीजम् उप्त्वा कर्षकः फलं न प्राप्नोति ॥
५८५
रात्रिर् भूतानां स्वप्नार्थं भवति दिनं च कर्मानु-
ष्ठानार्थम् ॥

वहिः शौचं मृद्वारिभ्याम् अन्तः शौचं रागद्वेषा-दि त्यागेन क्रियते ॥

न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यति ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टम् उच्यते ॥

आ मृत्योः श्री सिद्ध्यर्थम् उद्यमं कुर्यात् ॥

अद्भिर् गात्राणि शुध्यन्ति मनस् तु निषिद्ध चिन्तादिना दूषितं सत्याभिधानेन ॥

संस्कृत के प्रसिद्ध वा बहुत आनेवाले छन्दों के यंत्र

११४१ सूत्र

इन छन्दों के दो भाग हैं पहला वर्णवृत्त दूसरा मात्रावृत्त वर्णवृत्त के दो भाग हैं पहला और दूसरा ॥

पहला भाग वर्णवृत्त

पहला विभाग

इस विभाग वाले छन्द दो२ अर्द्धछन्द रखते हैं सो पाद अर्थात् छन्द के

देखो पिछ चिन्ह दीर्घ वा ह्रस्व दोनों दिखाना है

१ ला २ रा ३रा ४था ९वां १० वां ११वां और १२वां शब्दभाग दीर्घ वा ह्रस्व दोनों होसकते हैं ८ वां शब्दभाग पाद के अन्त में आताहै और १६ वां अर्द्धछंद के अन्त में सो भी सामान्य हैं अर्थात् दीर्घ और ह्रस्व दोनों होसकते हैं अर्द्धछंद के ८ वें शब्दभाग पर दो भाग होजाते हैं इसलिए यिह एक सामान्य सूत्र है कि इस शब्दभाग पर पूरा शब्द आना चाहिए चाहे अमिश्रित हो चाहे मिश्रित+

टीका

+ परन्तु मिश्रित शब्दों के एक अर्द्धछन्द में लगातार आने के थोड़े दृष्टान्त हैं

५ वां शब्दभाग सदा ह्रस्व होना चाहिए ६ठा और ७ वां दीर्घ होना चाहिए परन्तु महाभारत में ६ ठे शब्दभाग के ह्रस्व होने के दृष्टान्त हैं इस अवस्था में ७वां शब्दभाग भी ह्रस्व होना चाहिए परन्तु कभी कभी इन पिछले सूत्रों से विरुद्धता भी पाईजाती है

पिछले चार शब्दभाग दो लग रखते हैं १३ वां शब्दभाग सदा ह्रस्व होताहै १४ वां सदा दीर्घ होताहै और १५ वां सदा ह्रस्व होताहै

प्रत्येक श्लोक वा दो अर्धछन्द में एक पूरा वाक्य आना चाहिए ऐसा कि उद्देश और विधेय दोनों आजावें परन्तु रामायण और महाभारत में बहुधा तीन तीन अर्द्धछन्द का भी एक श्लोक होताहै

९३६वां सूत्र

शेष छन्द पाद के शब्दभागों की संख्या से ठहराएजाते हैं और प्रत्येक पाद सम होताहै अर्थात् समान शब्दभाग रखता है इसलिए केवल एक पाद का यंत्र लाना अवश्य है

छपीहुई पुस्तकों में जब पाद के शब्दभाग आठ से अधिक होते हैं तब बहुधा एक पंक्ति में एक पाद लिखाजाता है

९३७वां सूत्र

त्रिष्टुप् एक पाद में ११ शब्दभाग रखता है
यिह २२ प्रकार का है उनमें बहुत प्रसिद्ध ये हैं

१३८वां सूत्र

इन्द्रवज्रा

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
ऽ	ऽ	।	ऽ	ऽ	।	।	ऽ	।	ऽ	

१३९वां सूत्र

उपेन्द्र वज्रा

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
।	ऽ	।	ऽ	ऽ	।	।	ऽ	।	ऽ	

५ वें शब्दभाग पर बहुधा ठहराव होता है
जो दो भेद ऊपर बताए हैं सो कभी एकही श्लोक में आजाते हैं तब उस श्लोक को उपजाति वा आख्यानकी कहते हैं

१४०वां सूत्र

रथोद्धता

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
ऽ	।	ऽ	।	।	।	ऽ	।	ऽ	।	ऽ

१४१वां सूत्र

जगति एक पाद के १२ शब्दभाग रखता है
यिह तीस प्रकार का है उनमें बहुत प्रसिद्ध ये हैं

१४२वां सूत्र

वंशस्थविल

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

टीका

† यिह चिन्ह यिह दिखाताहै कि पाद का पिछला शब्दभाग दीर्घ होताहै पर अर्द्धछन्द का पिछला शब्दभाग ह्रस्व वा दीर्घ दोनों होसकता है

१४३वां सूत्र

द्रुत विलम्बित

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

१४४वां सूत्र

अति जगती एक पाद के १३ शब्दभाग रखता है

यिह १६ प्रकार का है उनमें बहुत प्रसिद्ध ये हैं

१४५वां सूत्र

मञ्जुभाषिणी

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
। । ऽ । ऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

१४६वां सूत्र

प्रहर्षिणी

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

१४७वां सूत्र

रुचिरा वा प्रभावती

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
। ऽ । ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ

१४८वां सूत्र

शकरी वा शकरी वा शर्करी पाद में १४ शब्दभाग रखता है

पिह २० प्रकार का है उन में सब से प्रसिद्ध पिह है

१४९वां सूत्र

वसन्त तिलका

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
ऽ	ऽ	।	ऽ	।	।	।	ऽ	।	।	ऽ	।	ऽ	ऽ

१५०वां सूत्र

अति शकरी वा अति शकरी पाद में १५ शब्दभाग रखता है

इसके अठारह प्रकार हैं सबसे प्रसिद्ध पिह है

१५१वां सूत्र

मालिनी वा मानिनी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
।	।	।	।	।	।	ऽ	ऽ	ऽ	।	ऽ	ऽ	।	ऽ	ऽ

इसके ८ वें शब्दभाग पर ठहराव है॥

१५२वां सूत्र

अष्टि पाद में सोलह शब्दभाग रखता है

इसके १२ प्रकार हैं परन्तु कोई प्रसिद्ध नहीं है

१५३वां सूत्र

अत्यष्टि पाद में १७ शब्दभाग रखता है

इसके १७ प्रकार हैं बहुत प्रसिद्ध ये हैं

१५४वां सूत्र

शिखरिणी

१ २ ३ ४ ५ ६ | ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

इसके ६ ठे शब्दभाग पर ठहराव है

१५५वां सूत्र

मन्दाक्रान्ता

१ २ ३ ४ | ५ ६ ७ ८ ९ १० | ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
ऽ ऽ ऽ ऽ | । । । । । ऽ | ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

इसके चौथे और दसवें शब्दभाग पर ठहराव है

१५६वां सूत्र

हरिणी

१ २ ३ ४ ५ ६ | ७ ८ ९ १० | ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७
। । । । । ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ | । ऽ । । ऽ । ऽ

इसके ६ ठे और १० वें शब्दभाग पर ठहराव है

१५७वां सूत्र

धृति पाद में १८ शब्दभाग रखना है
इसके १० प्रकार हैं उन में से रघुवंश में यिह मिलाहै

१५८वां सूत्र

महा मालिका

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८
। । । । । । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

१५९वां सूत्र

अतिधृति पाद में १९ शब्दभाग रखना है
इसके १३ प्रकार हैं परन्तु सबसे प्रसिद्ध यिह है

१६५वां सूत्र

दो छन्द हैं एक गायत्री कहलाता है और दूसरा उष्णिह् कहलाता है इन में हला पाद में केवल छः शब्दभाग रखता है इस के ११ प्रकार हैं २ रा पाद में शब्दभाग रखता है इस के आठ प्रकार हैं

१ ली शाखा

जब पाद इतना छोटा होताहै तब कभी२ पूरा छन्द एक पंक्ति में लिखाजा

२ री शाखा

देखो जो छन्द वेद में आते हैं उन को बड़ी स्वाधीनता दीगई है जैसे

१६६वां सूत्र

गायत्री

यिह आठ२ शब्दभागवाले तीन भाग के तीन अर्द्ध छन्द रखसकता है अथ चार२ शब्दभागवाले छः भाग के तीन अर्द्ध छन्द रखसकताहै सो बहुधा एक पंक्ति में छापेजाते हैं प्रत्येक शब्दभाग का अनुमान बहुत सूत्र विरुद्ध रहता है इस अगले छन्द का अनुमान बहुत विधिपूर्वक है

१		२		३	
प्र०	द्वि०	प्र०	द्वि०	प्र०	द्वि०
. . . .	। ऽ ।	. . . .	। ऽ ।	. . . .	। ऽ ।

परन्तु प्रत्येक भाग के द्वितीय भाग में अनुमान पृथक२ होसकता है

२रा विभाग

जो छन्द दो अर्द्धछन्द रखतेहैं सो अपने शब्दभागों की † संख्या से ठहराएजाते हैं और प्रत्येक अर्द्धछन्द समान अर्थात् अर्द्ध सम होता है

टीका

† इस प्रकार के छन्द अर्द्धछन्द की मात्राओं की संख्याओं से जैसे दूसरे भाग

वाले ठीक किएजाते हैं वैसेही ठीक किएजाते हैं परन्तु प्रत्येक अर्द्धछन्द बहुधा नियत दीर्घ वा ह्रस्व शब्दभागों में बटताहै और किसी मात्रा को गग वाले और स वाले और भ वाले और ज वाले और दुहरे लल वाले गणों में इच्छानुसारता नहीं दीजाती इसलिए इस भाग को पहले भाग के सदृश शब्दभाग से दुहराने में बहुत बखेड़ा होता है

१६७वां सूत्र

यिह भाग सात जाति रखता है परन्तु किसी जाति में पकार नहीं रखता बहुत प्रसिद्ध ये हैं

१६८वां सूत्र

वैतालीय अर्द्धछन्द में २१ शब्दभाग रखता है

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
I	I	S	I	I	S	I	S	I	S	I	I	S	S	I	I	S	I	S	I	.

इसके १० वें शब्दभाग पर ठहराव है

१६९वां सूत्र

औपच्छन्दासिक अर्द्धछन्द में २३ शब्दभाग रखता है

इस छन्द का यंत्र वैसाही है जैसा पिछले का है परन्तु दसवें और पिछले शब्दभाग के पीछे पंक्ति में एक दीर्घ शब्दभाग बढ़ता है और ठहराव ११ वें शब्दभाग पर रहता है

१७०वां सूत्र

पुष्पिताग्रा अर्द्धछन्द में २५ शब्दभाग रखता है

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
I	I	I	I	I	I	S	I	S	I	S	S	I	I	I	I	S	I	I	S	I	S	I	S	.

इसके १२ वें शब्दभाग पर ठहराव है

दूसराभाग

मात्रावृत्त दो अर्द्धछन्द से बनता है और पूरे छंद के चर्णों की संख्या से ठहरा-
ज़ाता है प्रत्येक चर्ण बहुधा चार मात्रा का होता है

१७१वां सूत्र

देखो प्रत्येक चर्ण चार मात्रा का समझाजाता है और एक ह्रस्व शब्दभाग ए-
मात्रा के समान और दीर्घ शब्दभाग दो मात्रा के समान है इसलिए केवल ऐसे
में आसकते हैं जो चार मात्रा के समान हैं और ऐसे चर्ण हैं म (ऽ।।) गग (
ऽ) स (।।ऽ) ज (।ऽ।) और दुहरा लघु (।।।।) इनमेंसे कोई गण आसकताहै
इस प्रकार का बहुत प्रसिद्ध छन्द यिह है

१७२वां सूत्र

आर्या वा गाथा

प्रत्येक अर्द्धछन्द ७॥ साढ़े सात चर्ण का होताहै और प्रत्येक चर्ण चार मात्रा
ा परन्तु दूसरे अर्द्धछन्द के छठे चर्ण को छोड़के जो केवल एक चर्ण रखताहै औ-
इसलिए केवल अकेला ह्रस्व शब्दभाग होताहै यों पहला अर्द्धछन्द ३० मात्रा
ा होता है और दूसरा २७ का प्रत्येक अर्द्धछन्द के पीछे आधा चर्ण सदा नहीं
रन्तु बहुधा एक दीर्घ शब्दभाग होता है और पहले अर्द्धछन्द का छठा चर्ण कोई
ज (।ऽ।) अथवा कोई दुहरा लघु (।।।।) अवश्य होताहै पहला तीसरा पांचवां
और सातवां कोई ज (।ऽ।) होताहै प्रत्येक अर्द्धछन्द के तीसरे चर्ण पर ठहरा-
आताहै और तब यिह छंद पठ्या कहाजाता है आगे इसके ये थोड़े दृष्टान्त हैं

	१	२	३	४	५	६	७	
{	ऽऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।।	।ऽ।	ऽ ऽ	ऽ
	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ	।।ऽ	।	ऽ ऽ	।
	१	२	३	४	५	६	७	
{	ऽऽ	।।ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	ऽ
	।।ऽ	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽऽ	।	ऽ।।	ऽ

मात्रावृत्त दो अर्द्धछन्द से बनता है और पूरे छंद के चर्णों की संख्या से ठहराया जाता है प्रत्येक चर्ण बहुधा चार मात्रा का होता है

१७७वां सूत्र

देखो प्रत्येक चर्ण चार मात्रा का समझाजाता है और एक ह्रस्व शब्दभाग एक मात्रा के समान और दीर्घ शब्दभाग दो मात्रा के समान है इसलिए केवल ऐसे चर्ण आसकते हैं जो चार मात्रा के समान हैं और ऐसे चर्ण हैं भ (ऽ।।) गग (ऽऽ) स (।।ऽ) ज (।ऽ।) और दुहरा लघु (।।।।) इनमेंसे कोई गण आसकता इस प्रकार का बहुत प्रसिद्ध छन्द यिह है

१७८वां सूत्र

आर्या वा गाथा

प्रत्येक अर्द्धछन्द ७॥ साढ़े सात चर्ण का होताहै और प्रत्येक चर्ण चार मात्रा का परन्तु दूसरे अर्द्धछन्द के छठे चर्ण को छोड़के जो केवल एक चर्ण रखताहै और इसलिए केवल अकेला ह्रस्व शब्दभाग होताहै यों पहला अर्द्धछन्द ३० मात्रा का होताहै और दूसरा २७ का प्रत्येक अर्द्धछन्द के पीछे आधा चर्ण सदा नहीं परन्तु बहुधा एक दीर्घ शब्दभाग होता है और पहले अर्द्धछन्द का छठा चर्ण कोई ज (।ऽ।) अथवा कोई दुहरा लघु (।।।।) अवश्य होताहै पहला तीसरा पांचवां और सातवां कोई ज (।ऽ।) होताहै प्रत्येक अर्द्धछन्द के तीसरे चर्ण पर ठहराव आताहै और तब यिह छंद पथ्या कहाजाता है आगे इसके ये थोड़े दृष्टान्त हैं

	१	२	३	४	५	६	७	
{	ऽऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽ।।	ऽ।।	।ऽ।	ऽऽ	ऽ
	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ	।।ऽ	।	ऽऽ	।
{	१	२	३	४	५	६	७	
	ऽऽ	।।ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ।।	।ऽ।	ऽ।।	ऽ
	।।ऽ	ऽ।।	।।ऽ	।ऽ।	ऽऽ	।	ऽ।।	ऽ

सको बोलने में बोल अपने नीचे स्थान पर एकाएकी नहीं आसकता इसलिए दात्त और अनुदात्त के बीच में रुकजाताहै अर्थात् न इतना ऊंचा होताहै जित उदात्त और न इतना नीचा जितना अनुदात्त जो शब्दभाग ऐसा बोलने में आत सो स्वरित (बोलाहुआ वा बिचला) कहलाताहै इन तीनों को संस्कृत व्याक में आयाम (उठाना) विश्रम्भ (झुकाना) और आक्षेप (फैंकना) लिखाहै अ ऐसा तिर्यग्गमन अर्थात् उच्चारण स्थानों के ऊंचे नीचे वा आड़े तिर्छे होने से ह नाहै जिसको गानविद्या में हाथ की ताल से बताते हैं +

टीका

+ व्याकरणी उदात्त स्वर को उच्चारण स्थान के ऊपर के भाग से बोलने का फ बताते हैं और अनुदात्त को उच्चारणस्थान के नीचे के भाग से बोलने का

१७६वां सूत्र

इन झटकों के तीन सामान्य नाम हैं परन्तु यथार्थ झटकों के केवल दो नाम उदात्त (उठायाहुआ वा ऊंचा) और स्वरित (मिलाहुआ वा बिचला) अनुदा स्वभाविक और बिना झटकेवाले उच्चारण को कहते हैं) सो एक फैलीहुई आ रेखा के अनुसार दोनों यथार्थ झटकेवाले उच्चारण के तले रहताहै इसलिए नीचे च्चारण के लिए अर्थात् उस उच्चारण के लिए जो ऊंचे उच्चारण से घटताहै औ झटका न रखनेवाला सामान्य उच्चारण दिखाने वाली फैलीहुई आड़ी रेखा से भी नीचा है कोई काम अवश्य नहीं है यथार्थ में उदात्त (ऊंचा) उच्चारण करने में इ तना बड़ा परिश्रम करनापड़ता है कि ठीक ऊंचाई पर पहुंचने के लिए बोली को पहले आनेवाले शब्दभाग का, उच्चारण इस फैलीहुई आड़ी रेखा से इतना नीचा करना पड़ता है जितना उदात्त शब्दभाग का उच्चारण उससे ऊंचा उठानापड़ताहै और पाणिनि ने आप इस नीचे उच्चारण को सन्नतर (अति दूबाहुआ) लिखा है टीकाकार इसका उल्या अनुदात्ततर करते हैं और पाणिनि ने बिना झटके वाले एकश्रुति उच्चारण को एक श्रुति, (एक कान) लिखा है अर्थात् इसके उच्चारण में कान को एकसा सुनाई पड़ताहै कुछ पृथकता नहीं पाईजाती

सो अब अनुदात्ततर सबसे नीचे घोष का नाम है अथवा उस घोष का जो अनुदात्त या ऊंचे घोष के पास ही पहले आताहै परन्तु कोई मुख्य चिन्ह नहीं जिससे यिह अनुदात्त से पहचाना जावे यिह ध्यान रखना चाहिए कि कोई अकेला असम्मिश्रित शब्द कितने ही शब्दभाग रखता होवे शुद्धता के साथ झटकेवाला शब्दभाग एक से अधिक नहीं रख सकताहै इस शब्दभाग को इसके ऊंचे या मिले हुए घोष के अनुसार उदात्त या स्वरित कहते हैं परन्तु जो शब्द केवल एक स्वरित झटका रखता है तो यिह स्वरित उस प्रकार का है जिसको अनाधीन कहते हैं यद्यपि वुह दो शब्दभागों के मिलने से उत्पन्न होता है जिनमें से एक पहले उदात्त था जैसे तुन्वो इसमें पिछला शब्दभाग उदात्त था जो शब्द पहले शब्दभाग पर उदात्त या स्वरित झटका रखता है सो आद्युदात्त या आदिस्वरित कहलाताहै जो पिछले शब्दभाग पर उदात्त या स्वरित झटका रखता है सो मध्योदात्त या मध्यस्वरित कहा जाता है और जो अन्त पर उदात्त या स्वरित झटका रखता है सो अन्तोदात्त या अन्त स्वरित कहा जाता है प्रत्येक शब्द के सब शब्दभाग उस शब्दभाग को छोड़के जिसको उदात्त या अनाधीन स्वरित लिखा है अनुदात्त कहे जाते हैं परन्तु कोई शब्द उदात्त और अनाधीन स्वरित दोनों नहीं रखसकताहै तो भी जो शब्द उदात्त रखता है और अनुदात्त के पहले आताहै सो यिह अनुदात्त आधीन स्वरित होजाता है सोही यथार्थ में स्वरित झटके का बहुत आने वाला रूप है-

१,७८वां सूत्र

इन स्वरों पर चिन्ह यों किए जाते हैं कि उदात्त या ऊंचा स्वर कभी चिन्हित नहीं होता ऐसा कि जो एक भाग का शब्द उदात्त होताहै सो अकेला अचिन्हित रहताहै जैसे यु. जो शब्द एक शब्दभाग का अनुदात्त होताहै तो वुह अपने नीचे एक छोटी आड़ी रेखा रखता है जैसे नो और जो शब्द एक शब्दभाग का स्वरित रखता है सो वुह अपने ऊपर एक छोटी खड़ी रेखा रखता है जैसे के जो शब्द दो शब्दभाग रखता है और दोनों अनुदात्त होते हैं तो दो छोटी आड़ी रेखा उन दोनों के तले लिखीजातीहै जैसे सुम. और जो पहला शब्दभाग उदात्त होताहै तो

उसके ऊपर एक छोटी खड़ी रेखा लिखी जातीहै जैसे इन्द्रः और जो पिछला शब्दभाग उदात्त होता है तो वुह आचिन्हित रहताहै जैसे अग्निः जो शब्द दो से अधिक शब्दभाग रखता है और वे सब अनुदात्त (सर्वानुदात्त) होतेहैं तो सब के तले एक२ छोटी आड़ी रेखा लिखीजाती है जैसे अवर्धन्त परन्तु जो उन में एक शब्दभाग उदात्त होता है तो जो आड़ी रेखा पास ही पहले आतीहै सो ही अनुदात्ततर होने का चिन्ह है जैसे आप्नुवानः इस में पहला और दूसरा शब्दभाग अनुदात्त है और तीसरा अनुदात्ततर और चौथा उदात्त और जो उस उदात्त शब्दभाग के पीछे कोई दूसरा अनुदात्त आता है तो वुह आधीन स्वरित होताहै और ऊपर खड़ी रेखा से चिन्हित होताहै जैसे वैश्वानराय (ऋग्वेद १, १, १) ऐसेही चकार जैसे तीन शब्दभागवाले शब्दों में च अनुदात्ततर है का उदात्त है और र स्वरित ॥

९७९वां सूत्र

ऊपर वाले व्याख्यानों से स्पष्ट हैकि ऋग्वेद की संहिता में अनुदात्ततर का चिन्ह बहुधा लगातार तीन झटकों के पहले आता है जिन का पिछला आधीन स्वरित होताहै इस अनुदात्ततर चिन्ह के आने से पढ़नेवाला जानजाता है कि कोई उदात्त वा आधीन स्वरित पास ही पीछे आता है परन्तु यिह पिछला कभी२ एक नये उदात्त शब्द भाग से रोका जाता है जैसे दिवा पतयन्तम इस में शब्दभाग प आधीन स्वरित होता सो अनुदात्ततर होगया है इस लिये कि उदात्त शब्दभाग त पीछे आता है

९८०वां सूत्र

परन्तु जो अनाधीन स्वरित से कोई उदात्त वा अनाधीन स्वरित पासही पीछे आताहै तो एक अद्भुत युक्ति की जाती है वुह यिह है कि जो शब्दभाग अनाधीन स्वरित होताहै और अन्त में कोई ह्रस्व स्वर रखताहै तो संख्यासूचक १ उस स्वरित का चिन्ह अपने ऊपर और अनुदात्ततर का चिन्ह अपने तले लेके आताहै जैसे अप्स्वन्ता (ऋग्वेद १० ८१ २) सुभ्वः पर्वताम् (ऋग्वेद ४, १० २) और जो वुह शब्दभाग अन्त में कोई दीर्घ स्वर रखता है तो संख्यासूचक ३ इसी रीति से आताहै

ता है जैसे विभ्वोऽविभूतयो (ऋग्वेद १. १६६,११) नृयोऽग्नप (१.४८ . ६) व्यापिः (ऋग्वेद ६, २१. ८)

१८१वां सूत्र

यिह भी जाननाचाहिये कि वाक्य में चिन्ह का नहोना अनुदात्त और उदात्त को दिखाताहै जैसे वेद की संहिता में वाक्य के आदि में जो आड़ी रेखा नीचे आतीहै सो उस वाक्य का अनुदात्ततर शब्दभाग दिखातीहै और वे अनुदात्त शब्दभाग भी दिखातीहै जो पहले आते हैं दूसरा शब्दभाग जो चिन्ह नहीं रखता तो उदात्त होता है और दूसरा जो खड़ी रेखा उपर रखता है तो स्वरित होताहै परन्तु जो दूसरा कुछ चिन्ह नहीं रखता तो अनुदात्त होताहै और उपरवाली खड़ी रेखा के पीछे प्रत्येक चिन्ह का न आना जबतक दूसरी आड़ी रेखा का जो अनुदात्ततर है चिन्ह आताहै तबतक अनुदात्त दिखाता है पदार्थ में जो शब्दभाग दोनों शब्दों और वाक्यों में स्वरित के पीछे आतेहै सो सब झटके विना बोलेजानेवाले समझेजाते हैं जबतक उच्चारण को दूसरा उदात्त शब्दभाग बोलने के लिए दबना नहीं पड़ता

झटका न होने के विषय में यिह बतासकतेहै कि सीधे वाक्यों में जबतक कोई क्रिया आदि में नहीं आती तबतक इसको ऐसा शब्द नहीं समझते जिसको बोलने में पहले अव्यय पर झटका देना पड़े इसलिए झटका नहीं रखती यिही सूत्र आठवीं विभक्तिवाली संज्ञाओं से लगते हैं क्योंकि ऐसी संज्ञाएं केवल तब झटका चाहती हैं जब वाक्य के आदि में आती हैं और तब झटका पहले शब्दभाग पर आताहै उपाधिसूचक वाक्यों में और थोड़ी दूसरी अवस्थाओं में जो निषेध समझीजातीहैं क्रियाएं अपना झटका बनारखती हैं

१८२वां सूत्र

यिह झटका देने की रीति प्रातिशाख्यः में उस रीति से बहुधा विरुद्ध है जो पाणिनि ने बताई है जब झटका रखनेवाले दो स्वर एक दूसरे से मिलते हैं तब झटका ठहराने के जो सूत्र प्रातिशाख्यः वाले ने बताए हैं सो बहुत ठीक हैं परन्तु कुछ निषेधों के आधीन हैं उनमें से थोड़े येहैं उदात्त + उदात्त = उदात्त उदात्त + अनुदात्त = उदात्त अनुदात्त + अनुदात्त = अनुदात्त अनुदात्त + उदात्त = उदात्त स्वरित + उदात्त = उदात्त स्वरित + अनुदात्त = स्वरित